राजस्थानी वेलि साहित्य

(राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध)

लेखक

डॉ० नरेन्द्र भानावत

एम० ए० पी-एच० डी० साहित्यरत्न

हिन्दी विभाग

राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर

*

राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम), उदयपुर

प्रकाशक
साहित्य सचिव,
राजस्थान साहित्य अकादमी (संगम)
उदयपुर

★

प्रथम संस्करण : १५००
१६६५
मूल्य : २१.०० रुपये

★

मुद्रक
राजस्थान राज्य सहकारी मुद्रणालय लि०
जयपुर (राजस्थान)

प्रकाशकीय

राजस्थान साहित्य अकादमी ने कुछेक शोध प्रबंध भी प्रकाशित किये हैं। उन्ही मे डा० भानावत का यह महत्वपूर्ण शोध प्रबंध है।

अनेक वृहद्‌काय महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियो को सामान्यतः व्यावसायिक प्रकाशक प्रकाशित नहीं करते हैं। हमने ऐसी पाण्डुलिपियों को प्रकाशित करने के अपने दायित्व को भी निभाया है। यद्यपि बजट की सीमाओ को देखते हुए हम अधिक संख्या मे ऐसी पुस्तको को प्रकाशित नही कर सकते।

अकादमी ने अपने प्रकाशनो के प्रथम दौर में राजस्थान के रचनाकारो की विविध विधाओ के संकलनो के द्वारा साहित्य-जगत के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था। लेकिन अब अकादमी ने अपनी नीति बदल दी है। प्रकाशन नीति के दूसरे दौर मे हमने यह निर्णय लिया है कि प्रान्त के प्रत्येक कृतिकार का प्रतिनिधि साहित्य-विधा का उनका प्रतिनिधि संग्रह प्रकाश में लाया जाए। सन ६५–६६ मे प्रकाशनार्थ स्वीकृत की जाने वाली पाण्डुलिपियो को इसी नीति के अनुसार चुना जा रहा है।

डा० नरेन्द्र भानावत साहित्य की विविध विधाओ मे सफलतापूर्वक लिखते जा रहे हैं। लेकिन शोध व अनुसंधान की ओर आपकी विशेष रुचि है। यह पुस्तक आपका शोध प्रबंध है जो आपने पी-एच० डी० की उपाधि के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया था। इसे अकादमी के द्वारा पुस्तक रूप मे प्रकाशित करने के पूर्व डा० भानावत ने इसमें कुछ उचित परिवर्तन व परिवर्द्धन किया है। यह शोध कार्य 'वेलि साहित्य' पर होने के कारण अपनी विशिष्टता रखता है। हमे इस ग्रंथ की पाण्डुलिपि पर कई विद्वानो ने प्रशंसात्मक सम्मतियाँ दी थी। हमें आशा है, साहित्य जगत व शैक्षणिक जगत इस पुस्तक का समुचित स्वागत करेगा।

मंगल सक्सेना
साहित्य सचिव,
राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

दीपमालिका
सं. २०२२

प्राक्कथन

पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' राजस्थानी साहित्य की महत्वपूर्ण कृति है। इसके कई संस्करण निकल चुके हैं। दूसरी महत्वपूर्ण कृति किसना कृत 'महादेव पार्वती री वेलि' है जिसका प्रकाशन हाल में ही बीकानेर के सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टीट्यूट से हुआ है। इसके अतिरिक्त राजस्थानी भाषा में और भी अनेक वेलि ग्रंथ हस्तलिखित प्रतियों के रूप में विभिन्न भंडारों में मिलते हैं। अब तक विद्वानों का ध्यान एकमात्र 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' पर ही केन्द्रित रहा और उसी को आधार बनाकर वेलि साहित्य पर थोड़ी बहुत चर्चा हुई।

प्रस्तुत प्रबन्ध में डा० नरेन्द्र भानावत ने पहली बार वेलि साहित्य का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत करते हुए राजस्थानी भाषा की लगभग ८० वेलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसके पूर्व केवल आठ-दस वेलियों के नाम ज्ञात थे। लेखक ने बड़े अध्यवसाय से अनेक नवीन वेलि कृतियों का पता लगाया और उनका समुद्धार किया है।

यह प्रबंध चार खण्डों में विभक्त है। प्रथम खण्ड में सैद्धान्तिक विवेचन है। इसमें सर्व प्रथम वेलि परम्परा, वेलि-नाम, वेलि साहित्य के प्रकार और प्राप्त वेलि साहित्य की विशेषताओं पर मौलिक विचार किया गया है। द्वितीय खण्ड में चारणी वेलि साहित्य की कृतियों का अध्ययन है जिसमें प्रत्येक कृति, उसके लेखक और उसके रचनाकाल, उसके विषय आदि का विवेचन करते हुए उसका साहित्यिक तथा प्रसंगानुसार ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। तृतीय खण्ड जैन वेलि साहित्य से सम्बन्धित है। इसमें ऐतिहासिक, कथात्मक एवं उपदेशात्मक जैन वेलियों का विवेचन किया गया है। चतुर्थ खण्ड में लौकिक वेलि साहित्य की विवेचना की गयी है।

प्रस्तुत प्रबंध के द्वारा राजस्थानी साहित्य का एक महत्वपूर्ण अंश प्रकाश में आया है। आशा है, यह विद्वानों को परितोषकर होगा।

नरोत्तमदास स्वामी
आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली (राजस्थान)

निवेदन

जब एम० ए० के सातवें प्रश्न पत्र में मैंने डिंगल को वैकल्पिक विषय के रूप में स्वीकार किया तो पृथ्वीराज राठौड़ कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' का सांगोपांग दृष्टि से अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं उसके साहित्यिक सौन्दर्य पर विशेष रूप से मुग्ध हुआ। एम० ए० करने के बाद जब श्रद्धेय गुरुवर श्री नरोत्तमदास जी स्वामी ने राजस्थानी वेलि साहित्य पर ही शोध-कार्य करने की बात कही तब मेरी उत्सुकता और बढ़ गई। उस समय मेरे सामने राजस्थानी भाषा के आठ-दस वेलि ग्रंथों के ही नाम थे और उनमें भी अधिकांश कृतियाँ बहुत छोटी-छोटी थी। विषय की संकीर्णता को देखकर थोड़ी निराशा भी हुई पर ज्यों-ज्यों बीकानेर, जोधपुर, जयपुर, अजमेर, उदयपुर आदि स्थानों के हस्तलिखित ग्रंथ-भंडार देखता गया त्यों-त्यों प्रोत्साहन मिलता रहा। बाद मे जाकर तो विषय-सामग्री इतनी बढ गई कि परिशिष्ट में आढ़ा किशना कृत 'महादेव पार्वती री वेलि' को सम्पादित करने का विचार तक छोड़ना पड़ा।

राजस्थानी भाषा का साहित्य विविध और विस्तृत है। उसमे रास, रासो, चौपाई, संधि, चर्चरी, ढाल, पवाड़ा, फाग, धमाल, विवाहलो आदि काव्य-रूपो की एक सुदीर्घ परम्परा सुरक्षित है। 'वेलि' संज्ञक काव्य रूप भी इसी प्रकार का है। किसी एक काव्य-रूप को लेकर लिखा जाने वाला कदाचित् यह पहला ग्रंथ है।

प्रकाशित वेलि-ग्रंथ के रूप में केवल पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' ही 'अभी तक विद्वानो के सामने आया है। उसके विभिन्न विद्वानों द्वारा सम्पादित छ संस्करण इस समय उपलब्ध है। शेष वेलि ग्रंथ हस्तलिखित रूप मे ही विभिन्न भंडारों में बन्द पड़े हैं। हाल ही मे बीकानेर के सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट से 'महादेव पार्वती री वेलि' का तथा जोधपुर के राजस्थानी शोध-संस्थान से 'राठौड़ रतनसिंघ री वेलि' का प्रकाशन हुआ है।

मैंने सर्वप्रथम संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश, राजस्थानी, गुजराती एवं व्रजभाषा मे चली आती हुई वेलि-परम्परा का क्रमबद्ध इतिहास प्रस्तुत कर राजस्थानी वेलि-साहित्य का वर्गीकरण करते हुए उसका साहित्यिक अध्ययन (और प्रसंगानुसार ऐतिहासिक अध्ययन भी) प्रस्तुत किया है। वेलि नाम पर भी प्रथम बार इतने विस्तार के साथ प्रकाश डाला गया है। अध्ययन प्रस्तुत करते समय मैंने प्रत्येक वेलि का कवि-परिचय, रचना-काल, रचना–विषय और कला-पक्ष की दृष्टि से विवेचन किया है। स्थान-स्थान पर पाद-टिप्पणियों में मूल पाठ भी उद्धृत किया गया है। हस्तलिखित प्रतियों के पाठ मे उद्धृत करते समय अपनी ओर से किसी प्रकार का परिवर्तन या संशोधन नहीं किया गया है। इस कारण कुछ शब्दों की वर्तनी और पाठ अट-पटे लग सकते हैं।

यह प्रबन्ध चार भागों के नौ अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग सैद्धान्तिक विवेचन से संबंधित है। इस भाग में वेलि साहित्य की परम्परा और उसका विकास, वेलि नाम और राजस्थानी वेलि साहित्य का वर्गीकरण ये तीन अध्याय हैं। प्रथम अध्याय के बाद 'क्या राठौड़ पृथ्वीराज वेलि परम्परा के प्रवर्तक थे ?' शीर्षक परिशिष्ट दिया गया है। द्वितीय भाग चारणी वेलि साहित्य से संबंधित है। इस भाग में चारणी वेलि साहित्य : ऐतिहासिक और चारणी वेलि साहित्य : धार्मिक-पौराणिक ये दो अध्याय हैं। तृतीय भाग जैन वेलि साहित्य से संबंधित है। इस भाग में जैन वेलि साहित्य : ऐतिहासिक, जैन वेलि साहित्य : कथात्मक और जैन वेलि साहित्य : उपदेशात्मक ये तीन अध्याय हैं। चतुर्थ भाग लौकिक वेलि साहित्य से संबंधित है।

इस प्रबंध में मैंने राजस्थानी भाषा की लगभग ८० वेलियों और ६५ वेलिकारों का अध्ययन प्रस्तुत किया है। ६५ कवियों में से लगभग ३० कवि तो ऐसे हैं जो अभी तक अज्ञात थे और सर्वप्रथम इस ग्रंथ के द्वारा प्रकाश में आते हैं। शेष कवियों का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है पर वेलिकार के रूप में अधिकांश के दर्शन यहां प्रथम बार हुए हैं।

प्रबंध के प्रस्तुत करने में मैंने विशेषकर अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर, अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था, बीकानेर, राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी (अब जोधपुर), महावीर भवन, जयपुर, श्री आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर, साहित्य संस्थान, उदयपुर, भट्टारक भंडार, अजमेर, लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद तथा ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीच्यूट, बड़ोदा के हस्तलिखित ग्रन्थ-संग्रहों से लाभ उठाया है। इन संग्रहालय-पुस्तकालयों के अधिकारियों एवं कार्यकर्ताओं ने अत्यन्त ही सौजन्यपूर्वक प्रतियों को देखने तथा उनका उपयोग करने की सुविधा प्रदान की। इनके अतिरिक्त श्री अगरचन्द नाहटा, डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल, डा० भोगीलाल साडेसरा, प्रो० दलसुख भाई मालवणिया, डा० मोहनलाल मेहता, श्री शिवसिंह चोयल, श्री परमानन्द जैन, श्री मुकनसिंह और श्री शक्तिदान कविया ने हस्तलिखित प्रतियाँ तथा नकलें भेजकर मुझे सहायता पहुँचाई। मैं इन सबके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

श्री अगरचंद नाहटा ने प्रबन्ध को आद्योपान्त पढ़कर उपयोगी परामर्श दिये। स्वर्गीय कविराव मोहनसिंह से 'महादेव पार्वती री वेलि' को समझने में महत्वपूर्ण निर्देश मिले। मैं इनका अत्यन्त ही कृतज्ञ हूँ। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डा० हीरालाल जैन, डा० दशरथ शर्मा, डा० माताप्रसाद गुप्त, डा० रामसिंह तोमर, डा० सरनामसिंह शर्मा, डा० हरिवल्लभ चुनीलाल भायाणी, डा० हरिवंश कोछड़, डा० मोतीलाल मेनारिया, डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, श्री मनदान चारण, श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, मुनि कांतिसागर, श्री सीताराम लालस, श्री नारायणसिंह भाटी, श्री रावत सारस्वत, श्री कृष्णचंद श्रोत्रिय तथा अन्य विद्वानों ने समय-समय पर आवश्यक परामर्श और सुझाव दिये हैं। इन सबके प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। मेरे अनुज श्री महेन्द्र भानावत ने इधर-उधर दौड़-दौड़ कर मुझे आवश्यक सामग्री यथासमय न भिजवाई होती और सहधर्मिणी स्नेहमयी

माता ने समय-समय पर मुझ में प्रेरणा, उत्साह और शक्ति न भरी होती तो यह कार्य इतना शीघ्र न हो पाता। इन दोनों के प्रति कृतज्ञता-ज्ञापन कर मैं इनके गौरव को कम नहीं करना चाहता। गवर्नमेन्ट कालेज, बूंदी के तत्कालीन प्रिंसीपल श्री एम० एल० गर्ग का भी मैं अत्यंत आभारी हूं जिनके प्रशस्त स्नेह और हर संभव सुविधा प्रदान करने के कारण मैं यह कार्य पूर्ण कर सका।

यह प्रबन्ध श्रद्धेय श्री नरोत्तमदास स्वामी के निर्देशन का परिणाम है। उन्हीं से सतत प्रेरणा, मार्ग-दर्शन और स्नेह पाकर मैं इसे लिख सका।

यह ग्रंथ मैंने सन् १९६२ में राजस्थान विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० की उपाधि के लिए प्रस्तुत किया था। अब तीन वर्ष बाद राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर की ओर से इसका प्रकाशन हो रहा है। इस बीच जो नई जानकारी प्राप्त हुई, उसका उपयोग यथास्थान पाद-टिप्पणियों में किया गया है। अकादमी के अध्यक्ष श्री जनार्दनराय नागर एवं साहित्य सचिव श्री मंगल सक्सेना ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन में जो तत्परता दिखलाई है, उसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। राजस्थान राज्य सहकारी मुद्रणालय, जयपुर के अधिकारियों एवं कर्मचारियों को धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जा सकता जिन्होंने विशेष रुचि और सजगता के साथ इसके मुद्रण में योग दिया। मेरे अनन्य मित्र श्री उदयलाल नलवाया ने इसके प्रूफ आदि देखने में जो सहयोग दिया, वह उनका मेरे प्रति बड़ा सौजन्य है।

इस प्रबन्ध से यदि राजस्थानी साहित्य की किंचित् भी श्री वृद्धि हुई तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

गांधी जयन्ती, १९६५ — नरेन्द्र भानावत

शान्तायन
सी-२३५ ए तिलकनगर, जयपुर (राजस्थान)

विषय-सूची

प्रथम खण्ड (सैद्धान्तिक विवेचन)

द्वितीय खण्ड (चारणी वेलि साहित्य)

तृतीय खण्ड (जैन वेलि साहित्य)

चतुर्थ खण्ड (लौकिक वेलि साहित्य)

स्वर्गीय पिता श्री प्रतापमलजी को
धूपछाँही अगणित बाल-स्मृतियों को

तथा

माँ डेलूबाई के
असीम धैर्य, जीवट, साहस,
तप, त्याग और वात्सल्य को

—नरेन्द्र भानावत

प्रथम खण्ड

(सैद्धान्तिक विवेचन)

कठोपनिषद् में दो अध्याय और छह वल्लियाँ हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् के सातवें आठवें और नवमें प्रपाठक को क्रमशः 'शिक्षावल्ली', 'ब्रह्मानंद वल्ली' और 'भृगुवल्ली' कहा गया है[1]। आगे चलकर वल्ली संज्ञक कई रचनाएँ लिखी गईं उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं:—

रचना—नाम	रचनाकार	रचना-विषय
(१) कठवल्ली उपनिषद्[2]	–	उपनिषद्
(२) षड्वल्ली उपनिषद्[3]	–	उपनिषद्
(३) अम्बुजवल्ली कल्याणम्[4]	श्री निवास कवि	नाटक
(४) अम्बुजवल्ली दण्डकम्[5]	–	स्तोत्र
(५) चातुर्मास्यव्रत कल्पवल्ली[6]	विरूपाक्ष	व्रतकल्प
(६) द्रव्यगुण कल्पवल्ली[7]	–	वैद्यक
(७) नानार्थ कल्पवल्ली[8]	वेंकट भट्ट	विशिष्टाद्वैत
(८) विकृति वल्ली[9]	व्यालि	वेदलक्षण
(९) पद्धति कल्पवल्ली[10]	विट्ठल दीक्षित	ज्योतिष
(१०) सूर्य सिद्धान्तव्याख्या कल्पवल्ली[11]	याज्ञवल्क्य	ज्योतिष
(११) चण्डी सपर्या क्रम कल्पवल्ली[12]	श्री निवास	देवी-तंत्र
(१२) मधुकेलि वल्ली[13]	गोवर्धन भट्ट	काव्य
(१३) सपर्या क्रम कल्पवल्ली[14]	वीरभद्र	जैन धर्म

१—संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ १४०-४२

२—सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची (अप्रकाशित)

३—वही

४—गवर्नमेंट ओरियन्टल मेन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास के संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों की सूची, प्रथम भाग, पृ० ८१

५—वही पृ० ४१

६—वही पृ० २३७

७—वही पृ० ३८१

८—वही पृ० ३६६

९—ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट बड़ौदा के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, प्रथम भाग पृष्ठ ५६-५७

१०—वही पृ० १२०४-१२०५

११—वही पृ० १२७२-१२७३

१२—वही पृ० १४५१-१४५६

१३—विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट होशियारपुर के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची, पृ० २२३

१४—वही पृ० २६७

रिभद्र सूरि	जैन धर्म
शीनाथ	आयुर्वेद
कुलचद्र	ज्योतिष
रुषोत्तम प्रसाद	वेदान्त
	वेदान्त

ंश मे 'वेल्लि' होता हुआ राजस्थानी में
स नाम की सर्व प्रथम रचना रोडाकृत
के लगभग है[६]। विद्यापति ने अपनी
ो 'वल्लि' भी कहा है[७]।

होती हुई यह वेलि साहित्य की परम्परा
न हुई। हमारा मुख्य प्रतिपाद्य विषय
रा और विकास का इतिहास व्रज,
के बाद प्रस्तुत किया गया है।

नाम से लिखी जाने वाली अनेक
ों के नाम इस प्रकार हैं:–

रचना–काल

१७वी शती का उतरार्द्ध

"

दलीचन्द देसाई, पृ० १५५
र, जिल्द २, पृ० ७७

ा, बनारस, पृ० ३८
, ६१, पृ० ७० पर उद्धृत।
३, अंक १–२) पृष्ठ, २२ पर डा०
ीर्तिलता: सं० बाबूराम सक्सेना,

एण) पृ० १६४।
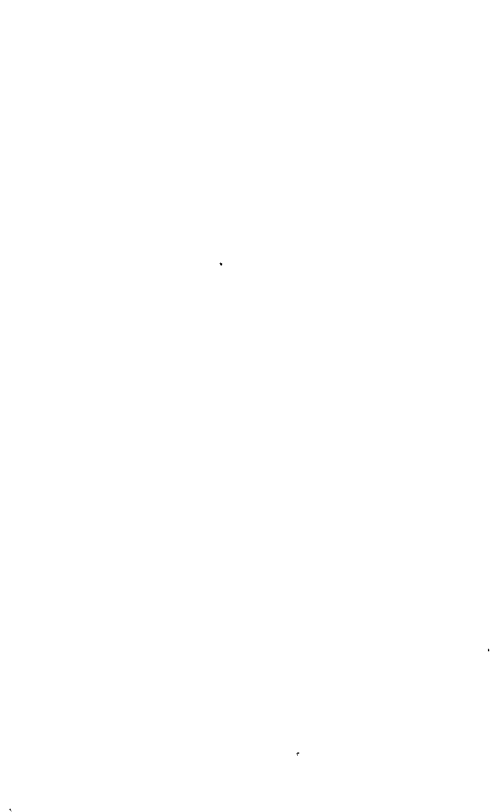
प्रथम अध्याय

वेलि साहित्य की परम्परा और उसका विकास

संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश वेलि साहित्य :

वल्ली, वल्लरी, वेलि और वेल संज्ञक रचनाओं की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। वाङ्मय को उद्यान मानकर ग्रंथो को-चाहे वे व्याकरण, वेदान्त, दर्शन, धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक, अलंकार शास्त्र, कोष, इतिहास, नीतिशास्त्र, कामशास्त्र, काव्य आदि किसी भी विषय से संबंध रखने वाले हो-वृक्ष[1] तथा वृक्षांगवाची-लता[2], मंजरी[3], पल्लव[4], कलिका[5], गुच्छक[6], कंदली[7], बीज[8], आदि-नाम से पुकारने की प्राचीन परिपाटी रही है। वेलि तथा वेल संज्ञक रचनाएँ भी इसी प्रकार की हैं। कुछ उपनिषदों में अध्यायों या अध्यायों के विभाग का वल्ली नाम मिलता है।

१—वृक्षवाची ग्रंथो के नाम मुख्यतः दो रूपो मे मिलते हैं—

(क) द्रुमवाची:—कविकल्पद्रुम, धर्मकल्पद्रुम, श्रुत्यन्तसुरद्रुम, अध्यात्मकल्पद्रुम, दैवज्ञकल्पद्रुम, शब्दकल्पद्रुम, कहावतकल्पद्रुम, रागकल्पद्रुम आदि।

(ख) तरुवाची:—प्राकृतकल्पतरु, लघुत्रिमुनि कल्पतरु, कृत्यकल्पतरु, कोपकल्पतरु, स्मृतिकल्पतरु आदि।

२—लतावाची:—न्यासकल्पलता, व्याकरण कल्पलता, कामकुंजलता, अवदान कल्पलता, फल-कल्पलता, वाञ्छा कल्पलता, कुंडल कल्पलता, विष्णु भक्ति कल्पलता, वनलता, स्याद्वाद कल्पलता, प्राकृत कल्पलतिका, प्रबंधकला लतिका, साण्पिण्य कल्पलतिका, वेदांत कल्प-लतिका, परम शिवाद्वैत कल्पलतिका आदि।

३—मंजरीवाची:—प्राकृत मंजरी, धातुमंजरी, शब्दमंजरी, अद्वैतरस मंजरी, कर्पूर मंजरी, शृंगारमंजरी, तिलकमंजरी, बृहत्कथा मंजरी, संयममंजरी, विवेकमंजरी, कल्पमंजरी, रूपकमंजरी, स्याद्वाद मंजरी, न्यायमंजरी, जल्पमंजरी, आश्चर्यमंजरी, अनेकार्थ मंजरी, वर्णालंकार मंजरी, वैद्यमंजरी, कारकपुष्प मंजरी, छन्दो मंजरी, अमृत मंजरी, भाषा-मंजरी आदि।

४—पल्लववाची : यथा–बीज पल्लवम्, पल्लव शेष आदि।

५—कलिकावाची : यथा–स्याद्वाद कलिका, विवेक कलिका, चिकित्सा कलिका आदि।

६—गुच्छकवाची : यथा–काव्यमाला गुच्छक आदि।

७—कंदलीवाची : यथा–न्याय कंदली, उपदेश कंदली, छंद कंदली आदि।

८—बीजवाची : यथा–क्षमावल्ली बीज, विचारशतक बीजक, कबीर बीजक आदि।

कठोपनिषद् में दो अध्याय और छह वल्लियां हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् के सातवें, आठवें और नवमे प्रपाठक को क्रमशः 'शिक्षावल्ली', 'ब्रह्मानंद वल्ली' और 'भृगुवल्ली' कहा गया है[१]। आगे चलकर वल्ली संज्ञक कई रचनाएँ लिखी गईं। उनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं:-

रचना—नाम	रचनाकार	रचना-विषय
(१) कठवल्ली उपनिषद्[२]	–	उपनिषद्
(२) षडवल्ली उपनिषद्[३]	–	उपनिषद्
(३) अम्बुजवल्ली कल्याणम्[४]	श्री निवास कवि	नाटक
(४) अम्बुजवल्ली दण्डकम्[५]	–	स्तोत्र
(५) चातुर्मास्यव्रत कल्पवल्ली[६]	विरुपाक्ष	व्रतकल्प
(६) द्रव्यगुण कल्पवल्ली[७]	–	वैद्यक
(७) नानार्थ कल्पवल्ली[८]	वेंकट भट्ट	विशिष्टाद्वैत
(८) विकृति वल्ली[९]	व्यालि	वेदलक्षण
(९) पद्धति कल्पवल्ली[१०]	विट्ठल दीक्षित	ज्योतिष
(१०) सूर्य सिद्धान्तसव्याख्य कल्पवल्ली[११]	व्याख्यल्लय	ज्योतिष
(११) चण्डी सपर्या क्रम कल्पवल्ली[१२]	श्री निवास	देवी—तंत्र
(१२) मधुकेलि वल्ली[१३]	गोवर्धन भट्ट	काव्य
(१३) सपर्या क्रम कल्पवल्ली[१४]	वीरभद्र	जैन धर्म

१—संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला, पृष्ठ १४०—४२

२—सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची (अप्रकाशित)

३—वही

४—गवर्नमेन्ट ओरियन्टल मेन्यूस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास के संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों की सूची, प्रथम भाग, पृ० ४१

५—वही पृ० ४१

६—वही पृ० २३७

७—वही पृ० ३४१

८—वही पृ० ३६६

९—ओरियन्टल इन्स्टीटयूट बड़ौदा के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, प्रथम भाग पृष्ठ ५६-५७

१०—वही पृ० १२०४-१२०५

११—वही पृ० १२७२-१२७३

१२—वही पृ० १४३५-१४३६

१३—विश्वेश्वरानन्द वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, होशियारपुर के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची, पृ० २२३

१४—वही पृ० २६२

संख्या में सबसे अधिक 'लता' संज्ञक रचनाओं के प्रणेता हैं रसिकदास। वल्लभ सम्प्रदाय के भक्त-कवियों में रसिकदास नाम के पांच व्यक्ति हो गये ये रसिकदास गोस्वामी धीरीधर के शिष्य थे। इनका रचनाकाल संवत १७४३ ७५३ तक का है। इनके द्वारा रचित २० 'लता' संज्ञक रचनाओं के नाम इस र है।[२]

रचना-नाम	छंद-संख्या
(१) प्रसाद लता (सं० १७४३)	
(२) मनोरथ लता (मात्रिक वृत्त)	११७ पद
(३) अभिलाषा लता	२७ कुंडलियां
(४) सौंदर्य लता	१४२ दोहे
(५) माधुर्य लता (सं० १७४४)	१०१ दोहे
(६) सौभाग्य लता	४७ दोहे, कवित्त, सवैये
(७) विनोद लता	६६ पद, ४१ कवित्त, ८ दोहे
(८) तरंग लता	२२ दोहे
(९) विलास लता	७४ दोहे, चौपाई, कुंडलियां
(१०) सुखसार लता	४० पद
(११) अदभुत लता	५७ पद
(१२) कौतुक लता	६० पद
(१३) रहस्य लता	४६ पद
(१४) रतन लता	४५ पद
(१५) अतन लता	२७ पद
(१६) रतिरंग लता (सं० १७४६)	३४ पद
(१७) हुलास लता	२४ पद
(१८) आनन्द लता	५६ पद
(१९) चाह लता	५४ पद
(२०) सुकमारी लता	१०१ पद

'वेलि' और 'वल्लरी' नाम से लिखी जाने वाली कृतियाँ तो और भी अधिक है। कबीर के बीजक[३] में "वेलि" नाम की एक छोटी सी (२३ छंद) रचना है जिसकी प्रत्येक पंक्ति के अन्त में "हो रमैया राम" शब्द आते हैं।[४] बीजक की

१—राधा वल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ४६६-५००

२—वही पृ० ५०१

३—प्रकाशक-पं० मोतीदास चेतनदास : पृ० ७५७–७६७

४—देखिये-हंसा सरवर शरीर मे हो रमैया राम।
जागत चोर घर मूसल हो रमैया राम ॥१॥
जो जागल सो भागल हो रमैया राम।
सुतल से गेन बिगोय हो रमैया राम ॥२॥

(३) प्रेमलता[1]	ध्रुवदास	१७ वीं शती का उत्तरार्द्ध
(४) आनंदलता[2]	"	"
(५) शृंगारलता[3]	सुखदेव मिश्र	सं० १७५५ के आसपास
(६) छविलता विलास लीला[4]	अनन्य अली	सं० १७५६ से १७६०
(७) ललितलता विलासलीला[5]	"	"
(८) माधुरीलता विलासलीला[6]	"	"
(९) समोलता विलासलीला[7]	"	"
(१०) कंचनलता विलास[8]	"	"
(११) चंद्रलता लीला[9]	"	"
(१२) इश्क लता[10]	घनानन्द	१८ वीं० शती का उत्तरार्द्ध
(१३) रास रसलता[11]	नागरीदास	"
(१४) लालित्य लता[12]	श्री दत्त	१८३० के आसपास
(१५) शृंगार लतिका[13]	द्विजदेव (महाराजा मानसिंह)	१९वीं शती का पूर्वार्द्ध
(१६) प्रीतिलता[14]	महाराज प्रतापसिंह 'व्रजनिधि'	१९ वीं शती का मध्य
(१७) सुखकरण लता[15]	अमृत राम	सं० १८६९
(१८) प्रेम संपत्ति लता[16]	ठाकुर जगमोहनसिंह	सं० १८८५
(१९) श्यामालता[17]	"	सं० १८८६

१—वही
२—वही
३—वही पृ० २६०
४—राधा वल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य: डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ४९६
५—वही
६—वही
७—वही
८—वही
९—वही
१०—घन आनन्द और आनन्द घन : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १७६–१८३
११—हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (छठा संस्करण) पृ० ३४८
१२—वही पृ० २९४
१३—वही पृ० ३९९
१४—क्रिसन रुकमणी री वेलि : डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित, भूमिका, पृ० ४५
१५—मरू भारती (पिलानी) वर्ष ५ अंक २ पृ० ७६–८३
१६—हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल (छठा संस्करण) पृ० ५८२
१७—वही

रचना-नाम	रचना-काल	छंद-संख्या
(१) हरिप्रताप वेलि	सं० १८०३ माधवदी सातम	१०६
(२) सत्संग महिमा वेलि	सं० १८०४ माघ कृष्णा त्रयोदशी	८८
(३) व्रज विनोद वेलि	सं० १८०४ माघ शुक्ला सातम	१५१
(४) करुणा वेलि (प्रकाशित)	सं० १८०४ ज्येष्ठ कृष्णा पंचमी	६६
(५) भक्त सुजस वेलि	सं० १८०४	८१
(६) जमुना महिमा वेलि	सं० १८०४ पौष सुदी सातम	११०
(७) श्री वृन्दावन महिमा वेलि	सं० १८०५ माघ शुक्ला एकादशी	२१०
(८) रसना हित परदेश वेलि	सं० १८०५ पूष वदी एकादशी	१०१ पद, ५ दोहे
(६) मन उपदेश वेलि पद बंध	स० १८०६ पूष सुदी दुतिया	१२६ पद, १३ दोहे
(१०) भक्त प्रसाद वेलि पद बंध	सं० १८०६ पौष शुक्ला त्रयोदशी	१७६ पद, ८ दोहे
(११) व्रज प्रसाद वेलि पद बंध	सं० १८११ माघ सुदी पून्यो	११६ पद, २ कवित्त
(१२) श्री राधा जन्मोत्सव वेलि	सं० १८१२ भादों सुदी	६० कवित्त (पूर्वार्द्ध)
(१३) वृन्दावन अभिलाषा वेलि	सं० १८१२ आषाढ़ शुक्ला एकादशी	१६५
(१४) मंगल विनोद वेलि (प्रकाशित)	सं० १८१२ सुदी तीज	
(१५) कृपा अभिलाष वेलि (प्रकाशित)	सं० १८१२ पौष शुक्ला एकादशी	११२
(१६) कलि चरित्र वेलि (प्रकाशित)	सं० १८१२ माघ वदी नौमी	१२५
(१७) राधा प्रसाद वेलि	सं० १८१२ माघ शुक्ला पंचमी	१२६
(१८) श्री कृष्ण सगाई-अभिलाष वेलि (प्रकाशित)	सं० १८१२ फागुन शुक्ला एकादशी	३५०
(१६) श्री कृष्ण प्रति यशुमति शिक्षा वेलि	सं० १८१३ चैत्र सुदी दुतिया	१६२

प्रामाणिकता संदिग्ध है अतः नरोत्तमदास स्वामी ने कबीर के नाम से संगृहीत इस वेलि को कबीर की रचना नहीं माना है।[1] ब्रजभाषा में वेलि, वेल तथा वल्लरी नाम से मिलने वाली रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-काल
(१) काया वेल[2]	दादू	१७वीं शती का मध्य
(२) मनोरथ वल्लरी[3]	रामराय	सं० १७८६ लेखनकाल
(३) मनोरथ वल्लरी[4]	तुलसीदास	सं० १७८३ लेखनकाल
(४) रसकेलि वल्ली[5]	घनानंद	१८वीं शती का उत्तरार्द्ध
(५) वियोग वेलि[6]	,,	,,
(६) वैराग्य वल्लरी[7]	नागरीदास	सं० १७७२
(७) कलि वैराग्य वल्लरी[8]	,,	सं० १७९५
(८) मोहन की वेलि[9]	पद्माकर	१९वीं शती का मध्य
(९) दुखहरण वेलि[10]	महाराज प्रतापसिंह 'ब्रजनिधि'	,,
(१०) प्रीति वेलि[11]	अमृत राम	सं० १८६९ के आसपास

संख्या में सबसे अधिक 'वेलि' संज्ञक रचनाओं के प्रणेता हैं बाबा वृन्दावनदास। इनका रचना-काल सं० १८०० से १८४४ है।[12] ये राधा वल्लभीय गोस्वामी हित रूपजी के शिष्य थे और नागरीदास के भाई बहादुरसिंह के यहाँ रहे थे। इन्होंने लगभग ७२ वेलियाँ लिखी हैं। इनका वर्ण्य-विषय प्रधानतः कृष्ण और राधा की भक्ति तथा ब्रजभूमि का माहात्म्य रहा है। इनके द्वारा रचित 'वेलियों' के नाम इस प्रकार हैं—

१—क्रिसन रुकमणी री वेलि : प्रस्तावना, पृ० २३

२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर : हस्तलिखित ग्र० सं० १२५४१

३—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथम भाग : मोतीलाल मेनारिया, पृ० १००–१०१

४—वही

५—क्रिसन रुकमणी री वेलि : डॉ० आनन्द प्रकाश दीक्षित, भूमिका, पृ० ४५

६—घन आनन्द और आनन्द घन : विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ० १४६–१४९

७—नागर समुच्चय : पं० श्रीधर शिवलाल, ज्ञान सागर छापखाना बम्बई से प्रकाशित

८—वही

९—राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी : हस्तलिखित प्रति सं० ५९

१०—ब्रजनिधि ग्रंथावली : सं० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, पृ० १८७ १८९

११—ब्रज भारती (त्रैमासिक) वर्ष ५, अंक २, पृ० ७९–८१

१२—राधा वल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य : डॉ० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ५१२-१३

(३९) मन परचावन वेलि	सं० १८४० भाद्रपद शुक्ला तृतीया	२२८
(४०) राधा-रूप-नाम उत्कर्ष वेलि	सं० १८४०	
(४१) वृन्दावन प्रेम विलास वेलि	सं० १८४० पौष शुक्ला सप्तमी	१४६
(४२) कृष्ण नाम-रूप मंगल वेलि	सं० १८४० पौष शुक्ला दशमी	११०
(४३) इष्ट मिलन उत्कंठा वेलि	सं० १८४१ श्रावण शुक्ला द्वितीया	११८
(४४) बारह मासा विहार वेलि		१८
(४५) हित कृपा विचार वेलि		८४
(४६) दान वेलि		
(४७) भक्ति उत्कर्ष वेलि		
(४८) रूप सुजस वेलि		
(४९) हित मंगल वेलि		
(५०) इष्ट सुमिरन वेलि		
(५१) महत मंगल वेलि		
(५२) हरिनाम वेलि		
(५३) मन चेतावनी वेलि		
(५४) मुरलिका उत्कर्ष वेलि		
(५५) आनन्द वर्धन वेलि		
(५६) हरि इच्छा वेलि		
(५७) हित रूप अन्तर्धान वेलि		
(५८) मदन मंगल वेलि		
(५९) सुमति प्रकाश वेलि		
(६०) कृष्णा मिलाप वेलि		
(६१) भक्ति सुजस वेलि		
(६२) मन हितोपदेश वेलि		
(६३) भजन कुंडलियां वेलि		
(६४) जमुना प्रसाद वेलि		
(६५) गुरु महिमा वेलि		
(६६) कृष्ण-नाम-रूप- उत्कर्ष वेलि		
(६७) भजन उपदेश वेलि		
(६८) गर्व-प्रहार वेलि		
(६९) हित स्वरूप वेलि		
(७०) विवाह मंगल वेलि		

(२०) ज्ञान प्रकाश वेलि	सं० १८१३ चैत्र शुक्ला नौमी	८४
(२१) बारह खड़ी भजनसार वेलि	सं० १८१३ चैत्र शुक्ला त्रयोदशी	१५२
(२२) हित प्रताप वेलि	सं० १८१३ माघ कृष्ण त्रयोदशी	८४ पद, ८ दोहे
(२३) हरि कला वेलि	सं० १८१३	प्रारम्भ
(२४) मन प्रबोध वेलि	सं० १८१३ श्रावण मास	८७
(२५) हरि कला वेलि	सं० १८१७ आषाढ़ वदी एकादशी	१६१
(२६) जमुना प्रताप वेलि	सं० १८१७ कार्तिक वदी एकादशी	१०६
(२७) श्री वृषभानु नंदिनी श्री नंद नंदन व्याह मंगल वेलि (प्रकाशित)	सं० १८१७ फागुन वदी एकादशी	२१०
(२८) राधा जन्मोत्सव वेलि	सं० १८१८	१२१
(२९) हित रूप चरित्र वेलि	सं० १८२० चैत्र शुक्ला पूर्णिमा	४६२
(३०) श्री कृष्ण गिरि-पूजन वेलि	सं० १८२० कार्तिक वदी दौज	३३५
(३१) विमुख उद्धारन वेलि	सं १५२१ चैत पूर्णिमा	१६४
(३२) सुबुद्धि चितावन वेलि	सं० १८२४ कार्तिक शुक्ला १३	५४ पद, ५ दोहे
(३३) वृन्दावन जस प्रकाश वेलि	सं० १८२५ माघव शुक्ला ११	७५ पद, ६ दोहे
(३४) राधा नाम उत्कर्ष वेलि	सं० १८३१ अगहन वदी दौज	
(३५) श्री कृष्ण विवाह उत्कंठा वेलि (प्रकाशित)	सं० १८३१ वैशाख वदी सप्तमी	१२६ पद, १२ दोहे
(३६) विवेक पत्रिका वेलि	सं० १८३५ असाढ़ वदी पंचमी	१८५
(३७) भक्ति प्रार्थना वेलि	सं० १८४० चैत सुदी सातमी	३३४
(३८) राधा रूप प्रताप वेलि	सं० १८४० वैशाख कृष्णा सप्तमी	१३३

संज्ञक रचनाओं की परम्परा जीवित है क्या? यह ठीक है कि परम्परा का वह रूप तो नहीं रहा जो पहले था। देश-काल के अनुसार उसके वस्तु और शिल्प में परिवर्तन आया है पर 'वेलि' अभिधान अब भी देखने को मिलता है। उसका क्षेत्र अब केवल पद्य (कविता) नहीं रहा वरन् गद्य (उपन्यास, नाटक) भी हो गया है। कुछ रचनाओं के नाम इस प्रकार है :--

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-विधा
(१) वंश वल्लरी	उर्मिला कुमारी	उपन्यास
(२) अमर वेलि	विश्वनाथ प्रसाद	उपन्यास
(३) विजय वेलि	सेठ गोविन्ददास	नाटक
(४) ममता वेलि[1]	मगल मेहता	गद्य गीत
(५) अमर आराधना की वेल[2]	माखनलाल चतुर्वेदी	कविता
(६) अमृत वेलि[3]	बच्चन	कविता

राजस्थानी वेलि साहित्य :

विषय और शैली की दृष्टि से सम्पूर्ण राजस्थानी वेलि साहित्य को तीन भागों में बाँट सकते हैं :--

(१) लौकिक वेलि साहित्य
(२) जैन वेलि साहित्य
(३) चारणी वेलि साहित्य

काल-क्रम की दृष्टि से इस साहित्य का इतिहास १५वीं शती से १६वीं शती तक रहा है। विकास-रेखा प्रस्तुत करते समय हम काल और विषय-शैली को साथ साथ रखने का प्रयत्न करेंगे।

पन्द्रहवी शती का साहित्य :

रोडाकृत 'राउल वेल' का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। यह प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई में रखा हुआ एक शिलांकित काव्य है। इसे छोड़कर राजस्थानी में पन्द्रहवी शती तक लिखित रूप में 'वेलि' संज्ञक रचना का कोई उल्लेख नही मिलता है। लौकिक वेलि साहित्य[4] के रूप में जो रचनाएँ मिली हैं वे इस प्रकार है–

१—प्रकाशित–विक्रम : कार्तिक सं० २०११
२—प्रकाशित–कल्पना : अगस्त, १९५६
३—प्रकाशित–धर्मयुग : फरवरी, १९६१
४—इन लौकिक वेलियों के रचना-काल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हमने अनुमान से जो रचना-काल निर्धारित किया है वह काव्य के प्रमुख पात्र के जीवन की समसामयिकता को लेकर है।

(७१) महत सगुन वेलि
(७२) विवेक लक्षण वेलि[1]

गुजराती वेलि साहित्य :

गुजराती में कई जैन और जैनेतर कवियों ने वेलियों की रचना की है जैन-गुजराती वेलियों की रचना जैन-सन्तों द्वारा विशेष रूप से हुई है। एक स्थान पर चातुर्मास के सिवाय अधिक दिनों तक निवास करने का आचार नहीं होने से जैन-साधु प्रायः एक स्थान से दूसरे स्थान पर विहार करते रहते हैं। गुजरात और राजस्थान में जैन-साधुओं की अधिकता है। दोनों प्रान्तों में इनका विहार होता रहता है। इस कारण जैन गुजराती वेलियों की भाषा राजस्थानी मिश्रित है। अतः उनका उल्लेख हमने राजस्थानी वेलि साहित्य का विकास प्रस्तुत करते समय यथास्थान कर दिया है। यहाँ १७वीं से १९वीं शती के मध्य में रचित अजैन गुजराती वेलियों के कुछ नाम दिये जाते हैं—

रचना-नाम	रचनाकार
(१) वल्लभ वेल (जन्म वेल)[2]	केशवदास वैष्णव
(२) सीना वेल[3]	वजिया
(३) श्रुत वेल[4]	जीवनदास
(४) व्रज वेल[5]	प्रेमानन्द
(५) भक्त वेल[6]	दयाराम
(६) रस वेलि[7]	—

वर्तमान काल का हिन्दी वेलि साहित्य

आज भी व्रज और राजस्थानी में साहित्य रचा जाता है पर पहले की तुलना में बहुत कम। अब अभिव्यक्ति का माध्यम खड़ी बोली (हिन्दी) सबने अपना लिया है। अतः देखना यह है कि आज के साहित्य में भी जहाँ गद्य की प्रधानता है 'वेलि'

१—संख्या १ से ५४ के लिए देखिये : राधा वल्लभ सम्प्रदाय सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक, पृ० ५२४–५२८ तथा ४६ से ७२ तक की सूचना अनुसंधाता मैं सन् ने श्री अगरचंद जी नाहटा का दी है उनके अनुसार।
२—प्रकाशित : वैष्णव धर्म पताका (मासिक पत्र) पौष सं० १९८१
३—प्राचीन काव्य विनोद, भाग १, सं० छगनलाल विद्याराम रावल
४—गुजराती साहित्य ना स्वरूपो. प्रो० मंजुलाल मजूमदार
५—वही
६—वही
७—कल्पना : वर्ष ७ अंक ४ (अप्रैल,१९५६) नाहटा जी का लेख।

संज्ञक रचनाओं की परम्परा जीवित है क्या ? यह ठीक है कि परम्परा का वह रूप तो नहीं रहा जो पहले था। देश-काल के अनुसार उसके वस्तु और शिल्प में परिवर्तन आया है पर 'वेलि' अभिधान अब भी देखने को मिलता है। उसका क्षेत्र अब केवल पद्य (कविता) नहीं रहा वरन् गद्य (उपन्यास, नाटक) भी हो गया है। कुछ रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं :--

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-विधा
(१) वंश वल्लरी	उर्मिला कुमारी	उपन्यास
(२) अमर वेलि	विश्वनाथ प्रसाद	उपन्यास
(३) विजय वेलि	सेठ गोविन्ददास	नाटक
(४) ममता वेलि[1]	मंगल मेहता	गद्य गीत
(५) अमर आराधना की वेल[2]	माखनलाल चतुर्वेदी	कविता
(६) अमृत वेलि[3]	बच्चन	कविता

राजस्थानी वेलि साहित्य :

विषय और शैली की दृष्टि से सम्पूर्ण राजस्थानी वेलि साहित्य को तीन भागों में बांट सकते है :--

(१) लौकिक वेलि साहित्य
(२) जैन वेलि साहित्य
(३) चारणी वेलि साहित्य

काल-क्रम की दृष्टि से इस साहित्य का इतिहास १५वीं शती से १६वीं शती तक रहा है। विकास-रेखा प्रस्तुत करते समय हम काल और विषय-शैली को साथ साथ रखने का प्रयत्न करेंगे।

पन्द्रहवीं शती का साहित्य :

रोड़ाकृत 'राउल वेल' का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। यह प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई में रखा हुआ एक शिलांकित काव्य है। इसे छोड़कर राजस्थानी में पन्द्रहवीं शती तक लिखित रूप में 'वेलि' संज्ञक रचना का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। लौकिक वेलि साहित्य[4] के रूप में जो रचनाएं मिली हैं वे इस प्रकार हैं--

१--प्रकाशित-विश्रम : कार्तिक सं० २०११
२--प्रकाशित-कल्पना : अप्रैल, १९५६
३--प्रकाशित-आजकल : फरवरी, १९६१
४--इन लौकिक वेलियों के रचना-काल के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। हमने अनुमान से जो रचना-काल निर्धारित किया है वह काव्य के प्रमुख पात्र के जीवन की सम सामयिकता को लेकर है।

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-काल	छंद-संख्या
(१) रामदेवजी री वेल[1] (प्रकाशित)	संत हरजी भाटी	१५वीं शती का उत्तरार्द्ध	२४
(२) रूपांदेरी वेल[2] (प्रकाशित)	,,	,,	५८
(३) तोलांदेरी वेल[3]	—	,,	४०
(४) रत्नादे री वेल[4]	तेजो	१५वीं शती का अन्त	१५ पद

सोलहवी शती का साहित्य :

इस शती मे जैन कवियों द्वारा 'वेलि' संज्ञक रचनाएँ प्रचुर मात्रा मे लिखी गईं । लौकिक वेलियों में 'आईमाता री वेल' ही मिली है । चारणी वेलियाँ संभवतः नही लिखी गईं । इस शती की उपलब्ध वेलियां इस प्रकार है—

(क) जैन वेलि साहित्यः

(१) कर्मचूर व्रत कथा वेलि[5]	भट्टारक सकल कीर्ति	सोलहवीं शती का आरंभ	–
(२) चिहुँगति वेलि[6]	वांछा	सं० १५२० (लिपिकाल)	१३५
(३) जम्बू स्वामी वेल[7] (प्रकाशित)	सीहा	सं० १५३५ (लिपिकाल)	१८
(४) रहनेमि वेल[8] (प्रकाशित)	,,	,,	१६
(५) प्रभव जम्बू स्वामी वेलि[9]	—	सं० १५४८ (लिपिकाल)	२७
(६) पंचेन्द्रिय वेलि[10]	ठकुरसी	सं० १५५०	६ भाग

१—वरदा (बिसाऊ) वर्ष १, अंक १, पृ० ४३–४६ मे शिवसिंह चोयल द्वारा प्रकाशित ।

२—प्रकाशित–मरु भारती (पिलानी) वर्ष २ अंक २, पृ० ७६–७१ तथा शोध पत्रिका (उदयपुर) भाग ६ अंक २, पृ० ३७–४२

३—भाडौं–निवासी शिवसिंह चोयल के सौजन्य से प्राप्त

४—वही

५—दिगम्बर जैन मंदिर (पाटोदी) जयपुर, गुटका संख्या ११

६—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर : गुटका संख्या २२५

७—जैन–युग: पुस्तक ५, अंक ११–१२, पृ० ४७३–७४

८—वही : पृ० ४७४–७५

९—लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूरभाई मणिभाई का संग्रह, ह० प्रति संख्या १०८३

१०—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर: ह० प्र० ३६४०

(७) नेमिश्वर की वेलि[1]	ठकुरसी	सं० १५५० के आसपास	५ भाग
(८) गरभ वेलि[2]	लावण्यसमय	सं० १५५३-८९ के मध्य	११४
(९) गरभ वेलि (जइन वेलि)[3]	सहज सुन्दर	सं० १५७०-८२ के मध्य	३४
(१०) वेलि[4]	छीहल	सं० १५७५-८४ के मध्य	४ पद
(११) नेमि परमानंद वेलि[5]	जयवल्लभ	सं० १५७७ के आसपास	४८
(१२) वल्कल चीरकुमार[6] ऋषिराज वेलि	कनक	सं० १५८२-१६१२ के मध्य	७५
(१३) क्रोध वेलि[7]	मल्लिदास	सं० १५८८ वैशाख चौथ रविवार	३५
(१४) सुदर्शन स्वामिनी वेलि[8]	वीरचंद	१६वी शती का अंत अपूर्ण	
(१५) जम्बू स्वामिनी वेलि[9]	,,	,,	,,
(१६) बहुबलीनी वेलि[10]	,,	,,	—
(१७) भरत वेलि[11]	देवानंदि	—	२२

(ख) लौकिक वेलि साहित्य :

(१) आईमाता री वेल[12] (प्रकाशित)	संत सहदेव	सं० १५७६ भादवा मास की चंद्रावली बीज

१—भट्टारक भंडार, अजमेर : गुटका सं० ६२ पत्र ५५-६२

२—बड़ा उपासरा, बीकानेर के अभयसिंह भंडार का संग्रह : गुटका सं० २९

३—जैन गुर्जर कवियो भाग ३, खंड १ : मो०द० देसाई, पृ० ५६२

४—शास्त्र भंडार मंदिर गोधा, जयपुर : गुटका सं० ८१

५—लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद के नगरसेठ कस्तूरभाई मणिभाई का संग्रह : ह० प्र० संख्या १०८५

६—लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूर भाई मणिभाई का संग्रह, ह०प्र० सं० १३४९

७—जैन साहित्य-सदन, चादनी चौक, दिल्ली : परमानंद जैन के सौजन्य से प्राप्त।

८—खण्डेलवाल, दिगम्बर जैन मंदिर, उदयपुर : गुटका सं० १००

९—वही: गुटका सं० १००

१०—अग्रवाल मंदिर का शास्त्र-भंडार, उदयपुर : वेष्टन संख्या १७

११—दिगम्बर जैन मंदिर बड़ा तेरह पंथियों का भंडार, जयपुर, गुटका सं० २२३

१२—प्रकाशित-मरु भारती (पिलानी) वर्ष ३ अंक १, पृ० ६८-७०

सत्रहवीं शती का साहित्य :

यह शती वेलि-साहित्य के लिए उर्वर सिद्ध हुई। इस काल को वेलि-साहित्य का स्वर्ण-काल कहा जा सकता है। जैन वेलियों के अतिरिक्त चारणी वेलियाँ इस शती में विशेष रूप से लिखी गईं। इस शती की उपलब्ध वेलियाँ इस प्रकार हैं —

(क) जैन वेलि साहित्य :

(१) चंदन बाला वेलि[1]	अजित देव सूरि	सं० १५९७-१६२९ के मध्य	२६
(२) सव्वत्थ वेलि प्रबंध[2]	साधुकीर्ति	सं० १६१४ के आस-पास	५४
(३) गुणठाणा वेलि[3]	जीवंधर	सं० १६१६ (लिपिकाल)	२८ पद
(४) लघु बाहुबलि वेलि[4]	शांतिदास	सं० १६२५ (लिपिकाल)	४६ पद
(५) जइतपद वेलि[5] (प्रकाशित)	कनक सोम	सं० १६२५	४३
(६) गुरु वेलि[6]	भट्टारक धर्मदास	सं० १६३८ के पूर्व	२८
(७) स्थूलि भद्र मोहन वेलि[7]	जयवंत सूरि	सं० १६४२मार्गशीर्ष२१५ शुक्ला दशमी, शुक्रवार	
(८) नेमि राजुल बारहमासा[8] वेल प्रबंध	जयवंत सूरि	सं० १६५० के आस पास	७७
(९) वीर वर्द्धमान जिन वेलि[9]	सकलचंद्र उपाध्याय	सं० १६४३-६० के मध्य	६७
(१०) साधु कल्पलता-साधुवंदना[10] मुनिवर सुरवेलि	,,	,,	१४४

१—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर : हस्तलिखित प्र० संख्या ३६४३ से ३६४७ (५ प्रतियाँ)

२—वहीं, ह० लि० प्र० संख्या ७६०८

३—दिगम्बर जैन मंदिर, (खण्डेलवाल) उदयपुर : गुटका पत्र सं० २९७, पत्र ४ से ६

४—वहीं, गुटका संख्या ५०

५—प्रकाशित-ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह: अगरचंद भंवरलाल नाहटा, पृ० १४०-४५

६—भट्टारक भंडार, अजमेर, गुटका संख्या ५९

७—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर : ह० लि० प्र० संख्या ३७१९

८—गुजराती साहित्य ना स्वरूपो : डा० मंजुलाल मजूमदार, पृ० २८२-८४

९—जैन गुर्जर कवियो भाग १ : मोहनलाल दलीचंद देसाई, पृ० २८०-८१

१०—वहीं, पृ० २८१

(ख) चारणी वेलि साहित्य :

वेलि	रचयिता	रचनाकाल	छंद
(१) किसनजी री वेल[1] (प्रकाशित)	माखला करमसी रूणेचा	सं० १६०० के आसपास	२२
(२) गुणाचांणिक वेल[2] (प्रकाशित)	चूंडो दधवाड़िया	१७वीं शती का प्रारम्भ	४१
(३) देईदास जैतावत री वेल[3] (प्रकाशित)	अखो भाणोत	सं० १६१३ के आसपास	२३
(४) रतनसी खीवावत री वेल[4]	दूदो विसराल	सं० १६१४ के आसपास	७२
(५) उदैसिंघ री वेल[5]	रामा सांदू	सं० १६१६ के आसपास	१५
(६) चांदाजी री वेल[6]	बीठू मेहा दूसलाणी	सं० १६२४ के बाद	४१
(७) क्रिसन रुकमणी री वेल[7]	राठोड़ पृथ्वीराज	सं० १६३७-४४ के मध्य	३०१ से ३०७
(८) त्रिपुर सुन्दरी री वेल[8]	जसवन्त	सं० १६४३ (लिपिकाल)	६ दोहे २ कुंडलियां
(९) रायसिंघ री वेल[9]	सांदू माला	सं० १६५३ के आसपास	४३
(१०) महादेव पार्वती री वेल[10]	आढ़ा किसना	सं० १६६०-१७००	३८२
(११) राउ रतनरी वेल[11]	कल्याणदास महडू	सं० १६६४-८८ के मध्य	१२३

१—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ह० प्र० सं० ११ (ड), पृ० २५७–५८।
वर्तमान लेखक द्वारा प्रकाशित, मरुवाणी (जयपुर) वर्ष ४ अंक १२ (दिस० ५९)

२—प्रकाशित-मरुवाणी (जयपुर) वर्ष ४, अंक ५ (मई, १९५९)

३—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, हस्तलिखित प्रति सं० १३६ (ट) पृ० १८२–८४ ;
वर्तमान लेखक द्वारा प्रकाशित, वरदा (बिसाऊ) वर्ष ३, अंक ४

४—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर : ह० प्र० संख्या ९२ (ग) पृ० ४६–५५ तथा
राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी : ह० प्र० संख्या १४६

५—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर : ह० प्र० सं० १३६ (ज) पृ० १८१-८२

६—अगरचंद नाहटा, बीकानेर के संग्रहालय का गुटका

७—प्रकाशित—इसके कई संस्करण निकल चुके हैं।

८—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर : ह० प्र० सं० २०२

९—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर : ह० प्र० सं० १२० (क) पृ० ४२१–३५ तथा १२६
(ख) पृ० १–२

१०—वही : ह० प्र० सं० ९८ (ग) पृ० १–३५

११—सरस्वती भण्डार, उदयपुर, ह० प्र० सं० १३१६

(१२) सूरसिंघ री वेल[1]	गाडण चोलो	सं० १६७२	३१
(१३) सोभा री वेल[2]	सोभा	सं० १६८३ (लिपिकाल)	

अठारहवीं शती का साहित्य :

(क) जैन वेलि साहित्य :

(१) प्रवचन रचना वेलि[3]	जिनसमुद्र सूरि	स० १६६७–१७४० अपूर्ण के मध्य	
(२) बारह भावना वेलि[4]	जयसोम	सं० १७०३ शुक्ल पक्ष ढाल की तेरह मंगलवार	१३
(३) हीरानंद वेलि[5]	शुभंकर	सं० १७१२ (तप संयम भेद संगीते)	७४
(४) गुणसागर पृथ्वी वेलि[6]	गुणसागर	सं० १७२४ के आसपास	४६
(५) आदिनाथ वेलि[7]	भट्टारक धर्मचंद्र	सं० १७३० आषाढ़ ५ भाग की नवमी	
(६) पडलेश्या वेलि[8]	साह लोहट	सं० १७३०	

१—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर : ह० प्र० सं० १२६ (ख) पृ० २–३

२—श्री मुकनसिंह के पास सुरक्षित एक गुटके में यह लिपिबद्ध है। यह ढाई पत्रों में लिखी गई है। प्रत्येक पत्रे में २३ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में २३ अक्षर हैं। इसका विषय भगवद्भक्ति से सम्बन्धित है। इसका रचयिता सोभा प्रसिद्ध भक्त रहा है। नाभादास ने अपने 'भक्तमाल' के पद संख्या ६६ में जिन १८ भगवज्जनों का उल्लेख किया है उनमें सोभा का नाम सर्वप्रथम है। यह वेलि बहुत संभव है पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' से पूर्व की रचना हो। इसका छंद वेलियो है यो प्रारंभ में लिखा है 'राग बिलावल' इसकी पुष्पिका इस प्रकार है—

"संवत १६८३ वर्षे श्रावर वारे कृष्ण पक्षे तिथि दूज कडेल ग्रामे स्वामी पडसीजी का स्थलै। पोथी लिखतं अथा पड़सीजी का मिष नरहरिदास पठनार्थं दादूपंथी। वैस...।"

३—लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद का मुनि पुण्य विजय जी का संग्रह, ग्रंथांक ६३२०

४—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर : ह० प्र० सं० ८५८६

५—इसकी हस्तलिखित प्रति कोटा में महोपाध्याय विनयसागर जी के संग्रह में है। यह एक ऐतिहासिक रचना है। इसमें श्वेताम्बर पल्लीवाल गच्छ के आचार्य हीरानंद सूरि का सुयश वर्णित है।

६—भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद का कस्तूरभाई मणिभाई का संग्रह।

७—दिगम्बर जैन मंदिर (चौधरियों का) मालपुरा : गुटका सं० ५०

८—दिगम्बर जैन मंदिर, विजयराम पांड्या, जयपुर

(७) अमृत वेलिनी मोटी[1] सज्भाय (प्रकाशित)	यशोविजय	सं० १७००–३६ के मध्य	२६
(८) अमृत वेलिनी नानी[2] सज्भाय (प्रकाशित)	"	"	१६
(९) सुजस वेलि (प्रकाशित)[3]	कांति विजय	सं० १७४५ के आसपास	४ ढालें
(१०) संग्रह वेलि[4]	बालचन्द	सं०१७७५ कार्तिक शुक्ला तेरस (लिपिकाल)	
(११) नेम राजुल वेल[5] (अभंग वेल)	चतुर विजय	सं० १७७६ पौष सुदी १४ गुरवार	२०४
(१२) नेमि स्नेह वेलि[6]	जिन विजय		१० ढालें
(१३) विक्रम वेलि[7]	मति सुन्दर		

(ख) चारणी वेलि साहित्य :

(१) रघुनाथ चरित्र नव रस[8] वेलि	महेसदास	१८वीं शती का प्रारंभ	१२७
(२) डूंगरसीजो री वेलि[9]	समधर	सं० १७१७–३४ (लिपिकाल)	२६
(३) अनोपसिंघ री वेल[10]	गाडण वीरभाण	सं० १७२६ से पूर्व	४१

(ग) लौकिक वेलि साहित्य :

(१) पीर गुमानसिंघ री वेल (प्रकाशित)[11]		१८वी शती का अन्त	१०२

१—गुर्जर साहित्य संग्रह : यशोविजय : पहला भाग, पृ० ४३५–३८

२—वही, पृ० ४३४-३५

३—सुजस वेलि भास : सं० मोहनलाल दलीचंद देसाई : प्रकाशक-ज्योति कार्यालय, रतनपोल, अहमदाबाद

४—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर : हस्तलिखित प्रति सं० १०७२६।

५—मुनि कान्तिसागरजी के संग्रहालय में प्राप्त

६—कल्पना : वर्ष ७, अंक ४ (अप्रैल, १९५६) में नाहटाजी द्वारा उद्धृत

७—स्व० पंडित उमाशंकर द्विवेदी 'विरही,' उदयपुर का संग्रह

८—उदयपुर के कविराव मोहनसिंह के सौजन्य से प्राप्त

९—इसकी हस्तलिखित प्रति बीकानेर के बड़े उपाश्रय में है। इसमें कवि ने जैसलमेर निवासी रावलाक्रम (?) की सुपुत्री तथा अमरराज सीसोदिया की दौहित्री का प्रचलित परिपाटी के अनुसार नखशिख वर्णन किया है। इसका नायक राठौड़ वंशीय उदावत डूंगरसी है।

१०—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर : ह० प्र० सं० १२६ (घ) पृ० ४–५।

११—शिवसिंह चोयल द्वारा प्रकाशित : वरदा (बिसाऊ) वर्ष २, अंक १, पृ० १३-२१

उन्नीसवीं शती का साहित्य :

(क) जैन वेलि साहित्य :

(१) जीव वेलड़ी[1]	देवीदास	सं० १८२४ के आसपास	२१
(२) वीर जिन चरित्र वेलि[2]	ज्ञान उद्योत	सं० १८२५ के आसपास	१७
(३) शुभ वेलि (प्रकाशित)[3]	वीर विजय	सं० १८६० चैत्र शुक्ला ११	
(४) स्थूलि भद्रनो शीयल[4] वेल (प्रकाशित)	,,	सं० १८६२ पोष शुक्ला १२ गुरुवार	१८ ढाल
(५) स्थूलि भद्र कोश्या रस[5] वेलि	माणकविजय	सं० १८६७	१७ ढाल
(६) नेमिश्वर स्नेह वेलि[6]	उत्तम विजय	सं० १८७८ आश्विन शुक्ला पंचमी शुक्रवार	१५ ढाल
(७) सिद्धाचल सिद्ध वेलि[7]	उत्तमविजय	सं० १८८५ कार्तिक सुद १५	१३ ढाल
(८) नेमिनाथ रस वेलि[8]	,,	सं० १८८९ फागुण सुदि ७	
(९) कल्प वेल[9]	–	सं० १९२३ (लिपिकाल)	अपूर्ण

(ख) लौकिक वेलि साहित्य :

(१) अकल वेल[10]		१९ वीं शती (लिपिकाल)	२२
(२) बाबा गुमान भारती[11] री वेल	चिमनजी कविया	१९ वी शती का उत्तरार्द्ध	४४

उपर्युक्त वेलियों के अतिरिक्त निम्नलिखित पाँच वेलियों का उल्लेख और मिलता है—

१—शास्त्र भण्डार मन्दिर विजयराय पाड्या, जयपुर : गुटका सं० ७२ पत्र २३

२—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर ह० प्र० सं० ८५१२

३—प्रकाशित : वीरविजय उपासरा, अहमदाबाद

४—प्रकाशित : शा मणिलाल गोकलदास भट्टीनोपोल, अहमदाबाद

५—जैन गुर्जर कवियो भाग ३, खंड १ : मोहनलाल दलीचन्द देसाई पृ० २७५–२७६

६—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, हस्त लिखित प्रति संख्या २०१७

७—जैन गुर्जर कवियो भाग ३, खंड १ : देसाई, पृ० २९५–३०५।

८—ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा : ह० प्र० सं० १८८८३

९—राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी : ह० प्र० सं० ८४

१०—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर : ह० प्र० स० २८२९

११—नाथूदान कविया, जोधपुर के सौजन्य से प्राप्त

(१) मालदेवजी री वेलि[1]
(२) छन्दजात भ्रमर वेलि[2]
(३) दयावेलि[3]
(४) आध्यात्मिक प्रमाद वेलि[4]

हमने इन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न किया पर असमर्थ रहे अतः इनके रचनाकार और रचना-काल के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। बहुत अधिक संभावना है राजस्थान और गुजरात के अन्य संग्रहालयों में और भी कई अज्ञात वेलियां हों।

राजस्थानी वेलि साहित्य की इस विकास-रेखा से यह स्पष्ट है कि १५वीं शती से १९वीं शती तक वेलि साहित्य की परम्परा बिना किसी रोक टोक के चलती रही। जैन वेलि साहित्य के समानान्तर चारणी वेलि साहित्य का भी सृजन होता रहा। चारण कवियों ने एक ओर वीरगाथा काल से प्रभावित होकर (ऐतिहासिकता की रक्षा करते हुए) अपने आश्रयदाताओं का कीर्तिगान गाया तो दूसरी ओर भक्तिकाल से प्रभावित होकर किसी न किसी अलौकिक सत्ता (देवी आदि) के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की। भक्त-हृदय और वीर-हृदय इन दोनों का योग वेलि क्षेत्र में चारणों द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। इन कवियों की भाषा जैन कवियों की तरह सरल, सुबोध न होकर साहित्यिक डिंगल है और छन्द भी छोटा साणोर (वेलियो, सोहणो, खुड़द साणोर आदि भेद) है जिसे प्रायः सबने अपनाया है।

जैन वेलि साहित्य का प्रमुख स्वर आध्यात्मिक है। एक ओर कथा-तत्वों में शृङ्गार के द्वारा शान्तरस को प्रतिष्ठित किया गया है तो दूसरी ओर तात्विक बोध देकर विराग भाव जगाया गया है। ऐतिहासिक जैन वेलि साहित्य के द्वारा सैद्धान्तिक चर्चा और पाट-परम्परा का वर्णन भी किया गया है।

जैन और चारणी वेलि साहित्य के साथ-साथ लौकिक वेलि साहित्य की एक धारा और बही है। यह वेलि साहित्य लम्बी लम्बी रातों तक किसी देवी-देवता के मन्दिर के प्रांगण में गाया जाता रहा है।

इस प्रकार हमने सामान्य रूप से संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश, व्रज, गुजराती और वर्तमान काल के हिन्दी वेलि साहित्य का तथा विशेष रूप से राजस्थानी में रचित वेलि साहित्य का इतिहास प्रस्तुत किया है। असंभव नहीं कि अन्य प्रांतीय एवं

१—कल्पना वर्ष ७, अंक ४ (अप्रैल, १९५६) में नाहटाजी द्वारा उद्धृत
२—वही
३—वही
४—वही

द्रविड़ परिवार की भाषाओं ने भी वेलि-परम्परा को जीवित रखा हो। समग्र रूप से यह कहा जा सकता है कि वेलि साहित्य का इतिहास उस सरिता की तरह है जो विरल रूप में अपने उद्गम स्थल से निकल कर मध्यवर्ती भागों (मैदानों) में विपुल प्रवाह के साथ बहती हुई मुहाने तक आते आते सूख सी गई है।[1]

१—इधर सन् १९६३-६४ में श्री मुकनसिंह ने प्राचीन चली आती हुई चारणी शैली में ही अमर शहीद पीतानसिंह भाटी, लोक देवता पाबूजी और वीर अमरसिंह राठौड़ पर तीन वेलियाँ लिखकर वेलि साहित्य की परम्परा को फिर से जीवित किया है।

प्रथम अध्याय का परिशिष्ट

क्या राठौड़ पृथ्वीराज वेलि-परम्परा के प्रवर्त्तक थे ?

पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि' इतनी प्रसिद्ध रही कि आलोचक उसे न केवल सबसे प्राचीन वेलि वरन् पृथ्वीराज को वेलि परम्परा का प्रवर्त्तक तक मान बैठे हैं[1]। पर यह कथन साधार नहीं है। पृथ्वीराज से पूर्व राजस्थानी में कई चारणी तथा जैन वेलियाँ लिखी गई। चारणी वेलियों मे निम्नलिखित कृतियाँ पृथ्वीराज की वेलि से प्राचीनतर हैं :—

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-काल
(१) राउल वेल	रोड़ा	११वीं शती
(२) किसन जी री वेलि	सांखला करमसी रूणेचा	सं० १६०० के आसपास
(३) गुण चाणिक वेल	चूंडो दधवाड़िया	१७वीं शती का प्रारंभ
(४) देईदास जैतावत री वेल	अखो भाणोत	सं० १६१३ के आसपास
(५) रतनसी खींवावत री वेल	दूदो विसराल	सं० १६१४ के आसपास
(६) उदैसिंघ री वेल	रामा सांदू	सं० १६१६ के आसपास
(७) चांदा जी री वेल	बीठू मेहा दूसलाणो	सं० १६२४ के बाद

रोड़ा कृत 'राउल वेल' एक शिलांकित भाषा काव्य है जो प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई में रखा हुआ है। अन्तिम पंक्ति के घिस जाने के कारण रचना-तिथि का उल्लेख नहीं मिलता है। काव्य का नायक कोई गौड़[2] क्षत्रिय है।

१—(क) डिंगल में लिखित वेलियों में सबसे प्राचीन पृथ्वीराज की क्रिसन रुकमणी री वेलि है।

नरोत्तमदास स्वामी : स्वसंपादित वेलि, (प्रथम संस्करण) प्रस्तावना, पृ० २३

(ख) पृथ्वीराज का यह ग्रंथ (वेलि) एक परम्परा की स्थापना करता है जिसे राजस्थान तथा व्रजमण्डल के भक्त कवियों ने आगे तक निबाहने का प्रयत्न किया है। पृथ्वीराज के द्वारा लगाई हुई इस वेलि को ये भक्त कवि नित्य सींचते रहे।

डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित : स्वसंपादित वेलि, (प्रथम संस्करण) भूमिका पृ० ४७

२—गौड़ मुआलु म हंउ बत दीठे (११)

गौड़ तुहु एकु जो सबु भउर वर

जो हउं गहूं भइ बोलइ (२८)

नायिकाओं में से केवल 'राउत'[1] का नाम मिलता है। दोनों व्यक्ति राजकुल के प्रतीत होते हैं। पर प्राप्त ऐतिहासिक सामग्री में इस पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। समय-निर्धारण का आधार केवल लिपि-विन्यास ही सम्भव है। डा० माताप्रसाद गुप्त के अनुसार इसकी लिपि सम्पूर्ण रूप से भोजदेव के 'कूर्मशतक' वाले धार के शिलालेख में मिलती है।[2] दोनों में किसी भी मात्रा में अन्तर नहीं है और उसके कुछ बाद के लिखे हुए अर्जुनवर्म देव के समय के 'पारिजात मंजरी' के धार के शिलालेख की लिपि बदली हुई है।[3] इसलिए इस लेख का समय 'कूर्मशतक' के उक्त शिलालेख के आस पास ही अर्थात् ११वीं शती ईस्वी होना चाहिये।[4]

'क्रिसन जी री वेलि' के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है पर पुष्पिका[5] में इतना पता चलता है कि इसे संवत १६३४ में वैसाख सुदी ३, रविवार को सांवलदास ने लिपिबद्ध किया था। सांवलदास पृथ्वीराज के ज्येष्ठ भ्राता बीकानेर नरेश रायसिंह के सामन्त थे। मुंहणोत नैणसी की ख्यात के अनुसार इसके रचनाकार करमसी रूणेचा सागनों में राणा सोहड़ के द्वितीय राजकुमार बच्छा के वंशजों में से थे। ये उदयपुर के महाराणा उदयसिंह तथा पृथ्वीराज के पिता बीकानेर नरेश राव कल्याणमल के समकालीन थे। अतः यह अनुमान करना कि यह वेलि पृथ्वीराज की वेलि से प्राचीन है असंगत

१—मा उं ठउ जो राउनु सोहइ
 पइ नउ सोए घु को मनु न मोहइ (११)
 वणहि सो ऊंचउ त्रिपउ राउल
 तरुणा जोवन्त करइ सो वाउल (१२)
 पहिरणु फरहरें पर सोहइ, राउल
 दीमनु मउ जणु मोहइ (१३)
 हास गइ जा पालनि पइसी
 सा वाम्पर णइ राउल कइसी (१४)
२—इपिग्राफिया इंडिका, जिल्द ८, पृ० २४१ डा० माताप्रसाद गुप्त द्वारा उद्धृत
३—वही पृ० ६६
४—हिन्दी अनुशीलन : धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक (वर्ष १३ अंक १-२) पृ० २२
५—इति सम्पूर्ण करमसी
 सागावत। सांगी
 श्री जोधइ री।

'गुण चांणिक वेल' के अन्त में न तो रचना-तिथि दी है न लिपि-संवत। पर इसके रचयिता चूंडो दधवाड़िया पृथ्वीराज के समकालीन कवि माधोदास[1] दधवाड़िया के पिता थे। ये स्वयं अच्छे कवि थे। पृथ्वीराज ने अपनी 'वेलि' के लिए चूंडोजी से सम्मति न मांग कर माधोदास से मांगी। इससे अनुमान है कि वेलि के रचनाकाल के समय चूंडोजी इस लोक से प्रस्थान कर चुके थे। अतः चांणिक वेल को पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व की रचना मानना ही अधिक समीचीन होगा।

'दईदास जेतावत री वेलि' के अन्त में भी न तो रचना-तिथि का उल्लेख है न लिपि-संवत ही। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इसका रचनाकाल सं० १६२० के आसपास माना है।[2] वेलि को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसमें हरमाड़ा युद्ध[3] (वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदी ६) के उपरान्त की घटनाओं का वर्णन नहीं है। केवल जैसलमेर विजय तथा राणा उदयसिंह, राव कल्याणमल और जयमल वीरमदेवोत की संयुक्त सेनाओं को भगा देने का ही उल्लेख है। दईदास से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी किसी घटना का—जो इस युद्ध के उपरान्त घटित हुई हो—इसमें वर्णन नहीं है। अतः इसकी रचना संवत १६१३ में उक्त युद्ध के उपरान्त शीघ्र ही हुई होगी।

'रतनसी खीवावत री वेलि' के अन्त में रचना-काल सम्बन्धी किसी प्रकार का उल्लेख नहीं है। वेलि को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसमें अजमेर के शासक हाजीखां का दमन करने के लिए अकबर द्वारा भेजी गई सेना का वर्णन है। हाजीखां के भाग जाने पर मुगल सेना ने जैतारण पर आक्रमण किया था। इसी की सुरक्षा के लिए काव्य-नायक रतनसी ने अपने प्राणों की बाजी लगा दी। जैतारण पर मुगल सेना का अधिकार हो गया। जैतारण की यह घटना सं० १६१४ चैत्र मास कृष्ण पक्ष में हुई थी[4]। दृश्य-चित्रण की सजीवता देखते हुए अनुमान है कि वेलिकार इस युद्ध में उपस्थित रहा होगा। संभव है युद्ध के उपरान्त ही वि० सं० १६१४ में उसने इसे रचा हो।

'उदैसिंघ री वेल' के अन्त में भी रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। इसके रचयिता रामां सांदू महाराणा उदयसिंह के समकालीन थे[5]। ख्यातकार के अनुसार

१—पृथ्वीराज ने माधोदास की प्रशंसा में यह दोहा लिखा है—

चूंडै चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास।
चारण जीवो चार जुग, मरो न माधोदास॥

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १२०

३—उदयपुर राज्य का इतिहास : प्रथम खंड : डा० गौ० ही० ओझा पृ० ४०८

४—जोधपुर राज्य का इतिहास : प्रथम खंड : ओझा पृ० ३२२, पाद टिप्पणी

५—नैणसी की ख्यात : भाग १, पृ० १११

चित्तौड़ युद्ध (वि० सं० १६२४) के पूर्व राणा उदयसिंह ने रामां सांदू के हितार्थ ही अपने सम्बन्धी (नाती) भाण की हत्या की थी तथा इस हत्या के प्रायश्चित स्वरूप ही बून्दी के राव सुरजन हाड़ा के साथ द्वारिकाधीश की यात्रा को गये थे। इस यात्रा का समय वि० सं० १६११ (बून्दी तथा रणथंभोर पर राव सुरजन हाड़ा का आधिपत्य) के पश्चात का ही हो सकता है जब कि दोनों (राणा उदयसिंह तथा राव सुरजनहाड़ा) राजपुरुषों ने राजनीतिक जीवन से अवकाश ग्रहण कर लिया हो। वेलिकार ने चरित्र-नायक उदयसिंह के अपराजेय होने का जो उल्लेख किया है वह उनके प्रभाव के कारण मालदेव की सेना के युद्ध-पूर्व पलायन करने (वि० सं० १६१३) से सम्बन्धित है। संवत १६१४ से १६२४ तक का समय उदयसिंह के लिए शांतिमय वातावरण का समय है। इसीकाल मे उन्होने धार्मिक एवं निर्माण-कार्य सम्पादित किये। सम्भव है रामा सांदू इसी बीच इनके संरक्षण में रहे हों। वेलिकार ने संवत १६१६ तथा उसके बाद की इतिहास प्रसिद्ध घटनाओं का उल्लेख नही किया है जबकि चित्तौड़ युद्ध मे जूझने वाले चांदा वीरमदेवोत सदृश वीरों की अपने अन्य गीतों मे प्रशंसा की है। अतः वेलि की रचना का समय सं० १६१६ के आसपास का होना चाहिये।

बीठू मेहा दूसलाणी कृत 'चांदाजी री वेलि' के अन्त मे भी रचना-तिथि संबंधी कोई उल्लेख नही है। पुष्पिका मे लिखा है 'लिखत पं० जगन्नाथ भेड़ मध्ये॥ सं० १७४२ वर्षे फागुण वदी १ शनौ' इसमे इतना तो निश्चित है कि इसकी रचना सं० १७४२ फागुण वदी १ शनिवार के पूर्व हो चुकी थी। पर जब हम वेलिकार के समय और रचना-विषय पर विचार करते हैं तो पता चलता है कि इस वेलि की रचना सत्रहवी शती के पूर्वार्द्ध में होनी चाहिए।[1] वेलि मे चांदा जी के अजमेर, रायपुर, फलोदी, बिलाड़ा, ईडरगढ़, मेड़ता, नागौर आदि के युद्धों का वर्णन है। ये प्रदेश मारवाड़ के अधिपति राव मालदेव के अधीन रहे हैं जिनका शासनकाल सं० १५८९-१६१६ रहा है। वेलिकार ने छंद सख्या ग्यारह[2] मे अपने भाई सारंग देव की मृत्यु का बदला लेने के लिए चांदा जी द्वारा नारायणदास के किये गये वध का भी वर्णन किया है। यह घटना चित्तौड़ युद्ध (वि० सं० १६२४) के समय की प्रतीत होती है। अतः अनुमान है कि प्रस्तुत वेलि की रचना सं० १६२४ के बाद ही किसी समय हुई होगी।

उपर्युक्त चारणी वेलियों के अतिरिक्त निम्नलिखित जैन वेलियां भी पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व रचित मिलती हैं :—

१—डा० हीरालाल माहेश्वरी ने बीठू मेहा का रचना-काल १७वीं शती का पूर्वार्द्ध माना है (दे० राजस्थानी भाषा और साहित्य पृ० ११२)

२—वैर सहोदर विढे वालीयो, अति चंद सुजस हुवौ असहाय।
 पैसे गढि चित्तौड़ पाड़ीयो, दूजडा हथ नाराईण दास॥११॥

रचना-नाम	रचनाकार	रचना-काल
(१) कर्मचूर व्रत कथा वेलि	भट्टारक सकलकीर्ति	सोलहवीं शती का प्रारम्भ
(२) चिहु'गति वेलि	वाछा	सं० १६२० (लिपिकाल)
(३) जम्बूस्वामी वेल	सीहा	सं० १५३५ (लिपिकाल)
(४) रहनेमि वेल	"	"
(५) प्रभव जम्बूस्वामी वेल	—	सं० १५४८ (लिपिकाल)
(६) पंचेन्द्रिय वेलि	ठकुरसी	सं० १५५०
(७) नेमिश्वर की वेलि	"	सं० १५५० के आसपास
(८) गरभ वेलि	लावण्य समय	सं० १५५३-८६ के मध्य
(९) गरभ वेलि (जइत वेलि)	सहज सुन्दर	सं० १५७०-८२ के मध्य
(१०) वेलि	छीहल	सं० १५७५-८४ के मध्य
(११) नेमि परमानन्द वेलि	जयवल्लभ	सं० १५७३ के आसपास
(१२) वल्कलचीरकुमार ऋषिराज वेलि	कनक	सं० १५८२-१६१२ के मध्य
(१३) क्रोध वेलि	मल्लिदास	सं० १५८८ वैशाख की ४ रविवार
(१४) सुदर्शन स्वामीनी वेलि	वीरचन्द	सोलहवी शती का अन्त
(१५) जम्बूस्वामिनी वेल	वीरचन्द	"
(१६) बाहुबलीनी वेलि	वीरचन्द	"
(१७) चंदनबाला वेलि	अजितदेवसूरि	सं० १५९७-१६२६ के मध्य
(१८) सम्वत्य वेलि प्रबन्ध	साधु कीर्ति	सं० १६१४ के आसपास
(१९) गुणठाणा वेलि	जीवंधर	सं० १६१६ (लिपिकाल)
(२०) लघु बाहुबली वेलि	शांतिदास	सं० १६२५ (")
(२१) जइतपद वेलि	कनक सोम	सं० १६२५
(२२) गुरू वेलि	भट्टारक धर्मदास	सं० १६३८ के पूर्व

इधर जो लौकिक वेलियां प्राप्त हुई हैं वे पृथ्वीराज कृत वेलि से पूर्व की ही ठहरती हैं। 'रामदेवजी री वेल' तथा 'रूपांदे री वेल' के रचयिता संत हरजी भाटी रामदेवजी के समकालीन थे। इस विषय के दोनों के सम्बन्ध में काफी प्रवाद भी प्रचलित हैं।[1] रामदेव जी का समय वि० सं० १४६१ से १५१५ तक माना गया है अतः यही समय संत हरजी भाटी का भी रहना चाहिये। संत सहदेव ने आईमाता की वेल में रचना-तिथि का निर्देश भी कर दिया है।[2] 'तोलांदे री वेल' के प्रमुख पात्रों का ऐतिहासिक अस्तित्व रामदेवजी के समय रहा है क्योंकि वे उनके भक्त माने गये

१—वरदा (बिसाऊ) वर्ष १, अंक १: पृ० ३७-४६

२—संवत १५७६ मास भादरे बीज आई चंदराली

हैं। वेलि में भी इसका संकेत है। 'रत्नादे री वेल' की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिल पाई है अन्त में 'तिजो गावे बाइ थारो सोलमा' से किसी तेजो नामक कवि का संकेत मिलता है। इसे छोड़ भी दें तो भी निम्नलिखित वेलियाँ तो पृथ्वीराज कृत वेलि के पूर्व की ही ठहरती हैं—

(१) रामदेवजी री वेल	संत हरजी भाटी	१५वीं शती का उत्तरार्द्ध
(२) रूपांदे री वेल	"	"
(३) तोलांदे री वेल		
(४) आईमाता री वेल	संत सहदेव	१५७६ भादवा मास की चन्द्रावली बीज

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह निर्विवाद रूप से स्वीकार करना पड़ेगा कि पृथ्वीराज की 'वेलि' वेलि-काव्य-परम्परा की प्रवर्त्तक न होकर चली आती हुई परम्परा में ही चिन्तामणि की भांति अपना उज्ज्वल प्रकाश विकीर्ण करती रही है जिसके आगे न तो पूर्ववर्त्ती वेलियों का प्रकाश ठहर सका है न परवर्त्ती वेलियों का। वह काव्य-स्थली का उत्तुंग हिमाचल है जिस पर आरोहण कर दोनों ओर के नयनाभिराम दृश्य देखे जा सकते हैं।

यहाँ पृथ्वीराज की 'वेलि' के प्रेरणा-स्त्रोत पर विचार कर लेना भी अप्रासंगिक न होगा। डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने इस विषय में लिखा है 'तुलसीदास वेलिकार के समकालीन थे और उस समय तुलसी का यशः सूर्य परमोन्नति प्राप्त कर चुका था। तुलसीदास ने 'पार्वती मंगल' तथा 'जानकी मंगल', दो-दो मंगल काव्यों की रचना की है.... संभवतः पृथ्वीराज को तुलसी के इन्हीं मंगलों से अपनी रचना की प्रेरणा मिली होगी।'[1] यह मत इसलिये नहीं माना जा सकता क्योंकि पृथ्वीराज से पूर्व भी वेलि-काव्यों की एक सुदीर्घ परम्परा रही है।

डा० हीरालाल माहेश्वरी[2] ने करमसी कृत 'क्रिसन जी री वेलि' के साथ तथा मुरलसिंह[3] ने अन्य पूर्ववर्त्ती चारणी वेलियों-गुणचांणिक वेल, देईदास जैतावत री वेल, रतन सी खींवावत री वेल, उदैसिंघ री वेल-के साथ पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुकमणी री वेल' की समानता कर यह माना है कि पृथ्वीराज की वेलि में पूर्ववर्त्ती वेलिकारों द्वारा प्रयुक्त शब्दावलियों, वाक्यावलियों एवं पदावलियों का सहज में ही प्रयोग हो गया है। पर यह मान्यता ठीक प्रतीत नहीं होती। उद्धृत छंदों में समानता

१—स्वसंपादित वेलि : भूमिका, पृ० ४६-५०

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १६३-१६५

३—सेनानी साप्ताहिक : वर्ष ११ अंक २१ (१८-३-६१), पृ० २ व ६ तथा अंक २२ (२५-३-६१), पृ० २ व ६ में "क्या पृथ्वीराज कृत 'वेलि क्रिसन रुकमणी री' सर्वथा मौलिक रचना है ?" शीर्षक लेख।

नहीं है। जैसी समानताएँ उक्त विद्वानों ने बतायी हैं वैसी समानताएँ किन्हीं भी दो कृतियों में मिल सकती हैं और उन पर वाल्मीकि अथवा कालिदास का प्रभाव घोषित किया जा सकता है। फिर भी यह बहुत संभव है कि पृथ्वीराज ने अपने से पूर्व रचित इन चारणी वेलियों को देखा हो।

द्वितीय अध्याय

वेलि-नाम

काव्य विशेष के नामकरण में कई प्रवृत्तियाँ काम करती हैं। कभी वर्ण्य-विषय, कभी छंद, कभी शैली, कभी चरित्र, कभी घटना, कभी स्थान और कभी केवल मात्र आकर्षण वृत्ति से प्रेरित होकर कवि लोग अपनी रचनाओं को विविध संज्ञाओं से अभिहित करते है।[1]

---

[1] —श्री अगरचंद नाहटा ने 'प्राचीन भाषा-काव्यों की विविध संज्ञाएँ' शीर्षक निबन्ध मे ऐसी ११५ काव्य-संज्ञाओं का परिचय दिया है। उनके नाम इस प्रकार हैं :—

(१) रास (२) संधि (३) चोपाई (४) फागु (५) धमाल (६) विवाहलो (७) धवल (८) मंगल (९) वेलि (१०) सलोका (११) संवाद (१२) वाद (१३) झगड़ो (१४) मातृका (१५) बावनी (१६) कक्क (१७) बारहमासा (१८) चोमासा (१९) पवाड़ा (२०) चर्चरी (चांचरि) (२१) जन्माभिषेक (२२) कलश (२३) तीर्थ माला (२४) चैत्य परिपाटी (२५) सघ वर्णन (२६) ढाल (२७) ढालिया (२८) चोढालिया (२९) छढालिया (३०) प्रबध (३१) चरित (३२) संबंध (३३) आख्यान (३४) कथा (३५) सतक (३६) बहोत्तरी (३७) छत्तीसी (३८) सत्तरी (३९) बत्तीसी (४०) इक्कीसो (४१) इकतीसो (४२) चोवीसी (४३) बीसी (४४) अष्टक (४५) स्तुति (४६) स्तवन (४७) स्तोत्र (४८) गीत (४९) संज्झाय (५०) चैत्यवंदन (५१) देववंदन (५२) वीनती (५३) नमस्कार (५४) प्रभाती (५५) मंगल (५६) साझ (५७) बधावा (५८) गहूंली (५९) हीयाली (६०) गूढ़ा (६१) गजल (६२) लावणी (६३) छंद (६४) नीसाणी (६५) नवरसो (६६) प्रवहण (६७) वाहण (६८) पारणो (६९) पट्टावली (७०) गुर्वावली (७१) हमचड़ी (७२) हीच (७३) मातामालिका (७४) नाममाला (७५) रागमाला (७६) कुलक (७७) पूजा (७८) गीता (७९) पट्टाभिषेक (८०) निर्वाण (८१) संयम श्री विवाह वर्णन (८२) भास (८३) पद (८४) मंजरी (८५) रसावलो (८६) रसायन (८७) रसलहरी (८८) चंद्रावला (८९) दीपक (९०) प्रदीपिका (९१) फुलड़ा (९२) जोड़ (९३) परिका (९४) कल्पलता (९५) लेख (९६) विरह (९७) मूंदड़ी (९८) सत (९९) प्रवाह (१००) होरी (१०१) तरंग (१०२) तरंगिणी (१०३) चोक (१०४) हुंडी (१०५) हरज (१०६) विलाप (१०७) गरबा (१०८) बोली (१०९) अमृतध्वनि (११०) हालरियो (१११) रसोई (११२) कड़ा (११३) झूलणा (११४) जकड़ी (११५) दोहा, कुंडलिया, छप्पय आदि। (नागरी प्रचारिणी पत्रिका : वर्ष ५८ अंक ४, पृ० ४१७-३६)

(६) श्री कैलाशचंद्र मिश्र के अनुसार 'वल्ली' का दन्त्य 'व' कार के सम्पर्क से 'व' 'के' 'अ' का 'ए' (दन्त्य) हो जायगा। 'वल्ल' के 'ल' को कम करने से 'व' का स्वर दीर्घ 'ए' कार में बदल सकता है[१]।

(७) डा० बाबूराम सक्सेना के अनुसार 'वेल', 'वेलि' की व्युत्पत्ति सं० वल्ली से ही माननी ठीक होगी। वल्ली का एक उच्चारण वेल्ली (तु० शय्या>सेज्जा) भी रहा होगा। सं० वल्ली स्वयं कोई देशी शब्द होगा जिसे सं० ने आत्मसात कर लिया होगा[२]।

(८) डा० माताप्रसाद गुप्त लिखते है कि वेल शब्द प्राकृत 'वेल्ल' है जिसका अर्थ 'विलास' होता है। अनेक विवाह सम्बन्धी काव्य 'वेलि' नाम से मिलते हैं, इसलिए 'वेलि' और 'वेल्ल' सम्बन्धित हो सकते हैं। 'वेल्ल' शब्द क्रिया भी है जिसका अर्थ क्रीड़ा करना है[३]।

हमारे मत से वेलि या वेल शब्द का संस्कृत रूप वल्ली है जिसका एक रूपान्तर वल्लरी भी है। सं० वल्ली शब्द वल्ल धातु से बना है जिसका अर्थ है छाना या आगे बढ़ना। प्राकृत और अपभ्रंश में इसका रूप 'वेल्लि' हो गया। यही 'वल्लि' शब्द हिन्दी में 'बेलि' और 'बेल' तथा राजस्थानी में 'वेलि' और 'वेल' कहलाया।

(ख) वेलि शब्द का कोषपरक अर्थ :

अमरकोषकार ने 'वल्ली तु व्रततिर्लता' कहकर इस सूत्र की व्याख्या की है[४]। प्राकृत में वेल-वेल्ल-वेल्लइ-वेल्लरी-वेल्ला-वेल्लि-वेल्लिर आदि रूप मिलते हैं[५], जिनके अर्थ इस प्रकार हैं[६]—

(१) वेल्लि (लता: भामह १,५, हेमचंद्र १,५८, मार्कण्डेय पन्ना ५, गउड, हाल)।

(२) वेल्ल (केश, बच्चा, आनन्द : देशी० ७, ९४)

(३) विली (लहर : देशी : ७,७३, त्रिविक्रम १,३,१०५,८०)

(४) वेल्लरी (वेश्या: ७,९६)

(५) वेल्लिर (लहराने वाला : गउड० १३७, विद्ध ५५,८)

१—लेखक के नाम पत्र : दिनांक २-२-६१

२—लेखक के नाम पत्र : दिनाक २८-४-६१

३—लेखक के नाम पत्र : दिनाक २८-४-६१

४—अमरकोष: पृ० १३० । श्लोक ६

५—प्राकृत भाषाओं का व्याकरण: रिचर्ड पिशल, अनुवादक-डा० हेमचंद्र जोशी

६—वही : पृ० १६४

हिन्दी-कोशों में इसके बल्लरी-बल्ली[१], बेल-बेलड़ी-बेलि[२], बल्लर-बल्लरि-बल्लरी-बल्लि[३], बल्लिका-बल्ली[४], बेल-बेल्लरी-बेल्लि-बेल्ली-बेलिका[५] आदि रूप दिखायी पड़ते हैं। कोशों में इस शब्द के निम्नलिखित अर्थ मिलते हैं[६]—

(अ) बेल : संज्ञा, पुल्लिंग (हिन्दी)

(१) एक प्रसिद्ध कंटीला वृक्ष जिसके फल का मोटा कड़ा छिलका होता है। बिल्व। महाफल।

(२) वह स्थान जहाँ शक्कर तैयार होती है।

(३) बेला

(४) बेल का फूल

(आ) संज्ञा: स्त्रीलिंग

(१) बहुत ही पतली पेड़ी और पतले डंठलों का वह कोमल और छोटा पौधा जो दूसरे वृक्षों आदि के सहारे ऊपर की ओर बढ़ता हो। लता। बल्ली।

(२) संतान, वंश।

(३) नाव खेने का डांड

(४) घोड़े के पैर का एक रोग

(५) फीते पर बना हुआ जरदोजी या रेशम का काम

(६) विवाह आदि के अवसरों पर नेगियों को देने का धन

(७) कपड़े आदि पर लम्बाई के बल मे बनी हुई फूल पत्तियाँ।

(इ) मुहावरे

(१) बेल बढ़ना—वंश वृद्धि होना

(२) बेल मढे चढ़ना— किये हुए काम में पूरी सफलता होना

(ई) संज्ञा पुल्लिग (फारसी)

(१) एक प्रकार की कुदाली जिससे मजदूर भूमि खोदते हैं

(२) सड़क आदि बनाने के लिए चिन्ह रूप में या सीमा निर्धारित करने के लिए चूने आदि से जमीन पर डाली हुई लकीर। एक प्रकार का लम्बा खुरपा।

(उ) बेलसना (क्रिया अकर्मक, हिन्दी)

१—बृहत् हिन्दी कोश (द्वितीय संस्करण) बनारस, ज्ञानमंडल लिमिटेड : पृ० ६३०।

२—वही: पृ० ६७१ ३—वही: पृ० १२०१

४—वही : पृ० १२०२ ५—वही: पृ० १२८४

६—नालन्दा-विशाल शब्द सागर : सं० नवलजी, पृ० ६६५

सुख या आनन्द लूटना। भोग करना।[1]

(ऊ) वेल : संज्ञा, पुल्लिग (संस्कृत)

उपवन। बाग।[2]

राजस्थान मे 'वेल' के नाम इस प्रकार मिलते हैं–

'लना बेल बलि बेलड़ी बेली ब्रतति (बखांण)[3]

रामवेलि और नागरबेल के पर्याय भी इस प्रसंग में द्रष्टव्य हैं :–

रामवेलि नांम–

राजध्रनी का रसवती रायबेल सितरंग,

अवजस (पुन) प्रियवलका (मधुकर भ्रमत मतंग)[4] ।।५४८।।

नागरबेल नांम–

तांबूली अदीवेल (तव) भुज पांनदल (दाख)

नागरवेल तंबोल नित (अरुण अधर मुख आख)[5] ।।५५६।।

काव्य संज्ञा के अन्तर्गत वेल शब्द के इन सभी अर्थो का समाहार नहीं होता। यहाँ केवल निम्नलिखित अर्थ ही अभिप्रेत है :—

(१) लता–आन्तरिक साम्य या आकर्षण-वृत्ति से प्रेरित होकर
(२) संतान, वंश
(३) बेल बढ़ना–वंश वृद्धि होना

} ऐतिहासिक वेलि साहित्य में मुख्यत:

(४) बेल मंढे चढ़ना–काम पूरा होना–धार्मिक वेलि-साहित्य मे मुख्यत : बहुत संभव है इन्ही अर्थों को ध्यान मे रखकर कवियों ने अपनी रचना को 'वेलि' या 'वेल' कहा हो।

(ग) वेलि साहित्य में प्रयुक्त वेल या वेलि शब्द का तात्पर्य :

संपूर्ण वेलि साहित्य में वेल या वेलि शब्द निम्नलिखित ६ रूपो (अर्थो) में प्रयुक्त हुआ है :—

(अ) वेलि–रूपक

(आ) काव्य-संज्ञा

१—नालन्दा विशाल शब्द सागर : सं० नवलजी: पृ० ६६६

२—वही : पृ० १३०२

३—डिंगल-कोष : सं० नारायणसिंह भाटी, पृ० २३८

४—वही : पृ० १४१

५—वही : पृ० १४२

(इ) छंद-गीत

(ई) साथी-सहायक

(उ) लहर-तरंग

(ऊ) लता-वल्लरी

(अ) वेलि-रूपक :

वेलि को उपमान बनाकर साहित्य में रूपक बांधने की प्रथा रही है। यह रूपक कभी तो विराट् सांग-रूपक के रूप में प्रस्तुत हुआ है, कभी केवल मात्र साधारण रूपक बनकर ही रह गया है। साधारण रूपकों में 'वेलि' शब्द संसार, शरीर, कनक, पाप, ज्ञान, अमृत, सुयश आदि के साथ उपमान के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

सांगरूपक :

(१) *वेलि* तसु वीज भागवत वायउ, महि थाणउ प्रिथुदास मुख।
मूल् लता, जड़ अरथ, मांडहइ, सुथिर करणि चढ़ि, छांह सुख ॥२९१॥
पत्र अक्खर, दल् द्वाला, जस परिमल्, नव रस तंतु विधि अहो-निसि।
मधुकर रसिक, सु अरथ मंजरी, भुगति फूल, फल मुगति मिसि ॥२९२॥
कळि कळम-*वेलि*, वेळि काम धेनुका, चिंतामणि, सोम-वेलि चत्र।
प्रगटित प्रथमी-प्रिथु-मुख-पंकजि, अखराउळि मिसि थइ अेकत्र[1] ॥२९३॥

(२) *भावना सरस सुर वेलड़ी*, रोपी तूं हृदय आराम रे।
सुकृत तरु लहीय बहु पसरतो, सफल फलिस्यइ अभिराम रे ॥२॥
क्षेत्र सुचि करीय करुणं रसइं, काटि मिथ्यादिक साळ रे।
गुपति त्रिहुं गुपति रूडी करइ, नीकउ सुमति नीवालि रे ॥३॥
सिंचीयइ सुगुरु वचनामृतइं, कुमति कंथेरि तजि संग रे।
क्रोध-मानादिक सूकरा, वानरो वारि अनंग रे ॥४॥
सेवतां एइनइ-केवलो, पनरस यनी ते अणगार रे।
गौतम सीस सिवपुर गया, भावता देव गुरु सार रे[2] ॥५॥

१—क्रिसन रुकमणी री वेलि : राठौड़ पृथ्वीराज : नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित : पृ० १५०-५१

२—बारह भावना वेलि : जयसोम, ढाल-१२

ग्रंथ के प्रारंभ या अन्त मे इस प्रकार की रूपकावली व्यक्त करने की एक काव्य-शैली रही है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी 'रामचरित मानस' मे ऐसा ही मानस-रूपक बांधा है।[1]

साधारण-रूपक :

(१) संसार-वेलि

या दुरगति तणी सहेली, *संसारा दीरघ वेली।*
खिण खिण मे अति ललचावै, विपइ नो दुख दिखावै[2] ॥

(२) तन-वेलि

(क) रस प्रेम हींडोले होचो रे। तरुणी *तन वेलड़ी* सींचो रे ॥ ५ ॥
धरी प्रेम पीतांबर पहरोरे। रस दीपक बालो दोहरो रे॥ ६ ॥[3]

(ख) धरिया सु उतारे, नव तन धारे, कवि तइ वाखाणण किमत्र।
भूखण पुहप, पयोहर-फल भति, *वेलि गात्र*, तउ पत्र वसत्र ॥ ६५ ॥[4]

१—सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि धन साधू ॥
बरषहिं राम सुजस वर वारी। मधुर मनोहर मंगल कारी ॥
लीला सगुन जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करइ मल हानी ॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाइ। सोइ मधुरता सुसीतलातई ॥
सो जल सुकृत सालि हित होई। राम भगत जन जीवन सोई ॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावना ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥
सुठि सुन्दर सबाद बर, विरचे बुद्धि विचारि।
तेइ एहिं पावन सुभग सर, धाट मनोहर चारि ॥
सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ग्यान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति *महिमा अगुन अबाधा। बरनव सोइ वर वारि अगाधा ॥*
रामसीय जल सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मणि सीप सुहाई ॥
छंद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरंग कलम कुल सोहा ॥
अरथ अनूप सुभाव सुभासा। सोई पराग मकरंद सुबासा ॥
सुकृत पुंज मंजुल अलि माला। ग्यान, विराग, विचार मराला ॥
धुनि अवरेख कवित्त गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाती ॥
—श्री रामचरित मानस : हनुमान प्रसाद पोद्दार, गीता प्रेस, गोरखपुर—बालकाण्ड : पृ० ४६–५०

२—भरत-वेलि : देवानन्दि

३—स्थूलिभद्रनी शीयल वेल: वीर विजय : ढाल ९

४—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : राठोड़ पृथ्वीराज

(३) कनक-वेलि

रामा-अवतार, नाम ताइ रुकमणि, मान सरोवरि मेरु-गिरि।
बालक-गति किरि हंस चउ बालक, कनक वेलि विहुं पान किरि॥ १२॥[1]

(४) पान-वेलि

धरमारू रे धरणीधर धार, परिहरिया दूरबना पार।
अहंकार जग रह्यो पसार, जग धारंभियो जारा जार॥ टेर॥
सजो राम वेदन नहिं ध्यावै, *पानी वेलड़ी* परम गुरु भावै।
बीज सतीगर जमारी जोड़, हेत रा हीरा सेंगा मोड़॥ १॥[2]

(५) ज्ञान-वेलि

धारंता धर्मनी धारणा, मारतां मोह वडचोर रे।
ज्ञान रुचि वेल विस्तारतां, वारता कर्मनुं जोर रे॥ २६॥
राग विष दोष उतारतां, जारतां द्वेष रस सेष रे।
पूर्व मुनि वचन संभारतां, वारता कर्म निःशेष रे॥ २७॥[3]

(६) अमृत-वेलि

श्री नय-विजय गुरु शिष्यनी, शीखड़ी अमृत-वेल रे।
एह जे चतुर नर आदरे, ते लहे सुजस रंग रेल रे॥ २६॥[4]

(७) सुजस-वेलि

श्री पाटणना संघनो लही, अति आग्रह सुविशेषि रे।
शोभावी गुण-कूलडि इम *सुजस-वेलि* म्हें लेखि रे॥ ८॥
उत्तम गुण उद्‌भावनां, म्हें पावन कीधी जीभ रे।
कांति कहे *जस वेलड़ी* सुणतां, हुइ धन धन दीहा रे॥ ६॥[5]

(आ) काव्य-संज्ञा :

काव्य-संज्ञा के रूप में कवियों ने 'वेलि' या 'वेल' शब्द का प्रयोग प्रायः वेलि काव्य के आदि-अन्त में किया है। इससे वेलि-काव्य की लोक-प्रसिद्धि का पता चलता है। यहाँ कतिपय उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं :—

१—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : राठौड़ पृथ्वीराज
२—रूपांदेरी वेल : संत हरजो भाटी
३—अमृत वेलिनी मोटी सज्झाय : यशोविजय
४—वही
५—सुजस-वेली : कांति विजय

(१) वेली करि मुनि इंदो, मंडला-चारिए भ्रम चंदो ।
पढ़े सुणे नर ज्ञाता, मुरग मुकति सुख दाता ।।[१]

(२) आणंद कंद जिणंद भाख्या भेद भावु भव्वए ।
गुणठाण वेलि विलास जुत्ता सुख पावु सव्वए ।। १ ।।[२]

(३) नमंगो गुरु नरगंथ ने, सारद दस गुण पुरे ।
कहो *वरत वेलि* उदधु, करमसेण कर्मचुर ।। १ ।।[३]

(४) वेल पिराइली श्री नेमनाथ केरी आण चलण न पामीइ ।
सील सबल रखवाल वन अति हयडंउ
सदमत जुं गज होइ मुंड सभालीइ
रहनेमि भूलि म भूलि मयण डे चाहीइ ।। आंचली ।।[४]

(५) दिवाली दिन साहिवे, चरण *वेलि* फल लीध ।
अचल अवाधित सहज सुख, ज्ञानोद्योत समृद्ध ।।[५]

(६) चिहुँगति नी ए *वेलि* विचारी, जे पालइ जिन आंण ।
तेहनां चरण कमल नइं पासइ, हूं वांछू गुण ठांण ।। १३५ ।।[६]

(७) करि *वेल* सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष्य समुझाया ।
मन मूरिख संकउ पाई, तिहि तणै चिति न सुहाई ।। १ ।।[७]

(८) रिषभ जिनेसर आदि करि, वर्द्धमान जिन अंत ।
नमस्कार करि सरस्वती, वरणै *वेलि* भंत ।। १ ।।[८]

(९) सिवरूं देवी सारदा, सुमति दे आई ।
सहदेव छाण करने, वेल माताजी री गाई ।।[९]

(१०) परमेसर सरमनी परमगुरू, करां प्रणांम सजोडि कर ।
दीनदयाल दया दाखीजइ, हेत भणइ गाइजइ हरि ।। १ ।।
सिव सकति तणी ताइ *वेलि* वर्णविसु, सफल जनम करिवा संसार ।
बावन अख्यर तणो ऊड बाधी, वसुधा अचल हुवइ विस्तार ।। २ ।।[१०]

१—आदिनाथ वेलि : भट्टारक धर्मचंद्र
२—गुणठाणा वेलि : जीवन्धर
३—कर्मचूर व्रत कथा-वेलि : सकल कीर्ति
४—रहनेमि वेल : सीहा
५—वीर जिन चरित्र वेलि : ज्ञान उद्योत
६—चिहुंगति वेलि : वाछा
७—पंचेंद्रिय वेल : ठकुरसी
८—पंचगति वेलि : हर्ष कीर्ति
९—माईमाता री वेल :
१०—महादेव पार्वती

(११) हरि समरण, रस सभभरण हरिणाखो, भाजण मञ्ञ खोरि खेलि चढ़ि।
बइसे सभा पारखी बोलण, प्राणिया ! वंछट न वेलि पढ़ि ॥ २७८ ॥[1]

(१२) ब्रह्माणी वरवर आलि मझ, तु कविता जन मात।
तुझ पसाय वीनउं, गर्भ वेलि विख्यात ॥ १ ॥[2]

निम्नलिखित वेलियों के मूलपाठ में काव्य-संज्ञा के रूप में 'वेलि' या 'वेल' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है :–

(क) चारणी वेलि साहित्य :

(१) किसनजी री वेल
(२) देईदास जैतावत री वेल
(३) रतनसी खीवावत री वेल
(४) उदैसिंघ री वेल
(५) चांदाजी री वेल
(६) त्रिपुर सुन्दरी री वेल
(७) रायसिंघ री वेल
(८) सूरसिंघ री वेल
(९) रघुनाथ चरित्र नवरस वेलि
(१०) अनोपसिंघ री वेल आदि

(ख) जैन वेलि साहित्य :

(१) जम्बूस्वामी वेल
(२) नेमिश्वर की वेलि
(३) छीहल की वेलि
(४) भरत वेलि
(५) चंदनबाला वेलि
(६) सम्यक्त्व वेलि प्रबन्ध
(७) लघुबाहुबलि वेलि
(८) जइतपद वेलि
(९) स्थूलिभद्र मोहन वेलि
(१०) बलभद्र वेलि
(११) चार कषाय वेलि
(१२) सोमजी निर्वाण वेलि
(१३) प्रतिमाधिकार वेलि
(१४) जीव वेलड़ी आदि

(ग) लौकिक वेलि साहित्य :

(१) रामदेवजी री वेल
(२) रूपांदेरी वेल
(३) तोलांदेरी वेल
(४) रत्नादे री वेल
(५) पीर गुमानसिंध री वेल
(६) अकल वेल
(७) बाबा गुमान भारती री वेल

(इ) छंद गीत :

छंद के नामोल्लेख के रूप में 'वेलि' शब्द का प्रयोग वेलिकारों ने एकाध वेलियों में किया है। इससे यह ज्ञात होता है कि 'वेलि' शब्द छंद की दृष्टि से तो काफी लोकप्रिय और पुरातन रहा है। यहां हम ऐसे दो उद्धरण प्रस्तुत कर रहे हैं :–

१—किसन रुकमणी री वेलि : पृथ्वीराज : छंद २७६-८४, २८६-२८८, २९०-९४, २९६, २९८ भी देखिये।

२—गर्भ वेलि : लावण्य समय

(१) चित्त च्यंतवण करै चौरासी, आखर छंद उपमा अनूप।
नरहर विणाज रूप निरूपै, रूपक बंद तिणि के न रहे रूप ।।२४।।
सांणोर प्रहास दूंण दोढा सूज, चतुर सुवाणि केलवण चीत।
गीत गोव्यंद विण गाइज्यै, गति बाहिरा सु कहिजै गीत ।।२५।।
स्यंधू पाड़गति ठाह सोरठिया, रै दह पूर्व छयल रूख।
दूहा कहै विणा दामोदर, दूहेत्यां प्रामिजै दुख ।।२६।।
कमल व्याल छत्रबंध कुंडलिया, सहित जाति बावीस महि।
कवित्त जु कहै विणा कमलापति, कवित्त सवित बाहिरा कहि ।।२७।।
नखशिख लग सिंगार निरूपै, भेद ग्रंथ दाखें गत्य भांति।
गायें ज जाइ विणा जगत गुरू, जाति ते परैं नहीं काइ जाति ।।२८।।
मूंढ तजै गुण अवगुण मानैं, वृहा जायें विपै विलासि।
कहेज रासा रसिक विण कविता, रस उपजे नही तिणि रासि ।।२९।।
डीरघ लघ कर तजे दुवाला, समि वचने मेले सवेलि।
वेलि ज कहै विणा वनमाली, विप मे फल लागे तिण वेलि ।।३०।।[१]

(२) गीत मे वेलि कवित में गाहा. वाजे विरद बाधीये छंद।
दूहै नीसाणीं पे मुदाता, आखीजीयै रतन सौ इंद ।।११५।।
कुंडलीये दौढे कहों महाकवि, सेला रे साउ जड़े सधि।
चन्द्राइण लाखड़ीये चूंहूंदिसी, वीरद रयण रूपक में वंधि ।।११६।।
गूढारथ जोडि आटको गावै, रसाउलो व्याकरण रसि।
राउ रतन रूपक चौरासी, कवि वाखांणै वडै कसि ।।११७।।[२]

(ई) साथी-सहायक :

साथी-सहायक के रूप मे वेलि तथा वेल शब्द का प्रयोग चार स्थलों पर हुआ है :—

(१) वेली तदि बलिभद्र बापुकारइ, सत्र सा वतउ अजे लगि साथ।
वूठइ वाहवियइ आ वेला, हिव जोविस्यइ जु वाहिस्यइ हाथ ।।१२३।।[३]

(२) बोलावियो चंद रज वेली राघव सौ सारि सौ रण।
खेत सीयो खेग रे खाफर, अतली वंश आभरण ।।२६।।[४]

(३) प्यारा वायक कुण नर पैले, सत गुरु साहिब है थारै वेले।
अधरातां रा मेल जु मेले, सतगुरू वायक कोइयक भेले ।।१५।।[५]

१—गुणवाणिक वेल : बूंदीजी
२—रावरतन री वेलि : कल्याणदास महड़ू
३—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : पृथ्वीराज
४—चांदाजी री वेलि : बीठू मेहा दूसलांणी
५—रूपांदे री वेल : संत हरजी भाटी

(४) धिन ज्यांरा भाग धणियों नै ध्यावो, पीर म्हारी वेल पधारी जे ।
प्रभाते निज नाम सायव रा, साचा सिवरण सारीजे ॥१॥[1]

(उ) लहर-तरंग :

लहर-तरंग के अर्थ में 'वेल' शब्द का प्रयोग तीन स्थलों पर हुआ है

(१) देह मन वचन पुद्गल थकी, कर्म थी भिन्न तुज रूप रे ।
अक्षय अकलंक छे जीवनुं, ज्ञान आनन्द स्वरूप रे ॥२४॥
कर्म थी कल्पना उपजे, पवन थी जेम जलधि वेल रे ।
रूप प्रगटे सहज आपणुं, देखतां दृष्टि स्थिर मेल रे ॥२५॥[2]

(२) वरणूं रूप रमाजित मदन, पूर्ण शारद शशिकर वदन ।
कुंद कलिका हीरक रदन, सौभाग्य कला गुण सदन ॥११॥
कला गुण सदन सरूप प्रति, जंगम-मोहण वेलि ।
स्त्री वल्लभ सौभाग्य निधि, विरखइ मनमथ वेलि ॥१२॥
आई यौवन सागर वेलि, हृदयश सखा को वेलि ॥[3]

(३) वाणिग्रू-वघू, गउ-वाछ, प्रसइविट, चोर, चकव, विप्र-चोरय वेल ।
सूरि प्रगटि ऐतलां समपियउ, मिलियां विरह, विरहियां मेल ॥१८६॥[4]

(ऊ) लता-वल्लरी :

लता-वल्लरी के अभिधेय अर्थ में वेल, वेलि तथा वेलड़ी का प्रयोग कई स्थानों पर हुआ है—

(१) सर सालि रे वन दोहैलुं फिड, करी वरसि रे मेहलो ।
वर तरू कंदरि मंडीया, वेलें वीधु रे देह जी ॥६॥[5]

(२) विधि विधि चा वरख, वेलि विधि विधि चो,
फल बिदि बिदि बिदि बिदि चा फूल ।
बिदि बिदि तणा पंछी तहा बैठे,
भवर गूंजार विवदि रस भूल ॥३४॥[6]

(३) उगुणी खिड़की जोसी रो बारणो, वरड़े नागर वेल ।
केल भखुके जोसी रे बारणे, नैवों चम्पलों रो झाड़ ॥[7]

१—रामदेवजी री वेल : संत हरजी भाटी
२—अमृत वेलिनी मोटी सज्झाय : यशोविजय
३—स्थूलिभद्र मोहन वेलि : जयवंत सूरि
४—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : पृथ्वीराज
५—लघु बाहुबली वेलि : शांतिदास
६—रघुनाथ चरित नव रस वेलि : महेसदास
७—पीर गुमानसिंघ री वेल

(४) अति ग्रब मवर तोरण, ग्रजु ग्रंबुज कली सु मंगल कलस करि।
वंदखाल बंधाणी वल्ली, तरुवर ऐका वियइ तरि ॥२३॥[1]

(५) *वेलि-नाम पर विद्वानों के विभिन्न मत :*

वेलि-नाम के सम्बन्ध मे विद्वानों के विभिन्न मत इस प्रकार हैं :—

(१) डा० मोतीलाल मेनारिया ने छंदों के आधार पर रखे गये ग्रंथों के नामों मे 'बेल' की भी गणना की है।[2]

(२) कविराव मोहनसिंह के अनुसार 'वेलि' संज्ञा विशेष काव्यों मे छंद मुख्य रूप से एक ही प्रकार का पाया जाता है। वह है 'वेलियो'। इसी के नाम से रचनाओं को अभिहित किया गया है।[3]

(३) श्री सूर्यकरण पारीक ने पृथ्वीराज कृत 'वेलि' के छद संख्या २९१–२९२ के आधार पर इसके नामकरण की विवेचना करते हुए लिखा है—

'भागवत वर्णित भगवद्‌भक्ति रूपी बीज महाराज पृथ्वीराज जैसे भक्त की हृदय-स्थली मे बोया गया, जिसके परिणाम स्वरूप उनके मुख रूपी ग्रालवाल से यह भक्ति 'वेलि' अंकुरित होकर प्रकट हुई। इस रचना रूपी बेल के मूल दोहलों की लय और संगीत ही इसकी दृढ़ जड़ें है, जिनके आधार पर यह स्थित है और उनका भाव और आशय वह मण्डप है जिस पर इस काव्य वल्ली की शाखा-प्रशाखाओं का विकास मार्ग निर्दिष्ट है। यह वेलि भक्त और काव्यरसिक पाठकों को रुचि और श्रद्धा को पाकर अपनी शाखा-प्रशाखाओं को फैलाती हुई उनके हृदय को अपनी भगवद्‌भक्ति रूपी सघन छांह के नीचे चिर शांति और अनन्त आनन्द प्रदान करेगी। इस वेलि के अक्षर ही इसके पत्ते हैं और भगवान का यशोगान और उनकी महिमा यही इसकी मनोहारिणी सुगन्धि। इसके विस्तृत तन्तुजाल इसके वर्णनान्तर्गत नवरसों का समूह है। सहृदय काव्य-प्रेमी पाठक लोभी भ्रमर की तरह इसके भावार्थ रूपी मधु सौरभ का आस्वादन करते हुए प्रेमानन्द मे लीन होकर इसके चारों ओर मंडराते रहते हैं। इसको पढ़कर पाठकों के हृदय मे भक्ति का जो स्वाभाविक उद्रेक होगा, वही इस वेलि पर मंजरी का लगना है। तदनन्तर और ज्यादा अनुशीलन करने पर भक्त पाठकों को मुक्ति के रूप मे इस वेलि का सुगन्धित पुष्प प्राप्त होना है और संसार मे रहते हुए भगवान की अनुकम्पा से ऐसे

१—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : पृथ्वीराज : छंद २९१, २९२, २९६ भी देखिये।
२—राजस्थानी भाषा और साहित्य (द्वितीय संस्करण) : पृ० ६६
३—लेखक के नाम पत्र : दिनाक ७-१०-५६

भक्त पाठकों की बुद्धि निर्मल होकर उनको अनेक ऐश्वर्य भोग के साधन प्राप्त होते हैं। यही मानों इसका इहलौकिक फल है। ऐसी है यह 'वेलि'।[1] डा० हरदेव बाहरी[2] भी इसी मत की पुष्टि करते हैं।

(४) डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने 'पृथ्वीराज की वेलि' पर लिखते हुए लिखा है कि एक और बात जो इस वेलि नाम से प्रगट होती है, वह है लेखक का कथा के कोमल तथा मधुर भाग की ओर इंगित। 'वेलि' नाम में ही एक ऐसी लचक और मधुरता है कि काव्य का विषय सुलता सा प्रतीत होने लगता है। काव्य की नायिका का शरीर भी कनक वेलि सा ही है— 'कनकवेलि बिहु पान किरि।' इस नायिका का शरीर यदि कनकछरी सा होता तो उसके लोच और मृदुलता का पता कैसे लगता? संभव है इसी बात को लक्ष्य कर कवि ने काव्य के नाम से ही उसके विषय का ज्ञान कराने के लिए उसका नाम वेलि रखना उचित समझा। यह वेलि रुक्मिणी के हृदय को कृष्ण के हृदय से जोड़ती है। दोनों के बीच प्रेम-लता, प्रेम-वेलि फैल जाती है जिसके स्निग्ध बंधन में दोनों बंधे रह जाते हैं।[3]

(५) डा० हीरालाल माहेश्वरी के अनुसार वेलि के नामकरण का 'वेलियो' गीत से कोई सम्बन्ध नहीं है। कृष्ण और रुक्मिणी के हृदयों में प्रेम-वेलि के अंकुर और प्रसार रूप इस काव्य (पृथ्वीराज कृत वेलि) का निर्माण हुआ है[4].... वर्ण्य विषय की दृष्टि से यह विवाह के अर्थ में प्रचलित है। रचना प्रकार की दृष्टि से 'वेलि' हिन्दी के 'लता', 'वल्ली' आदि काव्य रूपों की तरह है।[5]

(६) डा० मंजुलाल मजुमदार के अनुसार 'वेलि' शब्द विवाहनां अर्थ मां प्रचलित छे। वेलिनु बीजु नाम विवाहवाची मंगलपण छे।[6]

(७) डा० भोलानाथ तिवारी वेलि साहित्य को प्रमुखतः शृङ्गार प्रधान काव्य मानते हैं। उनके मत में वेलि और विलास एक ही हैं।[7]

(८) श्री शिवसिंह चोयल के अनुसार वेल अथवा वेलि किसी वीर और सती-साध्वी वीरांगना की संपूर्ण और विस्तृत गाथा को ही कहते हैं।[8]

१—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : भूमिका, पृ० ५६-६०
२—लेखक के नाम पत्र : दिनाक १२-४-६१
३—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : भूमिका, पृ० ४३
४—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १२६
५—वही : पृ० २४३
६—गुजराती साहित्य नां स्वरूपो : पृ० ३७५
७—लेखक के नाम पत्र : दिनाक ३१-३-६१
८—लेखक के नाम पत्र : दिनाक २८-६-५६

(वल्ली) कहने की प्रथा का आरंभ मानते हैं।[1] मुनि कांतिसागर जी का भी
ऐसा ही मत है।[2]

(१५) श्री पुरुषोत्तम मेनारिया के अनुसार वृक्ष के बढ़ने की सीमा होती है पर बेल
के बढ़ने की कोई सीमा नहीं होती। बेल की तरह ही चरित्र-नायक के यश
के फैलने की कामना इन काव्यों में काम करती रही है।[3]

(१६) श्री रावत सारस्वत लिखते हैं कै'क एक तरफ तो वेलियो गीत सूं संबंधित
है पण दूजी तरफ अठै इण छंद रै अलावा भी वेलि री रचना मिलै है, इण
री संबंध लता वरणन सूं दीसै। बोलचाल में वेलां–थारी वेल वधे-ज्यूं तरे
महापुरुषां अर राजावां री वेल वधो। चारणी काव्य में इण नैं वेल लिखो
है अर वरणन भी लता वरणन सो ही है।[4]

(१७) श्री अगरचंद नाहटा के अनुसार वेलि संज्ञा लता के अर्थ में लोकप्रिय हुई
और अनेक कवियों ने उस नाम के आकर्षण से अपनी रचनाओं को 'वेलि'
इस शब्द पद से संबोधित किया।[5]

(१८) श्री सौभाग्यसिंह शेखावत ने राजस्थानी 'वेल' अथवा 'वेलि' के लिए
निम्न शब्द और उनके प्रयोग प्रचलित बतलाए हैं:—

(१) वेळ : समुद्रतट का किनारा
प्रयोग—म्हू. वेळ आड़ी हुती

(२) वेळी : सहायक, साथी
प्रयोग—म्हारा वेळी था जो काई कीधो

(३) वेळि : लिए
प्रयोग—म्हारे वेळी था सूं लड़ो हो

(४) वेळा : समय
प्रयोग—जिण वेळा दीठा वले परताप नरेसुर

(५) वेल : प्रवाह
प्रयोग—पाणी री वेल टूट रयो है।

(६) वेल : वल्लरी
प्रयोगः–खारी वेल रे खारा ही फल लागै

(७) वेल : जोडी
प्रयोगः–धोल्या अर काल्या वेल मे एक गोळ बाल्यो

(८) वेल : संतति
प्रयोगः–नाजिर जी रेल वधों–वस म्हा तांई ही

और लिखा है 'वेलि' का वांछनीय प्रयोग वंश–वेलि अथवा वल्लरी ही जान पड़ता है।[१]

श्री कृष्णचन्द्र का विश्वास है कि 'वेलियो' छंद ही वेलि–साहित्य की मुख्य छंद-प्रवृति के आधार पर इस (वेलियो) संज्ञा का अधिकारी बना है। क्योंकि शुरू २ की वेलियाँ जैन विद्वानों द्वारा लिखी हुई है। उनमे किसी छंद का सुस्पष्ट रूप नही मिलता है। संभवतः वह अस्पष्ट रूप ही बाद मे इस (वेलियो) छंद के रूप मे विकसित हुआ है। इस प्रकार के तर्क मे वेलि के नाम की सार्थकता 'वेलियो' छंद नही दे सकता, प्रत्युत 'वेलि' शब्द (जो काव्य के लिए प्रयुक्त हुआ है) 'वेलियो' के नामकरण का आधार बनता है। 'वेलि' का आधार है लतासूचक वेल (वल्लरी) शब्द और 'वेलियो' का आधार काव्य-परम्परा का 'वेलि' शब्द।[२]

डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार वेलि, वल्ली, वल्लरी आदि शब्द लतावाचक हैं। उपनिषदों मे अध्याय को 'वल्ली' कहने की प्रथा थी। यह शब्द शाखा, स्कंध, पर्व, काण्ड आदि वृक्षांगवाचक शब्दो के रूप मे व्यवहृत रहा होगा। पुराने ग्रंथ 'पत्र' (तालपत्र, भूर्जपत्र) अर्थात् पत्ते पर लिखे जाते थे। बहुत से 'पत्रों' के समूह को वृक्ष मानकर शाखा, काण्ड, वल्ली आदि मे विभाजित करना उचित ही है।[३]

डा० हरिवंश कोछड़ ने द्विवेदी जी से मिलता–जुलता विचार व्यक्त करते हुए 'वेलि' को 'मंजरी' का ही एक रूप माना है। उनके अनुसार अनेक ग्रंथों मे अध्यायों या सर्गों का विभाजन गुच्छक और स्तवक शब्दों से किया गया है। गुच्छक और स्तवक लता या वल्ली के ही हो सकते है। इसलिये संभवत : वल्ली या लता ने काव्य का रूप धारण कर लिया हो।[४]

---

[१] शोध–पत्रिका : वर्ष १२, अङ्क २, पृ० ६४–७०
[२] शोध–पत्रिका : वर्ष १२, अङ्क १ पृ० ७४–७७
[३] लेखक के नाम पत्र : दिनांक ११–१–६१

ा० हीरालाल कापड़िया के अनुसार 'वेलि' नो मुख्य विपय गुणगान है।[1]

ा० सुकुमार सेन ने लिखा है 'वेला ऑर वेलि इज दी नेम ऑफ लिरिकल रेटिव्ज"।[2]

उपर्युक्त विद्वानों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों को निष्कर्ष रूप से ८ वर्गों मे सकता है :-

वेलियो छंद के आधार पर 'वेलि' नामकरण की कल्पना करने वाला र्ग।

वेलि' के आधार पर 'वेलियो' छद को संभावना प्रकट करने वाला वर्ग।

वेलि को विवाह–मंगल–विलास के अर्थ मे ग्रहण करने वाला वर्ग।

वेलि–रूपक की प्रतिपादना करने वाला वर्ग।

स्तोत्रों को ही लिपिकारों की भूल से वेलि समझने वाला वर्ग।

वेलि को केवल मात्र वीर–वीरागनाओं के चरिताख्यान तक ही सीमित रखने वाला वर्ग।

वेलि को यश और कीर्ति–काव्य के रूप मे ग्रहण करने वाला वर्ग।

वेलि को वल्ली, गुच्छक–स्तवक आदि अध्यायों से स्वतन्त्र काव्य-विधा के रूप मे विकसित मानने वाला वर्ग।

यहाँ हम प्रत्येक वर्ग के विषय में अपने विचार प्रस्तुत करने का प्रयत्न

वेलियो छंद के आधार पर वेलि नामकरण की कल्पना इसलिये सर्वमान्य नही हो सकती क्योंकि इस छंद मे लिखी हुई तो केवल चारणी कृतियाँ ही मिली है जिनकी परम्परा जैन–वेलियों से बाद की रही है। जैन–वेलियों का छंदानुबन्ध तो विविध प्रकार का रहा है। कही ढालें है तो कही लोकधुन, कही 'दोहरो' की कसावट है तो कही 'चालि' की मन्थरता। अतः वेलियो छंद 'वेलि' नाम का आधार न होकर चारणी वेलि–काव्य की एक विशेषता भर है।

---

[1] जैनधर्म प्रकाश : वर्ष ६५ अङ्क २ पृ० ४५–५० 'वेलि अने वेल' शीर्षक लेख

[2] प्रिंसेस : ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग ऑफ दी राजस्थानी मेन्यस्क्रिप्ट इन दी कलेक्शन्स ऑफ

लि के आधार पर 'वेलियो' छंद की कल्पना करना युक्तिसंगत प्रतीत नहीं
ोता। सबसे प्राचीन जो जैन-वेलियाँ मिली हैं उनमें न तो वेलियो छंद का
ी कोई लक्षण प्रतीत होता है और न बाद में जाकर इस छंद में ही वेलियाँ
लिखी गई हैं। इसके विपरीत 'वेलियो' छंद चारणी गीतों का प्रमुख छंद
हा है जो न केवल वेलिकारों द्वारा अपनाया गया है बल्कि अन्य गीतकारों
ा भी प्रिय-भाजन रहा है। इन सबसे परे (यदि इसे मान भी लिया जाय
ो भी) इस विकृष्ट कल्पना से वेलि-नामकरण की समस्या नहीं सुलझती
है तो केवल वेलि की प्रभाव-प्रसिद्धि को ही सूचित करती है।

लि को विवाह-मंगल-विलास के अर्थ में ग्रहण करने में दो आपत्तियाँ हैं।
हली तो यह कि सभी विवाह-प्रधान काव्यों को 'वेलि' नहीं कहा जा सकता
सरे जिन वेलियों का पता चला है उनमें से अधिकांश में विवाह की
धानता तो दूर रही उसका उल्लेख तक नहीं है। जहाँ विवाह का वर्णन
भी वहाँ प्रमुखता शान्त रस को ही दी है। फिर 'विवाहलु', 'मंगल' एवं
'धवल' काव्यों की स्वतंत्र सुदीर्घ परम्परा भी चलती आयी है। यह मत
निव्याप्ति दोष से ग्रसित है।

वल मात्र पृथ्वीराज कृत 'वेलि' के लता-रूपक के आधार पर इस
मकरण की कल्पना करना सगत प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार की
रूपकत्वी प्रस्तुत करना तो काव्य-शैली मात्र है। जायसी और तुलसी ने
। अपने ग्रंथों में ऐसा विराट सांग-रूपक बाँधा है। अन्य चारणी तथा
न-वेलियों में ऐसा सर्वांग सम्पूर्ण रूपक नहीं मिलता। यह तो भक्त कवि
थ्वीराज की उदात्त भावना मात्र है कि उसने लता के साथ अपने प्रेरणा-
ोत को बतलाने के लिए वेलि की तुलना करदी। दूसरी कमी इस मत
यह है कि इससे पृथ्वीराज-पूर्व-वेलि-परम्परा पर कुछ भी प्रकाश नहीं
डता।

ह मानना कि पृथ्वी और चारणों की वेलियाँ इतनी प्रसिद्धि पा चुकी थी
लिपिकारों ने भ्रम से जैन-कवियों के स्तोत्रों को वेलि संज्ञा से अभिहित
र दिया और यह परम्परा चलती रही, निरी मिथ्या कल्पना है। क्योंकि

न्त में वेलि गाने का भी उल्लेख है जबकि कई चारणी वेलियों मे न
ारम्भ में न अन्त में कही 'वेलि' शब्द आया है। अतः स्तोत्रों को ही
ैन-वेलियां मानकर चलना और उनकी अलग परम्परा न मानना ठीक
तीत नही होता। इस तर्क को ठीक इसके विपरीत भी बैठाया जा
कता है।

ेलि काव्य का वर्ण्य-विषय वीर-वीरांगनाओं का चरित्राख्यान ही नहीं रहा
ह उसमें शृंगार की गुदगुदी भी है, उपदेशों की अध्यात्म-धारा भी है।
ह वर्ग अव्याप्ति दोष से पीड़ित है।

चारणी कवियों ने जितनी भी वेलियां लिखी हैं उनमें अधिकतर किसी न
किसी राजा-महाराजा का यशोगान ही है। उसकी वंश-वेलि की गुण-गाथा
ही गाई गई है। जैन-वेलियों में भी तीर्थंकरों, सतियों, सन्तों, चक्रवर्तियों
तथा अन्य महापुरुषों का कीर्तन ही किया गया है। अतः वेलि के नामकरण
के मूल मे यही कीर्ति-भावना रही है। पर उपदेशात्मक वेलि-साहित्य पर यह
मत भी लागू नहीं होता।

वास्तव में वेलि शब्द मूलतः किसी साहित्य के विशेष प्रकार का नाम नही है।
'लता' की भांति किसी भी रचना के साथ यह जोड़ा जा सकता है। वेलि
का नामकरण कुछ उपनिषदों के अध्याय–जिन्हे वल्ली कहा गया है–से ही
विकसित प्रतीत होता है। काल-प्रवाह के साथ 'वल्ली' शब्द अध्याय या
सर्ग का वाचक न रहकर एक स्वतन्त्र काव्य-विधा का ही प्रतीक बन गया।
अन्तः साक्ष्य के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं:–

वेलि काव्य की परम्परा काफी पुरानी और प्रसिद्ध रही है। यही कारण है
कि कवि लोगों ने रचनाओं के प्रारम्भ या अन्त मे काव्य-संज्ञा के रूप मे
वेलि या वेल शब्द का प्रयोग किया है।

वेलि-काव्य का वर्ण्य-विषय प्रमुख रूप से देव-तुल्य श्रद्धेय पुरुषों का गुण-गान
करना रहा है। ये पुरुष राजा-महाराजा, तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव,
सती, धर्माचार्य, लोकदेवता आदि रहे हैं। जैन-वेलियों मे जहां केवल 'भव
संबोधन काजें' उपदेश दिया गया है वहां भी प्रारम्भ मे तथा अन्त में तीर्थ-

(३) गेयता इसका प्रमुख तत्व है। जैन साधु इसकी रचना कर बहुधा गाते रहे हैं। पाठ करने की परम्परा भी रही है[1]। पृथ्वीराज ने अपनी वेलि में पाठ-विधि[2] तक दी है। आई-पंथ में लोक-वेलियाँ अब भी गाई जाती हैं।

(४) वेलि-काव्य स्तोत्रों का ही एक रूप प्रतीत होता है जिसमें दिव्य पुरुषों के साथ साथ लौकिक पुरुषों का वीर-व्यक्तित्व भी समा गया है। रचना के प्रारम्भ या अन्त में वेलिकारों ने वेलि-माहात्म्य बतलाया है। ऐतिहासिक चारणी वेलियाँ प्रशस्ति बन कर रह गई हैं। उनमें कहीं भी अन्तः साक्ष्य के रूप में 'वेलि' शब्द नहीं आया है। वहाँ 'वेलियो' छंद में रचित होने के कारण ही उन्हें 'वेलि' नाम दे दिया गया प्रतीत होता है।

(५) वेलि काव्य विविध छन्दों में लिखा गया है। जैन वेलियों में ढालों की प्रधानता है। मात्रिक छन्द-दोहा, कुण्डलियां, सार, सरसी, सखी, हरिपद-भी अपनाये गये हैं। चारणी वेलियाँ छोटेसाणोर के भेद-वेलियो, सोहणो, खुड़द साणोर-में ही लिखी गई हैं। लौकिक वेलियाँ लोक-धुन प्रधान हैं।

(६) वेलि-काव्य में दो प्रकार की भाषा के दर्शन होते हैं। एक साहित्यिक-डिंगल-अलंकारों से लदी हुई और दूसरी बोलचाल की सरल राजस्थानी, अलंकार विरल पर मधुर और सरस। पहले प्रकार की भाषा चारणी वेलियों का प्रतिनिधित्व करती है तो दूसरे प्रकार की भाषा जैन तथा लौकिक वेलियों का।

१—१८ वीं शती के कवि जयचंद ने एक स्थल पर लिखा है कि साधु लोग पृथ्वीराज रासो, वेलि, नागदमण, पंचाख्यान, हरिरस आदि का वाचन क्यों नहीं करते?
पृथ्वीराज रासो, वेलि, वचनिका, पंचाख्यानन वाचै।

नागदमणि, हरिरस, अंग मुकन सामुद्रिक साचै॥
दय काक विचार अंग फरिके, अे सास्त्र रापै।
विसहरा वल्लिभेद, द्विपुछि त्रिपुच्छि सेभेद मापै॥
धुग्गू कल्प चोर काढणे स्वंतोक गणेस, विधि जे कहै।
गाइ उगाल जर मंभारिनी पूजि अे जै-चंद मार्ग लहि॥
—मुनि कांतिसागर जी का 'यति जयचंद और उनकी रचनाएं'
शीर्षक लेख (अप्रकाशित)

२—महि सुइ खट मास, प्रात जलि मंजे,
अप-अपरस-हुए, जित-इंद्री॥ २८०॥
(छै मास तक पृथ्वी पर सोवे, प्रातःकाल उठकर जल से स्नान करे और सबका स्पर्श त्याग कर– एकाकी मौन धारण कर– तथा जितेन्द्रिय होकर नित्य वेलि का पाठ करे– नरोत्तमदास स्वामी: स्व संपादित वेलि)

बन्धात्मकता वेलि-काव्य की एक सामान्य विशेषता है। गीत-शैली होते हुए ी प्रबन्ध-धारा को रक्षा हुई है। मुक्तक के शरीर में भी प्रबन्ध की आत्मा । सबसे छोटी वेलि शायद छीहल की वेलि (४ पद) है और सबसे बड़ी हादेव पार्वती (छंद संख्या ३८२) की।

ारम्भ में मंगलाचरण और अन्त में स्वस्ति-वाचन वेलि-काव्य की एक ामान्य विशेषता है।

तृतीय अध्याय

राजस्थानी-वेलि-साहित्य का वर्गीकरण

राजस्थानी वेलि साहित्य विभिन्न भण्डारों और पुस्तकालयों में हस्तलिखित प्रतियों के रूप में बिखरा पड़ा है। अब तक पृथ्वीराज कृत 'किसन रुकमणी री वेलि' ही प्रकाशित होकर विद्वानों के सामने आई है। उसके आधार पर सामान्यतः यह धारणा बनाली गई है कि वेलि साहित्य शृङ्गारपरक होता है और उसमें विवाह अथवा विलास की ही प्रधानता रहती है। पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। वेलि साहित्य विषय की विविधता लिये हुए है। यहाँ निम्नलिखित दृष्टियों से राजस्थानी वेलि साहित्य का वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाता है—

(१) रचना-स्थल
(२) रचनाकार
(३) रचना-शैली
(४) रचना-स्वरूप
(५) रचना-विषय

(१) रचना-स्थल :

कुछ वेलियों में अन्तः साक्ष्य के रूप में रचना-स्थल का उल्लेख हुआ है उसके दो प्रकार हैं—

(क) वेलिकार द्वारा वेलि के मूलपाठ में किया गया उल्लेख
(ख) लिपिकर्ता द्वारा पुष्पिका में किया गया उल्लेख

इस आधार पर सम्पूर्ण राजस्थानी वेलि साहित्य को दो भागों में बांटा जा सकता है—

(क) राजस्थान में रचित वेलि साहित्य
(ख) गुजरात में रचित वेलि साहित्य

(क) राजस्थान में रचित वेलि-साहित्य.— वेलि साहित्य का अधिकांश भाग—कतिपय जैन वेलियों को छोड़कर—राजस्थान में ही रचा गया है। रचनाकार और रचना विषय को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि बीकानेर व जोधपुर का प्रदेश चारणी-वेलियों का, जयपुर, अजमेर व उदयपुर का प्रदेश जैन वेलियों का तथा गोड़वाड़ प्रान्त लौकिक वेलियों का प्रधान रचना-केन्द्र

रहा है। अन्तः साक्ष्य के रूप में वेलि के मूल पाठ में जैसलमेर[1], महारोठपुर[2] (मारोठ), चंपानेरी चाटसू[3] आदि का ही उल्लेख हुआ है। पुष्पिका मे कल्पवल्ली नगर[4], गागरोनगढ़,[5] भेड़,[6] बूसो[7] आदि के नाम आये हैं।

गुजरात मे रचित वेलि साहित्य :—राजस्थानी वेलि साहित्य की अधिकांश रचनाएँ जैन-साधुओं द्वारा लिखी गई है। ये साधु राजस्थान के अतिरिक्त गुजरात में भी विशेष रूप से घूमते रहे है। अतः गुजरात भी इनका रचना-स्थान बना रहा है। वेलि के मूल पाठ मे राजनगर[8] (अहमदाबाद), दर्भावति[9] (डभोई), पाटण[10] आदि का उल्लेख हुआ है। पुष्पिका मे

-भगत हेतु भावना भणी, जैसलमेर मझार।
बारह भावना वेलिः जयसोम, ढाल १३।५

-महारोठपुर मंझारी, आदिनाथ भवियण तारी।
आदिनाथ वेलिः भट्टारक धर्मचंद

-चंपानेरी चाटसू केते भट्टारक भये साचा।
कर्मचूर व्रत कथा वेलिः भट्टारक सकलकीर्ति

-इति श्री त्रिपुर सुन्दरी वेलि ।। श्री संवत १६४३ वर्षे पोष वदि ६ दिनै गुरुवारे चे० देवजी लिखितः कल्पवल्ली नगरे लिखितं ।।
त्रिपुर सुन्दरो री वेलि : जसवन्त

-इति श्री कृष्णदेव रुक्मिणी वेलि सम्पूर्ण समाप्तः राठौड़ श्री किल्याणमल सुत पृथ्वीराज कृतम बंधव सुरताण जी गागरोनगढ़ मध्ये ।। सम्वत् १६६६ वर्षे माघ सुदी ४ दिने लिखितम् रामा फूलखेड़ा मध्ये समम् भवतु कल्याण।
पृथ्वीराज कृत वेलि की सं० १६६६ की नाहटा जी की प्रति-

-लिखित पं० जगन्नाथ भेड़ मध्ये
चांदाजी री वेलः वीठू मेहा दूसलाणी

-इति साखला करमसी रूणेचा कृत श्री किसनजी री वेलि। लिखितं सावलदास सागावुत—लिखितं ग्राम-बूसी मध्ये।
किसनजी री वेलः साखला करमसी रूणेचा

-राजनगर मुनिवर निरदोष शीयल वेली प्रेम गाई रे।
स्थूलिभद्रनी शीयल वेल : वीर विजय, ढाल १८

-दर्भावति मंडन दुह विहंडन, सांभल लोढण पास।
शीलभेदः समकित गुण वर्ष, सुद तेरस सीत मास ।। १० ।।
स्थूलिभद्र कोश्या रस वेलि : माणक विजय

-श्री पाटणना संघनो लही, अति आग्रह सुविशेषि रे।

देकपुर[1], पगमनगर[2], विक्रमनगर[3] आदि के नाम आये हैं।

(२) *रचनाकार :*

स्थूल रूप से वेलिकारों की दो श्रेणियाँ हैं—

(क) चारण-कवि

(ख) संत-कवि

(क) चारण-कवि ;

चारण कवियों के दो वर्ग हैं—

(१) जन्म से चारण कवि

(२) काव्य-शैली से चारण कवि

(१) जन्म से चारण कविः– वे कवि जो जन्म से चारण हैं। करमसी, चूंडो, अखो भांणोत, दूदो विसराल, रामासांदू, बीठू मेहा दूसलांणी, सांदूमाला, आढ़ा किशना, कल्याण दास महडू, गाडण चोलो, गाडण वीरभांण आदि कवि इसी वर्ग के हैं।

(२) काव्य-शैली से चारण कवि– वे कवि जो जन्म से तो चारण नहीं हैं पर जिनकी काव्य-शैली चारणी शैली रही है। राठौड़ पृथ्वीराज, जसवन्त, महेसदास आदि कवि इस वर्ग में आते हैं।

(ख) संत-कवि :

संत कवियों के भी दो वर्ग हैं—

(१) जैन संत कवि

(२) जैनेतर संत कवि

१—इति श्री थूलिभद्र मोहण वेलि समाप्तः संवत् १६४४ वर्षे आषाढ़ वदी ४ गुरु लषितं। आगमगछे पूज्य श्री धर्मरत्नसूरि प्रभोम्य स्ववाचानाय–देकपुर मध्ये लाखितं ॥

स्थूलिभद्र मोहन वेलि : जयवंत सूरि

२—श्री–पगमनगरे ऋष श्री पांच जीवाजी तत शिष श्री धंन जाजा तत् शिष मुना बालचंद लिखत।

संग्रह वेलि :

३—इति सोमजी निर्वाण वेलि गीत संपूर्णम्। कृतं विक्रमनगरे समय सुन्दर गणिना ॥ शुभं भवतु ॥

संघपति सोमजी निर्वाण वेलि : समय सुन्दर

) जैन संत कवि : इस वर्ग के प्रधान रूप से दो भाग किये जा सकते हैं—

(अ) श्वेताम्बर जैन संत कवि

(आ) दिगम्बर जैन संत कवि

) श्वेताम्बर जैन संत कवि :— इन्हें फिर दो भागों मे बांटा जा सकता है—

तपागच्छ के कवि– लावण्य समय, जयवत सूरि, सकलचंद्र उपाध्याय, जयसोम, कांति विजय, ज्ञान उद्योत, वीर विजय, माणक विजय, उत्तम विजय आदि कवि इस वर्ग मे आते हैं।

) खरतर गच्छ के कवि– कनक, साधुकीर्ति, कनक सोम, विद्याकीर्ति, समय सुन्दर, श्रीसार, जिनराज सूरि आदि कवि इस वर्ग मे आते है।

ा) दिगम्बर जैन संत कवि— भट्टारक सकलकीर्ति, ठकुरसी, मल्लिदास, देवानंदि, जीवंधर, शांतिदास, भट्टारक धर्मदास, भट्टारक धर्मचंद, हर्षकीर्ति आदि कवि इस वर्ग मे आते है।

२) जैनेतर संत-कविः— रामदेव जी और आई माता के भक्त संत हरजी भाटी और संत सहदेव इस वर्ग के कवि है।

) *रचना शैली :*

रचना-शैली की दृष्टि से वेलि साहित्य के तीन भाग किये जा सकते है–

(क) चारणी शैली

(ख) जैन शैली

(ग) लौकिक शैली

10863

क) चारणी शैली:– इस शैली मे ऐतिहासिक और धार्मिक-पौराणिक वेलियां लिखी गई हैं। ऐतिहासिक वेलियां वीर रसात्मक है। शृंगार रस कहीं आया भी है तो वीर रस का सहायक बनकर। धार्मिक–पौराणिक वेलियां कृष्ण-रुक्मणी और शिव-शक्ति मे सम्बन्ध रखने वाली हैं। इस शैली की प्रधान विशेपता है साहित्यिक डिंगल भाषा का प्रयोग। वयणसगाई शब्दालंकार का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। अन्य अलंकारों मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का व्यवहार अधिकता से हुआ है। इस शैली की लगभग सभी वेलियां छोटे साणोर के भेद– वेलियो, सोहणो, खुड़दसाणोर– मे लिखी गई हैं।

ख) जैन शैली:–विषय विविधता की दृष्टि से इस शैली का अपना विशेष महत्व है। इस शैली में कथात्मक वेलियां लिखी गई हैं तो ऐतिहासिक भी। उपदेश देने की भावना से प्रेरित होकर वेलिकारों ने धार्मिक सिद्धान्तों की तात्विक विवेचना भी की है। इस शैली की प्रधान विशेपता है सरल-सुबोध जन साधारण की भाषा का प्रयोग। छंद भी लोक-धुन पर आधारित ढाल आदि

(ग) लौकिक शैली :– इस शैली में लिखी गई वेलियाँ लोक-साहित्य के अंतर्गत आती हैं। किसी देवी-देवता के मंदिर के प्रांगण में लम्बी-लम्बी रातों तक गाने के लिए ही रामदेव जी, आईमाता तथा उनके भक्तों के जीवन-चरित्र को इन वेलियों का वर्ण्य-विषय बनाया गया है। गायन-तत्व इस शैली की प्रमुख विशेषता है। भाषा ग्रामीण है जो आज भी जन-साधारण में बोली जाती है।

(४) रचना–स्वरूप :

रचना–स्वरूप की दृष्टि से वेलि साहित्य के दो रूप मिलते हैं–

(क) प्रबंध
(ख) मुक्तक

(क) प्रबंधः– प्रबंधात्मकता वेलि साहित्य की एक सामान्य विशेषता है। पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुक्मणी री वेलि', आढ़ा किशना कृत 'महादेव पार्वती री वेलि', जयवन्त सूरि कृत 'स्थूलिभद्र मोहन वेलि', चतुर विजय कृत 'नेम राजुल वेल' वीर विजय कृत 'स्थूली भद्रनी शीयल वेल', उत्तम विजय कृत 'नेमिश्वर स्नेह वेलि' आदि रचनाएँ प्रबन्ध की दृष्टि से खण्ड काव्य मानी जा सकती हैं। अन्य कई वेलियाँ–बलभद्रवेलि, चंदनबाला वेलि, जिन चरित्र वेलि, जम्बू-स्वामी वेलि आदि–प्रबन्ध की आत्मा को छिपाये हुए भी आकार में बहुत छोटी हैं। कुछ वेलियों में तो शीर्षक के ही साथ काव्य-स्वरूप का उल्लेख कर दिया गया है, जैसे–सव्वरथ वेलि प्रबन्ध, नेमि-राजुल बारह मासा वेल प्रबन्ध आदि।

(ख) मुक्तकः–जिन वेलियों में कथा की कोई धारा नहीं चलती है वे मुक्तक के अन्तर्गत आती हैं। ऐसी वेलियों में या तो किसी राजा-महाराजा, चक्रवर्ती, आदि की कीर्ति-गाथा गाई गई है या कोई न कोई उपदेश दिया गया है। उदैसिंघ री वेल, सूरसिंघ री वेल, अनोपसिंघ री वेल, भरत वेलि, आदि रचनाएँ प्रथम कोटि की हैं। चिहुगति वेलि, पंचेन्द्रिय वेलि, पंचगति वेलि, चार कषाय वेलि, जीव वेलड़ी, अमृत वेलिनी सज्झाय आदि रचनाएँ द्वितीय कोटि की हैं।

(५) रचना-विषय :

रचना-विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण राजस्थानी वेलि साहित्य के स्थूल रूप से तीन भाग किये जा सकते हैं–

(क) चारणी वेलि साहित्य

(ख) जैन वेलि साहित्य

ग) लौकिक वेलि साहित्य

ग्रारणी वेलि साहित्य :

ह साहित्य चारणी शैली मे लिखा गया है। इसके दो प्रधान भेद हैं–

१) ऐतिहासिक

२) धार्मिक-पौराणिक

ऐतिहासिक:– इसमें राजकुल तथा सामन्त कुल के विभिन्न वीरों का यशोगान किया गया है। यह यशोगान प्रायः युद्ध-वर्णन (देईदास जैतावत री वेल, रतनसी खींवावत री वेल, चादाजी री वेल, रायसिंघ री वेल) तथा श्रृंगार-वर्णन (राउल वेल) के रूप में हुग्रा है। 'सूरसिंघ री वेल', 'ग्रनोपसिंघ री वेल' तथा "राउरतन री वेल" में चरित्र-नायक की वंश-परम्परा का उल्लेख कर उसकी प्रशंसा की गई है।

धार्मिक-पौराणिक:–इसमे विष्णु ग्रौर शिव के प्रति भक्ति भावना प्रकट की गई है। विष्णु के रूप मे राम (रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि) ग्रौर कृष्ण (किसन रुक्मणी री वेलि, गुण चाणिक वेलि) दोनों ग्रपनाये गये है। शिव ग्रौर शक्ति के सम्बन्ध को लेकर 'महादेव पार्वती री वेलि' तथा 'त्रिपुर सुन्दरी री वेल' का सृजन किया गया। भक्ति के साथ-साथ श्रृंगार की सुन्दर योजना इस साहित्य की विशेषता है।

जैन वेलि साहित्य :

यह साहित्य जैन शैली मे लिखा गया है। इसके तीन प्रधान भेद है—

(१) ऐतिहासिक

(२) कथात्मक

(३) उपदेशात्मक

ऐतिहासिक:–इसमे वेलिकारों द्वारा ग्रपने गुरू (धर्माचार्य) का ऐतिहासिक जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है। भट्टारक धर्मदास ने भट्टारक गुणकीर्ति की (गुरु वेलि) कांति विजय ने यशो विजय की (सुजस वेलि) सकलचन्द्र ने हीर विजय सूरि की (हीर विजय सूरि देशना वेलि) वीर विजय ने शुभ विजय की (शुभ वेलि) तथा साधुकीर्ति ने जिनभद्र सूरि मे लेकर जिनचन्द्र सूरि तक

सूरि को (सव्वरच वेलि प्रबन्ध) जीवन-गाथा को अपना काव्य-विषय बनाया है। समय सुन्दर ने श्रमण होकर भी 'सोमजी निर्माण वेलि' में संघपति श्रावक सोमजी को अपनी श्रद्धांजली अर्पित की है। कनकसोम ने 'जइतपद वेलि' में खरतरगच्छ और तपागच्छ के बीच हुई ऐतिहासिक पौषध चर्चा (वि० सं० १६२५ मिगसर वदी १२, आगरा) का वर्णन किया है।

(२) कथात्मकः-इसमें जैन कथाओं को काव्य का विषय बनाया गया है। कथाएँ विशेषकर तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, सती तथा अन्य महापुरुषों से संबंधित हैं। तीर्थंकरों में ऋषभदेव (ऋषभगुण वेलि, आदिनाथ वेलि) नेमिनाथ (नेमिपरमानन्द वेलि, नेमिश्वर की वेलि, नेमिश्वर स्नेह वेलि, नेमिनाथ रस वेलि, नेमि-राजुल बारहमासा वेल प्रबन्ध, नेम-राजुल वेल) पार्श्वनाथ (पार्श्वनाथ गुण वेलि) और वर्द्धमान महावीर (वीर वर्द्धमान जिन वेलि, वीर जिन चरित्र वेलि) का आख्यान गाया गया है। चक्रवर्ती में भरत (भरत की वेलि) बलदेव में बलभद्र (बलभद्र वेलि) तथा सतियों में चंदन-बाला (चंदनबाला वेलि) का वृत्त अपनाया गया है। अन्य महापुरुषों में जम्बूस्वामी (जम्बूस्वामी वेल, प्रभव जम्बूस्वामी वेलि) बाहुबलि (लघु बाहु-बली वेलि) स्थूलिभद्र (स्थूलिभद्र मोहन वेलि, स्थूलिभद्र नों' शीयल वेल, स्थूलिभद्र कोश्या रस वेलि) रहनेमि (रहनेमि वेलि) वल्कल चीरी (वल्कल-चीर ऋषि वेलि) आदि की कथा को काव्यबद्ध किया गया है। तीर्थ व्रतादि के माहात्म्य को बतलाने के लिए 'सिद्धाचल सिद्ध वेलि' तथा 'कर्मचूर व्रत कथा वेलि' की रचना की गई है।

(३) उपदेशात्मकः-इसमें आध्यात्मिक उपदेश दिया गया है। संसार की दुखद-दशा और असारता का वर्णन कर जीव को जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए प्रेरित किया गया है। यह उपदेश इन्द्रिय (पंचेन्द्रिय वेलि) गति (चिहुंगति वेलि, पंचगति वेलि, वृहद् गर्भ वेलि, जीव वेलड़ी) लेश्या (षडलेश्या वेलि) गुणस्थान (गुणठाणा वेलि) कषाय (च्यार कषाय वेलि, क्रोध वेलि) भावना (बारह भावना वेलि) आदि का तात्विक विश्लेषण कर दिया गया है। 'अमृत वेलिनी सज्झाय', तथा छीहल कृत 'वेलि' में सामान्य रूप से मन को विषय-वासना से हटाकर आत्म-ज्ञान प्रज्वलित करने की बात कही गई है। 'प्रतिमाधिकार वेलि' में जिन प्रतिमा के पूजने की देशना दी गई है।

ौकिक वेलि साहित्य :

ह साहित्य लौकिक शैली में लिखा गया है। इसके तीन प्रधान भेद हैं-

१) ऐतिहासिक

२) जनश्रुतिपरक

३) नीतिपरक

ेतिहासिकः-इसमें रामदेवजी (रामदेव जी री वेल) आईमाता (आईमाता ी वेल) तथा उनके भक्तों-रूपादे (रूपांदे री वेल) तोलांदे (तोलांदे री ल) पीर गुमानसिंघ (पीर गुमानसिंघ री वेल), बाबा गुमान भारती बाबा गुमान भारती री वेल)-का जीवन चरित्र वर्णित है। वेलिकार वयं रामदेव जी तथा आईमाता के भक्त रहे है अतः चरित्र नायक का स्तित्व भर ऐतिहासिक है। उसके साथ जो आश्चर्य तत्व संयोजित हुए वे भक्ति-भावना की प्रभावना के द्योतक प्रतीत होते हैं।

नश्रुतिपरकः-इसमें 'रत्नादे री वेल' आती है। रत्नादे आईमाता की उपासिका है। इस वेल में आये हुए चरित्रों का ऐतिहासिक वृत्त ज्ञात नहीं ो पाया है। जनश्रुति के रूप में इनकी कथा चली आई है। अतः इस ेल का समावेश हमने जनश्रुति परक लौकिक वेलि साहित्य के अन्तर्गत िया है।

ीतिपरकः-इसमें 'अकल वेल' आती है। इसके रचयिता का पता नहीं ग पाया है। विषय और शैली को देखते हुए इसे नीतिपरक लौकिक वेलि ाहित्य में रखा जा सकता है।

ेलि साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत करते समय हमने इसी अन्तिम वर्गीकरण (रचना-विषय) को अपना आधार बनाया है।

वर्गीकरण का रेखा-चित्र इस प्रकार बनाया जा सकता है:—
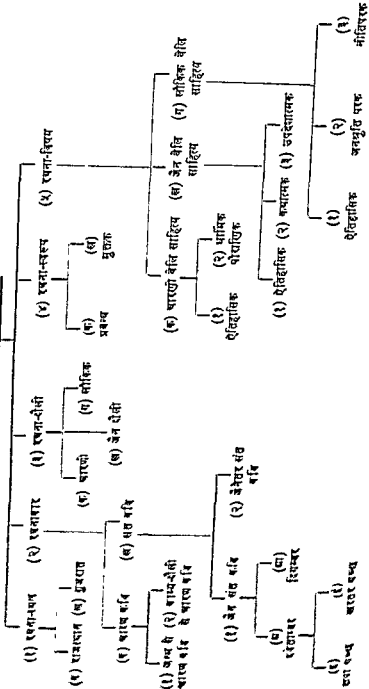
द्वितीय खण्ड

(चारणी वेलि साहित्य)

चतुर्थ अध्याय

चारणी वेलि साहित्य (ऐतिहासिक)

सामान्य-परिचय :

सम्पूर्ण चारणी वेलि साहित्य को हमने दो रूपों में बांटा है :-

(१) ऐतिहासिक
(२) धार्मिक-पौराणिक

इनमें ऐतिहासिक चारणी-वेलि साहित्य को पात्र-दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है :-

(क) सामन्त कुल के पात्र
(ख) राजकुल के पात्र

इसी प्रकार विषय की दृष्टि से भी इनके तीन भाग किये जा सकते हैं-

(क) युद्ध-वर्णन (मुख्यतः सामन्त-पात्री वेलियों मे)
(ख) कीर्ति-वर्णन (मुख्यतः राजकुल-पात्री वेलियों में)
(ग) शृंगार-वर्णन (राउल वेल मे)

इसका रेखा-चित्र इस प्रकार बन सकता है-
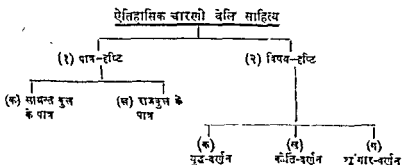
(क) सामन्त कुल के पात्र :-इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित वेलियाँ आती हैं-

(१) राउल वेल
(२) देईदास जैतावत री वेल
(३) रतनसी खीवावत री वेल
(४) चांदाजी री वेल

(ख) राजकुल के पात्र :—इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित वेलियां आती हैं—
(५) उदैसिंघ री वेल
(६) रायसिंघ री वेल
(७) राउ रतन री वेल
(८) सूरसिंघ री वेल
(९) अनोपसिंघ री वेल

सामान्य विशेषताएँ :

ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य की सामान्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं:—

(१) वीरगाथा कालीन कवियों की तरह यहां भी राजा-महाराजा-सामन्तों की वीर प्रशस्ति गाई गई है। जहां वीर गाथाकालीन कवि अतिशयोक्ति के प्रवाह में आकर ऐतिहासिकता को विस्मृत कर कथा को विरूप बना देते थे वहाँ ये वेलिकार ऐतिहासिकता की पूरी पूरी रक्षा कर पाये हैं। केवल नामों और स्थानों में ही नही बल्कि घटनाओं और तिथियों में भी ऐतिहासिकता की रक्षा हुई है। कही—कहीं राजा-महाराजाओं की वैयक्तिक जीवन संबंधी घटनाएं भी आई हैं जिनकी पुष्टि भी ख्यातों से होती है। अलौकिक तत्वों और कथानक रूढ़ियों का प्रायः आश्रय नही लिया गया है।

(२) यहां जो नायक हैं वे या तो राजा-महाराजा है या सामन्त-सरदार। वीरता उनमें कूट कूट कर भरी है। अपने देश की रक्षा के लिए अथवा स्वामि-भक्ति के निर्वाह के लिए शत्रुओं से मुकाबला करने की अमिट साध लेकर ये आगे बढ़ते हैं। विजय मिलने पर ये जितने प्रसन्न होते हैं प्राणोत्सर्ग करके भी उतने ही उल्लसित। वीर होने के साथ साथ ये दानी, उदार, विद्वान और दयालु भी होते हैं। इनकी प्रेम भावना-विलासित-का चित्रण (राउल वेल को छोड़कर) यहां नही किया गया है। यदि कहीं शृङ्गार आया भी है तो वीर भावना को उद्दीप्त करने के लिए विष-कामिनी का रूपक बनकर जैसे 'रतनसी खींवावत री वेल' में।

(३) नायक की प्रशस्ति के साथ साथ नायक की वंशावली का भी कतिपय वेलियों में उल्लेख किया गया है। 'सूरसिंघ री वेल' में जयचंद से लेकर सूरसिंह तक की राठौड़ वंशावली का और 'अनोपसिंघ री वेल' में आदिनारायण से लेकर अनोपसिंह तक की वंशावली का उल्लेख है।

(४) वीर रस अंगी-रस बनकर आया है। वीभत्स, रौद्र और भयानक वीर रस के ही सहायक हैं। 'रतनसी खीवावत री वेल' में विप-कामिनी के मांगरूपक से सुन्दर श्रृंगार की सृष्टि हुई है पर वह वीर रस को ही उद्दीप्त करता है। 'राउल वेल' में नायिकाओं के नखशिख-निरूपण का वर्णन है। यह वेल सर्व प्रथम रचना होने के कारण ही अपवाद के रूप में यहाँ सम्मिलित कर ली गई है। वैसे ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य से उसका सीधा संबंध नहीं है।

(५) इसमे जो चरित्र नायक आये हैं उनका समय सामान्यतः १७वी-१८वी शताब्दी रहा है (राउल वेल को छोड़कर)।

(६) वेलिकार प्रायः चरित्र-नायक के समकालीन रहे हैं और वे स्वयं अपने नायक (आश्रयदाता) के साथ युद्ध-क्षेत्र मे भी लड़ते रहे हैं या युद्ध के समय उपस्थित रहे हैं।

(७) प्रदेश की दृष्टि से इस साहित्य का संबंध बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर, और बूंदी राज्यों से है (राउल वेल को छोड़कर)।

(८) काव्य-रूप की दृष्टि से इन वेलियों का समाहार वर्णन-मुक्तक मे होगा। प्रबंध सी कोई कथा चलती प्रतीत नही होती।

(९) इस साहित्य की भाषा साहित्यिक राजस्थानी (डिंगल) है। उसमे ओज गुण की प्रधानता है। शब्दालंकारों मे वयण सगाई[1] का प्रयोग सर्वत्र किया गया

१—वयण-सगाई डिंगल कविता की एक प्रमुख विशेषता है। यह एक प्रकार का शब्दानुप्रास है। इसका अर्थ है वर्ण द्वारा स्थापित शब्दों की सगाई या सम्बन्ध। यह सगाई साधारणतः चरण के प्रथम और अन्तिम शब्दो की होती है पर कभी कभी अन्यान्य शब्दों की भी होती है। इस दृष्टि से वयण सगाई के दो भेद होते हैं—

(१) साधारणः—जिसमे चरण के प्रथम शब्द की चरण के अन्तिम शब्द के साथ सगाई हो।

(२) असाधारणः—जिसमे (क) चरण के प्रथम शब्द की चरण के उपान्त्य शब्द के साथ, अथवा (ख) चरण के द्वितीय शब्द की चरण के अन्तिम शब्द के साथ सगाई हो। वयणसगाई कभी एक ही वर्ण द्वारा और कभी दो भिन्न वर्णों के द्वारा स्थापित की जाती है। इस दृष्टि से इसके तीन भेद होते हैं—

(१) उत्तम या अधिकः—जब सगाई उसी वर्ण के द्वारा हो।

(२) मध्यम या समः—जब सगाई भिन्न स्वरों और अर्धस्वरों (य, व) के द्वारा हो।

(३) अधम या न्यूनः—जब सगाई भिन्न व्यंजनों के द्वारा हो।

वयणसगाई को स्थापित करने वाला वर्ण कभी अन्तिम शब्द के आदि में आता है, कभी मध्य मे और कभी अन्त में। इस दृष्टि से भी वयणसगाई के तीन भेद होते हैं—

(१) आदि-मेलः—जब वयणसगाई को स्थापित करने वाला वर्ण अन्तिम शब्द के आदि में आवे।

(२) मध्यमेलः—जब वयणसगाई का स्थापक वर्ण अन्तिम शब्द के मध्य में आवे।

(३) अन्तमेलः—जब वयणसगाई का स्थापक वर्ण अन्तिम शब्द के अन्त में आवे।

हैं। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति का विशेष प्रयोग हुआ है।

(१०) छंद की दृष्टि से छोटा साणोर[1] अपने तीन भेदों–वेलियो, सोहणो, खुड़द साणोर–में प्रयुक्त हुआ है। प्रारम्भ में सरस्वती-गणेश आदि के मङ्गलाचरण में कहीं दोहा और छप्पय भी आये हैं।

(११) इतिहास की दृष्टि से इस साहित्य का बड़ा महत्व है। आगे के पृष्ठों में उपलब्ध प्रमुख वेलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

१—छोटासाणोर चारणी गीतों में सबसे अधिक प्रसिद्ध गीत है। इसके चार मुख्य भेद हैं–

(१) वेलियोः–जिसके चारों चरणों में क्रमशः १६।१५।१६।१५। मात्राएँ हों। इसकी गति वीर या माल्हा छंद के समान होती है। अन्त में ऽ। आता है।

(२) सोहणोः–जिसके चरणों में १६।१४।१६।१४ मात्राएँ हों। इसकी गति ताटंक के समान होती है। अन्त में ऽ। नहीं आता।

(३) खुड़द साणोर (खास छोटा साणोर):–जिसके चरणों में १६।१३।१६।१३ मात्राएँ हों। इसके चरण के पूर्वार्द्ध की गति वीर या ताटंक के पूर्वार्द्ध के समान और उत्तरार्द्ध की गति धरणी चंद्रिका के समान होती है। अन्त में ।।। या ।ऽ आता है।

(४) जांगड़ाः–जिसके चरणों में १६।१२।१६।१२ मात्राएँ हों।

इसकी गति सार छंद के समान होती है। अन्त में ऽ। नहीं आता। यह स्मरणीय है कि इस गीत के प्रथम चरण में सर्वत्र २ मात्राएँ अधिक होती हैं अर्थात् प्रथम चरण १६ मात्रा के स्थान पर २+१६=१८ मात्रा का होता है। ये अतिरिक्त दो मात्राएँ चरण के प्रारम्भ में जुड़ती हैं अन्त में नहीं। ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य में छोटासाणोर का अन्तिम भेद जांगड़ो प्रयुक्त नहीं हुआ है। यहाँ जो छन्द प्रयुक्त हुआ है उसका विवेचन इस प्रकार किया जा सकता है–

विषम चरण–

प्रथम चरण – १८ मात्राएँ
तृतीय चरण – १६ मात्राएँ

समचरण–

द्वितीय चरण) (१५ मात्राएँ, अन्त में ऽ। अथवा
) – (१४ मात्राएँ, अन्त में ।ऽ अथवा
चतुर्थ चरण) (१३ मात्राएँ, अन्त में ।।। या ।ऽ

(१) राउल वेल[१]

प्रस्तुत वेल नायिकाओं के नख-शिख वर्णन से सम्बन्ध रखती है[२]। ये नायिकाएँ कलचुरि वंश के राजाओं के किसी सामन्त की थीं। कवि ने चरित्र-नायक को 'टेल्ल'[३] (त्रिकलिंग निवासी) और 'टेल्लिपुत्र'[४] कहा है। गौड़ तथा गोदावरी तट के निवासी उसके भाग्य की ईर्ष्या करते थे[५]। ग्यारहवी तथा बारहवी शती मे त्रिकलिंग त्रिपुरी के कलचुरि वंश के राजाओं के शासन मे था। कलचुरि गौड़[६] नही थे। अत: काव्य-नायक का राजा न होकर उन्ही राजाओं का सामन्त होना अधिक सम्भव है[७]।

१—(क) मूल पाठ मे वेल नाम आया है–

रोडैं राउर वेल वखाणी। पुणु तहं भासहं जइसी जाणी ।।पंक्ति ४६।।

(ख) यह वेलि एक शिला पर अङ्कित है जो बम्बई के प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम मे विद्यमान है। यह लेख मालवा के धार नामक स्थान से प्राप्त हुआ था। यह काले पत्थर पर है और उक्त म्यूजियम के पुरातत्व विभाग का नवा प्रदर्शितव्य (एक्जिबिट) है। इसका आकार ४५"×३३" है। वर्तमान रूप में यह भग्नावस्था में है। लेख की प्रथम पंक्ति सर्वथा अपाठ्य हो गई है। अन्तिम पंक्ति का अधिकांश भाग भी अपाठ्य है। बीच बीच मे कुछ स्थानों पर भी पत्थर घिस गया है। सर्व प्रथम इसका प्रकाशन डा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी ने भारतीय विद्या (भाग १७ अङ्क ३–४ पृ० १३०–१४६) मे कराया। तत्पश्चात डा० माताप्रसाद गुप्त ने "हिन्दी अनुशीलन" के धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक (वर्ष १३: अङ्क १–२: जनवरी–जून, १९६०: पृ० २१–३८) मे इसे प्रकाशित किया। पाठ और अर्थ के सम्बन्ध मे दोनों मे बहुत मतभेद है। प्रस्तुत विवेचन डा० गुप्त के पाठ के आधार पर किया गया है।

२—डा० हरिवंश कोछड ने इसमें राघे रावल के वंशज राजकुमार के सौन्दर्य का वर्णन होना लिखा है (अपभ्रंश साहित्य: पृ० ३५: पाद टिप्पणी)

३—एहा वेहु सुहावा टेल्ल (१८)

४—केहा टेल्लिपुतु तुहु भाखहि (१५)

५—गौडहो गोल्लाहो बोलउ जो जमु भावइ (४१)

६—कवि ने नायक को गौड़ कहा है—

(क) गौड तुहुं एकु को पनु भउर वर (२८)

(ख) गोड़ सुआणु स तइं कत दीठे (१९)

७—डा० माताप्रसाद गुप्त : हिन्दी अनुशीलन : धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक पृ० २३

है। अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति का विशे
प्रयोग हुआ है।

(१०) छंद की दृष्टि से छोटा साणोर[1] अपने तीन भेदों–वेलियो, सोहणो, खुड़
साणोर–में प्रयुक्त हुआ है। प्रारम्भ में सरस्वती-गणेश आदि के मङ्गलाचरण
में कहीं दोहा और छप्पय भी आये हैं।

(११) इतिहास की दृष्टि से इस साहित्य का बड़ा महत्व है। आगे के पृष्ठों में
उपलब्ध प्रमुख वेलियों का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

१—छोटासाणोर चारणी गीतों मे सबसे अधिक प्रसिद्ध गीत है। इसके चार मुख्य भेद हैं–

(१) वेलिलोः–जिसके चारो चरणो मे क्रमशः १६।१५।१६।१५। मात्राएँ हो। इसकी गति वीर या आल्हा छंद के समान होती है। अन्त मे ऽ। आता है।

(२) सोहणोः–जिसके चरणो मे १६।१४।१६।१४ मात्राएँ हो। इसकी गति ताटक के समान होती है। अन्त मे ऽ। नही आता।

(३) खुडद साणोर (खास छोटा साणोर):–जिसके चरणो मे १६।१३।१६।१३ मात्राएँ हो। इसके चरण के पूर्वार्द्ध की गति वीर या ताटक के पूर्वार्द्ध के समान और उत्तरार्द्ध की गति धरणी चंडिका के समान होती है। अन्त मे ।।। या ।ऽ आता है।

(४) जागड़ोः–जिसके चरणो मे १६।१२।१६।१२ मात्राएँ हो।

इसकी गति सार छंद के समान होती है। अन्त मे ऽ। नही आता। यह स्मरणीय है कि इस गीत के प्रथम चरण मे सर्वत्र २ मात्राएँ अधिक होती हैं अर्थात् प्रथम चरण १६ मात्रा के स्थान पर २+१६=१८ मात्रा का होता है। ये अतिरिक्त दो मात्राएँ चरण के आरम्भ मे जुड़ती हैं अन्त मे नही। ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य मे छोटासाणोर का अन्तिम भेद जागड़ो प्रयुक्त नही हुआ है। यहाँ जो छन्द व्यवहृत हुआ है उसका विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है–

विषम चरण–

प्रथम चरण – १८ मात्राएँ
तृतीय चरण – १६ मात्राएँ

समचरण–

द्वितीय चरण) (१५ मात्राएँ, अन्त मे ऽ। अथवा
) – (१४ मात्राएँ, अन्त में ।ऽ अथवा
चतुर्थ चरण) (१३ मात्राएँ, अन्त मे ।।। या ।ऽ

(१) राउल वेल[1]

प्रस्तुत वेल नायिकाओं के नख-शिख वर्णन से सम्बन्ध रखती है[2]। ये नायिकाएँ कलचुरि वंश के राजाओं के किसी सामन्त की थीं। कवि ने चरित्र-नायक को 'टेल्ल'[3] (त्रिकलिंग निवासी) और 'टेल्लिपुत्र'[4] कहा है। गौड़ तथा गोदावरी तट के निवासी उसके भाग्य की ईर्ष्या करते थे[5]। ग्यारहवी तथा बारहवी शती मे त्रिकलिंग त्रिपुरी के कलचुरि वंश के राजाओं के शासन मे था। कलचुरि गौड़[6] नही थे। अतः काव्य-नायक का राजा न होकर उन्हीं राजाओं का सामन्त होना अधिक सम्भव है[7]।

१—(क) मूल पाठ मे वेल नाम आया है–

रोडँ राउर वेल वखाणी। पुणु तहं भासहं जइसी जाणी ।।पंक्ति ४६।।

(ख) यह वेलि एक शिला पर अङ्कित है जो बम्बई के प्रिंस ऑफ वेल्स म्यूजियम में विद्यमान है। यह लेख मालवा के धार नामक स्थान से प्राप्त हुआ था। यह काले पत्थर पर है और उक्त म्यूजियम के पुरातत्व विभाग का नवा प्रदर्शितव्य (एक्जिबिट) है। इसका आकार ४५"×३३" है। वर्तमान रूप मे यह भग्नावस्था मे है। लेख की प्रथम पंक्ति सर्वथा अपाठ्य हो गई है। अन्तिम पंक्ति का अधिकाश भाग भी अपाठ्य है। बीच बीच मे कुछ स्थानो पर भी पत्थर घिस गया है। सर्व प्रथम इसका प्रकाशन डा० हरिवल्लभ चूनीलाल भायाणी ने भारतीय विद्या (भाग १७ अङ्क ३–४ पृ० १३०–१४६) मे कराया। तत्पश्चात डा० माताप्रसाद गुप्त ने "हिन्दी अनुशीलन" के धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक (वर्ष १३: अङ्क १–२: जनवरी–जून, १९६०: पृ० २१–३८) मे इसे प्रकाशित किया। पाठ और अर्थ के सम्बन्ध में दोनों में बहुत मतभेद है। प्रस्तुत विवेचन डा० गुप्त के पाठ के आधार पर किया गया है।

२—डा० हरिवंश कोछड़ ने इसमे राधे रावल के वंशज राजकुमार के सौन्दर्य का वर्णन होना लिखा है (अपभ्रंश साहित्य: पृ० ३५: पाद टिप्पणी)

३—एहा वेहु सुहावा टेल्स (१८)

४—केहा टेल्लिपुत्तु तुहु भाखहि (१५)

५—गौडहो गोल्लाहो बोलउ जो जनु भावइ (४१)

६—कवि ने नायक को गौड़ कहा है—

(क) गौड़ तुहुं एकु को पनु अउर वर (२८)

(ख) गौड़ सुभाणु स तइं कत दीठे (१९)

७—डा० माताप्रसाद गुप्त : हिन्दी अनुशीलन : धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक पृ० २३

कवि परिचय :

कवि ने वेल के अन्त में अपना नामोल्लेख किया है।[1] इसके अनुसार उसका नाम रोडो (रोडा) है। यह कौन था? इस सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं होता। शिलालेख में इसने अपने को 'वंडिरा'[2] (∠वंदी) कहा है। संभव है यह चरित्र-नायक का वंदी-जन हो।

रचना-काल :

इसका समय ११वीं शती के लगभग है।[3]

रचना-विषय :

प्रस्तुत प्राप्य वेल ४६ पंक्तियों की है। अनुमान है प्रारम्भ में कुछ पंक्तियाँ और रही होंगी। इसमें कुल ६ नायिकाओं[4] का नख-शिख वर्णन है जो सिर से प्रारम्भ होकर पैरों तक चलता है। ये नायिकाएँ नायक की नव-विवाहित पत्नियाँ या रखेलियाँ हैं।

(१) पहला नख-शिख वर्णन:—इसका वर्णन १ से ५ तक की पंक्तियों में हुआ है। प्रारम्भ की पंक्तियों तथा कुछ अन्य अंशों के खंडित हो जाने के कारण नायिका का पता नहीं चलता। आँखों से पूर्व का अंश भी नहीं है। नायिका की आँखों में तरल काजल दीखता है।[5] अधर के ताम्बूल द्वारा उसका मन लाल हो गया है।[6] उसके गले में जाल कंठो शोभा देती है।[7] रक्तवर्णीय सुन्दर कंचुक उसके अंगों से कसकर बंधा हुआ है।[8] आभरण रहित होने पर भी उसके पैरों की विशिष्ट शोभा है।[9] ऐसी बेटी जिस घर में आवे उस घर की समानता कौन कर सकता है?[10]

१—रोडॅ राउल वेल वखाणी (४६)

२—(क) वुढिरे वंडिरो आपणी हारसि (२२)
   (ख) गु जो देखि वंडिरो को न मूंझइ जगु (२४)
   (ग) कांठी वेंही वंडिरो मालु (२६)

३—इसी पुस्तक के प्रथम अध्याय का परिशिष्ट : पृ० २३

४—डा० भायाणी ने लेख की अन्तिम पंक्ति के 'आठहं मासहं' शब्दों के आधार पर इसमें आठ प्रदेशों की स्त्रियों के नख-शिख वर्णन की संभावना प्रकट की है।
भारतीय विद्या : भाग १७ अंक ३-४, पृ० १३१

५—आखिहिं काजलु तरल ढ्दा-जई (२)

६—अहर तंबोलें मणु मणु रातउ (२)

७—जाना काठी गलइ सुहावइ (३)

८—रातऊ कंचुआ अति सुठु चागउ। गाढउ वाघइ....अंगउ (४)

९—विणु आहरणें जां पादेन्हू मोह (५)

१०—अइसी वेटिना जा घरू आवइ। ताहि कि तूलिम्ब कोऊ पावइ (५)

(२) दूसरा नख-शिख वर्णनः—इसका वर्णन ५ से १० पंक्तियों में हुआ है। नायिका कोई हूणि है।[1] उसने वलि हुए सर्पों को बालों के रूप में बांध रखा है।[2] कंठ में कंठी पहन रखी है जो लोक की दृष्टि में मण्डित होती और उन्हें क्षुब्ध करती है।[3] उसका यौवन उभर रहा है।[4] पैरों में पाद-हंसिका है जिसने उसके अंगों में लावण्य भर दिया है।[5]

(३) तीसरा नख-शिख वर्णनः—इसका वर्णन १० से १४ पंक्तियों में हुआ है। नायिका राउल[6] नाम की क्षत्रिय कन्या प्रतीत होती है। उसकी आँखों में अल्प अंजन आंजा गया है।[7] कानों में करडिम (कर पत्रिका-आरे के समान दांतदार एक कर्णाभरण) और ताडकी (एक प्रकार का कर्णाभरण) पहन रखी है।[8] गले में सोझली कंठी है जो काम की शृंखला सी लगती है।[9] लम्बा रक्त वर्णीय कंचुक जो उसने धारण कर रखा है वह सबको उन्मत्त करने वाला है।[10] उसके पीन पयोधर तरुणों को देखते ही बावला कर देते हैं।[11] उसकी बाहें मल्ल-अवष्टम्भन स्तम्भ के समान लम्बी हैं।[12] लहराता हुआ उसका परिधान सबको मोहित करने वाला है।[13] नूपुरों की ध्वनि कानों को सुहाती है।[14] हंस की गति उसकी गति से आधी भी नहीं है।[15] जिस घर में वह अवलग्ना प्रवेश करती है वह घर (सचमुच) राउल (राजभवन)

१—(क) का ...तु मण हूणि तो... ते आपुली गम्भारिम्व आवइ (१०)

(ख) इन समय हूण कन्याओं से विवाह होते थे। प्रसिद्ध कलचुरि शासक कर्ण (लक्ष्मीकर्ण) का उत्तराधिकारी और पुत्र यश: कर्ण उसकी हूण रानी आवल्ल देवी से था (दे० इपिग्राफिया इंडिका, भाग २, पृ० ४ तथा भाग १२ पृ० २१२)

२—वलि सहि वायलि अहि जे बाणिम्ब (६)

३—कंचि कांठी कांठिहिं सोहइ। लोयहु को दिठि माझ वि सोहइ (७)

४—आविनु वालहा दड गाता। आनिनु जावणु ऊरू धाता (८)

५—पायहिं पाइसिया विरू वाणा। लाय वि मानिक माझी काणा (६)

६—सा उंडउ जो राउर सोहइ (११)

७—कहएउ आखिहिं काजलु दीनउ। जो जाणइ सो कइ नउ वानउ (११)

८—करडिम्ब कनु काकडियउ कानहिं। काइं करेउ सोहहिं कानहिं (११)

६—गलइ पुहु की भावइ? कठी। कामकणी साहर इन ...(१२)

१०—लाबक लोवड कानु राउ। कोपुन देवनु कर हउ मावउ (१२)

११—थणहिं सो ऊंचउ बिनउ राउल। तरुणा जोअन्तउ करइ सो बाउल (१२)

१२—बाहहि कउ सो ...रउ सोहइ (१३)

१३—लहिरणु कापडें पर सोहइ। राउल देवनु सउ जणु माहइ (१३)

१४—अंपि नेउरायो कान सुहावइ (१४)

१५—हास दइ जा चालति अद्धी। सा चावर दहु राउल वइसो (१४)

जैसा दीखता है।[१] ऐसी सुन्दरी नायिका का मन्गण हाथ समस्त क्षत्रियजन चाहते हैं।[२]

(४) चौथा नख-शिख वर्णन :— इसका वर्णन १५ से १९ पंक्तियों में हुआ है। नायिका कोई टविकणी[३] है। दिन के लिए निर्मित चन्द्रमा का सवर्ण कोई पदार्थ उसके मुख की शोभा के एक भाग को भी प्राप्त नहीं कर सकता।[४] उसके दोनों गण्ड कम्पडियों (एक प्रकार का कर्णाभरण) से अति शोभा देते हैं जिसके कारण अन्य मंडन सद्यः ही दग्ध चुके हैं।[५] कंठ में जलारी (जल्लार देश की) कंठी शोभित है।[६]अर्द्धनग्न स्तनों पर कंचुक है जो कामदेव का कवच लगता है।[७]कंचुक के बीच में जो स्तन दिखाई पड़ते हैं उन्हें देखकर लोग सब वस्तुओं को उत्थापित करते हैं।[८]गोरे अंग पर दोरंगा कंचुक ऐसा लगता है मानों संध्या और ज्योत्स्ना का संगम हुआ हो।[९] राजभवन में प्रवेश करती हुई ऐसी नायिका को लोग आँखें मलमल कर देखते हैं।[१०]

(५) पाँचवा नख-शिख वर्णनः— इसका वर्णन १९ से २८ पंक्तियों में हुआ है। इसकी नायिका कोई गौड़ी है।[११]बंधनों से बंधे हुए केश उसके मुख पर लोल हो रहे हैं।[१२]खोंप के ऊपर बंधा हुआ अमेअल (शेखरक-जूड़े ऊपर बांधी जाने वाली माला) इस प्रकार सुशोभित होता है मानों रवि राहु के द्वारा ग्रसित कर लिया हो।[१३]उसकी दृष्टि के फूल को देखकर तरुण (मृग) शावक मूच्छित हो जाते है,[१४]तारे हारकर रजनी-मुख गिने जाने लगे हैं।[१५]

१—जहिं घरे अइसी श्रोलगं पइसइ। तं घर राउलु जइसउ दीसइ (१४)
२—हार्थाहि माठि भउ सुठु सोहहिं। थु खता जगु सयनइ चाहहिं (१३)
३—एही टविकणि पइसति सोहइ (१८)
४—चंद सवाणा टी दीहा किग्पइ। जें मुहु एक्के एरि मंडिज्जइ (१६)
५—कंम्पडि ग्रहि सोहहि दुइ गन्न। मंडन संडन डहि परे अन्न (१६)
६—कंठी कंठि जलाली सोहइ। एहा नेहा सउ जगु मोहइ (१६)
७—प्रावूधाडें थणहिज कंच्चू। सो-सम्राहु प्रसंग हो नं-(१७)
८—कंच्चू निच्चहिं जे थण दीसहिं। ते निहालि सव वत्थु उवीसहिं (१७)
९—गोरइ अंगि वेरंगा कंचू। संभहि जोम्हहिनं संगउंहू (१७)
१०—एही टविकणि पइसति सोहइ। सा निहालि जगु मलमल चाहइ (१८)
११—अइसी गउडिअ राउलें पइसइ (२७)
१२—डेंग्हु वाघेन्हु वैसं ज लुडहिन्ग (२०)
१३—खोंपहि ऊपरं अम्मेमल कइसे। रवि जणि राहूं घे ग्रले जइसे (२०)
१४—दिठहुल फूल अम्हा-म्माभवि। ते देखि तरुणे सावइ मूभवि (२०)
१५—तारे मण हारे। रयणि मुहां जगु गणि ए तारे (२१)

उसकी सुन्दर भौंहें कामदेव के धनुष की ग्रहणी सी लगती है।[1] वर्त्तुल तिलक मानों मुख-चंद्र की अवलम्नता में नमित हुआ हो।[2] कानों में पहना हुआ ताडरपत्ता (पत्ते के आकार का एक कर्णाभरण) शुद्धि (निर्मलता) के पत्ते की तरह सुशोभित है।[3] मुग्रा से रंगे हुए रक्तवर्णी दांत ग्रात्त कर्पादिका-पुत्र की तरह मत्त हो रहे है।[4] कंठ में पहना हुआ लड़ों का तागा ऐसा लगता है मानो कामदेव के हृदय मे ब्रह्मोत्पल लगा हो।[5] गले मे तारिकाग्रों (नवग्रहों) का जो हार है उसको देखकर अन्य प्रकार के हारो का अपहार (त्याग) हो गया है।[6] भारी स्तनों के बीच जो सूत का हार है वह मानों स्थविर (वृद्ध) कुज (मंगल) शोभित हो।[7] पारडी (परार्द्ध-एक प्रकार का बहुत महीन मलमल) को ओट मे उसका भारी स्तन शरद के बादल के बीच चन्द्रमा की तरह लगता है।[8] सूत का हार रोमावली से इस प्रकार मिल गया है मानों गंगा का जल यमुना के जल से मिल गया हो।[9] बाहों मे जो चन्द्रहाई पहनी है वह दूसरे चांद की तरह लगती है।[10] जो श्वेत परिधान उसने पहन रखा है वह ऐसा लगता है मानो मुख-चन्द्र ने ज्योत्स्ना फैलाई हो।[11] ऐसी नायिका जब राजभवन मे प्रवेश करती है तब वह राज-भवन लक्ष्मी के द्वारा मंडित दीखता है।[12]

(६) छठा नख-शिख वर्णन:- इसका वर्णन २८ से ४६ पंक्तियों में हुआ है। नायिका कोई मालवीया[13] प्रतीत होती है। जब उसकी सुधि आती है तब कामदेव भी अपना हथियार भूल जाता है, इस डर से कि यहाँ हमारी (हमारे शरीर की) ही भागी खोप बन जाएगी[14]। खोंप के ऊपर जो सोलड़ा

१—भउही तु रूरी देखु वर्व्वर वइमी। ताहि काम्वकरी धणु ग्रउणी जइसी (२१)
२—वेट्टुला टीका वेहर भावइ। मुह ससि ग्रालगंचा-नावइ (२२)
३—कानन्हु पहिल ताडर पात। जणु सोहइ एवं सोहि रे पात (२२)
४—मूग्रा रागे दसण रे राते। ग्राट कुडी पुत्र त ···माते (२३)
५—काठहि माडणु····लर तागु। सो लहि मयण हिए वंभोग्रल लागु (२३)
६—म्ब तु तरी ग्रन्हु कर····हारू। सो देखि हारन्हु भउ ग्रवहारू (२४)
७—थणहर माझें जो हारू सुनेरउ। सोहन्हु··· न्हु सोए कुज टेरउ (२४)
८—पारडी ग्र.तरे थण हरू वइसउ। सरय जलय बिच चादा जइसउ (२५)
९—सूतेर हारू रोमावलि कन्निग्रउ। जणि गागहि जलु जउणहि मिलिग्रउ (२५)
१०—पैन्हि ग्रलवाही जे चंदहाई। बीजेर चादहि ते चंदहाई (२५)
११—धवलर कापड ग्रोढि ग्रल कइसे। मुह ससि जोन्ह पसारेल जइसे (२७)
१२—ग्रइपी गउडिग्र राउलें पइसइ। सो जगु लाछि माडेउ दीसइ (२७)
१३—ज पुणु मालवीउ वे सुहि ग्रावंतु २८
१४—काम्वदेउ जाउं नुं ग्रापणाह हथिग्रारहु भूलइ
इहां ग्रन्हार इ दु मगी खोप करि उभइ (२८–२९)

दिया हुआ है वह ऐसा लगता है मानों सिंदूरिका के राजा-देश मे कामदेव कर नमित कर रहा हो[१]। उन्नत ललाट अष्टमी के चांद की तरह लगता है[२]। भौंहें सुन्दर हैं। उनकी आड़ में आंखों का गुण (वैशिष्ट्य) ऐसा लगता है मानों कामदेव ने धनुष चढ़ाया हो[३]। आंखों की फांकें तीखी, उज्ज्वल और तरल हैं। ऐसा (आंखों का) हथियार पाकर कामदेव जगत को क्या करेगा वह बृहस्पति को भी नहीं सूझता[४]? दोनों कपोल ऐसे दीखते हैं मानों विधाता ने पूर्णिमा के चांद को फाड़ कर हरिण को अलग डाल दिया है[५]। कानों मे पहने हुए धडिवन (झुमके?) ऐसे लगते हैं मानों पूर्णिमा के दो चांद उनकी कोड़ मे सुहाते हो[६]। गले मे बंधी हुई एकावली इस प्रकार भाती है मानों मुखचंद्र की सेवा मे आकर सत्ताइस नक्षत्र-बालाएँ नमस्कार कर रही हों[७]। उनके ऊंचे, वत्तु'ल और पीन स्तन ऐसे लगते हैं जैसे सोने के मङ्गल-कलश या कामदेव के घट हों जो जल की ओट मे उनकी शोभा पाते हों[८]। त्रिवली को रोमराजि ऐसी लगती है मानों शोभा के दो आधे-आधे पक्ष युद्ध करते हों और वह वहां उस युद्ध का निवारण करती हो[९]। मोती का जो एक हार है उसकी शोभा के आगे यह संसार

१—खोटहिं ऊपरि सोनइहइ दीनउ वानु तें किमउ भावइ
जिमउ सिंदूरियउइ आयसु कामदेव ह करउ नावइ (२९)

२—ताकु रतु भर उभु पडागु न साम्हउं न ऊंचउ
सो देखिउ आठमिहिं करउ चाडु इमउ भावइ (३०)

३—भउंह हु रं दुइ तु [illegible] हि माम्ही हि पाडाह पाखिहिं करइ गुणइ
जइमउ काम्ह करउ धणु हु चडाविउ (३०-३१)

४—तीखि धारा तीखा ऊजला तरला ते आनति जीभ सुन्दर।
इहनउ हथियार पामिउ कामदेउ जग हो काइं करिसी
इसमउ बृहस्पति ही नउ सूझइ (३२)

५—पूनि वंदि करउ पाडु फाडिउ हरिणु पा नइ पाडिउ (बा)
दुइ कपोल दिसा दिसा।

६—नेउर ताइम्हिना पडिहन किमा कानंबि
जणु पूनिमहिं पूनिमहिं चांद वाद काकइ तहिं करउ सुहावइ (३४)

७—एकावली [illegible] कंठ [illegible] नइरइ सो भावइ
जणु मुखचन्द्रइ नक्षत्र तारा सत्तावीस
[illegible] आई नमस्कार करइ (३५)

८—थणु र पडु [illegible] ऊंचा वटुला पीना
सोवनइर कल मङ्गल कलस किमा—हि
काम्हि कामदेवह कणइ घड़ु
आरि कोइ तास कोइ करहिं (३८-३९)

९—त्रिवलिहिं रोमराजि तणउ पक्ष—पदइ।
ब कोइहिं करइ ताइ दुइ पखइ झूझइ निवारउ करइ (३८)

प्रसार लगता है[1]। उसकी जवार्ध (जौ के आकार की सोने की गुरियों की वह माला जो आधी अर्थात् गले में केवल सामने की ओर रहती है) कामद्रुम के आलवाल जैसी लगती है[2]। पैरों में रक्तोत्पल को जीत लिया है जो लक्ष्मी का निवास कहा जाता है[3]। उसके सौन्दर्य का क्या वर्णन किया जाय? कवि की बुद्धि कूड़ी (अपटु) और वानिनी (व्यवसायिनी) है[4]।

कला पक्ष :

प्रस्तुत वेल का कलापक्ष अत्यन्त निखरा हुआ है। भाषा अलंकृत है। उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रांति, संदेह आदि अलंकार पद-पद पर प्रयुक्त हुए हैं। नख-शिख निरूपण में सौन्दर्य वर्णन करते समय कवि ने जो कल्पनाएँ की हैं वे अनूठी बन पड़ी हैं।

यह वेल उत्तर अपभ्रंश काल की रचना है। इसकी भाषा को लेकर विद्वान एक मत नहीं हैं। डा० माताप्रसाद गुप्त ने इसकी भाषा को पुरानी दक्षिण कोसली कहा है[5]। डा० भायाणी के अनुसार ये आठ नख-शिख वर्णन हैं जो अपभ्रंशोत्तर आठ बोलियों के विशिष्ट तत्वों से सम्बन्धित रहे होंगे[6] और लेख में जो छः नख-शिख बचे हैं, वे क्रमशः अवधी, मराठी, पश्चिमी हिन्दी, पंजाबी तथा मालवी के पूर्वरूपों में लिखे गये हैं[7]। कवि के अनुसार जैसी भाषा उसने जानी थी (तंइ भासइं जइसी जाणी) उसी में यह वेल कही गई है।

१—मोतीहुं करइ एकु जि हारु
स सोहु देखतहुं मइसउ भाइ
मध सारउभ""उहु मउ एहु संसारु (३६)

२—अराध छाहु काम्हद्रुमह आलवालु जइसी भावइ (४२)

३—पायहिं रतूपल""जिया
जे लोयहिं लाछिहि करउ निवासु भणिउ (४२)

४—सोइ"" इउ उपमान करहुं।
बुधि मारणी पाउल कूडी वानणी (३५)

५—हिन्दी अनुशीलन : धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक : पृ० २३

६—भारतीय विद्या : पृ० ११०-११-१२ (भाग १७-३-४)

७—वही : पृ० ११८

(२) देईदास जैतावत री वेल[1]

प्रस्तुत वेल बगड़ी के सामन्त देवीदास से संबंध रखती है। ये जोधपुर नरेश राव मालदेव के सेनापति पृथ्वीराज जैतावत के सहोदर कनिष्ठ भ्राता थे। ये बड़े वीर और साहसी थे। सं० १६१६ से इन्होंने बिहारी पठानों को पराजित कर जालोर पर अधिकार किया था। बदनोर पर भी इन्होंने विजय पाई थी। 'अकबर नामा' के अनुसार मेड़ते पर मिर्जा शरफुद्दीन हुसैन की अध्यक्षता में भेजी गई मुगल सेना के साथ युद्ध करते हुए इनका प्राणान्त हुआ।

कवि-परिचय :

प्रस्तुत वेल के रचयिता बारहठ अखौ भांणोत हैं। जैसा कि वेलि के शीर्षक से पता चलता है 'वेलि राइ देईदास जैतावत री बारहठ अखौ भांणोत कहै'। ये रोहड़िया शाखा के चारण तथा बादशाह अकबर के समकालीन थे। इनके पिता का नाम भाना था (जिससे ये भाणोत कहलाये) जो जोधपुर के राव मालदेव के कृपा-पात्र थे। पाँच वर्ष की अवस्था में ही अखा के माता-पिता चल बसे। कहा जाता है कि तब मालदेव की राणी भाली स्वरूपदे ने इन्हें पाला पोसा था। मालदेव के पुत्र उदयसिंह इनके हमजोली थे और ये प्रायः उन्ही के साथ रहा करते थे। संवत १६४३ में जोधपुर के तत्कालीन राजा उदयसिंह ने चारणों पर क्रोधकर समस्त चारण जाति को देश निकाला दिया था। इसके प्रतिवाद स्वरूप चारणों ने आउए ठिकाने में धरना दिया। इन्ही धरना देने वालों से सुलह का मार्ग निकालने के लिए उदयसिंह ने अखा को भेजा। अखाजी सुलह कराने की बजाय स्वयं धरने में सम्मिलित हो गये। इस पर उदयसिंह ने इन्हें कहलवाया कि इससे अच्छा तो कटार खाकर मर जाना था। इन्होंने ऐसा ही किया। कटार खाकर प्राण त्याग दिये। इनके वंशजों के मारवाड़ में बहुत से गाँव हैं जिनमें मूंदियाड़ का ठाकुर इन्ही का वंशज है।

रचना-काल :

वेलि में रचना-काल का संकेत नही है। वि० सं० १६१९ में देईदास जैतावत शरफुद्दीन के नेतृत्व में लड़ने वाली मुगल सेना से मेड़ता की सुरक्षा करते हुए मारे

१—(क) मूल पाठ में वेलि या वेल नाम नही आया है। शीर्षक दिया है 'वेलि राइ देईदास जैतावत री, बारहठ अखौ भाणोत कहै'।

(ख) प्रति-परिचयः— इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर में गुटका नं० १३६ (८) में सुरक्षित है। यह १८१-८४ पत्रों पर लिखी गई है। इसका आकार ७½"×८½" है। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में २१-२२ अक्षर हैं।

(ग) वर्तमान लेखक ने इसे प्रकाशित किया है: वरदा : वर्ष ३ अंक ४ पृ० ३०-३१

गये।[1] इस आधार पर डा० हीरालाल माहेश्वरी ने प्रस्तुत वेल का रचना-काल सं० १६२० के आसपास माना है।[2] वेलि को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसमें हरमाड़ा युद्ध[3] (वि० सं० १६१३ फाल्गुन वदी ६) के उपरान्त की घटनाओं का वर्णन न होकर देईदास द्वारा राणा उदयसिंह, राव कल्याणमल तथा जयमल वीरमदेवोत की संयुक्त सेनाओं को भगा देने का ही आलेखन है। अतः इस वेलि की रचना सं० १६१३ में युद्ध के उपरान्त शीघ्र ही हुई होगी।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि २३ छंदों की छोटी सी रचना है। इसमें बगड़ी के सामंत देवीदास जैतावत के युद्ध-कौशल एवं वीर-व्यक्तित्व को व्यंजित किया गया है। ये राव मालदेव के सेनापति पृथ्वीराज जैतावत के कनिष्ठ भ्राता थे। वि० सं० १६११ के वैशाख में जब राव मालदेव ने जयमल से बदला लेने के लिए मेड़ते पर चढ़ाई की तब पृथ्वीराज जैतावत उनके साथ थे। युद्ध में पराजित होकर भागते हुए मालदेव का जयमल ने पीछा किया तब अपने स्वामी (मालदेव) के प्राणों की रक्षा करने के लिए वापिस फिर कर पृथ्वीराज ने जयमल से युद्ध किया और मृत्यु को प्राप्त हुए।[4]

इस युद्ध के थोड़े ही दिनों बाद (वि० सं० १६११ आषाढ़ कृष्णा १३) काव्य-नायक देवीदास जैतावत ने अपने ज्येष्ठ भ्राता पृथ्वीराज का बदला लेने के लिए मालदेव के पुत्र चंद्रसेन के साथ मिलकर जयमल पर (मेड़ते पर) आक्रमण कर दिया।[5] कई दिनों तक घमासान युद्ध होता रहा। अन्त में (जयमल के महाराणा उदयसिंह के साथ विवाह में बीकानेर जाने के कारण) मेड़ते पर जोधपुर का अधिकार हो गया।

देवीदास बड़े साहसी और वीर पुरुष थे। उन्होंने मालदेव की तरफ से हाजीखां को सहायता देकर वि० सं० १६१३ में हरमाड़ा गांव के पास उदयपुर के

१—मारवाड़ का मूल इतिहास : आसोपा : पृ० १३६-४०

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १२०

३—उदयपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड : गौरीशंकर हीराचंद ओझा पृ० ४०८

४—(क) दिढ़ पीथल मरण मेड़तै देवा, छाडरि रावा तणा छल।
तै तिण दी जैता सी तणो भ्रम, बल छूटै बाधियो बल ॥ ८ ॥

(ख) जयमल वंश प्रकाश : बदनोराधीश ठाकुर गोपालसिंह राठौड़ मेड़तियाः पृ० ११८-११६

५—(क) माडाया जुतै पृथीमल मागिए, वसुधा ठाइ साचा वाखाण।
माल कलोधर हीयौ मेड़तै, तैं माल दे तणा मेल्हाण ॥१२॥

(ख) जयमल वंश प्रकाश : गोपालसिंह राठौड़, मेड़तिया : पृ० ११८-१६

महाराणा उदयसिंह, बीकानेर के महाराजा राव कल्याणमल और मेड़ता नरेश जयमल की सम्मिलित सेना को परास्त किया।[1]

देवीदास का व्यक्तित्व बड़ा जबरदस्त था। उसने जालोर, बदनोर आदि पर भी अधिकार किया था। कवि ने बार बार उसे 'अखैराज अभिनवा'[2] कहा है। उसे देखकर जैतमो का भ्रम हो जाता है। वह दल का शृंगार और देश तथा वंश का दीपक है। उसके जन्म लेते ही परिवार में आशा बंध गई और शत्रुओं में आशंका फैल गई। बादशाही सेना के लिए वह उस सिंह के समान है जिस पर रौद्ररूपी पाखर पड़ी है। कवि ने ऐतिहासिकता की पूरी रक्षा की है।

कलापक्ष :

कवि की भाषा विशुद्ध डिंगल है। वयणसगाई शब्दालंकार सर्वत्र आया है। साधारण और असाधारण दोनों प्रकार के उदाहरण देखिये :—

साधारण :

(१) दल सिणगार देस वंस दीपक (१)

(२) गयण तणा कुण नखित गिणे (२३)

(३) माल कलोधर अमली मांण (१७)

असाधारण :

(१) तो जनमियो देद जडवार (२)

(२) मिलतां देद हुवो मुह रावत (७)

(३) ते सांकोडि घातिया सिगळे (१०)

अन्य अलंकार भी यथास्थान आये हैं। कुछ उदाहरण देखिये :—

यमक :

आमवधी आपणां तणेउर, (२)

आसंक सत्रांवधी ऊदार। (२)

रूपक :

पाखर-रौद्र लगें पतिसाहो (४)

१—(क) मिलि जैमलि, रांण, कल्यांण मेड़ते, धंगूज वेहता बिरद धणा।

बल छाडियो तुहारे बोले, त्रिहं ठाकुरे जैतवण ॥ ११ ॥

(ख) जयमल वंश प्रकाश: गोपालसिंह राठौड़ मेड़तिया: पृ० १२१

२—अखैराज बगड़ी के मूल संस्थापक थे। राव रणमल का पौत्र तथा अखैराज का पुत्र पंचायण हुआ जिसका बेटा जैता हुआ जिससे ये जैतावत कहलाये।

उपमा :

प्रघट पंचाइण तणि परि (४)

छंद :—वेलियो, सोहणो और खुड़दसाणोर का प्रयोग हुआ है।

(१) *वेलियो* : मेड़तियां मुहे, माझियां प्राझी, ऊपाडियै कुंत अवसांण।
मिळतां देद हुवौ मुह रावत, पुलतै दलि फिरियो पछिवाण ॥७॥

(२) *सोहणो* : उदयागिर पखे अन्तर कुल आंणे, महि वांमण विण कमणमिणे।
कमध प्रवाड़ा गांन करै कुण, गयण तणा कुण नखित गिणे ॥२३॥

(३) *खुड़दसाणोर* : दलनाइक अगड तुहारी देदा, कोइ न हाले अड्स करि।
पाखर रौद्र लगै पतिसाही, प्रघट पंचाइण तणि परि ॥१७॥

(३) रतनसी खींवावत री वेल[1]

राजस्थान के वीर सपूत मृत्यु का आलिंगन उसी उल्लास और प्रसन्नता के साथ करते रहे हैं जिस उल्लास और प्रसन्नता के साथ वे किसी षोडसी का वरण

१—(क) मूल पाठ मे वेल या वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका मे लिखा है 'इति रतनसी खीवा ऊदावत री वेल संपूर्ण'।

(ख) प्रति-परिचय:-अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर मे इसकी निम्न लिखित तीन प्रतियाँ हैं जो तीन नामों से मिलती हैं—

(१) राठौड रतनसी वेलि:– इस नाम की प्रति क्रम संख्या ९२ वाले गुटके मे है। इसकी अवस्था अच्छी है। कुल पत्र ७ हैं। प्रत्येक पृष्ठ मे ११ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति मे १८ अक्षर हैं। प्रति का आकार ५"×४" है। इसमे ६३ छंद हैं। कवि का नाम नही दिया है।

(२) राठौड़ रतनसी खीवावत री वेल:– इस नाम की प्रति भी ऊपर वाले गुटके (नं० ९२ ग) मे ही है। यह जीर्ण अवस्था मे है। कुल पत्र १६ हैं प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में १६ अक्षर हैं। छंद सं० ६६ है। कवि का नाम नही दिया है। डा० टैसीटोरी ने इसी का हवाला दिया है (डिस्क्रिप्टव कैटलॉग, सेक्शन दो भाग १, पृ० ७०)

(३) रतनसी री वेलि:- इस नाम की प्रति ९८ (२) नम्बर वाले गुटके मे है। प्रति की अवस्था जीर्ण-शीर्ण है और पत्र भीग जाने के कारण लिपि अस्पष्ट होगई है। अक्षर सुवाच्य नहीं हैं। कुल पत्र २ हैं। प्रति पृष्ठ में १७ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति मे २६ अक्षर हैं। प्रति का आकार ७"×९½" है। छंदो की संख्या ७० है। कवि का नाम नही दिया है।

(४) रतनसी रो बेलियो गीत:– इस नाम की प्रति राजस्थानी शोध-संस्थान चौपासनी मे है। क्रमाक १४६ है। इसमे कवि का नाम दूदो विसराल दिया है। छंदों की संख्या ७२ है।

करते हैं। यहाँ के कवि भी विषकन्या के रूपक द्वारा उस लोमहर्षक दृश्य का चित्रण कर अपने आपको धन्य मानते रहे। प्रस्तुत वेलि में राठोड़ रतनसी खीवावत का ऐसा ही ओजस्वी व्यक्तित्व चित्रित हुआ है।

कवि-परिचय :

अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर की प्रतियों में कवि का नामोल्लेख नहीं है। पर इधर राजस्थानी शोध-संस्थान चौपासनी मे जो 'रतनसी री वेलियो गीत॥ दूदो विसरत' नाम की प्रति मिली है उससे कवि का नाम ज्ञात होता है। इसका रचयिता कोई दूदो विसराल नाम का कवि रहा है।

रचना-काल :

किसी भी प्रति मे रचना-काल का उल्लेख नहीं किया गया है। अनूप संस्कृत लायब्रेरी की ९८ (२) क्रमांक वाली जो प्रति है उसमें कई महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं। इस प्रति की अधिकांश रचनाएँ संवत १६७१ तक लिपिबद्ध हो चुकी थीं। आलोच्य वेलि तो संवत १६७१ तक निश्चित रूप से लिपिबद्ध हो चुकी थी क्योंकि इसके पश्चात ही इसी प्रति में 'राव जैतसी रो पद्धड़ी छंद' लिखा गया है जिसके अन्त में लिपिकाल का निर्देश इस प्रकार किया गया है 'इति श्री राय श्री जयतसिहजी रउ पद्धडी छंद संपूर्ण समाप्तं संवत १६७१ वर्षे आसोज मासे शुक्ल पक्षे अष्टमी तिथे शनिवासरे' (पत्र ८८)। प्रस्तुत रचना को पढ़ते समय घटना-वर्णन और दृश्य-चित्रण की सजीवता को देखते हुए अनुमान होता है कि कवि चरित्र-नायक का समकालीन रहा है और उसने इसकी रचना जैतारण पतन[1] (वि० सं० १६१४) के बाद ही की होगी।

रचना-विषय :

यह ७२ छंदों की रचना है। इसमे एक ऐतिहासिक घटना-हाजीखां का पलायन तथा जैतारण-पतन-का वर्णन है। हुमायूं का देहान्त होने के बाद अकबर ने शेरशाह के सेनापति हाजीखां का दमन करने के लिये एक सेना भेजी। हाजीखां ने उस समय अजमेर पर अधिकार कर रखा था। सेना के आने का समाचार पाते ही हाजीखां गुजरात की तरफ भाग गया और मुगल सेना ने अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया। उसी समय जैतारण पर भी शाही फौज भेजी गई जिसने सामान्य युद्ध के बाद अपना अधिकार कर लिया। जोधपुर राज्य की ख्यात से पता चलता है कि जो शाही सेना जैतारण भेजी गई थी उसमें राजा भारमल, जगमाल, पृथ्वीराज, राठोड़ जयमल, ईश्वर वीरमदेवोत आदि भी थे। जैतारण के हाकिम

१—जोधपुर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड : गौ०ही० ओझा, पृ० ३२२ की पाद टिप्पणी।

ने मालदेव को सहायता के लिये लिखा था पर उसने सहायक सेना नहीं भेजी और युद्ध में राठौड़ रतनसिंह खीवावत, राठौड़ किशनसिंह जैतसिंहोत आदि सरदार मारे गये। बादशाह की सेना का वहाँ अधिकार हो गया।[1]

कवि ने हाजीखां के पलायन का संकेत कर जैतारण के युद्ध का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। वर्णन मे विप-कन्या का विराट् साग रूपक[2] बाधा गया है। मुगल सेना रूपी कुमारी को-जो अपने पूर्ण यौवन पर है- दुल्हिन बनाकर तथा राठौड़ रतनसिंह खींवावत को दूल्हा बनाकर कवि ने पाणिग्रहण संस्कार की मर्यादा का पूर्ण निर्वाह किया है। अन्त मे काम-क्रीड़ा रत रतनसिंह विपाक्त प्रभाव से मृत्यु का ग्रास बनता है और मोरकुमारी अट्टहास करती है।

प्रारम्भ में कवि सरस्वती की वंदना के साथ वस्तु का निर्देश करता है।[3] तत्पश्चात् चरित-नायक की प्रशंसा करता हुआ कहता है कि रतनसी का शरीर कमल के पराग की तरह पवित्र और मन गंगा-जल की तरह निर्मल है। वह राजाओं द्वारा वंदनीय और निर्बाध गति से सर्वत्र संचरण करने वाला है। उसका व्यक्तित्व निष्कलंक, सुन्दर और अनश्वर है।[4] तत्पश्चात् मुगल सेना द्वारा अजमेर पर किये गये आक्रमण का कवित्वमय वर्णन किया गया है। कवि का कथन है कि जोश में भरी हुई अखण्ड कुमारी मुगल सेना कामदेव के समान मतवाली है। उसमे विवाह करने का उत्साह भरा हुआ है। वह नगाड़ों की गड़गड़ाहट के साथ मदमस्त हो जब चलने लगती है तब उसका यौवन उफनने लगता है।[5] हाथी घोड़ों का आडम्बर उसके घूंघट का घेरा है। जो भी वीर उसके साथ वरण करने का प्रयत्न करता है

१—जोधपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड : गौ० ही० ओझा : पृ० ३२१-२२

२—डा० टैसीटोरी ने इस विषय मे लिखा है 'द पोइम कोम्मेमोरेट्स रतनसीज करेज इन फेसिंग एन एम्पेरियल फोर्स व्हिच हेड बीन डिस्पेच्ड अगेन्स्ट हिम, एण्ड दी ग्लोरियस डेथ ही मेट इन दी बेटल। थ्रू आउट द पोइम द ओथर हेज डवलप्ड द सिमलि ओफ दी हीरो व्हू लाइक ए ब्राइडग्रूम गोज टू स्पोज द एनीमी आर्मी, ए सिमलि कोमन इन बारडिक पोइट्री।'
—डिस्क्रिप्टिव केटलोग : सैक्शन दो, पार्ट एक, पृ० ७०

३—सुप्रसन हुं सुरराये सारदा, विमळ सर आखर वयण।
कलिजुग रुखमागद राव कमधज, राजा वाखाणीसि रयण ॥१॥

४—प्रवित प्रिराग रतनसी पोहकर, मन निरमल गंगाजल जेम।
नर नारंद नरींद निरोहण, निकल निघट निपाप निगेम ॥३॥

५—जोगिणि पुणि पूरो मयण तण जोसवस, वर प्रापति गह पुरिति वेम।
परणणंज कोवड होतैं परणण, नवखंड हींदू तुरक नरेम ॥५॥
रोस कसाय घूंमतो रमती, चुवती मदन महारस चोलू।
हालो घड़ा नीसाण हुवाए, रिम पाखर करिने वर रोलू ॥६॥

वह स्वतः ही तलवारों के घाट उतर जाता है। हाजीखां उसके आतंक से कांप कर गुजरात की ओर भाग गया और अपने दूल्हेपन को सिद्ध न कर सका।[1]

पाणिग्रहण संस्कार को यों बिगड़ते देखकर मुगल-सेना रूपी युवती को अत्यधिक चिंता हुई। पुनः वह विवाह करने की बलवती इच्छा लेकर किसी वीर की तलाश में जैतारण की ओर बढ़ी। उसके हृदय की काम-भावना हिलोरें लेने लगी। उसे कोई वीर ऐसा नहीं दिखाई दिया जो उसके साथ गठ-बंधन कर सके। उसके उभरते यौवन ने मदनोन्मत्त होकर साड़ी को अस्त व्यस्त कर दिया। उसकी गति में विषमता आ गई और वह आकाश को स्पर्श करती हुई दशों दिशाओं को कम्पायमान कर उठी।[2] उस विष-कन्या ने सोलह से दूने श्रृंगार सजे। तीक्ष्ण भालों की अणी के उसके नाखून थे और तेज चमचमाते हुए कुंत ही कटाक्ष थे। दुश्मनों की धड़ों को नष्ट करने वाले आयुध ही उसके लिये सवालखा हार थे।[3] इसी रूप पर मोहित होकर रतनसिंह ने शीशा डसने वाली तोपों के वक्र नेत्रों से प्रणय के इशारे किये, तलवार के रूप में कुसुमायुध के पचशरों का सन्धान किया, सेना को

१—धुमस जूस आगोंदे थिबंमे, जिम अकबर घडहल घडै।
हैमार उदमाद बिरोटे हगति हूंत, आन वरीआ लगि खडै ॥७॥
हैवर गति गैंवर गति गति घडंबर, घूंघट पाट किय पणबेर।
धोरहि कर कांधे आडम्बर, अकबर धड़ आई अजमेर ॥८॥
नगन कूंटेर लूं लिहि लिखी आ, धूंम घड़ देवे धमसान।
बींदणगी अजमेर विमारे, खिसियो न्हिमीयो हाजीखान ॥९॥
हुहुंड हुये कार कंठे मन हाजन, मधजिकि द मक्ति चमकि घोर।
मीर धरा कुंमारी माडिहूंड, धरण परणी लहसं.मो मगुर ॥१०॥
गुरज न ओडनं नामा ओडो, नारि नामा न मन रो नाह।
धावे खान हाजन धाघर धर, जीति निरबीधो ओमाह ॥११॥

२—दमाकुर दबपुरि दाई, जपि नहि जोवती कुरा कुई।
जिखो हाजन पाछो जाता, अकबर धड़ संतीख हुई ॥१२॥
यहूणी वीर धरा गरदेवर, बाजति नर हैमर करि वेस।
जाअनी हाकुरा उर्बाद, हन महूणी नर मदूवें ऐन ॥१३॥
दरपी कार न हुओ वर हरि, निरिदबांस मन लागि नर।
कर मंखिवि लिलिछन्दा धहिरो, वीर गुणे धरि लहणी वर ॥१४॥
बड निरि हूं नाजे बरबरगी, लिरबेन वति दरवनि सर मरवंमि।
नाडी दब दवनि मारणी, हुडिया विरवासा रूप देखि ॥१५॥

३—सिंहड़ बंदा रस कुंड बखार, मूंछ बखरा बाना आवाड़।
बाकर घाव रावड बहिदा, वैबारिय डरीद बहु बंड ॥१६॥
धरि बड़ हुसा मुगल बल दारा, नावड़ हुंवि मवे विग्रार।
कड़ बगगु दुवि काठी, बाहुरो हुरिद वहू चकवार ॥१७॥

हुंकारों के मंगल गीतों के बीच सिर पर मौड़ धारण किया और मन में क्षत होने का अनुराग लेकर कृपाण की मेखला बांधे विवाह के नगाड़े बजवाये।[1]

पाखरों की पायल पहने, कराघातों का कांकण धारण किये,[2] जड़ित जिरह की कंचुकी और कवच को साड़ी लपेटे,[3] नयनों के कटाक्ष बाण छोड़ती हुई, कवच कड़ियों को झकझोरती हुई, घूमर नृत्य करती हुई बत्तीस लक्षणों से युक्त मुगल सेना रूपी विष-कन्या रतनसिंह का वरण करने के लिये आगे बढ़ी।[4] उसने सोने का सेहरा बांधा और तलवार से पाणिग्रहण किया। जैतारण के युद्ध में लटकती हुई तलवारों ने तोरण बांदने की रस्म पूरी की तो हाथी-दांतों के रूप में हंसती हुई मुगल सेना की विष-कन्या ने अपनी प्रसन्नता प्रकट की। योद्धाओं के मरने से अंग-रहित अर्थात् अनंग होकर वह कामार्त्त हो उठी।[5]

रावतों का सरदार रतनसिंह उसी दिन से सचमुच दूल्हा बना। उसका मौड़ आकाश के लिये स्तंभवत बन गया।[6] किले के लिये कोट स्वरूप किशनसिंह यशस्वी बराती सिद्ध हुआ।[7] ढाल रूपी थाल मे भाले रूपी अक्षतों से रतनसिंह को वधाया गया।[8] युद्धस्थल रूपी सेज पर गलबांही देकर रतनसिंह ने मीर-कुमारी के साथ आनन्द-भोग भोगा।[9]

१—सीहण डसण तण वयण नयण सिव, धनप मदन सरणध पंच सुद्रूप।
रूप कियो तो ओपरी रतन, रिम घडि नौत्रते रह तस रूप ॥१६॥
अति दिन लगन महुरति उपडि, धवल मंगल दल हुकलि घोड़।
मीर घड़ा परणण कुंमारी, मारू रैणि बाधीयो मौड़ ॥२०॥
मन खत राग बंधालक मौजा, कटि मेखला कसोयै कुर बाण।
आवो मीर घडा ओपडाखी, नियसि तेने बरि नी आण ॥२२॥

२—पाखर घोर बाजती पायलि, काकण ट्रायल चूड़ि कसि ॥ २३ ॥

३—चीर जहर पाखर वंदाडणि, काचू जिरह जडाब करि ॥ २५ ॥

४—नयण कटाक्ष वैण नीछरतें, कसि विहु दिसि फरती कड़ा।
उठि रमण परणेवा आई, घूंमर कीधे मीर घड़ा ॥ २६ ॥

५—मड है वियण सेहरा कामणि, करगेवा माती करिमालि।
ढूकी डालवेलि ढलकंती, तोरणि जैतारिणि रिणि तालि ॥२७॥
ढूठि घडा हसती गज दाते, भारति गति अनग अनंग।
पाटिओ घोरि राखण परणेवा, चंवरी चोपडि चढे ववरंग ॥२८॥

६—रावत वोद नरिंद रतनसी, विरत दैंति वोंदवगि।
मोड मुगटि सिरि टोप माडीयैं, लागे आठियो आभि लगि ॥२६॥

७—काला कोटि दुबाहा कमबजि, किसन अणवर रयण कन्है ॥३०॥

८—उडीयण थाल आवधे आखे, अति प्रबहुला हाथ ले अनीद।
भलके खगे उनगे भाले, वधाविजे रतनसी वीद ॥ ३३ ॥

९—डसण सयण रतनसी दंमंगलि, माथ गलोयलि भीच रहै।
धड़ मारति उतारे धरि, वरमाला केरिमाल वहै ॥३४॥

विधिवत् सभी वैवाहिक रस्में पूरी की गईं। शत्रुओं का शिरोच्छेदन करना ही कलश उतारना है,[1] अत्यन्त गंभीर घावों को सहन करना ही मुँह दिखाना है,[2] गिद्धों के पंखों का फैलना ही छत्र-चंवरों का सजना है,[3] तलवारों की मुठभेड़ में रुधिर के परनालों का बहना ही सिन्दूर का छिटकना है।[4] छत्तीस प्रकार के शस्त्रों का संचरण ही ३६ प्रकार के व्यंजनों का रसास्वादन है।[5] दोनों सेनाओं का परस्पर युद्ध करना ही वर-वधू का जुआ खेलना है।[6]

वर-वधू का समागम भी बड़ा विचित्र है। क्षत्रियत्व की रक्षा करने वाले रतनसिंह ने तलवारों के प्रहारों से मीर-सेना रूपी युवती की कंचुकी के कसने तोड़ तोड़ कर उसे रति-क्रीड़ा में परिश्रान्त कर लिया।[7] वह बेचारी अस्त-व्यस्त वस्त्रों को लेकर जा छिपी।[8]

रतनसिंह मुगल सेना रूपी विष-कामिनी के साथ संयोग-सुख में इतना लवलीन हो गया कि उसके टुकड़े टुकड़े हो गये।[9] हाड़, मांस और रक्त चारों ओर फैल गया। सुअर, डाकणियाँ, भूत, प्रेत, आदि इकट्ठे होकर आनन्द के साथ इनका भक्षण करने लगे। रतनसिंह ने वीरों को खंड-खंड कर, हाथियों को मार मार कर इतना रक्त प्रवाहित किया कि सभी उसे पीकर तृप्त हो गये।[10] वह इस संसार में

१—उतबंग वर वेहड़ा-नुंतारे, हा पाबी रतन हाथि हूवा ॥३५॥

२—मिल रजधूलि नहु मंड है, मिल घण धाय मुह मंडणें ॥३६॥

३—पुडंगण ग्रीध पंखारव छत्र, गो मग है गज घाट गड ॥३७॥

४—धमचक धोमहि मे धार हैरवि, पुरि संदूरि रुधिर परनाल ॥४२॥

५—भापा रट विसट तीस छतीस भखीजे, घसि पुडि घाय निहाय धुवाय ॥४३॥

६—वाहे हाथिह वैहथि वाहां अंग मणीसर फूटै अंगि।
बीदणि वींद बिन्हे समवादी, जूअर मे माते रिणि जंगि ॥४४॥

७—रिणवट रुखाग खत्रीवटि रतने, धाई मनाई मीर धडा।
लोहां खीथै तोडीया लाडै, कांचू जोसण कसण कडा ॥४८॥

८—धार सनाह वसंत घंसटीया, नमी नोजाम दुरी मुखि नारि ॥ ४६ ॥

९—रिमि रसि अउ कसि अभित गति रतने, भांजे खग रंग अंग जुवा जुवा।
खंड विहंडि हुवे खंडाचो, हरद घडा लवलीण हुवा ॥ ५१ ॥

१०—भईरवि भूत अरावक भेला, ग्रीधावलि धरत अघासि।
खड खडीया किनईण खाफर, उडीवण गहक अकासि ॥ ५८ ॥
मड हूट मम लोही मह्महीया, गोधूलक मिले गमेममा।
करका उपरि हिवीया कोलं, साकणि सावज एक अमा।
चाचर महार मागणि हार निसाचरि, वंतरि प्रेत घवे निरवाण ॥५६॥
सकति मालसिध वीर्धणि साधिक, रतने मोकलिया माराणि ॥६०॥
खंड खटि छाट लाख ठटि खलखड, गजघट वीर कीधे गजगाहि।
रातल सावज धवीया रतने, पूजवीया रत पल अगल प्रवाहि ॥६१॥

अब नहीं रहा, वह तो मरकर स्वर्गलोक का स्वामी बन गया। देवता रतनसिंह को आशीर्वाद दे रहे हैं। अप्सराओं और सतियों की आत्माओं के साथ रमण करता हुआ वह वैकुंठ में निवास कर रहा है। भाला अब भी उसके हाथ में वीरता का उद्घोष कर रहा है।[1]

वीर और शृङ्गार रस का अद्भुत मेल इस वेल की विशेषता है। डिंगल के प्रसिद्ध कवि ईसरदास बारहठ ने भी 'हालां झाला रा कुंडलिया' में झाला रायसिंह की सेना को विप-कन्या का और हाला जसाजी को दूल्हे का रूप दिया है[2]। डिंगल काव्य में ऐसे रूपकों की परम्परा रही है। पर पूरे काव्य में ऐसे व्यापक रूपक की सृष्टि आलोच्य कृति की अपनी ही विशेषता है।

कलापक्ष :

प्रस्तुत वेल का कलापक्ष अत्यन्त निखरा हुआ है। छोटी सी ऐतिहासिक घटना को रूपक का आधार देकर इतना प्राणवान बना देना कल्पना-कुशल कवि का ही काम है।

वेल की भाषा साहित्यिक डिंगल है। वह उत्साहवर्धिनी, प्रभावोत्पादक और हृदय के तारों को झंकृत करने वाली है। कवि की 'विमल सर आखर वयण' की गर्वोक्ति मिथ्या नहीं है। अनुप्रास की योजना सुन्दर बन पड़ी है—

(१) नर नादेत नरीद निरोहण, निकल निघट निपाप निगेम ॥३॥
(२) आसानुध अजद्रपुरि आई, जगि सहि जोवती जुवा जुई ॥१२॥

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं-

साधारण :

(१) पाखर घोर वाजती पायलि (२३)
(२) वरमाला वरिमाल वहै (३४)
(३) जुधि हृथलीयो जुड़े जुवाण (२७)

१—राज करै सुरथानं कुं रतनो, जाम माप कम्है जगदीस।
हालीया प्रल भूल करता, हूबिता, दयजिता देवता आसीस ॥६२॥
रंभ झकोळ विलासइ रतनो, मातम वरंभ सतिया बिबि पंत।
झलर झलहल तें झूंभारे, झूंवहती बसीयउ वैकुंठ ॥६३॥

२—हाला झाला रा कुंडलिया : स० मोतीलाल मेनारिया : छंद संख्या २२,२३,२४,२५ २६,२७,२८।

असाधारण :

(१) *चित* अकबर घड वल चडै (७)

(२) चंवरी वोपडि चढ़े ववरंग (२८)

(३) सुधि रस चोल तंबोल रंगि (५०)

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का ही विशेष प्रयोग हुआ है—

उपमा :

प्रवित पराग रतनसी पोइकर, मन निरमल गंगाजल जेम ॥३॥

रूपक :

(१) पाखर घोर वाजती पायलि, कांकण हाथल चूडि वसि ॥२३॥

(२) उडीयण थाल आवधे आखे, प्रति प्रवहुलां हाथ ले अनीद ॥३३॥

उत्प्रेक्षा :

(१) मोड़ मुगटि सिरि टोप माडीये, लागे प्रोठियो आभि लगि ॥२६॥

(२) वीरति रायण तणें ते वेला, उगामुखि बारह आदीत ॥३२॥

एकाध जगह मुहावरे भी आये हैं—

(१) *कर अंसिलि* विलिलिया कहियो, वीर तणे घरि लहुसो वर ॥१४॥

(२) लाडी देखे *गगनि लोडंती,* दुहीया भिड़वाया दस देखि ॥१५॥

छन्द :

कवि ने छोटासाणोर के भेद वेलियो का प्रयोग किया है। एकाध छन्द सुहड़साणोर का भी है।

उदाहरण :

वेलियो:—

इन्द्रपुर ब्रह्मपुर, नागपुर, शिवपुर,
परम पुरताइ ऊपरि पार।
राजा सरग मात में रतनो,
मिलियो जोत सहर मझार ॥७०॥

(८) चादाजी री वेल[1]

प्रस्तुत वेल मेड़ता के राव वीरमदेवजी के चतुर्थ पुत्र चादाजी से सम्बन्ध रखती है। चादाजी बड़े वीर और साहसी थे। मारवाड़ की ख्यात के अनुसार उन्होंने

१— (क) इस छंद में वेलि नाम नहीं आया है। एक जगह सहायक के अर्थ में वेली शब्द प्रयुक्त हुआ है— बीरारी वो चढ रज वेली (२६)

(ख) प्रति-परिचय: इसकी ह० लि० प्रति श्री अगरचंद नाहटा, बीकानेर के संग्रह में है। इस इसकी नकल श्री नरोत्तमदास स्वामी से मिली है।

बहुत से मनुष्यों को लेकर मारवाड़ के अधिपति राव चन्द्रसेन (सं० १६१६-३७) की ओर से मुसलमानों के साथ वीरतापूर्वक युद्ध किया था। यह युद्ध वि० सं० १६२१ वैशाख कृष्णा १० को हुआ था।[1] वि० सं० १६१० में मेड़ते की सम्मिलित सेना के प्रबल आक्रमण को न सहन कर सकने के कारण जब मालदेव की सेना पीछे हटने लगी तब इसी वीर सरदार ने रुककर कुछ साथियों सहित बीकानेर की सेना का मुकाबला किया था।[2]

कवि-परिचय :

कवि ने वेल मे कहीं भी अपना नामोल्लेख नहीं किया है। लिपिकर्त्ता पं० जगन्नाथ ने इसका शीर्षक 'गुणवेलि वीठू मेहा दूसलांणी री कही राजि श्री चांदाजीनु' दिया है और पुष्पिका मे लिखा है 'इति श्री वेलि राठौड़ चादा वीरमदेयोत वीरमदे दूदावत रा नु मेहा दूसलांणी री कही' इससे यह सूचित होता है कि वीरमदेव के पुत्र तथा दूदा के पौत्र चांदाजी इस वेल के चरित्रनायक है और वीठू मेहा दूसलांणी इसका रचयिता। दूसलाणी से कवि का दूसला का पुत्र या वंशज होना ध्वनित होता है। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने कवि की निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख किया है[3] :-

(१) पाबूजी रा छंद
(२) गोगाजी रा रसावला
(३) करनी जी रा छंद
(४) गोगाजी रा छंद

रचना-काल :

वेलि मे कहीं भी रचना-काल का उल्लेख नहीं है। पुष्पिका में लिपिकाल दिया है 'लिखत पं० जगन्नाथ भेई मध्ये ॥ सं० १७४२ वर्षे फागुण वदि १ शनौ' इसके अनुसार पं० जगन्नाथ ने सं० १७४२ फागुण कृष्णा १ शनिवार को भेड मे इसे लिपिबद्ध किया था। वेलि को पढ़ने से पता चलता है कि इसमें चांदा द्वारा अजैपुर, रायपुर, फलौदी, बिलाड़ा, ईडरगढ, मेड़ता, नागौर आदि को अधीन करने का वर्णन है। ये प्रदेश राव मालदेव (सं० १५८९-१६१९) के राज्य में थे।[4] बांकीदास के ऐतिहासिक संग्रह से विदित होता है कि चित्तौड़ दुर्ग पर चांदाजी ने नारायणदास

१—जयमल वंश प्रकाश : प्रथम भाग, ठाकुर गोपालसिंह राठौड़ मेडतिया, पृ० १०८-९

२—ओझाजी ने लिखा है कि मुकाबला करते समय चादा यहीं अणीर के हाथ से मारा गया (जोधपुर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड पृ० ३१५-१६) नैणसी की ख्यात के अनुसार चांदा मारा नही गया वरन् उसने ही मालदेव तथा अन्य घायल सरदारो को सुरक्षित रूप से जोधपुर पहुंचाया था (भाग २, पृ० १६४-६६)

३—राजस्थानी भाषा और साहित्यः पृ० ११२ तथा ११५

४—मारवाड़ का इतिहास : प्रथम खण्ड-विश्वेश्वरनाथ रेऊ, पृ० १४२

सोलंकी को अपने हाथ से मारा था। वेलिकार ने इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि चांदाजी ने अपने भाई सारंगदेव की मृत्यु का बदला लेने के लिए ही-जो सोलंकियों के हाथ से मारे गये थे-नारायणदास का वध किया था।[1] यह घटना अकबर द्वारा चित्तौड़ पर किये गये आक्रमण (वि० सं० १६२४) के समय की हो सकती है! इस आधार पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस वेलि की रचना वि० सं० १६२४ के बाद ही हुई होगी।

वेलिकार ने अन्यत्र ३१ कवित्तों में वागड़ के कर्मसी और सांवलदास[2] की वीरता का वर्णन किया है। ये दोनों वीर महाराणा उदयसिंह की सेना के विरुद्ध डूंगरपुर के महारावल आसकरण (सं० १६०६ से १६३७) की ओर से लड़ते हुए मारे गये थे। यह घटना संवत १६१३ के पहले किसी समय हुई थी।[3] इन तथ्यों से पता चलता है कि कवि वीठू मेहा का रचनाकाल सत्रहवीं शती का पूर्वार्द्ध रहा है।[4] अतः अनुमान है कि प्रस्तुत वेलि का रचना-काल सं० १६२४ के बाद किसी समय रहा हो।

रचना-विषय :

४१ छंदों की इस वेल में राव मालदेव (वि० सं० १५८९-१६१९) के यशस्वी सरदार चांदाजी के वीर व्यक्तित्व की गौरव गाथा गाई गई है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस कृति का बड़ा महत्व है। वेलि को पढ़ने से ज्ञात होता है कि चरित्र-नायक चांदाजी ने सोलंकियों के दांत खट्टे किये थे।[5] अपने भाई जगमाल के साथ मिलकर अजेपुर (अजमेर) और रायपुर पर एक दिन में अधिकार किया था।[6] फलोदी के रणक्षेत्र में भाटियों का भ्रम दूर भगाया था।[7] गुजरात की सेना का यश मिट्टी में मिला दिया था।[8] बिलाड़े के रणक्षेत्र में सुलतान बादशाह की सेना का दमन किया

१—वेर सहोदर विढे वालोयो, अति चंद सुजस हुओ असहास।
वैसे गढि चित्तौड़ पाड़ीयो, दूजड़ा हथ नाराईणदास ॥११॥

२—बांसवाड़ा राज्य का इतिहास: गौ० ही० ओझा पृ० ८२,२२१ पाद-टिप्पणी।

३—डूंगरपुर राज्य का इतिहास : गौ० ही० ओझा, पृ० ८९-९०

४—राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० हीरालाल माहेश्वरी, पृ० ११२

५—पहलोइ सोलंकिया जाव पोहतो, निरंभय चंद बांधीये नेत।
भागो ने कीलण हर भिडंते, खाडा पाणि खण हूटे खेत ॥२॥

६—घोड़े दीह अजेपुर धोपहि, अनुर घणा रायपुर उपालि।
एकै दीह उभै आखाड़ा, जीता चंद अने जगमालि ॥ ४ ॥

७—भ्रम भाटियां तणो हदि भागो, विढे माल छलि वीर सुतेत।
बाडाईंयो कधीवो बाग्चंद, खांडाय फलोदी खेत ॥ ६ ॥

८—धड़ि गुजपति हणि दल मूके, काय दिखालि हाथ कळ।
मेल्हाविसी वर मुहिमाडुर, वाल्हा थाना तणो बल ॥ ७ ॥

था।[1] हस्तिनापुर के अर्जुन की तरह जूझ कर चांदा ने कौरव दल के समान शत्रु सेना का संहार कर ईडरगढ पर आधिपत्य जमा लिया था।[2] डीडूपुरा (डीडवाना) को दंडित किया था।[3] मेड़ता के मणिखांन के साथ दो माह तक युद्ध-मन्थन किया था।[4] नागौर के खान (दौलतखां) के साथ मुकाबला कर चांदा ने अपनी वीरता प्रदर्शित की। इस लड़ाई मे वरसिंघ, सूरसिंघ, कान्हा, हपरा, अखा, सीहावत आदि भी बहादुरी से लड़े।

कलापक्ष :

काव्य की भाषा साहित्यिक डिंगल है। वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं—

साधारण :

(१) कुलमंडण वाहिया कर (५)
(२) विढे माल छवि वीर सुवेत (६)
(३) रुंमर कोट तणौ इधकार (३६)

असाधारण :

(१) घड़ि गुजराती तणि घण भूझे (७)
(२) कैरव दल पेखे किल बाहिण (६)
(३) राठौड़ बड़ा रिमराह रूक हथ (१०)
अर्थालंकारों मे उपमा-उत्प्रेक्षा का प्रयोग हुआ है
(१) सिरि सीमाडां वीर समो भ्रम (३)
(२) जुड़ि हयणापुर अजण जिम (६)
(३) चाँदे कियौ राव चूंडे जिम (१७)

छंद-विधान :

कवि ने छोटे साणोर के भेद वेलियो और खुड़द साणोर का प्रयोग किया है। छंद के प्रथम चरण मे यहाँ २ मात्राएँ अधिक नही हैं अर्थात प्रथम चरण २+१६=१८ मात्रा का न होकर १६ मात्रा का ही है।

१—लांगा जुवे वागछर लाई, दो सारी सुरतांण दलि।
रहचि पठाण माणीया रेवंत, बोलाड़े रिण वाधि वलि ॥ ८ ॥
२—कैरव दल पेखे किल बाहिण, त्रिशधि घडा निहसीया तिम।
ईडरगढ़ चादे उमहीयो, जुड़ि हयणापुर अजण जिम ॥ ६ ॥
३—चादे कीयो राव चूंडे जिम, डीडूपुरा उपरै दंड ॥ १७ ॥
४—मास बे महण मेड़तै मथीयो, असंख कटक मेले अगियान।
मागमणि चांदो नह मावै, खार खद्यो जोदे मणिखांन ॥ १६ ॥

उदाहरण :

वेलियो

उंगिम लगे चंद अरिजंगण (१६ मात्राएँ)
आघाड़ सिध वडा असवार (१५ मात्राएँ)
तैं लोहिमो फेरीयो लागा (१६ मात्राएँ)
मेत अडांम घरे गंधार (१५ मात्राएँ) ॥१३॥

खुड़द साणोर

राशि जुते चांदा वडरावत (१६ मात्राएँ)
सांड कमन खेलते सत (१३ मात्राएँ)
सिरि सीमाडा वीर समो भ्रम (१६ मात्राएँ)
अनि मर फेरे आवरत (१३ मात्राएँ) ॥३॥

(५) उदैसिघ री वेल[1]

प्रस्तुत वेलि मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह से सम्बन्ध रखती है। उदयसिंह वि० सं० १५९४ में अपने पैतृक राज्य के स्वामी बने।[2] ये राणा सांगा के पुत्र और महाराणा प्रताप के पिता थे। पन्नाधाय ने अपने पुत्र का बलिदान कर बनवीर की रक्त पिपासु तलवार से इनकी रक्षा की थी। वि० सं० १६२४ में अकबर ने चित्तौड़ पर हमला किया तब ये कुंभलगढ़ की ओर चले गये और वहीं रहने लग गये थे। वि० सं० १६२८ में इनका देहान्त हुआ।[3]

कवि-परिचय :

कवि ने वेल में कहीं भी अपना नामोल्लेख नहीं किया है। शीर्षक 'वेलि रांणा उदैसिघ री रामा सांदू री कही' से सूचित होता है कि रामा कवि का नाम है और सांदू उसकी (चारणों की) शाखा। नैणसी की ख्यात से पता चलता है कि कवि महाराणा उदयसिंह का समकालीन था।[4]

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नहीं आया है। शीर्षक दिया है 'वेलि रांणा उदैसिघ री रामा सांदू री कही'।

(ख) प्रति-परिचयः— इसकी ह० लि० प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के गुटके नं० १३६ (७) में सुरक्षित है। यह ३ पत्रो पर लिखी हुई है। इसका आकार ७३/४''×८३/४'' है। प्रत्येक पृष्ठ मे १२ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति मे २०-२१ अक्षर हैं।

२—वीर विनोद भाग २ पृ० ६४

३—उदयपुर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड: ओझा: पृ० ४२१

४—नैणसी की ख्यातः भाग १ पृ० १११

रचना-काल :

वेलि के ग्रन्त मे रचना-काल का उल्लेख नही है। कवि चरित्रनायक का समकालीन रहा है। वेलि को पढ़ने से ज्ञात होता है कि वेलिकार ने उदयसिंह के ग्रपराजेय होने का उल्लेख किया है[1] जो संभव है मालदेव की सेना के युद्ध पूर्व ही पलायन करने (वि० सं० १६१३) से सम्बन्धित हो। संवत १६१४ से १६२४ तक का समय उदयसिंह के लिए शांतिमय वातावरण का समय है। इसी काल मे उन्होने धार्मिक एवं निर्माण कार्य सम्पादित किये। ग्रनुमान है रामा सांदू इसी बीच इनके संरक्षण में रहे हों। वेलिकार ने सं० १६१६ तथा उसके बाद की इतिहास प्रसिद्ध घटनाग्रों का उल्लेख नही किया है, जबकि चित्तौड़ युद्ध मे जूझने वाले चांदा की ग्रपने ग्रन्य गीतों मे प्रशंसा की है। ग्रतः वेलि का रचना-काल सं० १६१६ के ग्रास-पास का होना चाहिए।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि १५ छंदों की छोटी सी रचना है। इसमे राणा उदयसिंह की प्रशंसा की गई है। कवि के ग्रनुसार उदयसिंह का व्यक्तित्व ग्रत्यन्त प्रभावक है। वह धर्मशास्त्रों का ज्ञाता, विष्णु का परम भक्त ग्रौर काव्यानुरागी है।[2] सत्यवादी इतना कि भूलकर भी झूठ नही बोलता। उसकी वाणी वैरियों के लिए भी सरस है, स्वामिभक्ति मे वह वट वृक्ष की तरह दृढ़ है।[3] ग्राश्रित जनों के लिए ग्रन्न-जल स्वरूप है।[4] उसकी वृत्ति निर्मल[5], चित्त उत्तम ग्रौर शरीर पवित्र है। वह छंदशास्त्र का ग्राचार्य[6] तथा संस्कृत प्राकृत का पंडित है।[7] उसके समान दानी, ज्ञानी ग्रौर ग्रभिमानी इस संसार मे दूसरा कौन है ? संसार के सभी राजा उसकी सेवा मे तत्पर रहते हैं।[8]

१—ऊजम मंग मगाहि मडप जिम मामति, पोहवि न कोई एत्र उपह।
एवाएक मऊब एवागुवि, तिष तणा परिवार सहि ॥ १ ॥
२—सूर्रात सत सील साच ध्रम सासत्र, त्रिसन भगति मधिकार त्रिमेक।
रूपक राग राजवट राणो, उदयसिंघ सजाणो एक ॥ २ ॥
३—मावेतन मलीन भू क ऊवचर, वेरी है सरसो वयण।
मुं साइवट तणो सागावत, भूप नको मनि नर भुवण ॥५॥
४—प्रासाद सलिर बंधण निज पात्रा, पै त्रलि मेरै वा जगन ॥ ६ ॥
५—महंवार मटप वप तेज माचरण, निप कुल द्दल निरमल निरंवति।
रिधि राजवट पाट धुर राणो, पोढो सहि ग्रावेव पति ॥ ६ ॥
६—नरखे नार सही नाग हृो, पोएग है संसार पति ॥ ११ ॥
७—पोहवीजो सहमझव माइत सु...सामतणो एवडीकर्ति ॥ १० ॥
८—राजा तन राव रावलँ राणा, सब सेवै दूमरे सपन ॥ १५ ॥

कलापक्ष :

काव्य की भाषा साहित्यिक डिंगल है। उसमें ओज और प्रवाह है :–

चंचल वहु चपल, मदोमति मैंगल,
काया त्रिमल दीपै कमल ॥१२॥

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। साधारण और असाधारण दोनों प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं :–

साधारण :

(१) ऊपावी सिलह लाख दल ऊपरि (२)
(२) *रिधि* राजवट राइगुर *रांणो* (६)

असाधारण :

(१) तैं *जाणे* वो सुपह कुण *जांणे* (७)
(२) *नरवै* नाद सहो *नाग* ग्रहो (११)

अर्थालंकारों में उपमा तथा रूपक का प्रयोग द्रष्टव्य है :–

उपमा :

खाग साहीयै समो खूंमांण (३)

रूपक :

गात मरम आखर सर पौह गति (१३)

छंद :

कवि ने छोटे साणोर के भेद वेलियो और खुड़द साणोर का प्रयोग किया है। अधिक संख्या खुड़द साणोर की है।

उदाहरण :

खुड़दसाणोर :

आसारै नरां अंतरा अंतर, कमल हेत वया वर करगि।
सुपह विमेक जहां सांगावत, जांणे कुण एवडा जगि ॥१४॥

(६) रायसिंघ री वेल[1]

प्रस्तुत वेल बीकानेर के महाराजा रायसिंह से सम्बन्ध रखती है। रायसिंह

१—(क) मूल पाठ में वेलि या वेल नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है– 'इति वेल श्री रायसंघजी री संपूर्ण'।

(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर के गुटके नं० १२६ (क) में सुरक्षित है। प्रति की दशा अच्छी है। पूरी वेल १½ पत्र में लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में ३२ पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति में २१ अक्षर हैं। प्रति का आकार १०½"×७" है। इसकी एक और प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी के गुटके नं० १२० (ग) में भी मिलती है।

बीकानेर के राजा थे। इनका शासन समय सं० १६३० से १६३८ है। ये राव कल्याणमल के ज्येष्ठ पुत्र थे। प्रसिद्ध कवि पृथ्वीराज राठौड़ इनके छोटे भाई थे। युवराज काल से ही ये राज्य शासन में योग देने लगे थे। सं० १६२७ में अकबर के साथ बीकानेर की जो संधि हुई उसमें इनका प्रमुख रूप से हाथ था।[१] सं० १६३० में पिता की मृत्यु के बाद ये बीकानेर के राजा हुए।[२] अकबर के राजपूत सरदारों में इनका स्थान आमेर के महाराजा मानसिंह के बाद ही था। युद्ध वीरता के साथ साथ ये अपनी दान वीरता के लिए भी प्रसिद्ध थे।[३]

कवि-परिचय :

प्रस्तुत वेल में रचयिता का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर केवल इतना कहा जा सकता है कि कवि रायसिंह का समकालीन रहा होगा। सांदू माला और बारहठ शंकरजी रायसिंह के आश्रम में रहने वाले कवियों में से थे। दयालदास की ख्यात से पता चलता है कि रायसिंह ने सादू माला को दो बार पुरस्कृत किया था। पहली बार जब रायसिंह जोधपुर के शासक नियुक्त हुए- 'गांव एक भदोरो नागोर रो माले सांदू नू दीनो'''''और दूसरी बार जब वे जैसलमेर विवाह के लिए गये-'हाथी एक माले सांदू नूं'।[४] संवत १६२९ में गुजरात विजय के समय अकबर ने जोधपुर रायसिंह को दिया था[५] और संवत १६४९ में रायसिंह जैसलमेर विवाह के लिए गये थे।[६] बहुत संभव है दीर्घकाल तक रायसिंह से सम्बन्ध रखने वाला सांदू माला ही आलोच्य वेल का रचनाकार हो।

रचना-काल :

रचना-तिथि का संकेत वेल में कहीं नहीं किया गया है। गुटके का लिपिकाल संवत १६६७-१८११ रहा है इसे देशनोक में मूंदड़ा राजरूप और किशोर ने लिखा था। इससे इतना तो स्पष्ट है कि वेल की रचना इससे पूर्व की है। वेल के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें रायसिंह की गुजरात विजय, उनके जैसलमेर विवाह आदि घटनाओं का उल्लेख है। वेल की प्रमुख घटना है अकबर के साथ रायसिंह के मनमुटाव हो जाने की। ओझाजी के अनुसार यह घटना संवत १६५० और १६५३ के बीच किसी समय घटी थी।[७] जैसलमेर का विवाह संवत १६४९ में हुआ था।[८]

१—बीकानेर राज्य का इतिहास: प्रथम खण्ड, पृ० १५५-५६
२—मुंहणोत नैणसी की ख्यात जिल्द २, पृ० १८६
३—बीकानेर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड, ओझा, पृ० २०१-२
४—ख्यात भाग २, पृ० ११८, १२५
५—बीकानेर राज्य का इतिहास : ओझा, पृ० १५७-१६१
६—ख्यात भाग २, पृ० १२३
७—बीकानेर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्डः पृ० १८२-१८५
८—ख्यात भाग २, पृ० १२३

स्तुत रचना मनमुटाव वाली घटना की समसामयिक जान पड़ती है। अतः संवत
६५३ के आसपास इस वेल का रचना काल माना जा सकता है।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेल ४३ छंदों की रचना है। इसमें रायसिंह के बचपन और यौवन
साहसिक कार्यों का वर्णन किया गया है। प्रारम्भ में मंगलाचरण है।[1] तत्पश्चात्
रायसिंह के वीर व्यक्तित्व की सराहना करते हुए कहा गया है कि रायसिंह पिता
और गुरु का परमभक्त है। उसके न्याय की दुहाई सर्वत्र व्याप्त है। उसने दोनों हाथों
कंदोरे बांध रखे हैं और शरीर पर कवच धारण कर रखा है।[2] जिस अवस्था में
न्य राजकुमार कौड़ियों का खेल खेलते हैं उस अवस्था (बाल्यकाल) में रायसिंह ने
गल दरबार तक अपनी विजय दुंदुभी बजवादी।[3] सात वर्ष की अवस्था में उसका
भाव सातों द्वीपों पर्यन्त फैल गया तो आठवें वर्ष के प्रवेश ने उसे प्रसिद्धि का पात्र
ना दिया। नवमे वर्ष का तेज पृथ्वी के नवों खण्डों पर छा गया तो दसवें वर्ष ने
सके साम्राज्य का विस्तार कर दिया।[4] दिल्लीनाथ अकबर तक उसकी प्रभाव
रिमा व्याप्त हो गई। बड़े बड़े राजाओं का गर्व चूर हो गया और उसके अश्व पर
ढ़ते ही पृथ्वी की मर्यादा टूट गई। पंद्रह वर्ष की अवस्था में तो वह सुरताण की
ना से जा भिड़ा।[5]

कवि ने ऐतिहासिक घटनाओं की ओर भी संकेत किया है। नागौर में रायसिंह
पने पिता राव कल्याणमल के साथ अकबर बादशाह से प्रथम बार मिला था और
दशाह की ओर से ही उसने जालौर के ताजखां और सिरोही के सुरताण के
द्रोह का दमन किया था। गुजरात के इब्राहीम हुसैन मिर्जा और मुहम्मद हुसेन
र्जा को परास्त करने में भी रायसिंह ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन किया था।[6]

१—हरि हर गोर गणेसर, विईनक पूजो नित।
इप्टदेव संत सुखकरो, वधै तेज बलि वित्त ॥१॥

२—पित भगत रायसंध भगत परम गुरू, आण वरतावण अदल।
तैं बांधीया तिके विहु पानैं, कणडोरा ऊपरे कंगल ॥१॥

३—जिण वेस प्रवेस करे रायजादा कवडी मंडिग करण।
वेस तेस सुरतोण वदीता, रासे जीता महारिण ॥२॥

४—सत दीप रायसंघ वरस सात में, परवत कुल आठ में प्रवेस।
नवमें वरस वजवजीयो नवखड, दसमे वरस वदे देस ॥३॥

५—रायकुंमार रायथंभ रतन रायसंध, सुरताणी फौजा सरस।
असपत घडा लोहड़े आडो, वजीयो पनरहमें वरस ॥६॥

६—(क) बैठे बाप माया बांधे बल, संध सपूत वदे संसार।
अकबर तणा मारतणा मार उतारीया, काणीयांथा ऊपरे कंधार ॥७॥

काव्य मे रायसिंह की व्यक्तिगत घटनाओं को भी स्पर्श किया गया है। खवास का प्रसंग[1] इस ओर द्रष्टव्य है जिसको लेकर बादशाह अकबर ने रायसिंह से जवाब तलब किया और दोनो के बीच मनमुटाव हो गया। अन्त मे यद्यपि बादशाह ने रायसिंह का अपराध क्षमा कर दिया और उसे सोरठ की जागीर प्रदान की पर वह दक्षिण मे न जाकर बीकानेर ही बैठा रहा। सलाहुद्दीन के समझाये जाने पर वह बादशाह की सेवा मे उपस्थित होकर दक्षिण की ओर गया। मंत्री कर्मचन्द्र रायसिंह के विरुद्ध था और गुप्त रूप से वह दलपत को गद्दी पर बैठाने का षडयंत्र रच रहा था। भेद खुल जाने पर वह रायसिंह के डर से सपरिवार भागकर बादशाह अकबर की सेवा मे चला गया। इस घटना को लेकर भी रायसिंह अकबर से अप्रसन्न हो गया। प्रस्तुत वेल मे इस प्रसंग की ओर भी संकेत है।[2]

रायसिंह युद्ध-वीर के साथ साथ दानवीर भी था।[3] जैसलमेर के राजकुल के साथ उसने विवाह सम्बन्ध स्थापित किया[4] और पुण्य-पुरुष के रूप मे जन्म लेकर कोविदों को आनन्दित कर दिया।[5] अन्त मे कवि रायसिंह को शुभाशीर्वाद देता

राठोड मोड राजांन रायसंघ, रीझे लांप रणावे राण।
अनस करी गणे साही आलम, तो समवडी गणे सुरतांण ॥८॥
रंग घोल कूंत धमरोल रायसंघ, सांवत फोजां फाड़ती साथ।
रथ ओरियोप करेवा भारथ, ते रावता मुहे गुजरात ॥९॥

(ख) बीकानेर राज्य का इतिहास : प्र० ख०: ओझा पृ० १५६, १६५, १७०, १७२–१७४।

१—(क) पण विणास खुवास उपरे, खुदालिम खीजयो खरो ॥२१॥

(ख) बीकानेर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड : ओझा पृ०१८४–८५

(ग) दयालदास की ख्यात मे इस घटना को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि एक बार रायसिंह के साथ भटनेर मे अकबर का श्वसुर नसीरखां भी आकर ठहरा। उसके वहां की किसी एक लकड़ी से अनुचित छेड़छाड़ करने पर रायसिंह के इशारे से उसके सेवक तेजा ने उसको पीटा। दिल्ली पहुंच कर नसीरखां ने बादशाह से इस घटना विषयक शिकायत की तो बादशाह ने रायसिंह को तेजा को सौंप देने का हुक्म दिया, पर उसने नही सौंपा। दयालदास की ख्यात, जि० २ पृ० ३२। पाउलेट गैजेटियर ऑफ दि बीकानेर स्टेट, पृ० २८।

२—(क) चले परबते जले जलवटी, कोमूं छूटीयो कोग।
भणे साह परधाना भेजो, राजदैत जो रायसींग ॥ २२ ॥

(ख) बीकानेर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड: ओझा: पृ० १६४

३—रैणायागयर गदद बांधीयै राखे, नेत बन्धीयो बीकानेर ॥ १५ ॥

४—जैस पाव बीधा कुल तोडर, मगड बाध ते जैसलमेर ॥१५॥

५—पन पुरख अिपीसर परम पुरायरा, जा मर तुं करे जिवार।
वेद विवरतां बीक-बीदा-धर, कोवादे चैन पहुंचे वार ॥१६॥

हुआ कहता है कि देवता उसका अभिषेक करें और लोक-जिह्वा पर उसका अमर यश हमेशा तैरता रहे।[1]

कलापक्ष :

काव्य की भाषा साहित्यिक डिंगल है। वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। साधारण और असाधारण दोनों प्रकार के उदाहरण देखे जा सकते हैं:-

साधारण :

(१) कण डोरा ऊपरे कंगल (१)
(२) तो समवडी गयो सुरताण (८)
(३) ते रावतां मुहे गुजरात (६)

असाधारण :

(१) ते यांधिया तिके विहु पानें (१)
(२) नवमें वरस वजवजीयो नव खंड (३)
(३) लोप रणावे रांण (८)

अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकार ही विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं।

युद्ध मे अकेले बढ़ते हुए रायसिंह को कवि ने पहाड़ की तरह बतलाया है-

'इकतिया रयड़ अचल मोर ते' (१०) तो वीर रस में साक्षात भीम 'राव भीवों नू होज' (१७) रायसिंह यदि क्षीर सागर 'खीर रस रासा' है तो अन्य राजा अपने कर्मों के कारण खारे कूप 'कुत पाले खारा इन कूप' (१७)

भाले के प्रहार से रक्त धारा प्रवाहित होने की कल्पना माटी से अर्क निकलने के साथ कितनी सुन्दर बन पड़ी है -

कूंत वगतरे योटि काढियो, धरह रगत ज्यों भाटो धार ॥१०॥

और तलवार संचालन की त्वरा का परिणाम तो देखिये -

उरझारन सरस कटकनी आगड़ते, भारटो कियो वडो मारांण।
राड़ विनाड़ चाढीया रासै, मुगल धड़ोधड़ भीध मसाण ॥१२॥

रायसिंह की स्वामिभक्ति 'मंर वडोनु साम संनाह' (१३) कहकर व्यक्त की है तो रणवीरता 'रिणमालधर अमंद वाधीया राम (१५)
कहकर।

१—[illegible] ।
[illegible] ॥८॥

कहीं-कहीं लाक्षणिक प्रयोग भी देखने को मिलते हैं–

(१) प्रिथीतणी जदि भागी पालम, तुरां सा ग्रस चढ़े तयार ।।५।।
(२) मुहि ग्रागलें ग्रावीयो न मरै, राजा महिरवांन राजांन ।।२८।।
(३) संघ सनाढ राखीयो सरणै, सरणै नह राखीयो समंद ।।२६।।

छन्द :

वेलियो ग्रौर खुड़द साणोर का प्रयोग हुग्रा है। ग्रधिक संख्या वेलियो की ही है।

उदाहरण :

(१) वेलियो :

रणजीत दईत रुक हाथ रासा, मेर महाधण ग्रमलो मांण।
ग्रवस हुवै जीता तो ग्रागल, संमहर जिता करै सुरताण ।।१४।।

(२) खुड़द साणोर :

पित भगत रायसंघ भगत परम गुरु,
ग्रांणां वरतावण ग्रदल।
तै बांधिया तिके बिहु पानें,
कण डोरा उपरे कंगळ ।।१।।

(७) राउ रतन री वेल[1]

प्रस्तुत वेल बूंदी के हाड़ावंशीय राव राजा रतनसिंह से संबंध रखती है। रतनसिंह भोज के ज्येष्ठ लड़के थे। संवत १६६४ के ग्राषाढ़ शुक्ला चतुर्थी को भोज की मृत्यु होने पर ये गद्दी पर बैठे[2]। इन्होंने जहांगीर के दरबार में ग्रपने पिता से भी ग्रधिक यश ग्रौर सम्मान प्राप्त किया। ये 'सर बुलन्दराय' ग्रौर 'राम राज'

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम ग्राया है—
'गीत मे वेलि कवित्त मे गाहा, धाजै विरद वाधीये छंद' (११५)
(ख) प्रति-परिचयः– प्रस्तुत वेल सावलदान ग्रासिया (उदयपुर) के निजी गुटके में प्राप्त हुई है जो उन्होने साहित्य-संस्थान उदयपुर (क्रमाक १७१६) को भेंट कर दिया है। इस गुटके मे ग्रनेक राजस्थानी कवियो की कविताएं संगृहीत हैं। प्रति जीर्ण ग्रवस्था में है। कुल ४७३ पन्ने हैं। प्रारंभ के ८५ पन्ने गायब हैं। ६७ से १०१ पन्नों मे ग्रालोच्य वेलि ग्रंकित है। प्रति का ग्राकार १०"×१२" है। प्रत्येक पृष्ठ मे १६ पंक्तियां हैं ग्रौर प्रत्येक पंक्ति मे ३५ से ३७ तक ग्रक्षर हैं।

२—राजस्थान जिल्द २ः टाडः पृ० ५२०-२१।

की उपाधियों से अलंकृत हुए[१]। इन्हें केसरिया निशान और नक्कारे आदि शाही चिन्ह प्राप्त हुए। ये अपनी वीरता के लिए जितने प्रसिद्ध थे उतने ही न्यायशीलता के लिए भी। खुर्रम के विद्रोह में इन्होंने बादशाह को यथेष्ट सहायता दी जिससे ये साम्राज्य के स्तंभ माने जाने लगे[२]। संवत १६८८ में गोदावरी नदी के किनारे इनकी मृत्यु हुई[३]।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता कल्याणदास १७वीं शती के उत्तरार्द्ध के कवियों में से थे। ये मेहडू शाखा के चारण डिंगल के प्रसिद्ध कवि जाडा[४] मेहडू के पुत्र थे। कल्याणदास जोधपुर के महाराजा गजसिंह (संवत् १६७६-१७९५ शासन-काल) के कृपा पात्रों में से थे। इनकी काव्य-प्रतिभा से प्रभावित होकर महाराजा ने इन्हें 'लाख पसाव' प्रदान किया था[५]। इनका लिखा हुआ कोई ग्रंथ नहीं मिला है पर फुटकर गीत, निशानियाँ और कवित्त पर्याप्त मात्रा में मिले हैं। इन गीतों में जो नायक आये हैं उनमें प्रमुख है–राजा गजसिंह (जोधपुर–१६७६-१७९५ शासन काल), राजा भावसिंह कछवाहा (आमेर–१६७१-१६७८ वि० शासन-काल), राणा भीम (टोडा-मृत्युकाल १६८१), राव रतनसी (बूंदी-शासनकाल १६६४-१६८८)। अन्य नायकों में मानसिंह परमार, दलपति सकताउत, करमसेन अगरसेनोत, राउत नराइणदास, वलू कान्हाउत के नाम गिनाये जा सकते हैं।

रचना-काल :

वेल में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है न पुष्पिका में ही कुछ लिखा है। वेलि को पढ़ने से ज्ञात होता है कि इसमें बूंदी के राव रतनसी का चरित्र वर्णित है। रतनसिंह के कंवरपदा में काशी के समीप चरनाद्रि स्थान पर शरीफखां के साथ हुए युद्ध का भी वर्णन किया है। रतनसी का शासन काल वि०सं० १६६४ से १६८८ रहा है। इसी के आसपास इस वेल की रचना हो सकती है।

१—कोटा राज्य का इतिहास : प्रथम भाग, डा० मथुरालाल शर्मा पृ० ८५

२—सागर फूट्यो जल बह्यो, अब की करो जतन्न।
जातो गढ़ जहांगीर को, राख्यो राव रतन्न॥
राजस्थान-टाड: द्वितीय भाग, पृ० ५२१ पर उद्धृत

३—वंश प्रकाश : गंगासहाय द्वारा संपादित और लखनऊ के नवलकिशोर जी के यंत्रालय में पं० प्यारेलाल जी द्वारा प्रकाशित : दिसम्बर सन् १८७६, पृ० १३३-३४।

४—जाडा का वास्तविक नाम आसकरण था परन्तु स्थूल शरीर होने के कारण उसको लोग 'जाडा' कहा करते थे। प्रवाद के अनुसार ये रहीम के समकालीन थे।

५—वीर-विनोद : द्वितीय भाग, पृ०८२०

रचना-विषय :

यह १२३ छंदों की रचना है। इसमें बूंदी के राव राजा रतनसिंह का चरित्राख्यान वर्णित है। प्रारंभ के दो कवित्तो[1] में सरस्वती[2] और गणपति[3] की वन्दना की गई है। तत्पश्चात् वेलि-छंद मे राम, शिव, आदि का स्मरण कर वस्तु की ओर संकेत किया गया है[4]। नायक के प्रवाड़ों की असीमता के आगे कवि अपनी अक्षमता प्रकट करता है[5]। तदनन्तर बूंदी के हाड़ा-राजाओं की वंशानुगत विरुदावली गाता हुआ कवि कहता है कि देवीसिंह (देवसिंह) ने युद्ध मे शत्रुओं के दांत खट्टे किये, समरसिंह ने समर-क्षेत्र मे लाख गुणा जौहर दिखलाया, नापा (नरपाल) ने कीर्ति का विस्तार किया, हामां (हम्मीर) और वरसिंह दोनों सिंह-तुल्य बली थे, वैरीसाल ने वैरियों से बदला लिया, भाडा ने अपनी कटार का चमत्कार दिखलाया, नारायणदास और नरबद ने युद्धों के द्वारा आतंक फैला दिया, सूरजमल ने सूर्य की तरह तेजस्विता दिखलाई, सुरताण वीरों का पति सिद्ध हुआ, अर्जुन सचमुच अर्जुन का अवतार था, सुर्जन महा प्रतापी और मर्यादा का रक्षक था, दूदा और भोज वीरता मे एक दूसरे से बढ़कर थे। इन्हीं भोज के पुत्र राव रत्नसिंह रत्न की तरह प्रकाशमान थे[6]।

१—राजस्थानी पिंगल मे कवित्त छप्पय को कहते हैं।

२—इल् कसमीर निवास अने कोइलै चाचरि,
उदयगिरि अस्तगिरि धरा ब्रह्मंड सर भरि।
धमला कुंडल वसन रथ्य धमला धमलामत्ति,
आतम भातम सकति वेद गेयत्ति ब्रहंमति॥
माहेस वेस अंग आवरति माणं सरि रमतो रती।
काइत्र प्रमाण बंधिसि कहिसि सा सु प्रसंनवी सरसतो॥

३—गय डंडीयल कमन्द मेक भल हल दंताल,
सुडंल लवल विमल सद्धि वर बुद्धि भुवालं॥
प्रथम नाम उचरै जान कोइ काम कलासँ,
संहं आरंभा तिलक नको कहता समासँ॥
माहैस हूंत अपति सुमति गुणसागर दीरघ ऊमर।
कवि सुमति उकती अखिर कहिस तोइर भणि गणेसवर॥

४—कवि सरिसो मात प्रणाम दयि कित, मंडो तिणि मंडो मिलणि।
रूपक कुल चहूआण, रतनसी, भुजबल वाखाणा भुमणि॥ ६॥

५—कपि कमण पहूंचे सिहरे बल करि, गुण चोरै असमाण करि।
पूरा कवि रतनसो प्रवाड़ा, एकणि जिणि कहिजै अखिरि॥ ७॥
केमतो जाइ रतन महातम कहिये, ए ऊपहास करण आपाण।
एर ऊडप सों बधे आतम, मापै उलरिवो महिराण॥ ८॥

६—(क) राउ रतन री वेलः छंद संख्या १० से ३६
(ख) वंश प्रकाशः पृ० ६३ से १३४

राव रतनसी के जन्म होते ही सर्वत्र आनन्द छा गया[1]। वह वेद मर्यादा का रक्षक, ब्रह्म-पूजा का प्रतिपालक, और भीम के समान वीर, कर्ण समान दानी तथा पर-दुख मे विक्रम के समान दयालु था[2]। वह चतुर्वेद प्र पटभापा का जानकार था। व्याकरण, पुराण, स्मृति ज्योतिप, कला, यम, नि आदि सभी प्रकार की विद्याओं में पारंगत तथा यौगिक क्रियाओं में सिद्धहस्त था कोकशास्त्र, संगीत शास्त्र, और पाकविद्या मे दक्ष था। उदारता, दया और प्रसन्न उनके रग रग में व्याप्त थी[4]। वह शारीरिक पराक्रम में भी किसी से पीछे न था कंवरपदे में ही काशी के समीप चरनाद्रि स्थान पर उसने शरीफखां का वध किया और बुरहानपुर मे खुर्रम के विद्रोह को दवाया। उसकी यशोगाथा देव, दानव, ना यक्ष तथा किन्नर-लोक में भी पहुँच गई। सातों द्वीप और सातों समुद्र उसकी की से दीपित हैं। कामरूप, बंगाल, महाराष्ट्र, मेवाड़, बागड़, गुजरात, सोरठ, सि पंचनद, जालंधर, काश्मीर, गाधार, कंबोज, समरकंद, काबुल आदि सभी प्रदेशों उसकी गाथाएँ गाई जा रही हैं। वह गीत, कवित्त, गाथा, नीसाणी, दूहा, कुंडलिय आदि सभी छंदों मे रमा हुआ है।[5]

१—सदभुज जराहज अंडज इंडिज, आश्रम च्यारि वरण आधार।
जाण सचर नर थावर जंगम, उदयो रतन महा मनुहार ।। ३८ ।।

२—वेदा मरजाद राखीये वीर्य वह, पूजा ब्रह्म सबल प्रतिपाल।
करणे धरम पराक्रित कांने, रतन जतन छत्र वट रख पाल ।। ४० ।।
करण दोरै भीखम मरिजाद करणे, मुख मै धरम दुजो भरणमाण।
दाताँ करन वीक्रम पर दुख मै, ध्रोहम भार जिम सेख बखाण ।। ४१ ।।

३—चत्र वेद राग खट भाखा चित्त मै, गमि नव व्याकरणं दस ग्रंथ।
रीति चतुरदस गुण चौरासी, प्रीति पुराण अठारह पंथ ।।४३।।
सास्त्र मै च्यारि अठारह संध्रिति, जोतिष कला बहुतरी जाण।
लक्षण बतीस छत्तीस इ लोहा, चित धाठीमां राउ चहूमाण ।।४४।।
जमि नियम प्राण प्रतिहार जोग मैं, धारण आसण ध्यान समाधि।
पंच साठे आदर धातना, मुद्रे कलै राखीया साधि ।। ४५ ।।
खट चक्र मै रीति अधादह सोहम, त्रिय सखि पंचे ब्योम तरीक।
सिह ब्रह्मांड चे ब्रमु जिमणाण, मन जाण गर रयण मयरीक ।।४६।।
एहा मै पंच द्वार नव म तरीक, मुनि छीन पंच देह सति।
दसर कुदुंब पत्र इंडी, मूरह रा भेदम सुमति ।।४७।।

४—पीर कोक संगीत पंग पारीक्षा, दया प्रसन्नता तेज दीर्ये।
उदारता, कर नै परदुख, सदा रागे नह वाल धरै ।।५१।।

५—(क) करणाट बंगि बुड्ढो धन थानरि, इंद्र रतनसी भारि प्रवाह।
भोर अटेक टग्गा दन साथ, दा जग बात न आर्यं नेह ।।७१।।
(ख) वध-प्रकाश: पृ० १२१

६—छन्द १०७ से १२०

कला-पक्ष :

कवि काव्य के शास्त्रीय लक्षणों से सुपरिचित है। उसमें वर्णन शक्ति का चमत्कार और विवरण शक्ति का शिल्प है।

काव्य की भाषा विशुद्ध साहित्यिक डिंगल है। उसमे ओज, प्रवाह और बल है। गिरि-निर्झर की तरह उसका बहाव देखिये –

> धारू जल धार बलकि सिरि धड़ धड़, वल वल किरि वादल मे वीज।
> ऊजळ छंट रयण ओवड़ीयो, भूतल खल रहीया रत भीज ॥७७॥
> कुंभायल गड़ा दड़ा जिम कीजै, हाड़ घड़ा कुट कड़ा हूवा।
> रिणं मेंछड़ा छड़ा सीरूके, जाइ तड़ामं कड़ा जूवा ॥७८॥

रतनसी की वीरता का वर्णन आलंकारिक शैली में किया गया है। वह अपनी धाक से समुद्र को हिला देने वाला है 'मारे हीलोले महण'। पृथ्वी पर आसमान टूट पड़े तो उसे कोई चिन्ता नहीं –

> इल माथै त्रुटि पड़े जो अंबर, कोई अनि वीर न धीर करै।
> नरवद हरा तणौ जगि निहंचौ, र जीवतो करगि धरै ॥५६॥

उसमें ताकत इतनी कि 'मेर उपाड़ि भाड़ि पल मांही, अलगे धरे रयण असहाय'। यहां तक कि सूर्य और चन्द्र भी ग्रहण के समय उसके आगे दीन बनकर सहायता के लिये प्रार्थना करते हैं –

> सूरिज ससि करै पुकार रयण सौं, ग्रहण अनाथां जेम ग्रहे।
> विजड़े राउ तणा ऊपर वलि, राहु तणौ डर न क्यो रहै ॥६१॥

वह इतना वीर और साहसी है कि –

> 'कालंनल भोज तणौ कांधालो, मछरालो सूंडालां मार।
> दंताला सूंडालां दो भ्भि, गलाले मडे गुंजार ॥६२॥
> कूंभायल फोड़ै औड़ै काधा, मोड़े नो जोड़ै गजमार।
> कुण रोड़े जोड़े काधालो, विछोड़े विण खूटी वार' ॥६३॥

रतनसी की शरणागत वत्सलता मे कवि ने पौराणिक प्रसंग 'गज-ग्राह' का आश्रय लिया है –

> 'गज ग्राह सुभट सम्वर वे गिलतां, सुणै पुकार गरूड़ तजि साथ।
> ऊवेलिया आपणां आरति, दोड़ीयो रयण देव जगन्नाथ ॥६२॥

तो दानवीरता के वर्णन मे लक्ष्मी-सरस्वती का –

> मातंग तुरंग रुकमनै मोती, समपै करि सासण सिर ताज।
> लिखमी सुकवि सरसती लागो, आणै रतनि मेदियो आज ॥१०३॥

उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा का प्रयोग जगह जगह हुआ है।

उपमा :

(१) दखिणाध धड़ा माथे दोपहरी, रुके वालण जूथ रिमं।
राउ चहुग्रांण रतन रिण ग्रंगणि, तपीयो ग्रीखम सूर तिम ॥६५॥

(२) अकबर पतसाह महण जल ग्रारिख, ग्रनि पह तप वोनीया ग्रनीति।
माहे थको भोज माटीपण, राउ रहीयो वड़वानल रीति ॥३५॥

रूपक :

भोज को उदयाचल और रतनसी को सूर्य कहना ऐतिहासिक दृष्टि से भी संगत है –

उदयगिर भोज धरीम एकाणवि, वधीयो खट ग्रीसां वयण।
किरण सहस ध, रुख सूरिज ऊगो रयण ॥३६॥

युद्ध-वर्षा-रूपक सुन्दर बन पड़ा है। संग्राम स्थल नदी, दोनों सेनाएँ नदी के दो किनारे और रक्तधार जलधारा तथा रतनसी बादल –

सलिता संग्राम सुतट दोइ सेना, गति जल रुहिर लहर गज गाह।
करपे मीन चोहूर मैं काफो, वहे धार ग्रदभुत मेवाह ॥८४॥

इसी प्रसंग को इस ढंग से आगे बढ़ाया है कि बीभत्स दृश्य भी रम्य बन गया है –

'पल पंक फेण धज उसनी पड़ीया, कूरम तुरस टोप सिर कोड़ि।
वड फर घनरव ग्रावरत वणीया, जरद पड़े ग्रोहालां जोड़ ॥८५॥
मकरा मय पड़ा हंस हंसा मे, वग मे ग्रीध मोर महसाद।
पल चर रातल दादुर पंखी, साथ ग्रनेक भयानक साद ॥८६॥
मातंग कमल सिर नान्हा मोटा, पड़ीया कण माला पांस।
ग्राहं नीके जम ग्रर बिंदां, वणीया तरण खत्री मै वांस ॥८७॥
पणिहारि सकति माली ऊमापति, करिवा कमल माल चै काम।
नव गति ग्रच्छर हूर तिणि नदि चै, वरण मरण जल-तट में वास' ॥८७॥

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। इसके साधारण और ग्रसाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं –

साधारण :

(१) सुखम गुण वैराट सरीर (२)
(२) धमल रूप बलवंत सधीर (१६)
(३) धारण ग्रासण ध्यान समाधि (४५)

असाधारण :

(१) काड़ीसउ कटार मलि (१५)

(२) राउ राउत्तां मुहर रुक हुय (६३)

छन्द :

वेलियो और सोहणो का प्रयोग हुआ है। प्रारम्भ के दो और अन्त का एक कवित्त (छप्पय) छंद है।

उदाहरण :

(१) *वेलियो :*

पुहपां में अरथ सुजस फल नै पति, ऊगी मुख कवि तणी असीस।
सुरतर रयण जगत सिरि सोहै, सोहै वेलि फलीजे सीस ॥१२०॥

(२) *सोहणो :*

बंधव अगजीत महाबल बेऊं, कहर कड़खिया सेन कटै।
धर राजवट सरिता धणीयप, घटे न दूदो भोज घटै ॥२६॥

(८) सूरसिंघ री वेल[1]

प्रस्तुत वेल बीकानेर के महाराजा सूरसिंह से सम्बन्ध रखती है। उनका शासन समय वि० सं० १६७०-८८ है। सूरसिंह रायसिंह की दूसरी रानी गंगा (जैसलमेर के रावल हरराज की पुत्री) के पुत्र थे। रायसिंह ने दलपतसिंह के ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी सूरसिंह को उत्तराधिकारी बनाया पर बादशाह जहांगीर ने दलपतसिंह को ही मान्यता दी। आगे चलकर जहांगीर दलपतसिंह से रुष्ट हो गया और उसने दलपतसिंह को कैद करके राज्य सूरसिंह को दे दिया। सं० १६७० मे वह गद्दी पर बैठा।[2]

कवि-परिचय :

इसका रचयिता गाडण चोला (जिसे चौथजी भी कहा जाता है) महाराजा सूरसिंह के पास 'वेत्र' नामक ग्रंथ की रचना करने के लिए आया था। महाराजा

१—(क) मूल पाठ में वेलि या वेल नाम नहीं आया है पुष्पिका में लिखा है 'इति महाराज श्री सूरसंघजी री वेल संपूर्ण'

(ख) प्रति-परिचयः— इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के गुटके १२६ (ख) मे सुरक्षित है। प्रति का आकार १०½"×७" है। यह १½ पत्र मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे ३२ पंक्तियां हैं और प्रत्येक पंक्ति में २४ अक्षर हैं। प्रति की अवस्था अच्छी है।

२—बीकानेर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड : ओझा, पृ० २११

ने इसे डांडूसर मय ६ गांव तथा एक लाख पसाव प्रदान किया।[1] गाडण चारणों की गोत्र विशेष है। कवि के वंशज बीकानेर के सडू ग्राम में अब भी विद्यमान हैं।

रचना-काल :

वेल में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। मूंदड़ा राजरूप और किशोर ने सं० १७६७-१८११ के बीच देशनोक में इसे लिपिबद्ध किया। कविराजा श्यामलदास के अनुसार वि० सं० १६७२ में इस वेल की रचना हुई।[2]

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेल ३१ छंदों की रचना है। इसमें बीकानेर के महाराजा सूरसिंह की विरुदावली गाई गई है। प्रथम छंद में कवि ने सुरपति, सरस्वती तथा गणेश की वन्दना करते हुए वस्तु का संकेत किया है।[3] आगे के तीन छंदों में सूरसिंह के व्यक्तित्व की विशेषताएँ प्रकट करते हुए उसे गढ़ वीकपुर (बीकानेर) रूपी उदयाचल पर उदित होने वाले सूर्य से उपमित किया है। तत्पश्चात् ५ से १४ छंद तक सूरसिंह के पूर्वजों का वर्णन है। १५ से ३० छंद तक विविध उपमानों के साथ सूरसिंह की अन्य राजाओं के साथ तुलना की गई है।[4] अन्तिम छंद में युगयुगान्तर तक प्रकाशित रहने का आशीर्वाद दिया गया है।[5]

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा विशुद्ध डिंगल है। उसमें ओज, माधुर्य और प्रवाह है। भाषा का स्वच्छंद प्रवाह देखिये –

> महि रूपक सूर रूप वल मंडण, रूप चडावण नर नयण।
> रूप छतीस वंस रा सावत, भूप रूप तीजे भवण ॥२॥

१—तवारीख राज श्री बीकानेर: मुंशी सोहनलाल, पृ० १४१

२—वीर विनोद, पृ० ४६२।

३—सुरपति कूं प्रणम समदमति सरसति, दे मति गुणपति वयण दुणि।
दखि सुरपति सूर उदयाचलि, गढ़ वाकारणा मेर धणि ॥१॥

४—सपहृद सधर पड़ इन भर गिरवन, मेर महण घण सुरमाल (१८)
धरपति सधर अंबरा मंगुर्धर, सूर विरद घन सद्दन-धण (२०)
सुरपति सधर समर ईसदा, मेड़ सुरह चित सागर धीर (२१)
वन नरिंद सधर दार नर जानरि, जणि सुरसमत मंग उल (२२)
टार, कधीर काव ईन सुरपति, हेम, हींद, नग डेंगहर (२३)
समर उधार वार पारिख सुज, धेर रखे जेसा फेर।
बहू कनटला धन्न पड़ कीया, सूर करन धन दान मेर (२४)
रख अब रंग कीना बँधा पद, सुरवर दंग कन सुज (२५)

५—सायर धर अंबर सूर विद सविहद, जब नर अंबर धनरह नाम।
रिध अन्न देव बध हरि इंद कद, सूजा प्रसाद सूर धन नाम (३१)

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं –

साधारण :

(१) मेर महण धण सूरज माल (१८)
(२) लहरी दन दीयण वरस जग रेलण (१८)
(३) रूप छतीस वंस संणगार (१६)

असाधारण :

(१) मेघाडम्बर छात्र मांडीये छत्रपति (१५)
(२) सूर सहस कर सहस बल (१५)

अन्य अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप आदि प्रयुक्त हुए हैं।

छंद :

कवि ने छोटे साणोर के भेद वेलियो और खुड़दसाणोर का प्रयोग किया है।

उदाहरण :

(१) *वेलियो* :

लहरी दन दीयण वरम जग रेलण, प्रसिध अडिग मोटिम अणमाल।
अरहट अवर पह इन सर गिर यन, मेर महण धण सूरजमाल ॥१८॥

(२) *खुड़दसाणोर* :

भव पातग रोर दलिद जाहि भाजे, करता दान सनांन कल।
जल नदि अवर नर जामलि, जगि सूरज मल गंग जल ॥२२॥

(६) अनोपसिंघ री वेल[1]

प्रस्तुत वेल बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह से सम्बन्ध रखती है। अनूपसिंह बीकानेर के उन राजाओं में से थे जिन्हें दुर्गा के साथ साथ सरस्वती का भी वरदान प्राप्त था। ये महाराजा कर्णसिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे। पिता की विद्यमानता में ही

१—(क) मूल पाठ में वेलि या वेल नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है 'इति कुंवर श्री अनोपसंघ जी री वेलि संपूर्ण'

(ख) प्रति-परिचय:-इसकी प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर के गुटके नं० १२६ (घ) में सुरक्षित है। प्रति की अवस्था अच्छी है और आकार १०½"×७" है। सम्पूर्ण वेलि दो पत्रों में लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में ३२ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में २४ अक्षर हैं।

बादशाह औरङ्गजेब ने इन्हें दो हजार जात एवं डेढ़ हजार सवार का मनसब प्रदान कर बीकानेर का राज्याधिकार सौंप दिया था[1]। वि० सं० १७२६ में अपने पिता की मृत्यु के बाद ये गद्दी पर बैठे[2]। ये स्वयं संस्कृत के पंडित थे। इन्हें ग्रंथ संग्रह का बड़ा शौक था। बीकानेर की वर्तमान अनूप संस्कृत लायब्रेरी-जिसमें लगभग २०,००० हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह है-इनकी ही कृति है। दक्षिण के अभियानों में इन्होंने संस्कृत के अमूल्य और दुष्प्राप्य ग्रंथों का संग्रह किया। विद्वानों और कवियों के ये बड़े प्रशंसक तथा आश्रयदाता थे। इनके दरबार में कई कवि रहा करते थे[3]।

कवि परिचय :

कवि ने वेल में कहीं भी अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है। शीर्षक-'महाराजा श्री कुंवर श्री अनोपसंघ जी री वेल गाडण वीरमांण ठाकुरसीयोत कहै' से सूचित होता है कि कवि का नाम वीरभांण है। वह गाडण गोत्र का चारण है। ठाकुरसीयोत से ज्ञात होता है कि वह ठाकुरसी का पुत्र या वंशज रहा है। कवि चरित्र नायक का समकालीन था। और बीकानेर राज्यान्तर्गत सडू ग्राम में रहता था।

रचना-काल :

वेल में कहीं भी रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। सम्पूर्ण गुटके को देखने से पता चलता है कि इसे मूंदड़ा राजरूप और किशोर ने संवत १७६७ से १८११ में देशनोक में लिपिबद्ध किया था। कवि वीरभांण अनूपसिंह का समकालीन था। 'महाराजा श्री कुंवर श्री अनोपसंघ जी री वेल' से सूचित होता है कि उसने इस वेल की रचना अनूपसिंह कुंवरपने में ये तभी की थी। इससे अनुमान है कि इसका रचना-काल अनूपसिंह के राज्याभिषेक वि० सं० १७२६[4] से पूर्व रहा हो।

रचना-विषय :

४१ छन्दों की यह वेल अनूपसिंह की प्रशंसा में लिखी गई है। प्रथम छन्द में सरस्वती और गणेश की वन्दना करते हुए वस्तु की ओर संकेत किया गया है[5]। २ से लेकर २१ छन्द तक चरित्रनायक की विशेषताएँ वर्णित हैं। २२ से ४१ छन्द तक आदिनारायण से लेकर अनूपसिंह तक की वंशावली का उल्लेख है।

१—बीकानेर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड : ओझा, पृ० २४४

२—वही : पृ० २५४

३—वही : पृ० २८०-८७

४—वही : पृ० २११

५—सरसति कूं प्रसन समरि झाखर सिध, गणपति आयो मोहि गण।
मानों इमट त्याग नित ईवा, तिजड़ साहिबै करण-तण ॥१॥

कवि के कथनानुसार अनूपसिंह अमिट त्यागी और तलवार का धनी है [१]। उसका तपोपुंज व्यक्तित्व सूर्य की तरह है जिसके उदित होते ही शत्रु रूपी तारे अस्तित्व रहित हो जाते हैं [३]। आश्रय-स्थल [२] एवं कवि रूपी चकवों के लिए किरणमाल है [४]। प्रतिज्ञा-पालन में पाण्डवों की तरह, गति और शत्रु-विनाश में हनुमान की तरह, संयम में यति गोरख की तरह और सत्यवादिता में युधिष्ठिर की तरह है [५]। स्त्रियों के सम्मुख वह समुद्र की तरह प्रशान्त और गम्भीर है तो अपने प्रभाव-प्रभुत्व में हिमालय की तरह उन्नत [६]। वह अनाथों का नाथ और निर्बलों का बल है [७]।

कलापक्ष :

काव्य की भाषा विशुद्ध डिंगल है। वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं–

साधारण :

(१) मोटै चित वखति दान दिए मोटै (८)
(२) कुभ धारियै विरद असंकित (६)
(३) रुति धन सखसांम रावोड़ा सर (२६)

असाधारण :

(१) जोवनास मानधीता जगत भल (२५)
(२) राव जोधे वीके जिसो राय गुरू (४०)

कहीं कहीं पूरी पंक्तियाँ अनुप्रास मंडित हैं—

(१) वडवार वेड व्रहास व्रवण वड (५)
(२) नागर निवड नरेस नीपणां (१७)

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और व्यतिरेक के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१—मानौ इमट त्याग नित ईखां,
विजड़ साहियै करण तण (१)
२—उदियो जेम अरक वडे वंस ओपम,
उढिण अरहर भाजि अधार (२)
३—आचक धोढ़ भ साहियै जड लग (४)
४—कवि चकवा थांनो किरणाल (५)
५—पह पगे करने पाडव पिंण, पहुवि हणू किले वलि पात।
जति गोरख जुजिट्ठल सच जोहा, हयवर व्रवण हिरन वड हाथ (६)
६—सहजा भामणे संपेखित सायर, ऊंचाई गरवत अधिकार (११)
७—नाथण ऊनाथ वरी निबलां बल कुंवर (१३)

बादशाह औरङ्गजेब ने इन्हें दो हजार जात एवं डेढ़ हजार सवार का मनसब प्र
कर बीकानेर का राज्याधिकार सौंप दिया था[१]। वि० सं० १७२६ में अपने f
की मृत्यु के बाद ये गद्दी पर बैठे[२]। ये स्वयं संस्कृत के पंडित थे। इन्हें
संग्रह का बड़ा शौक था। बीकानेर की वर्तमान अनूप संस्कृत लायब्रेरी-जि
लगभग २०,००० हस्तलिखित ग्रंथों का संग्रह है-इनकी ही कृति है। दक्षि
के अभियानों में इन्होंने संस्कृत के अमूल्य और दुष्प्राप्य ग्रंथों का संग्रह कि
विद्वानों और कवियों के ये बड़े प्रशंसक तथा आश्रयदाता थे। इनके दरबार में
कवि रहा करते थे[३]।

कवि परिचय :

कवि ने वेल में कहीं भी अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है। शीर्षक
'महाराजा श्री कुंवर श्री अनोपसंघ जी री वेल गाडण वीरभांण ठाकुरसीयोत री
से सूचित होता है कि कवि का नाम वीरभांण है। वह गाडण गोत्र का चारण है
ठाकुरसीयोत से ज्ञात होता है कि वह ठाकुरसी का पुत्र या वंशज रहा है। क
चरित्र नायक का समकालीन था। और बीकानेर राज्यान्तर्गत सड़ू ग्राम
रहता था।

रचना-काल :

वेल में कहीं भी रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। सम्पूर्ण गुटके को देखने
से पता चलता है कि इसे मूंदड़ा राजरूप और किशोर ने संवत १७२७ से १८११
में देशनोक में लिपिबद्ध किया था। कवि वीरभांण अनूपसिंह का समकालीन था।
'महाराजा श्री कुंवर श्री अनोपसंघ जी री वेल' से सूचित होता है कि उसने इस वेल
की रचना अनूपसिंह कुंवरपने में थे तभी की थी। इससे अनुमान है कि इसका
रचना-काल अनूपसिंह के राज्याभिषेक वि० सं० १७२६[४] से पूर्व रहा हो।

रचना-विषय :

४१ छन्दों की यह वेल अनूपसिंह की प्रशंसा में लिखी गई है। प्रथम छन्द
में सरस्वती और गणेश की वन्दना करते हुए वस्तु की ओर संकेत किया गया है[५]।
२ से लेकर २१ छन्द तक चरित्रनायक की विशेषताएँ वर्णित हैं। २२ से ४१ छन्द
तक आदिनारायण से लेकर अनूपसिंह तक की वंशावली का उल्लेख है।

१—बीकानेर राज्य का इतिहास : प्रथम भाग : ओझा, पृ० २५४

२—वही : पृ० २५८

३—वही : पृ० २८०-८७

४—वही : पृ० २११

५—सरसति हूं समत समरि सारद निज, गणपति ध्यायो मति गज ।
दाता इलम रसाय दिग ईसा, त्रिकर वादि रे करम-कज ।।१।।

कवि के कथनानुसार अनूपसिंह अमिट त्यागी और तलवार का धनी है[1]। उसका तपोपुंज व्यक्तित्व सूर्य की तरह है जिसके उदित होते ही शत्रु रूपी तारे अस्तित्व रहित हो जाते है[3]। आश्रय-स्थल[2] एवं कवि रूपी चकवों के लिए किरणमाल है[4]। प्रतिज्ञा-पालन मे पाण्डवों की तरह, गति और शत्रु-विनाश मे हनुमान की तरह, संयम मे यति गोरख की तरह और सत्यवादिता मे युधिष्ठिर की तरह है[5]। स्त्रियों के सम्मुख वह समुद्र की तरह प्रशान्त और गम्भीर है तो अपने प्रभाव-प्रभुत्व मे हिमालय की तरह उन्नत[6]। वह अनाथों का नाथ और निर्बलों का बल है[7]।

कलापक्ष :

काव्य की भाषा विशुद्ध डिंगल है। वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं–

साधारण :

(१) *मोटै* चित वखांत दान दिण *मोटै* (८)
(२) कुभ धारियै विरद असकित (६)
(३) रुति धन सखसांम रावोडा सर (२६)

असाधारण :

(१) जोवनास मांनधोता जगत भल (२५)
(२) *राव* जोधे वीके जिसो *राय* गुरू (४०)

कही कहीं पूरी पंक्तियां अनुप्रास मंडित है—

(१) वडवार वेड ग्रहास ग्रवण वड (५)
(२) नागर निवड नरेस नीपणां (१७)

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक और व्यतिरेक के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

१—मानी इमट त्याग नित ईखां,
तिजड़ साहियै करण तण (१)
२—उदियो जेम अरक वडे वंस ओपम,
उडिग अरहर भाजि अधार (२)
३—जाचक मोद भ साहियै जड लग (४)
४—कवि चकवा मानी किरणाल (४)
५—पह पगे करने पाडव पिण, पहुवि हणू किले वलि पात।
जति गोरख जुजिस्टल सच जीहा, हयवर श्रवण हिरन वड हाथ (६)
६—सहजा भामणै संपेखित सायर, ऊंचाई गरवत अधिकार (११)
७—नाथण ऊनाथ वरी निबलां बल कुंवर (१३)

उपमा :

(१) उदीयो जेम अरक वडे वंस ओपम (२)

रूपक :

(१) कवि चकवां आंनों किरणाल (५)

व्यतिरेक :

(१) दलरूपक निकलक बीय चंद (३०)

यत्र-तत्र लाक्षणिक प्रयोग भी देखने को मिलते हैं—

(१) पांणे अरहर दालद पाल (३)
(२) चल चल दालिद होइ निमचाल (५)
(३) उदार भार जस भुजे आवरे (१०)

छन्द :

वेलियो और खुड़दसाणोर का प्रयोग हुआ है—

उदाहरण :

(१) वेलियो :

कुवरां मुकट मरण सिरे कंनोजो,
पांणे अरहर दालद पाल।
सलखा हरे सिरे जम जतियां,
दुजड दांन दीयतो दुकाल ॥३॥

(२) खुड़दसाणोर :

लघु वेस नेस ऊपटता लाखा,
कुवरां रूपक सहस्त्र कर।
विगतालो आचार वडालो,
हाथालो राय सह हर ॥१८॥

पंचम अध्याय

चारणी वेलि साहित्य (धार्मिक-पौराणिक)

सामान्य परिचयः

चारणी वेलि साहित्य का दूसरा रूप धार्मिक-पौराणिक है। इसे सुविधा की दृष्टि से दो भागों में बाँट सकते हैं:—

(क) विष्णु सम्बन्धी
(ख) शिव-शक्ति सम्बन्धी

विष्णु सम्बन्धी साहित्य के फिर दो भाग किये जा सकते हैं—

(१) कृष्ण विषयक
(२) राम विषयक

इसी प्रकार शिव-शक्ति सम्बन्धी साहित्य के भी दो रूप हैं:—

(१) शिव विषयक
(२) शक्ति विषयक

उसका रेखा-चित्र इस प्रकार बन सकता है—

धार्मिक-पौराणिक चारणी वेलि साहित्य

- (क) विष्णु सम्बन्धी
  - (१) कृष्ण विषयक
    - (१) क्रिसनजी री वेल
    - (२) ध्रुव धामिक वेलि
    - (३) किसन रुकमणी री वेलि।
  - (२) राम विषयक
    - (४) रघुनाथ चरित नव रस वेलि
- (ख) शिव-शक्ति सम्बन्धी
  - (१) शिव विषयक
    - (५) महादेव पार्वती री वेलि
  - (२) शक्ति-विषयक
    - (६) त्रिपुर सुन्दरी री वेलि
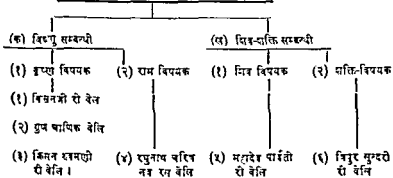
सामान्य विशेषताएँ :

धार्मिक-पौराणिक चारणी वेलि साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्न-लिखित हैं:-

(१) काव्य की कथा का आधार श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण और शिवपुराण रहा है। भक्ति-काल की सगुण-निर्गुण दोनों धाराएँ यहां प्रवहमान हैं। कवियों की दृष्टि कृष्ण, राम, शिव, रुक्मणी, पार्वती और त्रिपुर सुन्दरी पर पड़ी है। कथा के विकास में अलौकिक तत्वों और कथानक-रूढ़ियों का प्रायः सहारा लिया गया है।

(२) कथा-प्रबन्ध में जगह जगह वर्णनों ने स्थान घेर रखा है। अन्य वर्णनों के अतिरिक्त नख-शिख-निरूपण, विवाह-प्रसंग, युद्ध-वर्णन और प्रकृति-चित्रण के स्थल बड़े ही कवित्वपूर्ण और रम्य हैं।

(३) काव्य के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण, कवि का असामर्थ्य, पूर्ववर्ती कवियों का सादर स्मरण और वेलि का माहात्म्य गाया गया है। कहीं-कहीं रचना के अन्त में भी ऐसा किया गया है।

(४) यहां जितने भी पात्र आये हैं वे प्रधानतः दैविक गुणों से सम्पन्न हैं। कृष्ण, राम और शिव के दो-दो पक्ष हैं। ये आदर्श प्रेमी बनकर मानव-लीला करते हैं पर उनके परब्रह्म का स्वरूप भी कम आकर्षक नहीं। कथा के आदि और अन्त में इनका ब्रह्मत्व फैला हुआ है तो कथा के मध्य में लौकिक सद्गृहस्थ का रूप। स्त्री-पात्रों के भी दो रूप हैं। मानवी और देवी। रुक्मणी, पार्वती सौंदर्य और शील की मूर्ति के साथ साथ ब्रह्म की शक्ति भी हैं। त्रिपुर-सुन्दरी देवी के रूप में ही प्रकट हुई है। वह दुष्टों का दमन करने वाली है। प्रतिनायक और अन्य-पात्र उपस्थित होकर संघर्ष पैदा करते हैं। संघर्ष का अन्त पाणिग्रहण संस्कार, पुत्र-जन्म और दुष्टों के दमन के साथ होता है।

(५) कथा-प्रबन्ध (क्रिसन रुकमणी री वेलि और महादेव पार्वती री वेलि) में अङ्गी रस संयोग शृंगार है। दूसरा प्रमुख रस वीर रस है जिसके सहायक बनकर ही वीभत्स, भयानक और रौद्र आये हैं। अन्य रसों की भी यथावसर अवतारणा की गई है। इन वेलियों के अन्त में शृंगार रस लौकिक धरातल छोड़कर धीरे धीरे भक्ति-रस में पर्यवसित हो जाता है। मुक्तकों (गुण चाणिक वेल, त्रिपुर सुन्दरी री वेलि) में तो भक्ति की ही प्रधानता है।

(६) काव्य-रूप की दृष्टि से इस साहित्य के दो रूप हैं। प्रबन्ध और मुक्तक। प्रबन्ध को सर्गों या काण्डों में विभक्त नहीं किया गया है। फिर भी उसमें कथा-विस्तार और अन्य वर्णन-स्थल हैं जबकि मुक्तक में केवल स्तुति मात्र। 'गुण चाणिक वेलि' में [illegible] काव्यों का [illegible]। [illegible] भक्ति का शुद्ध स्वरूप भी प्रकट किया गया है।

(७) वर्णन-स्थलों एवं प्रकृति-चित्रण में राजस्थान के स्वाभाविक प्रभावों ([illegible]) का सुन्दर दिग्दर्शन इस साहित्य की विशेषता है।

(८) काव्य की भाषा प्रधानतः साहित्यिक राजस्थानी (डिंगल) है। यों चलते हुए 'रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि' के उत्तरार्द्ध मे व्रज भाषा का भी प्रयोग हो गया है। 'त्रिपुर सुन्दरी री वेल' सपूर्ण चारणी वेलि-साहित्य मे एक मात्र ऐसी कृति है जो बोलचाल की सरल राजस्थानी मे लिखी गई है और जिसमे न तो वयणसगाई अलंकार का प्रयोग किया गया है न 'वेलियो' छन्द का हो। भाषा मे माधुर्य और ओज गुण की प्रधानता है। शब्दालङ्कारों और अर्थालङ्कारों का खुलकर प्रयोग हुआ है। कहीं कहीं तो एक-एक छंद में चार-पांच अलङ्कार भी आये हैं।

(६) छन्द की दृष्टि से 'छोटा साणोर' अपने तीनों भेदों-वेलियो, सोहणो, खुड़द साणोर-मे प्रयुक्त हुआ है। जहाँ व्रजभाषा का प्रयोग हुआ है वहाँ छप्पय, कुण्डलिया, दोहा, चौपाई, सवैया, कवित्त, त्रोटक, नाराच, निसाणी आदि भी आये हैं (रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि तथा त्रिपुर सुन्दरी री वेलि मे) उपलब्ध प्रमुख वेलियों का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) किसनजी री वेलि[१]

शीर्षक को देखते हुए प्रस्तुत वेलि का सम्बन्ध कृष्ण से प्रतीत होता है पर वास्तव में इसका वर्ण्य-विषय रुक्मणी का नख-शिख वर्णन है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता साखला करमसी रुणेचा हैं। ये साखला जाति के राजपूत थे। 'रुणेचा' शब्द मे सूचित होता है कि इनका वंश मूलतः रुण नामक स्थान से उठा था। नैणसी की ख्यात के अनुसार ये राणा सीहड के द्वितीय राजकुमार वच्छा के वंशजों मे से थे। उदयपुर के महाराणा उदयसिह तथा बीकानेर के राव कल्याणमल के ये समकालीन थे। डा० सावित्री सिन्हा ने इस वेलि के रचनाकार के सम्बन्ध में भ्रामक मत दिया है 'राव योधा की सार वाली रानी-कृष्णजी री वेलि'

१-(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही आया है। पुष्पिका मे लिखा है 'इति सांखुल करमसी रुणेचा कृत श्री कृष्णजी री वेलि'

(ख) प्रति-परिचयः-इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के गुटके नं० ६६ (ड) मे सुरक्षित है। प्रति की अवस्था पानी पड़ जाने के कारण कुछ खराब हो गई है। आकार ६$\frac{3}{4}$"×५$\frac{1}{2}$" है। दो पत्रो (२५७-५८) मे यह लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे २० पंक्तियाँ हैं और प्रति पंक्ति मे २२ अक्षर हैं।

(ग) वर्तमान लेखक ने इसे प्रकाशित किया है : मरुवाणी : वर्ष ४ अङ्क १२ (दिसम्बर, १९५६), पृ० ३-५

के नाम से डिंगल काव्य में अनेक रचनाएँ की गई। इसी नाम की एक हस्तलिखित प्रति की रचयिता श्री टैसीटोरी ने इस रानी को माना है-जिसकी प्रथम पंक्ति है 'अनोपम रूप सिंगार अनोपम भूपण अङ्ग'[1]। प्रतीत होता है लेखिका ने न तो इस वेलि की हस्तलिखित प्रति ही देखी है न टैसीटोरी के कथन[2] को ही समझा है। टैसीटोरी ने, मूल प्रति का अनुसरण करते हुए इस वेलि को करमसी को रचना ही बताया है पर यह टिप्पणी भी दी है कि मूल प्रति की विषय सूची में इस वेलि को जोधा की सांखली रानी की रचना कहा गया है। प्रथम पंक्ति का उद्धरण भी ठीक नहीं दिया है[3]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-काल नहीं दिया गया है। पुष्पिका[4] से प्रतीत होत है संवत १६३४ वैसाख सुदी ३ रविवार को सांवलदास ने कटक में रायसिंह के साथ जाते समय बूसी नामक ग्राम में इसे लिपिबद्ध किया था। सांवलदास राव बीकाजी के भाई बीदा के पौत्र सांगा के बेटे थे। ओझाजी के अनुसार सांगाजी को राव जैतसी ने द्रोणपुर पर चढ़ाई करके वहाँ बैठाया था[5]। सांवलदास बीकानेर नरेश रायसिंह के सामन्त थे। इन पर रायसिंह का विशेष स्नेह और कृपा-भाव था। अनुमान है इसकी रचना संवत १६०० के आसपास हुई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि २२ छन्दों की छोटी सी रचना है। इसमें रुक्मणी के नख-शिख का वर्णन किया गया है। सबसे पहले चरणों का वर्णन है। शशि-वदनी रुक्मणी ने कृष्ण के साथ रंग खेलने के लिए अनुपम रूप और शृंगार धारण किया है[6]।

१—मध्यकालीन हिन्दी कवियित्रियाँ (प्रथम संस्करण १६५३), पृ० ३५

२—इन द इन्डेक्स ओफ द कण्टेण्ट्स् ओफ द गुटका (पे० २७६ बी) हाउएवर, द वर्क इज एट्रिब्यूटेड टू द सांखली रानी ओफ राव जोधा (द मदर ओफ राव बीका)-डी० के० से० दो, पार्ट एक, पृ० ४५

३—वह इस प्रकार होना चाहिए 'अनोपम रूप सिंगार अनोपम,
अवल अनोपम लपण अंगि'

४—इति सांखुल करमसी रूपोंचा कृत श्री किसनजी री वेलि। लिखितं सांवलदास सांगावुत। सांगो संसारचंद उत। संसारचन्द बीदावुत। बीदो महाराजाधिराज-महाराय श्री जोवइ रो। लिखितं ग्राम बूसी मध्ये। संवत १६३४ वर्षे वैसाख सुदि ३ दिने रविवासरे घटी ८।४१ मृगसिर नक्षत्रे घटी ४०।४६ शुकर्म्म नामयोग। घटी ५२।१६ महाराजाधिराज महाराइ श्री राइसिघजी रइ साथि थकइ सांवलदासि पोथी लिखी कटक मां है।

५—बीकानेर राज्य का इतिहास।

६—अनोपम रूपि सिंगार अनोपम, अवल अनोपम लखण अंगि।
सहि एता माणिय ससि वदनी, रै श्री रंग माणिवा रंगि ॥१॥

उसकी कोमल पगतलियाँ रक्त की लालिमा से छलकी पड़ती हैं। वे ऐसी लगती हैं मानो कोई लाल कमल उलटा कर रख दिया हो। पैरों के नाखून दर्पण की तरह चमकते हैं अथवा ऐसे दिखाई देते है मानों कमलों पर कोई दीप-पंक्ति झिलमिला रही हो[१]। पैरों में नृत्य करने के लिये जो नूपुर धारण कर रखे हैं उनकी छनछनाहट सुनने में ऐसी प्रतीत होती है मानों कामदेव नरेश के वाद्य यन्त्र बज रहे हों। जब वह सुन्दर शरीर वाली तरुणी संचरण करती है तो ऐसा ज्ञात होता है मानों ऐरावत हाथी प्रवेश कर रहा हो[२]। उसकी पिंडलियाँ गौरव की भारी शीशी हैं अथवा जगन्नाथ (कृष्ण) से युद्ध करने के लिए वियोगिनी (रुक्मणी) ने गदा का प्रयोग किया हो[३]। उसने अपनी हाथी की सूंड के समान युगल जंघाओं को जाल (लहंगा) में रख दिया है जहाँ हमेशा षटऋतुओं का निवास रहता है और उनके स्पर्श मात्र से कामदेव की उत्पत्ति होती है[४]। रोम-रहित कठिन नितम्ब हाथी के कुम्भस्थल के समान (गोलाकार) हैं। संसार के लोग कहते हैं कि कामदेव को शिवजी ने भस्म कर दिया, इसीलिए वह अब इन दोनों पहाड़ों में आकर बस गया है[५]। नाभि-मण्डल रूप का कुआ तथा रति-रस का कुम्भ है। रोमावली ऐसी प्रतीत होती है मानों दुनियां के दग्ध मनों को सीचने के लिए माली ने लेज पकड़ी हो[६]। कटि इतनी क्षीण हो गई है कि उसे आसानी से हाथ में पकड़ा जा सकता है। इस क्षीणता का कारण यह है कि उसे नितम्ब और पयोधर दोनो अपनी अपनी ओर खीचते है जिससे उसकी (कटि की) दशा ठीक उस निर्बल राजा की तरह हो गई है जो दो बलवान राजाओं के बीच फँस गया हो[७]। उसके उठे हुए नोकदार कुच माधव के हाथों मे सरसता से धरने के लिए हैं। शरीर को नसें इस प्रकार दिखाई देती हैं मानों कुमकुमे में कुंकुम भरा हो और देह कमल-पुष्प के परिमल की तरह

१—पइतल रत कोमल श्रोणित पूरित, कोकनद विपरीत करि।
दरपण तस नख पाइ अति दीपइ, पंकति अथवा कंवल परि ॥२॥

२—नूपुर झकारी पाइ निरित्ती किरि, वाजित्र कंद्रप नरेस।
सुवणि तरुणि संचरै सही सउ, पुरिनर वे किरि करे प्रवेस ॥३॥

३—परि नव लता स्त्री पिंड पुणियो ताइ, गुण सीसी गुमान तणि।
किरि जगन्नाथ सरिस जुध करिवा, विरहि संजोई गदावलि ॥४॥

४—जंघस्थल युगल अनोपम जुवती, जोगम किरि जालंधरी।
परस तास रति-राव ऊपजै, भाव जोनि षट रुति भरी ॥५॥

५—कठिन नितंब निरोमै कामणि किरि, कूंभस्थल गइंद कहि।
इम्बे भवि ईस अनंग उजाणी, गिरि बिनि रहियो आवि गहि ॥६॥

६—नाभ मंडल उर नारि अनोपित, रूप-कूप रति कूंभ रिसि।
रोमावलि लेज मिहणु दुनि दमणा, मन माली संचिवा मिसि ॥७॥

७—करि ग्रहि लंक माप तव कामणि, कारणि तिणि कहि खीण करि।
खांचे नितंब पयोहर खांचे, उभै नपां बिचि निबल् परि ॥८॥

सुवासित है[१]। दोनों भुजाएं क्या हैं मानों मृणाल को उलट कर रख दिया हो। उसके अङ्ग-प्रत्यंग की शोभा उभर रही है। हाथों में सोने की चूड़ियां और कंकण पहन रखे हैं[२]। हाथों की कोमल अंगुलियां कभी सिरीष-पुष्प की फलियों की तरह दिखाई देती हैं तो कभी ऐसा आभास होता है कि गौरी ने हर-पूजन के लिये हाथ में कलियां धारण कर रखी हों[३]। कंठ शंख के समान है जिस पर नेत्र-रिद्धि का निवास है। हृदय पर मुक्ताओं का हार झूलता रहता है जो मुक्तियों की निधि-तुल्य है[४]। उसके अत्यन्त अरुण अधर विद्रुम अथवा पके हुए बिम्बाफल के समान हैं। वह कोकिल-कण्ठी निरन्तर 'प्री'–'प्री' का उच्चारण करती रहती है[५]।

रुक्मणी के हीरे एवं रत्न-तुल्य दांतों को देखकर यही कल्पना मनमें उठती है कि कहीं देवता और दानव मिलकर फिर से समुद्र-मंथन कर उन्हें निकाल न लें। इस आशंका से भय त्रस्त होकर वे (दांत) हरि के लिए निधि रूप में सुरक्षित होकर रुक्मणी के मुख में आकर बैठ गये हैं।[६] सुन्दर वचन बोलने वाला रोग-रहित मुख अखण्डित, अकलंकित और अमृतमय है फिर भला कलंकित और खण्डित चन्द्रमा की समता उससे क्यों कर की जाय ?[७] नासिका कुसुम, (तिल-पुष्प) दीप की लौ और तोते के समान है। भौंहें भ्रमर के समान हैं—जो मुख को कमल समझकर भ्रमवश वहां आकर बैठ गये हैं।[८] नेत्र श्याम, रक्त एवं श्वेत वर्णों से युक्त हैं।[९] सोलह शृंगारों से सुसज्जित उसका शरीर झिलमिलाती हुई ज्योति की तरह है

१—उन्नत सिहू पातलइ कूच अणी, मइध इरिठि किरि सरस त्रि धरि।
काया नस कुंकम लोल कमकमै, परिमल पदमणि पुष्प परि ॥६॥

२—अनोपम बाहू जुगल तम अवला, पुणि मृणाल विपरीह परि।
अंग दपऊ बस सोभा उपइ, कंकण चूड़ि नु कनक करि ॥१०॥

३—कर युगल सुकोमल संदुरि सोभित, असिरिप फली कि अंगुली।
नख सिख जाणि गवरिज्या निसंचै, किरि हर पूजण ग्रही कली ॥११॥

४—समंद जाच सम ग्रीव ता सत्री रहू, ती निर्म्योंहू गावरधि।
उपइ मुगत हार रूलत उरि, नित्रसंतो मुखि अनी निधि ॥१२॥

५—अधर अति अरुण कि वीद्रिम ऊपित, पाक बिंब उपमा परि।
उचरंती सदा प्री प्री अणंचरि, सुललित कोकिल ज्यो सुमरि ॥१३॥

६—हीर डसण उपमा रयँण हरि, कारणि अति निधि जतन करि।
त्रिदस असुर मथिवा भवि संकित, धण मुख माझलि आणि धरि ॥१४॥

७—वाया अभि अरण कि पाहि त्रिगेपित, असंडित, अकलंक, अमीयै।
तास त्रिया सो किम तोलीजै, कलंक्तिु विधु न घटि तकै ॥१५॥

८—नाइम भणि कुसुम दीप भणि नाइस, कीर वचन नासिका कयै।
भोंहारै भंवर कि भूलि वइठा, मुख वारिज संपेखि मइ ॥१६॥

९—चंचल अति चपल किसन घणू काजल, रातो नल ऊजल रवण।
माण········तरल दीपत गल नारि, अनोपम तस नयण ॥१७॥

जिसने मानों मन रूपी विहंग को पाशवद्ध करने के लिए जाल फैलाया हो।[1] सिर श्रीफल के समान है। सिन्दूर और मोतियों से भरी हुई उसकी मांग ऐसी प्रतीत होती है मानों रात्रि में नक्षत्र-माला चमक रही हो। उसने जो चंदन का तिलक लगा रखा है वही मानों चन्द्रमा है।[2] सर पर रत्नजड़ित राखड़ी देदीप्यमान है। कही से सरल और कहीं से वक्र वेणी अति विष से व्याप्त सर्प की तरह है जो मानों अमृत का आहार करने के लिये मुख रूपी चन्द्रमा के पास आ गया हो।[3] इस प्रकार श्रृंगार कर लावण्य-गुण सम्पन्न लक्ष्मी (रुक्मणी) राजहंस की तरह चलकर श्याम वर्ण वाले मदन-मुरारि कृष्ण से—जिनको उसने अपने कर्मों से प्राप्त कर लिया है—सेज पर जाकर मिली।[4] अन्त मे कवि कहता है कि रुक्मणी के रूप, गुणों और शुभ लक्षणों का वर्णन करने मे कौन समर्थ है? गोविंद की रानी के गुण जैसे जाने जा सकते हैं वैसे मैंने कह दिये है।[5]

कलापक्ष :

करमसी शब्द-पारखी और भाषा के धनी थे। २२ छंदों में एक भी छंद ऐसा नहीं है जिसमे कोई न कोई अलंकार न हो। डिंगल भाषा के माधुर्य और प्रवाह को भी देखिये :—

माधुर्य:—दरपण तस नख पाइ अति दीपई, पंकति अथवा कंवल परि ॥२॥
प्रवाह:—खांचे नितंब पयोहर खांचे, उभै नृपां विचि निबल अरि ॥८॥

अनुप्रास की छटा देखते ही बनती है। पूरी की पूरी पंक्ति अनुप्रास को आभा से आलोकित है :—

(१) काया नस कुंकम लोल कम कमे ॥६॥
(२) परिमल पदमणि पुप्प परि ॥६॥

१—सोहति सुदरणि सिणिगार सोलहइ, धड़ि झवकंति ऊजोत परि।
किरि मन विहग ठास वस करिआ, पास मंडिया विवर परि ॥१८॥

२—सीस तरणि श्री फल सारीखउ, भाल मुग सिंदूर भरि।
नखत्र मान सोहंति कि निसि भरि, चंदण तिलक कि चंद परि ॥१६॥

३—रतन जड़ित राखड़ी सरोपति, वेणि वलंति सरल वल कोय।
अति वृप व्यापित अमृत अहारे, मिणिधर किरि लागो मैवेन्त ॥२०॥

४—लावण्य गुण पूरित सह लखमी, राज हंस जिम चली कुंवरि।
सामि करम सोवा सावन अन, मिली सेज रंगि मदन मुरारि ॥२१॥

५—रूप लखण गुण तणी रुखमणी, कहिवा सामरथीक कुण।
जाणिया जिसा तिसा मह जंपिया, गोइद-राणी तणा गुण ॥२२॥

पृथ्वीराज की वेलि मे छंद संख्या ३०४ का पाठ भी इसी प्रकार का मिलता है। संभव सूचक पदो की तरह यह छंद भी लिपिकारो द्वारा बाद मे जोड़ा हुआ हो सकता है।

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं—

साधारण :

(१) कोकनद विपरीह करि (२)
(२) विरहि संजोई गदावलि (४)
(३) राजहंस जिम चली कुंवरि (२१)

असाधारण :

(१) नखत्र माल सोहंति कि निसि भरि,
चंदण तिलक कि चंद परि ।।१६।।
(२) रतन जड़ित राखड़ी सरोपित,
वेणि कलंति सरल वल केय ।।२०।।

अर्थालंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, भ्रम, सन्देह आदि अलंकार विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं—

उपमाः—अनोपम बांह जुगल तस अवला, पुणि मृणाल विपरीह परि ।।६।।
अधर अति अरुण कि बीद्रिम उपित, पाक बिंब उपमा परि ।।१३।।

रूपकः—मुख वारिज संपेखि मइ ।।१६।।
मन विहग तास वस करिवा ।।१८।।

उत्प्रेक्षाः—नूपुरि झकारै पाइ निरितौ किरि वाजित्र कंद्रथ नरेस ।।३।।
कठिन नितंब निरोमे कामणि, किरि कुंभस्थल गइंद कहि ।।६।।

व्यतिरेकः—वाया अभि अरुण कि पाहि विशेषित अखंडित, अकलंक, अमीये।
तास त्रिया सो किम तोलीजे, कलंकितु विधु न घटि तके ।।१५।।

भ्रांतिमानः—भौहारे भंवर कि भूलि वइठा, मुख वारिज संपेखि मइ ।।१६।।

सन्देहः—दरपण तस नख पाइ अति दीपइ, पंकति अथवा कंवल परि ।।२।।

छंदः—छोटे साणोर के एक भेद खुड़दसाणोर का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण :

अनोपम रूपि सिंगार अनोपम, अवल अनोपम लखण अंगि।
सहि एता आणिय ससि वदनी, रे श्री रंग माणिवा रंगि ।।१।।

(२) गुण चांणिक वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि कवि की भक्ति-भावना से संबंध रखती है। इसमे कवि ने बाह्य कर्म-काण्डों का विरोध कर शुद्ध मन से भगवान को स्मरण करने की प्रेरणा दी है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता चूंडोजी[2] दधवाड़िया गोत्र के चारण थे। ये मेहाजी के पौत्र थे। डिंगल का प्रसिद्ध कवि द्वारकादास दधवाड़िया इनका पौत्र था तथा पृथ्वीराज का समकालीन कवि माधोदास इनका पुत्र था। इनका जन्म सं० १५७०-७५ के आसपास हुआ होगा।[3] इन्होने नागौर परगने के छीले (जो आजकल चीलो के नाम से पुकारा जाता है) में एक लड़की से—जिसकी सगाई किसी दूसरे चारण के साथ हो चुकी थी—शादी करली। इस पर झगड़ा उत्पन्न हुआ और ये अपना निवास गांव 'दधवाड़ा' छोड़कर मेड़ता के वीरमजी के पुत्र और जयमल के भाई चादाजी के पास चले गये। चांदाजी ने एक बलूंदा नामक गांव बसाया और उसका एक मोहल्ला (बाए) चूंडोजी को प्रदान कर दिया। चूंडोजी के वंशजों के अधिकार में अभी तक वह चला आता है।[4]

ये चारभुजा देवी के बड़े भक्त थे। चारभुजा का एक मंदिर मेड़ते मे है। ये अपने समय के प्रसिद्ध कवियों में से थे। नाभादासजी ने भक्तमाल मे इनका कवि एवं भक्त के रूप मे उल्लेख किया है। इनकी निम्नलिखित कृतियाँ मिलती हैं :—

(१) निमंधा बंध (२) गुण चांणिक वेलि (३) गुणभाखड़ी (४) रामलीला (५) फुटकर कवित्त (दर्शन एवं भक्ति संबंधी)

रचना-काल :

वेलि के अन्त मे रचना-तिथि का उल्लेख नहीं हैं। पर इसके रचयिता चूंडो दधवाड़िया वेलिकार पृथ्वीराज राठौड़ के समकालीन कवि माधोदास के

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम आया है 'वेलिज कहे विरण वनमाली विप मै फल लागे तिरण वेलि' (३०) पुष्पिका मे लिखा है 'इति चौंडाजी री कही चाणक वेलि'

(ख) डा० हीरालाला माहेश्वरी ने इसे (राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १५०) अप्राप्य बतलाया है, पर यह मरुवाणी वर्ष ४ अंक ५ (मई १६५६) पृ० २१-२४ मे प्रकाशित हो चुकी है।

२—कवि ने वेलि के अंत मे अपना नामोल्लेख किया है—चरण कमल रज मागे चौंडो साव समागम मागे स्याम (४१)

३—मरुवाणी : वर्ष ४ अंक ५ (मई १६५६) पृ० २१

४—डिंगल गीतकार : सीताराम लालुस (अप्रकाशित)

पिता थे। पृथ्वीराज ने अपनी 'वेलि' के लिए चूंडोजी से सम्मति न मांगकर माधोदास से मांगी। इससे अनुमान है कि वेलि के रचना-काल के समय चूंडोजी इस लोक से प्रस्थान कर चुके थे। अतः चांणिक वेलि को पृथ्वीराज की वेलि से पूर्व की रचना (अर्थात् १७वीं शती का प्रारंभ) मानना ही अधिक समीचीन होगा।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ४१ छंदों की रचना है। इसमें चूंडोजी का हृदय भक्तिभाव से भरकर फूट पड़ा है। उनमें भक्ति की वह अतल गहराई है जिसके आगे बाह्य क्रिया-कांड निरर्थक एवं निर्मूल हैं।[1] कवि की वाणी एक ओर सिर का मुंडन कर मौन-व्रत धारण कर शून्य-गुफा में बैठकर प्राणायाम करने वाले निर्गुणोपासक साधक की धज्जियां उड़ाती है[2] तो दूसरी ओर कृष्ण की-जीवन और जगत की प्रत्येक सम्पर्कित वस्तु में—अनुभूति कर निरन्तर उनका जाप करने वाले उपासक की मंगल-सिद्धि का उद्घोष करती है। उसकी दृष्टि में जो गोविंद से संबंध न जोड़कर अन्य सांसारिक प्राणियों से संबंध जोड़ता है उसकी स्थिति उस अंधे की सी है जो अंधे के हाथ में अपना हाथ देकर भ्रम और विषय-वासना के बीहड़ वन में भटकता रहता है,[3] जो भक्ति-भाव विरहित-कर्म करता है वह पृथ्वी पर सर्प की तरह भार ढोता रहता है[4] और जो वेदादि के सार तत्वों का पठन-पाठन न कर अन्य जंजालों में फंसा रहता है वह चावल-कणों को छोड़कर पूए की पोटली बांधे फिरता है।[5] कवि की भक्ति-भावना का 'केनवास' इतना व्यापक और लचीला है कि उसे सर्वत्र 'कृष्ण' ही 'कृष्ण' छाया हुआ दिखाई देता है। वेदार्थ के बिना विद्या, विद्या नहीं,[6] पुरुषोतम के बिना पद, पद नहीं,[7] करुणामय कृष्ण के बिना राग, राग नहीं,[8]

१—हितकारि चंड संभालि हरि, काया पखाले कांइ।
जा लग राइण कुलिय जिम, मन कडवा तन माहि ॥१॥

२—लोच सिरि करै हुवै एक लोंका, मूरखि एक रहै ग्रहि मूंनि।
परिहरि गुण निधान कमलापति, सूंना एक आराधै मूंनि ॥५॥

३—सग्रमब जाइ गोब्यंद सरिसन, साभै त्रिया अवर सनबंध।
भ्रमताई विपै सहावनि भूला, आधे पाणि विलागौ अंध ॥४॥

४—पूरी करै चकनोली पाखंड, कृस्न विणा आमे करम।
भुरंग हुवै साभता भुवंगम, भार वहै पडियौ भरम ॥८॥

५—वेद सारतत अरथ न वाचै, अंपै कलपै अवर जंजाल।
कण चावल छोडै ताइ कविता, पोटल बांधे विथा पराल ॥१४॥

६—कला चतुरदस बहुतरि सुकला, नटवर निरति निवै हगनाद।
वेद अरथ विण वदै जु विद्या, विद्या ताइ अविद्या वाद ॥२०॥

७—राग सुबंध ताल गति रचना, मुधड़ाई दाखै सबद।
पद जाइ कहै विणा परसोतम, पद तिणि न हुवै परमपद ॥२२॥

८—राग छत्रीस अनेक रागणी, वसै सपत सुर मुधड विभाग।
करै ज राग विणा करणामै, रंग उपजै नही तिणि राग ॥२३॥

नरहर के रूप-निरूपण के बिना रूपक, रूपक नहीं,[1] गोविन्द के बिना गीत, गीत नहीं,[2] दामोदर के बिना दोहा, दोहा नहीं,[3] कमलापति के बिना कविता, कविता नहीं,[4] रसिक बिहारी कृष्ण के बिना रास, रास नहीं,[5] वनमाली के बिना वेलि, वेलि नहीं,[6] नारायण के बिना निगम, निगम नहीं,[7] अतः जो व्यक्ति बिना कृष्ण-भावना के कर्म करता है वह मानों कण बाहर निकाल कर तुप कूटता है, श्रेष्ठ पति को छोड़कर (उसकी आत्मा मानों) पर पुरुष के साथ व्यभिचार करता है[8] और अज्ञानी बनकर आत्मघात करता है।[9] ऐसा समझकर यदि कोई अपना भला करना चाहे तो साधु-वचनों का पालन करे। यह निश्चित है कि कृष्णोपासना के बिना किसी का निस्तार नहीं होने वाला है। क्योंकि कृष्ण ही वह महान स्रोत है जो चतुर्भुजा के रूप में चारों पदार्थों-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-का दाता है।[10] कवि अंत में अपने मन को उपदेश देता है कि हे मन ! तू मान जा और कृष्ण की उपासना कर, अपनी जीभ को समझाता है कि हे जीभ ! तू निरन्तर कृष्ण, कृष्ण का जाप कर, इसी में जीवन की सफलता और सार्थकता निहित है।[11]

१—चित चवंतरण करे चोरासी, आखर छंद उपमा अनूप।
नरहर विणा ज रूप निरूपै, रूपकबंध तिणि न रहै रूप ॥२४॥
२—साणोर प्रहास दूंण दोढा सुज, चतुर सुवाणि वेल्लरण चीत।
गीत गोव्यंद विणा गाइजै, गति बाहिरा सु कहिजै गीत ॥२५॥
३—स्वंयभू पाइगति दाह सोरठिया, रैदह पूर्वे छ्यल रुख।
दूहा कहै विणा दामोदर, दूहेत्यां आभिजै दुख ॥ २६ ॥
४—कंमल ध्याल छत्रबंध कुंडलिया, सहित जाति बावीस महि।
कवित्त जु कहै विणा कमलापति, कवित सवित बाहिरा कहि ॥ २७ ॥
५—मूंढ तजै गुण पवगुण मानै, दूहा आवै छिपै छिलामि।
कहैज रासा रसिक विण करिता, रस उपजै नहीं तिणि रासि ॥ २९ ॥
६—डीरघ लप पर तजै दुबाला, समि वचनै मेलै सवेलि।
वेलिज कहै विणा वनमाली, विपमे फल लागै तिण वेलि ॥ ३० ॥
७—निगम सार परहरि नारायण, पनरप मंभम वदै प्रवेस।
कण बाहिरा ताइ तुस कूटै, कीधो ज कहूं ऊवरै कलेस ॥३१॥
८—वर मापरो तजै बिभचारी, विहरै ताइ पढवि विपरीति ॥३३॥
९—धव प्रातमा क्रिस्न नह धेवे, आतमघाती तिके प्रयाण ॥ ३४ ॥
१०—धरम अरपनै काम मोपे 'घू', दान प्रवाह जास दरबारि।
हरि पद भजता लाभै हरिपद, चत्रभुज भुजे पदारथ च्यारि ॥ ३८ ॥
११—मैं मन कुं उपदेस मनाऊं, मानि मानि रे मानि मन।
रमिसि धाम गोव्यंद गुण रसना, क्रिसन क्रिसन कहि कहि क्रिसन ॥ ४० ॥
नही नही दूजो निस्तारो, निस्तारो नरहर तूझ नाम।
चरण कमल रज मारी चोडो, छाप समागम मांझै स्नान ॥ ४१ ॥

कलापक्ष :

इस वेलि का कलापक्ष निखरा हुआ है। कवि लोक-शास्त्र और छंद-शास्त्र का ज्ञाता है। काव्य में प्रयुक्त विभिन्न छन्दों, कलाओं एवं उनके भेदोपभेदों के उल्लेख से इस कथन की पुष्टि होती है। कवि की दृष्टि में पिंगल (व्रज) की अपेक्षा डिंगल अधिक सरस और प्रभावोत्पादक है–

निज प्यंगल रह विणा नाराइण, चतुराई दाखवै चवि।
भाषा विचित्र सुभलाभलेरा, कविताइ मानेवा कुकवि ॥१६॥

वयणसगाई का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों भेद देखे जा सकते हैं–

साधारण :

(१) इंदीवर पद विणा उपासिक (३)
(२) कांई बाइस तीरथ तकत (११)
(३) जोग ज्याग जप तप तीरथ व्रत (६)

असाधारण :

(१) साध वचन मांनो सह कोई (३६)

अन्य अलंकारों में यमक, उपमा और स्वभावोक्ति का प्रयोग हुआ है–

यमक :

(१) विण उतिम *तिरलोक* वारता, सिर बाहिरा कहै *तिरलोक* (१६)
(२) पद जाइ कहै विणा परसोतम, पदतिणि न हुवै परम पद (२२)

उपमा :

जां लग राइण कुलिय जिम, मन कड़वा तन माहि (१)

स्वभावोक्ति :

कण चावल छोड़ै ताइ कविता, पोटल बांधे विया पराल (१४)

छन्द :

छोटेसाणोर के एक भेद खुड़द साणोर का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण :

असरण सरण पतित पावन अनि, परसोतम ताहरो पुण।
मैं अनाथ अघसदन हरितमित, गिणूं भरोसो तूझ गुण ॥३८॥

वेलि के प्रारम्भ में एक दोहा आया है–

हित करि चण्ड सँभालि हरि, काया पखालै कांइ।
जां लग राइण कुलिय जिम, मन कड़वा तन माहि॥

(३) क्रिसन रुकमणी री वेलि[1]

राजस्थानी-साहित्य में जो वेलि काव्य की परम्परा चली उसमें पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' ने मूर्धन्य स्थान प्राप्त किया है। यह सहृदय रसिकों का हार, भावुक भक्तों की माला और पंडितों की कसौटी रही है। कहीं इसे 'प्रभुत वल्ली'[2], कहकर प्रभुत की तरह फलवती, कहीं 'गुण वेलि'[3] कहकर भगवान के गुण-कीर्तन की अक्षय निधि और कहीं 'मङ्गल'[4] कहकर सर्व कामनाओं को पूर्ण करने वाली बतलाया गया है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता राठौड़ पृथ्वीराज उस युग की देन हैं जब भक्ति-काल और रीतिकाल आंख-मिचौनी खेल रहे थे। बीकानेर के राठौड़ राज-वंश में संवत १६०६

१—(क) मूल पाठ में 'वेलि' नाम कई जगह आया है। देखिये छंद सं० २७८-८४, २८६-८८, २९०-९४, २९६, २९८।

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं।
७४ प्रतियों का विवरण राजस्थान भारती (पृथ्वीराज विशेषांक: भाग ७ अंक १-२, नवम्बर, १९६०) के परिशिष्टः पृ० १८१-९० में दिया गया है।

(ग) विभिन्न विद्वानों द्वारा अब तक इसके निम्नलिखित ६ संपादित संस्करण निकल चुके हैं—

(१) डा० एल० पी० टैसीटोरी द्वारा संपादितः एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल का संस्करण, सन् १९१९

(२) ठाकुर रामसिंह व सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादितः हिन्दुस्तानी एकेडेमी, प्रयाग का संस्करण सन् १९३१

(३) प्रो० नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादितः श्री रामसेहाय एण्ड कम्पनी, आगरा का संस्करण, सन् १९५३

(४) डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित द्वारा संपादितः विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर का संस्करण सन् १९५३

(५) कृष्णशंकर शुक्ल द्वारा सम्पादितः साहित्य निकेतन, कानपुर का संस्करण, सन् १९५४

(६) नटवरलाल इच्छाराम देसाई द्वारा सम्पादितः फार्बस गुजराती सभा, बम्बई का गुजराती संस्करण, सन् १९५५

२—मुनि कान्तिसागर जी की सं० १७०६ के आसपास की प्रति। पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री राठौड़ पृथ्वीराज कृत प्रभुतवल्ली समाप्त'

३—वहीं की सं० १७८५ की प्रति नाम-'पृथ्वीराजकृत गुण वेलि लिख्यते'

४—गुणि गहि किसन-रुकमणी-केरउ, कहु रे मन ! [illegible] ॥२९६॥

मिगसर वदि १ को इनका जन्म हुआ था। ये राव जैतसी के पौत्र, राव कल्याणमल के पुत्र और महाराजा रायसिंह के छोटे भाई थे। डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल ने इनको महाराजा जयसिंह का छोटा भाई बतलाया है[1] जो गलत है। संभवतः रायसिंह का जयसिंह छप गया है।

डा० मोतीलाल मेनारिया[2] और डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित[3] ने पृथ्वीराज के अन्तिम दो विवाहों की चर्चा की है जबकि नरोत्तमदास स्वामी[4] और डा० हीरालाल माहेश्वरी[5] ने तीन विवाहों का उल्लेख किया है–

(१) उदयपुर के महाराणा उदयसिंह की पुत्री किरणमयी के साथ
(२) जैसलमेर के महारावल हरराज की पुत्री लालांदे के साथ
(३) लालांदे की मृत्यु के बाद उसकी छोटी बहिन चांपादे[6] के साथ।

पृथ्वीराज बड़े वीर, विष्णु के परम भक्त और उच्चकोटि के कवि थे। कर्नल टॉड ने इनके वीर व्यक्तित्व की प्रशंसा की है[7]। साम्राज्य के अनेक युद्धों में इन्होंने भाग लिया था। सं० १६३८ की मिर्जा हकीम के साथ की काबुल की लड़ाई[8] और सं० १६५३ की अहमदनगर की लड़ाइयों में ये शाही–सेना के साथ थे। इनकी वीरता के पुरस्कार मे सम्राट ने इन्हें गागरोनगढ़ का दुर्ग जागीर में दिया था[9]।

१—अकबरी दरबार के हिन्दी–कवि : पृ० ४१
२—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १६२
३—स्व सम्पादित वेलि : पृ० १८
४—स्व सम्पादित वेलि : पृ० २४
५—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १५३
६—चांपादे स्वयं अच्छी कवयित्री थी। उसके और पृथ्वीराज के सम्बन्ध की अनेक आख्यायिकाएँ प्रसिद्ध हैं। जरा–प्रसंग को लेकर निम्नलिखित पद्य लोक–प्रचलित है–

पीथल धौला आविया, बहुली लग्गी खोड़।
पूरे जौवन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड़ ॥
प्यारी कहै पीथल सुणों, धोला दिस मत जोय।
नरा नाहरां डिगमरां, पाक्यां ही रस होय ॥

७—'प्रिथीराज वाज वन ओफ द मोस्ट गेलेन्ट चिफटेन्स् ओफ द एज, एण्ड लाइक द ट्रुबेडर प्रिन्सेज ओफ द वेस्ट, कुड प्रेस ए काज वीथ द सोल-इन्सपायरिंग इफ्यूजन्स ओफ द म्यूज, एज वेल एज एड इट वीथ हिज स्वोर्ड, मे इन एन एसेम्बली ओफ द बार्ड्स् ओफ राजस्थान द पाम ओफ मेरिट वाज यूनेनिमसली अवरडेड टू द राठौर केवेलियर'–राजस्थान जि० १, पृ० ३६६।
८—बेवरिज, अकबरनामा (अंग्रेजी अनुवाद) जि० ३: पृ० ५१८
९—नैणसी की ख्यात भाग १: पृ० १८८

पृथ्वीराज की प्रतिभा से सम्राट अकबर इनकी ओर आकर्षित हुआ और वह इन्हें अपने पास रखने लगा। सम्राट के दरबारियों में इनका बड़ा सम्मान था[1]। ये अकबरी दरबार के नौ रत्नों में से थे। सम्राट इन्हें बहुत चाहता था[2]।

पृथ्वीराज का देहान्त सं० १६५७ में मथुरा के विश्रांत घाट पर हुआ। इनके वंशज अभी तक विद्यमान हैं और पृथ्वीराजोत बीका कहलाते हैं। इनका प्रमुख ठिकाना आजकल ददरेवा है।

यद्यपि परिस्थितिवश पृथ्वीराज को अकबर की सेवा स्वीकार करने के लिए विवश होना पड़ा तथापि इनकी स्वाधीन आत्मा को यह परवशता बराबर अखरती रही। देश की स्वतन्त्रता के लिए मर मिटने वाले वीरों के प्रति इस कवि के हृदय में सम्मान का भाव था। प्राणों को हथेली पर लेकर वन-वन घूमने वाले आजादी के दीवाने महाराणा प्रताप कवि के श्रद्धा-पात्र थे। जब परिस्थितियों ने महाराणा को भी सम्राट से संधि-याचना करने के लिए विवश कर दिया तो पृथ्वीराज का हृदय क्षोभ से भरगया। राजस्थान की स्वतन्त्रता के अन्तिम आशा-दीप को बुझने से बचाने के लिए इस कवि का विस्फोटक व्यक्तित्व पत्र के रूप में फूट पड़ा[3]। कौन नहीं जानता कि पृथ्वीराज की ओजस्वी वाणी ने प्रताप का 'प्रताप' बनाये रखा[4]।

१—बीकानेर राज्य का इतिहासः प्रथम खंडः गौ० ही० ओझा, पृ० १५७

२—पृथ्वीराज की मृत्यु पर अकबर ने निम्नलिखित दोहा कहा था—

पीथल सूं मजलिस गई, तानसेन सूं राग।
रीझ बोल हसि खेलबो, गयो बीरबल साथ॥

३—पृथ्वीराज ने महाराजा को जो पत्र लिखा था उसमें ये सोरठे थे—

पातल जो 'पतसाह', बोलै मुख-हूंता वयण।
मिहर पछम दिस माह, ऊगै कासप-राव-उत॥
पटकूं मूंछा पाण, कै पटकूं निज तन करद।
दीजे लिख दीवाण, इण दो मंहली बात इक॥

महाराणा प्रताप ने उत्तर मे *निम्नलिखित दोहे भेजे थे*—

तुरक कहासी मुख पतै, इण तन-सूं इकलंग।
ऊगे ज्याही ऊगसी, प्राची बीच पतग॥
कुसी हूंत पीथल कमध ! पटको मूंछा पाण।
पछटण है जैते पतो, कलमां [illegible]
माथ मूंड सहसी स-रो, सम-जस [illegible]
भड़ पीथल ! जीतो भला वयण

४—बीकानेर के स्थानीय साप्ताहिक पत्र [illegible] के अंक में स्व० प्रो० चंद्रदेव शर्मा तथा मुकर[illegible] क्या डिंगल कवि पृथ्वीराज अकबर के [illegible] अकबरी दरबार के

दरबारी होते हुए भी पृथ्वीराज निर्भीक और स्पष्ट वक्ता थे। अकबर के दरबार में रहकर भी ये सम्राट के परम शत्रु महाराणा प्रताप के त्याग, शौर्य एवं निष्ठा के गीत गाते रहे। अकबर की अधीनता स्वीकार करने वाले राजस्थानी राजाओं को-यहाँ तक कि अपने बड़े भाई बीकानेर नरेश महाराजा रायसिंह को भी-इन्होंने खूब ही फटकारा[1]।

पृथ्वीराज का डिंगल और पिंगल (ब्रज-भाषा) दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था। डिंगल में लिखी हुई 'क्रिसन-रुकमणी री वेलि' तो उनकी सर्व-प्रमुख कृति है ही। इसके अतिरिक्त फुटकर गीतों और पद्यों के रूप में इनकी बहुत सी रचनाएँ मिलती हैं। पद्यात्मक रचनाएँ प्रधानतया दूहा छन्द में हैं पर ब्रजभाषा में लिखी हुई रचनाएँ घनाक्षरी और छप्पय छन्दों में है। इनकी प्रमुख ज्ञात रचनाओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है[2]-

(१) ठाकुरजी-रा दूहा:-इनकी संख्या २१५ के लगभग है। इनमें ५० भगवान राम से और १६५ भगवान कृष्ण से सम्बन्ध रखते हैं। राम वाले दूहों के अन्त में दशरथ-राव-उत और कृष्ण वाले दूहों के अन्त में वसदे-राव-उत शब्द आता है। ये दूहे विनय-प्रधान हैं।

(२) गंगाजी-रा दूहा:-इनकी संख्या ७८ के लगभग है। ये तीन प्रकार के हैं। कुछ के अन्त में भागीरथी, कुछ के अन्त में जान्हवी और कुछ के अन्त मे मंदाकिनी शब्द आता है। इनमें गङ्गा की महिमा का वर्णन है।

(३) महाराणा प्रताप-रा दूहा:-ये महाराणा प्रताप की प्रशंसा में लिखे गये हैं।

(४) प्रकीर्णक दूहे:-ये विविध विषयों पर लिखे गये हैं पर प्रधानता भक्ति, नीति और वैराग्य की है।

कवि होने तथा महाराणा प्रताप को उनके पत्र लिखने की मान्यता को मिथ्या बतलाया है। इसके प्रत्युत्तर मे उसी पत्र के २७ जनवरी व ८ फरवरी १९५८ के अंकों में अगरचंद नाहटा ने 'हां! पृथ्वीराज अकबर-दरबार मे थे' शीर्षक लेख लिखा है। इतिहासज्ञों को इस ओर विचार करना चाहिए।

१—ही वाज एन एडमायरर ओफ करेज एण्ड अनबेन्डिंग डिगनिटि एण्ड ए स्वोर्न एनिमी ओफ डिगरेडेशन एण्ड क्रिंगिंग सर्वेलिटि। बोथ दी सेम फ़ेसनेस बोथ वीच ही वुड कम्पोज ए सोंग इन प्रेज ओफ एन एक्ट ओफ गेलेन्टरी ओर ओफ डिटरमिनेशन परफोरमड् बाय ए फ्रेंड ओर बाय ए फो, ही वुड कन्डेम इन वर्स हिज ओवन ब्रदर, द राजा ओफ बीकानेर, ओर इवन द माल पावरफुल अकबर फोर एनी एक्ट ओफ इन्जस्टिस कमिटेड बाय देम—टैसीटोरी: वैलि का इंट्रोडक्शन।

२—क्रिसन रुकमणी री वेलि: नरोत्तमदास स्वामी: प्रस्तावना, पृ० २७-२८

(५) प्रकीर्णक गीतः—ये भी विविध-विषयों से सम्बन्ध रखते हैं। कुछ भक्ति और वैराग्य-परक हैं, कुछ शृंगार रसात्मक पर अधिकांश ऐतिहासिक हैं।

(६) नख-शिखः—यह रचना पिंगल भाषा की है। इसमें छप्पय छन्द मे (जिसे राजस्थानी मे कवित्त कहते हैं) राधा-कृष्ण का नख-शिख शृंगार वर्णित है।

इनके अतिरिक्त मिश्रबन्धुओं[1] ने 'प्रेम दीपिका' का तथा डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल[2] ने 'श्यामलता' का उल्लेख किया है। पर ये दोनों कृतियाँ संदेहास्पद हैं।

कवि की लोकप्रियता और 'वेलि' की प्रसिद्धि :

तुलसी और बिहारी की तरह पृथ्वीराज भक्तों और आलोचकों के प्रिय बन गये थे। उनके जीवन-काल में ही वेलि को प्रसिद्धि मिल चुकी थी। व्यक्तित्व और कृतित्व सम्बन्धी इस लोक-प्रसिद्धि के निम्नलिखित स्वरूप सामने आते हैं—

(१) समकालीन कवियों की दृष्टि :

समकालीन कवियों ने पृथ्वीराज और उनकी वेलि पर प्रशंसात्मक पद्य लिखे हैं। आढ़ा दुरसा ने वेलि को पांचवा वेद और उन्नीसवाँ पुराण बतलाया[3] तो सायां झूला ने अमृत वेलि[4]। मोहनराम ने पृथ्वीराज पर गीत

१—मिश्रबंधु विनोदः प्रथम भाग, पृ० २८३

२—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि, पृ० ४२।

दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता मे भी इस रचना का उल्लेख हुआ है। संभव है जिस प्रकार राजस्थानी मे उन्होंने वेलि की रचना की उसी प्रकार ब्रजभाषा मे श्याम लता की भी रचना की हो। पर जब तक इसकी प्रति प्राप्त नहीं हो जाती तब तक इस संबंध मे कुछ भी नही कहा जा सकता।

३—रुकमणि गुण लखण रूप गुण रचवण, वेलि तास कुण करै बखाण।
पाचमो वेद भाखियो पीथल, पुणियो उगणीसमो पुराण ॥१॥
केवल भगत अथाह कलावत, तैं जु क्रिसन-त्री गुण तवियो।
चिहुं पाचमो वेद चालवियो, नव दूणम गति नीगमियो ॥२॥
मैं कहियो हरभगत प्रिथीमल, अगम अगोचर अति अचड।
व्यास तणा भाखिया समोवड, ब्रह्म तणा भाखिया वड ॥३॥

४—वेद बीज जलवयण, सुकवि जड मडी सधर।
पत दुहा गुण पुहप, वास भोग वह लिखमीवर।
पसरी दीप प्रदीप, अधिक गहिर ईं आडम्बर।
जे जपई मन सुधि, अब फल पामैं अंतर।
विस्तार कीय जुग २ विमल, धणी क्रिसन कहिणार धन।
अमृत वेलि पीथल अचल, तई रोपी किल्याण तन ॥१॥

लिखा[1] तो नाभादास ने 'भक्तमाल' में उनको नर और देव दोनों भाषाओं में निपुण कविराज बताकर (सवैया, श्लोक, गीत, वेलि, दोहा के रूप में) ६ रसों के काव्य का निर्माता कहा[2]।

मुन्शी देवीप्रसाद के अनुसार कुछ ईर्ष्यालु लोगों को वेलि से डाह भी हुई[3]। उन्होंने इसकी प्रामाणिकता को सन्देह की दृष्टि से देखा, अतः निर्णय के लिये तत्कालीन चार प्रसिद्ध चारण कवियों–दुरसा आढ़ा, मांदूमाला, केसोदास गाडण और माधोदास दधवाड़िया–को चुना गया। इसमें से प्रथम दो ने पृथ्वीराज के विपक्ष में और अन्तिम दो ने पक्ष में सम्मति दी। इस पर पृथ्वीराज ने प्रथम दो के विषय में एक दोहा[4] और गाडण[5] तथा दधवाड़िया[6] की प्रशंसा में एक-एक

१—रुकमणी तणी वेलि पृथीमल रची, उदधि वास कीधो उदरि ।
बुधि जगमुख कीलिवै विदुखा, पुणिया वाद्क ब्यास परि ॥१॥
श्रवणे ब्रह्म सबद तको मंकरियो, नयण मरक इंद उभे निवास ।
हरि कर मौलि ध्यान हरि समहरि, प्रवलि दीपवै तणो उजास ॥२॥
विस जाणग ब्रह्म उकति ताइ बंधी, बाहु हणू' भणिया तो वोर ।
रुति खट अ'गि उरमा....मु रत्ती, धरणी प्रखिर मेर स धीर ॥ ३ ॥
पढिवे गंग प्रवाह प्रवाणी, सुणतां अम्रित पान समथ ।
मांड प्रभू री माय ग्रथ माखण, परगट कीधी लता प्रथ ॥ ४ ॥

अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर की संवत १७०५ वाली प्रति में वेलि के प्रारंभ से पूर्व यह गीत लिखा हुआ है। अ'त में भी टीकाकार द्वारा पृथ्वीराज-प्रशस्ति लिखी गई है—

कितरा आगे वड कवी, पुण्या प्रभु जस पेस ।
चौज ओपमा चातुरी, चकत्या प्रथ आदेस ॥
नारायण तणौ कव्या बड नीका, वाखाणण चौ करी विस्तार ।
चौज कमध कवि चाढि ओपमा, नमो पीथ नित उकति अपार ॥

२—सवैया गीत श्लोक वेलि, दोहा गुन नव रस ।
पिंगल काव्य प्रमान विविध, विधि गायौ हरिजस ।
पर दुख विदुख शलाध्य, वचन रचना जु विचारै ।
अरथ कवित्त निरमोल, सबै सारंग उर धारै ।
'रुक्मिनीलता' वरनन अनूप, वागीश वदन कल्याण सुव ।
नर देव उभै भाषा निपुन, पृथ्वीराज कविराज हुव ॥१४०॥

३—राज रसनामृत, पृ० ४३

४—साई थारे खालियां काई कही न जाय ।
ऊदे माली ऊपनों मैहे दुरसा थाय ॥
. कवि, चेलो कियो चकार ।
सिधरूपी रहता शबद, गाडण गुणा भंडार ॥
'के चत्रभुज सेवियो, ततफल लागो तास ।
जीवो चार जुग, मरो न माधोदास ॥

दोहा कहा। लेकिन उनकी यह सारी डाह वेलि के काव्य-सौष्ठव से टकराकर चूर चूर हो गई[1]।

(२) *परवर्ती देशी-विदेशी विद्वानों द्वारा प्रशंसा :*

पृथ्वीराज की लोकप्रियता काल के प्रवाह के साथ बढ़ती गई। प्राचीन नवीन, देशी-विदेशी सभी विद्वानों ने इनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। विदेशी विद्वानों में डा० टैसीटोरी[2] ने इन्हें 'होरेस-इन-डिंगल' कहा तो कर्नल टाड[3] ने इनकी कविता मे दस सहस्त्र घोड़ों का बल बतलाया। देशी विद्वानों मे किसी को ये 'हिन्दी के भवभूति'[4] नजर आये तो किसी को इनकी उपमाएँ होमर[5], के समान लगी। नरोत्तमदास स्वामी ने घोषणा की 'भक्त लोग गीता और सहस्त्रनाम की भांति उसका (वेलि का) नित्य-पाठ करते आये हैं[6]।

(३) *व्यक्तित्व एवं कृतित्व सम्बन्धी चमत्कारपूर्ण प्रसंग :*

अपने समय में ही पृथ्वीराज अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व (वेलि) के प्रभाव से इतने प्रसिद्ध हो गये थे कि एक सिद्ध पुरुष की तरह उनके सम्बन्ध मे कई किवदन्तियाँ प्रचलित हो गईं।

(क) *भक्ति-भावना सम्बन्धी :*

(१) कहा जाता है कि ये अपने इष्टदेव की मानसी पूजा किया करते थे। उसी के प्रभाव से एक बार आगरे में ही इन्होंने बता दिया कि उसी समय बीकानेर में इनके इष्टदेव की सवारी नगर-कीर्तन के लिए निकल रही थी[7]।

१—राजस्थानी भाषा और साहित्यः डा० मोतीलाल मेनारिया; पृ० १७२

२—'द वेलि''''इज वन ओफ द मोस्ट फुलजेन्ट जैम्स इन द रिच माइन ओफ द राजस्थानी लिटरेचर''''इज वन ओफ द मोस्ट परफेक्ट प्रोडक्शन ओफ द डिंगल लिटरेचर, ए मारवल ओफ पोइटिकल इनजेन्यूइटी, इन विच लाइक इन द ताज ओफ आगरा, इलेबोरेटनैस ओफ डिटेल इज कम्बाइण्ड वीथ सिम्पलीसिटी ओफ कन्सेप्शन एण्ड एक्सक्विजिटनैस ओफ फीलिंग इज ग्लोरिफाइड इन इमैक्यूलेटनैस आफ फोर्म''''द ग्रेट मेरिट ओफ द पोयम इज इन द कम्बिनेशन ओफ ए डिलाइटफुल जेन्यूइननेस एण्ड नेचरलनेस एण्ड नेचरलनेस ओफ एक्सप्रेशन वीथ, द मोस्ट रिगोरस इलेबोरेटनेस ओफ स्टाइल'—स्वसंपादित वेलि : इन्ट्रोडक्शन।

३—राजस्थान : टाड।

४—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : सूर्यकरण पारीक, भूमिका।

५—राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १६० :

६—क्रिसन रुक्मणी री वेलि : प्रस्तावना, पृ० ३३

७—वेलि (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) भूमिका, पृ० २८

(२) यह भी कहा जाता है कि 'वेलि' सम्पूर्ण करने के बाद ये अपने इष्टदेव के दर्शनार्थ द्वारिका गये। मार्ग में एक जगह डेरा डाला तो वहाँ एक धनाढ्य भी आकर ठहरा। उसकी प्रार्थना पर उन्होंने उसे 'वेलि' सुनाई। प्रातः काल जब ये आगे चले तो 'वेलि' वहीं भूल गये। रास्ते में स्मरण आने पर एक सवार को उसके लिए दौड़ाया। सवार ने वहाँ जाकर देखा कि न तो वह व्यापारी है न उसके खेमे आदि का ही कोई चिन्ह! अलबत्ता पृथ्वीराज के खेमे आदि के चिन्ह ज्यों के त्यों बने हैं। इस पर पृथ्वीराज ने स्वयं आकर वह स्थल देखा। वे आश्चर्यान्वित रह गए। परन्तु थोड़ी देर बाद ही उन्होंने निकट के एक तुलसी के पौधे पर 'वेलि' को सुरक्षित पाया। वे समझ गये कि स्वयं भगवान ही उन्हें दर्शन देने आये[1]।

(ख) *मृत्यु सम्बन्धी :*

(१) पृथ्वीराज का प्रण था कि वे अपने शरीर को ब्रज-प्रदेश में ही छोड़ेंगे। इस पर उनके शत्रुओं ने अकबर को सिखाया कि वे उन्हें कहीं बहुत दूर भेज दें। बादशाह ने उन्हें काबुल की मुहीम पर भेज दिया। अपना काल निकट आते देखकर वे साडनी पर बैठ कर दो दिन में ही मथुरा पहुँच गये और वहाँ यमुना के जल का पान कर अपना शरीर छोड़ दिया[2]।

(२) यह भी कहा जाता है कि एक दिन अकबर ने इनसे पूछा कि तुम्हारी मृत्यु कब और कहाँ होगी? पृथ्वीराज ने उत्तर दिया-मथुरा के विश्रांत घाट पर[3] और उस समय एक सफेद कौआ प्रकट होगा। इस भविष्य-वाणी को मिथ्या सिद्ध करने की दृष्टि से बादशाह ने इन्हें अटक के पार भेज दिया। साढ़े पाँच महीने बाद एक भील चकवा-चकवी के एक जोड़े को लेकर बेचने के लिए दिल्ली आया। उसे मानव-वाणी में बोलते देख बादशाह ने अपने पास मँगवाया और उसी समय खान-खाना ने 'सज्जन बाल्' कोड़वां या दुर्जन की भेंट' चरण रचा पर उसे पूरा न कर सके। तब पृथ्वीराज को बुलाया गया। उन्होंने मथुरा पहुँचकर 'रजनी का भेवा किया वेह के अम्बदर मेंट'[4] दूसरे चरण की पूर्ति बादशाह के पास भिजवा विश्रांत घाट पर दान पुण्य कर प्राण त्यागे। सफेद कौआ भी उसी समय प्रगट हुआ। यह घटना संवत १६५७ की है।

१—वेलि (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) भूमिका, पृ० २६-२८
२—दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता, पृथ्वीसिंह की वार्ता, पृ० ४८३-८४
३—भक्तमाल, पृ० ८०८
४—डिंगल में वीर रस : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० ४४-४५

(४) *हस्तलिखित प्रतियों का प्राचुर्य :*

वेलि आरम्भ से ही लोकप्रिय ग्रंथ रहा। डा० मोतीलाल मेनारिया के अनुसार वेलि की लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से हो सकता है कि राजस्थान के प्राचीन पुस्तकालयों और जैन भंडारों में शायद ही कोई ऐसा मिलेगा जहाँ इसकी दो चार प्रतियाँ सुरक्षित न हों।[1] 'राजस्थान भारती' के पृथ्वीराज विशेषांक[2] में इसकी ७४ हस्तलिखित प्रतियों का विवरण दिया गया है। खोज करने पर और भी कई प्रतियाँ मिल सकती है।[3]

वेलि की सचित्र प्रतियां :

इतनी अधिक हस्तलिखित प्रतियों और टीकाओं के मिलने के साथ साथ वेलि की ६ सचित्र प्रतियाँ भी प्राप्त हुई है। (खोज करने पर और भी सचित्र प्रतियाँ मिल सकती है) संक्षेप में उनका विवरण इस प्रकार है–

(१) वेलि की सबसे पहली सचित्र प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर (ग्रंथांक ८१७) मे है। इसे संवत १६९७ में अम्बिकापुर मे भाटी विट्ठलनाथ की प्रेरणा से धर्मपुर वासी सिद्धा पंडा नान जी सुत कोदर ने लिखा। इस प्रति के पत्रांक १३१ व १६८ मे एक एक चित्र और पत्राक १४६ में दोनों और पृष्ठों मे २ चित्र (इस तरह कुल ४ चित्र) हैं। इस प्रति मे ३०३ छंद है। प्रथम छंद संस्कृत मे है।[4]

(२) दूसरी सचित्र प्रति भी अनूप संस्कृत, लायब्रेरी, बीकानेर (ग्रंथांक ११।११) में है। यह सं० १८०८ मे बीकानेर मे खुवास आसाजी पुरोहित श्री कृष्ण द्वारा लिखित ९८ पत्रों की रचना है। इसमें मथेण अखैराज द्वारा चित्रित बीकानेर शैली के १३७ चित्र हैं।

(३) तीसरी सचित्र प्रति अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर मे है। इस सं० १८०७ में वड्नन परगने मंदसौर मे गुलाबचंद ने लिखा। इसमे पहले चतुर्भुजदास रचित मधुमालती सचित्र है फिर वेलि सटीक और सचित्र (पत्र ८२) है। इस प्रति के पत्र पानी से चिपक कर खराब हो गये हैं। आदि और अन्त के पत्र तो बहुत ही बुरी अवस्था मे हैं। पर चित्रों की संख्या काफी है। संभवतः सभी पत्रों मे चित्र हैं। किसी २ पत्र में दो–दो तीन–तीन चित्र भी है।

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य : मेनारिया, पृ० १७२

२—नवम्बर, १९६०: परिशिष्ट: पृ० १८१-९०

३—श्री अगरचन्द नाहटा ने शोध-पत्रिका के वर्ष १५ अंक २ (अप्रैल १९६४) मे वेलि की तीन प्राचीन एवं महत्वपूर्ण प्रतियो का परिचय दिया है (पृ० १५५-५७)

४—कृष्णदेव नमस्कृत्य सर्व देव शिरोमणि ।
वल्ली नाम ग्रंथं तस्माद् यत्न मुदीरयेत् ।।

(४) चौथी सचित्र-सटीक प्रति सरस्वती भण्डार उदयपुर (ग्रंथाङ्क ६४५) में है। इस प्रति के लेखक (संभवतः चित्रकार भी) कवीश्वर गिरधर भट्ट कृष्ण दासने हैं। इसमें ६५ पत्र और ६५ ही चित्र हैं। प्रत्येक पत्र पर एक-एक चित्र है। चित्र का आकार १०३"×१६३" है। इसका लेखन-काल महाराणा जयसिंह का शासन समय वि० सं० १७३७-५५ रहा है। इसमें प्रत्येक चित्र के ऊपर दो-दो, तीन-तीन छन्दों की मेवाड़ी टीका दी गई है[1]।

(५) पाँचवीं सचित्र-सटीक प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (ग्रंथाङ्क ६४२०) में है। इस प्रति में पहले नासिकेतोपाख्यान सचित्र है। फिर वेलि का मूल-पाठ देकर टीका (राजस्थानी में) दी गई है (पत्र ४६ से १३१)। कुल पत्र ३०५ हैं, टीका २८६ पद्यों को ही दी गई है[2]। प्रति में किशनगढ़ शैली के कुल ८२ चित्र हैं। प्रति का आकार ६३"×६३" है। यह प्रति १८ वीं शती की लिखी हुई है।

(६) छठी सचित्र-सटीक प्रति मुनि पुण्यविजय जी संग्रह, अहमदाबाद में है। उसमें ३६ पत्र और १६ चित्र हैं। पद्यों की संख्या ३०४ है। टीका पुरानी राजस्थानी में है।

१—टीका का नमूना इस प्रकार है—

प्रथम पत्र के चित्र के ऊपर—

पृथीराज री वेल रो पत्र ।१। प्रथीराज राठोड़ ।। श्री परमेसर जी हैं नमस्कार करे है ।। सरस्वती में पण नमस्कार करे है ।। सतगुर हैं पण नमस्कार करे है ।। एतीनो तत्व हैं मंगल रूप श्री भगवान हैं गावजे ।।६०।।१।।

द्वितीय पत्र के चित्र के ऊपर—

प्रथी० वेल रो पत्र ।।२।। प्रथीराज कहे है ।।
ज्या पुतली ।। चितारे चित्री है ।। ज्याइज ।। चितारा हैं
चित्रे है। कमलापति री कीरति करूं हूं ।। जांणे गुंगी
सरस्वती सुं बाद करे है ।। ज्युं पागलो ।। मनरो दोड है
क्युं पांचेगो । त्युं हुं परमेसर रा गुंण क्युं गांव गो ।।६०।।३।।

२—प्रारंभ के ५ पद्य नहीं हैं। छठे पद्य (स्त्री पति....) की टीका इस प्रकार दी गई है—
कवी कहे छे र्थ.पत इसी कुण छे। जु तुहारो गुण कथो। अब एसो कुण ताक छे। अब ऐसो कोण पग छे। जु गगन कहतां आकास लग पोहचें। अब एसो कुण गरीब छे समरथ सुमेर ने उठावे ।। जो में सो असमरथ छे तो वेस रहे। जगत कहे। ताको जवाब आगला दवाला मांह कहे छे ।।

(५) *टीकाकारों का आकर्षण :*

'रामचरित मानस' और 'बिहारी सतसई' की भांति 'वेलि' पर भी अनेक टीकाएँ लिखी गईं। अधिकांश टीकाएँ जैन विद्वानों द्वारा (संस्कृत और राजस्थानी में) रचित है। विभिन्न भण्डारों में उपलब्ध टीकाओं का विवरण इस प्रकार है—

(क) *संस्कृत-टीकाएँ :*

	टीका—नाम	टीकाकार	लिपि—संवत
(१)	सुबोध मंजरी टीका[1]	वाचक सारंग	टीका, १६७८
(२)	संस्कृत भाष्य[2]	श्रीसार	टीका, १७३०
(३)	वल्ली संस्कृत सटिप्पण[3]		कनक(लिपिकार)१७५०
(४)	क्रिसनरुखमणी री वेल[4] (अपूर्ण)		

१—यह टीका पालनपुर के शासक पेरोज के काल में बनाई गई। ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा संपादित वेलि के संस्करण में इसका प्रकाशन हो चुका है।

२—यह टीका शाहजहाँ के समय लाहौर में कृष्णानंद की आज्ञा से लिखी गई। इसमें पृथ्वीराज की प्रशंसा के निम्नलिखित श्लोक दिये गये हैं

तद् भ्राता राष्ट्रकूट प्रकट हरपनु शुद्धचेताः सुशील-
सद्बुद्धिः शास्त्रकर्ता हरिचरणयुग्म भावनैकाग्रचित्तः
पृथ्वीराजः प्रसिद्धो जगति गुण निधी राजराजा कवीनां
सोमां वल्लीति नाम्नी हरिचरित युतां राजपीठां चकार ॥१॥
पृथ्वीराजावतारेण, भक्तानुग्रह कम्पया।
स्वयं नारायणः स्वरूपं जगाद चरितं हितम् ॥२॥
दाता भोक्ता हरेर्भक्त, कर्ता शास्त्रस्यवित्।
पृथ्वीराज समो राजा, न भूतो न भविष्यति ॥३॥
दृष्ट्वा वल्लीति नामानं ग्रंथं सर्वरस प्लुतम्
टीका सुटीका तस्या च, कृष्णानन्दो समीकरत् ॥४॥

३—इसकी प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (क्रमांक ६१४), में है। यह टीका वाचक सारंग की सुबोध मंजरी टीका पर आधारित प्रतीत होती है। इसमें टिप्पणियों में अलंकारों का उल्लेख किया गया है जो सारंग की टीका में नहीं है। संभव है लिपिकार कनक ही टिप्पण कर्ता हो। अन्त की प्रशस्ति इस प्रकार है—

खबाणाश्वेन्दु माने बुधे मार्गे मासि सिते दले।
कनो कुशलजा वल्ली सुबै सवार्तिको लिखतम् ॥

४—यह प्रति अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर में है।

(ख) राजस्थानी टीकाएँ :

(१) ढूंढाड़ी टीका[1] — — १६७३

(२) वेलिनउ टबउ[2] — लाखा चारण —

(३) वेलि की टीका[3] — लखाख्य कवि

१—यह प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर (ग्रंथांक २०।१७) में है। इसका प्रकाशन ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादित वेलि के संस्करण में हो चुका है। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने ढूंढाड़ी टीका और लाखा चारण कृत टीका को अलग-अलग माना है (स्वसंपादित वेलिः प्रस्तावना पृ० ७८) पर श्री अगरचंद नाहटा दोनों को एक ही मानते हैं (राजस्थान भारतीः पृथ्वीराज विशेषांक, भाग ७, अंक १-२ पृ० ४७)

२—इसकी हस्तलिखित प्रति मोजमाबाद (जयपुर राज्यान्तर्गत) के जैन शास्त्र भंडार में सुरक्षित है। यह ३७ पत्रों में लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में ५ पंक्तियाँ हैं जिनमें वेलि का मूल पाठ मोटे अक्षरों में दिया गया है। प्रत्येक पंक्ति में ४१ अक्षर हैं। इन पंक्तियों के बीच-बीच में छोटे अक्षरों में वेलि का अर्थ (टब्बा-टीका) दिया गया है। प्रथम पद्य का अर्थ इस प्रकार है—

पहिलउ परमेसर नैं नमस्कार करइ १ वली सरस्वती ने विद्यातणी नमस्कार कर २ बीजउ सद्गुरु विद्या गुरु नैं नमस्कार करइ ३ ए तीने तत्वसार तिहुं लोकें सुखदाई। साक्षात् मंगल रूप श्री कृष्ण गुण गाइसइ। माधव श्री लक्ष्मी वर ए त्यारेई मंगलाचरण करी श्री कृष्ण रुक्मणी ना गुण स्तुति करइ ॥१॥

वेलि की इस प्रति में अन्तिम छन्द (वसु सिर नयण...) रचना-संवत-सूचक है जिसके अनुसार वेलि की रचना सं० १६३८ आसोज सुदी १०, रविवार को हुई थी। इस अन्तिम छंद के बाद एक कवित्त वेद बीज जल रमण सकति रोपी जड़ अडर"" दिया है जिसे टीकाकार ने लाखा भूला रचित (ए कवित्त चारण साईदर भूलउ कीधउ छई) लिखा है। इसके बाद जो पुष्पिका दी गई है वह इस प्रकार है—

"इति चारण लाखानउ कीधउ वेलिनउ टबउ संपूर्ण पपउ समाप्त ॥ संवत् १७०६ वर्षे आषाढ़ सुदि १३ दशे बा० प्रताप पठनार्थ।"

अन्त में भिन्न लिपि में लिखा है "ब्राह्मी बालकृष्ण सुत दयाराम पुस्तकं ॥ ब० बालकृष्ण।

३—इसकी हस्तलिखित प्रति श्री आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भंडार, लाल भवन जयपुर के गुटके नं० ६८ में लिखी हुई है। यह गुटका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसमें कुल ११० पत्र हैं। प्रस्तुत टीका १३६ से लेकर १४५ पत्रों तक १० पत्रों में लिखी गई है। प्रत्येक पृष्ठ में ४१ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में २८ अक्षर हैं। गुटके का आकार ८½"×५½" है। आरंभ के १४५ पत्रों में उद्देश्य कृत बावनी, सिन्दूर प्रकरण, हरिरस, अवता रा दूहा, परमात्मा रा दूहा, पंच सहेली रा दूहा, बाघ भाव रा दूहा, ढोला मारू रा दूहा,

माधवानल काम कंदला चउपई, सदयवत्स सिवलिंग री वार्ता, महादेवजी री निसाणी, स्थूलिभद्र वत्तीसी, माताजी रो छंद, गणेशजी रो छंद, फुटकर कवित्त, सवैया, पहेली, कुंडलिया आदि महत्त्वपूर्ण ग्रंथ लिपिबद्ध हैं। यह गुटका एक ही लिपिकार द्वारा लिखा हुआ नहीं है न एक ही प्रकार की व एक ही समय की रचनाएँ इसमें संकलित हैं। ऐसा लगता है कि भिन्न-भिन्न अवसरों पर लिखे गये विभिन्न पत्रों का इस गुटके में निबन्धन कर लिया गया है। यही कारण है कि इसमें संकलित कई ग्रंथ अधूरे हैं। वेलि का मूल पाठ व टीका भी अपूर्ण है। प्रारंभ के केवल १६२ छंद ही यहाँ लिपिबद्ध हैं जिनमें पहले १२ छंदों की टीका तो 'टीका' लिखकर की है और शेष छन्दों की टीका 'वार्ता' लिखकर। लगता है शेष छन्दों के पृष्ठ कहीं बिखर रह गये हैं। यह गुटका १८ वीं शती का प्रतीत होता है।

इस प्रति का महत्त्व इसलिए अधिक है कि इसमें प्रारंभ के मंगलाचरण के ६ छन्दों में टीकाकार लाखा का स्पष्ट उल्लेख हुआ है—

ध्यात्वा श्री गुरू पाद पद्म युगलं श्री मन्मुरा रेः पदा।
वल्या प्रारभते जनप्रिय करी टीका लखाख्य कविः ॥
दृष्ट्वा हृत्सरसीरुहे बहुतर तोषं कवीशा दधुः।
दोषो न प्रतियाति यत्र पटुतां ता नंद मू नुर्भु शम् ॥१॥
श्री शारदा बुद्धि विशारद मे पुनर्गणेशः प्रकरोति सिद्धिम्।
या लम्य सर्वेहि कवीश्वर्वया, विस्तारयन्तिस्य यशोवितानाम् ॥२॥
श्री गुरूं विट्ठलं नत्वा नत्वा च गिरधारणी।
सरस्वती नमस्यामि नाना बुद्धि प्रदायनी ॥३॥
नत्वा कवीन्द्रान् सर्वज्ञान् प्रार्थना सिद्धि दायकान्।
लखाख्ये नापि सुधिया वेल्लि टीका प्रतन्यते ॥४॥

आर्या—श्री विट्ठलं श्रीगुरूं वंदे नंदे जेणि नेक नवे।
प्रभु गिरधरणं प्रसन्नं होई पसाइ जाइ हरसिद्धि ॥५॥
गणपति गुणे गंभीरं धीरं प्रणमि दय बुद्धि सिद्धी।
सारदा सुपसन्नं आपण रयण वयण उपदेशं ॥६॥

इस मंगलाचरण के बाद 'वेलि' आरम्भ होती है। प्रथम पद्य की टीका इस प्रकार है:—

टीका:—प्रथमहीज परमेस्वर कुं नमस्कार करइ छै। पाछै सरस्वती कुं नमस्कार करइ छै। पछै सतगुरू कुं नमस्कार करइ छइ। मंगल रूप माधव छै। ताकौ गुणवाद कीजेछे। इण उपरांत मंगलाचार कोई नहीं छै ॥१॥

लाखा चारण कृत वेलि की सबसे प्राचीन टीका को अब तक अप्राप्य ही समझा जाता रहा है। इस गुटके की प्रति का प्रकाशित ढूंढाड़ी टीका (जिसका प्रकाशन ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक द्वारा सम्पादित वेलि के संस्करण में हो चुका है और जिसमें टीकाकार का कोई नामोल्लेख नहीं है) से मिलान करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि दोनों टीकाएँ एक ही हैं। विनय ज्ञान भण्डार की इस प्रति में लाखा का उल्लेख होने से ढूंढाड़ी टीका का कर्ता लाखा होना भी स्वयं सिद्ध है।

(४)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि[1]	सदारंग	१६८३
(५)	वनमाली वल्ली बालावबोध[2]	जयकीर्ति	टीका १६८६
(६)	नारायण वल्ली बालावबोध[3]	कुशलधीर	१६९६
(७)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि[4]	अज्ञात	१६९७
(८)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि[5]	,,	१६९९
(९)	वेलि (बालावबोध)[6]	लक्ष्मीवल्लभ	१८ वीं शती का पूर्वार्द्ध
(१०)	वेलि रुक्मणीजी कृष्णजी री[7]	अज्ञात	१७०५
(११)	श्री कृष्ण रुक्मणी वेलि[8]	शिवनिधान	१७०६

मोजमाबाद की प्रति में जो लाखा चारण का उल्लेख हुआ है वह पुष्पिका में हुआ है। यह लिपिकार की ओर से प्रमादवश भी हो सकता है जबकि विनय ज्ञान भण्डार की प्रति में जो लाखा का उल्लेख हुआ है वह मंगलाचरण में हुआ है जो स्वयं टीकाकार द्वारा रचित होने से अधिक विश्वसनीय है। यह भी संभव है कि लाखा चारण और लखाख्य कवि दो अलग-अलग व्यक्ति हो और दोनों ने दो अलग-अलग टीकाएँ लिखी हों।

१—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर : ग्रंथांक ६।१३

२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर : ग्रंथांक ३९४३

जयकीर्ति ने वेलि के टीकाकारों का इस प्रकार उल्लेख किया है–

पाखउ जगि भाखा चतुर चारण लाखउ चंग।
कीधउ पहिली वारतकि अरथि न उपजइ रंग॥
ग्वालेरी भाषा ग्रथित मंद अरथ मित भाव।
वात-वध किय भाख विनु समझण तिण सम भाव॥
चतुर विचक्षण चतुर-मति रवि-तति पंडित-राय।
सकल विमल भाखा सुधी कवि सारंग कहाय॥
जिण कहि भाखा जोरि करि संस्कृत भाखि सुजाण।
अरथ कहयउ लागइ विसम वदइ न मंद वखाण॥

वेलि का यह बालावबोध वाघमल के पुत्र पारसजी की प्रार्थना से जयकीर्ति ने रचा।

३—महिमा-भक्ति-जैन शास्त्र भण्डार, बड़ा उपाश्रय, बीकानेर, ग्रंथांक ३३।४१०।

यह टीका कुशलधीर ने अपने शिष्य भावसिंह के लिए बनाई थी।

४—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर : ग्रंथांक ८१७

५—वही : ६।१४

६—अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर की प्रति। इसकी रचना बिकरापुर के चतुरजनों की अभ्यर्थना से हुई।

७—वही :

८—सरस्वती भण्डार, उदयपुर : ग्रंथांक ८०२

(१२)	श्री कृष्ण रुक्मणी जी री वेल[1]	अज्ञात	१७२२
(१३)	वेल (सार्थ)[2]	,,	१७२२
(१४)	पृथिराज वेलि[3] (स्तबक)	पं० दानचन्द्र	१७२७
(१५)	वेलि (बालावबोध)[4]	शिवनिधान	१७३८
(१६)	क्रिसन रुक्मणीजी री वेल[5]	अज्ञात	१७४१
(१७)	वेल[6]	,,	१७४५
(१८)	श्री कृष्ण रुक्मणी गुण वेलि[7]	,,	,,
(१९)	हरि वेल (सार्थ)[8]	,,	१७४७
(२०)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि (अपूर्ण)[9]	,,	१७५३
(२१)	क्रिसन रुक्मणी री वेल[10]	,,	१७५४
(२२)	कृष्ण रुक्मणी वेलि[11]	,,	,,
(२३)	वेलि (सबालावबोध)[12]	,,	१७६६
(२४)	क्रिसन रुक्मणी री वेल[13]	,,	१७७२
(२५)	पृथ्वीराज वेलि[14]	,,	१७८२
(२६)	वेलि (सस्तबक)[15]	शिव निधान	१७८९
(२७)	वेल (सटीक)[16]	अज्ञात	१७९१
(२८)	वेलि (सार्थ)[17]	,,	१७९२

१—महिमा-भक्ति जैन-शास्त्र भण्डार, बड़ा उपाश्रय, बीकानेर : ग्रंथाङ्क ३६।५७७
२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर : ग्रंथाङ्क २०७०
३—महिमा भक्ति जैन शास्त्र भण्डार, बड़ा उपाश्रय, बीकानेर, ग्रंथाङ्क ३३।४८५
४—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रथाङ्क ३९४२
५—अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर, ग्रंथाङ्क ७४०५
६—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ४८३८
७—राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी की प्रति
८—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर ग्रंथाङ्क ९१४४
९—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ग्रंथाक १९।१९
१०—खजानची कला भवन पुस्तकालय, बीकानेर : ग्रंथाक २८
११—दिगम्बर जैन मन्दिर (बधीचन्दजी), जयपुर—गुटका नं० २६
१२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर : ग्रंथाक ११०६०
१३—खजानची कलाभवन, पुस्तकालय, बीकानेर
१४—दिगम्बर जैन मन्दिर (ठोलियों का), जयपुर—गुटका नं० ११८
१५—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रंथाक ४०७७
१६—वही : ग्रंथाक ३५५७।२
१७—वही : ग्रंथाक १८६८।४

(२९)	श्री प्रथिराजजी री वेलि[1]	अज्ञात	१७३१
(३०)	वेल (बालावबोध)[2]	जयकीर्ति	१७६६
(३१)	श्रीलता पृथ्वीराज कृत[3] (सटब्बार्थ)	शिव निधान	१७९९
(३२)	वेल सार्थ[4]	अज्ञात	१८वीं शती
(३३)	कृष्ण रुक्मणी गुण मंगलाचार[5] वेल (सचित्र)	"	"
(३४)	श्री क्रिसनजी री वेलि[6]	"	"
(३५)	वेलि (सचित्र)[7]	"	"
(३६)	वेल कृष्ण रुक्मणी जसवाद[8]	"	१८००
(३७)	पृथ्वीराजकृत वेलि (सचित्र)[9]	अज्ञात	१८०३
(३८)	क्रिसन रुक्मणी री वेलि[10] (सचित्र)	"	१८०८
(३९)	वेलि (सार्थ)[11]	"	१८१७
(४०)	वेलि (सटीक बालावबोध)[12]	"	१८१९
(४१)	वल्ली (सविवरण)[13]	कुशलधीर	१८६६
(४२)	वेलि (अपूर्ण)[14]	अज्ञात	
(४३)	क्रिसन रुक्मणी री वेल[15]	मध्य भाग खण्डित	

१—सरस्वती भण्डार, उदयपुर, ग्रंथांक ४१९। अन्त की प्रशस्ति इस प्रकार है—

पीथल कमध किल्यांण रा, वेहा गुण गावां ।
ये दा (वा) म्हें मंगला, इण नातें पावां ॥१
च्यारि वेद नव व्याकरण, अनैं चौरासी गुठ ।
तो प्रित प्रिय किल्यांण रा, गई मजालस उठ ॥२

२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, ग्रंथांक ३५४८
३—वही : ग्रंथाङ्क २०९९
४—वही : ग्रंथाङ्क ४०७८
५—वही : ग्रंथाङ्क ९४२०
६—अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर, ग्रंथाङ्क ७४०४
७—सरस्वती भण्डार, उदयपुर-ग्रंथाङ्क-९४५
८—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रंथाङ्क ८५५३
९—अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर
१०—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ग्रंथाङ्क ११।११
११—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाङ्क ४४५२
१२—अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर, ग्रन्थाङ्क ७४०६
१३—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर, ग्रन्थाङ्क ४०७६
१४—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर, ग्रन्थाङ्क १२।१२
१५—वही : ग्रन्थाङ्क १५।१५

(४४) क्रिसन रुक्मणी री वेलि[1]
(४५) क्रिसन रुक्मणी री वेलि[2] पुरोहित लक्ष्मण

(ग) व्रज भाषा में अनुवाद–
(१) रस विलास[3] गोपाल लाहोरी १८ वीं शती

(घ) खड़ी बोली मे पद्यानुवाद–
(१) क्रिसन-रुकमणी-री-वेलि[4] नरोत्तमदास स्वामी अप्रकाशित

रचना–काल :

वेलि के रचना–काल को लेकर विद्वान लोग एक मत नहीं हैं। इसका कारण वेलि की हस्तलिखित प्रतियों मे प्राप्त रचना-संवत-सूचक छन्दों का वैभिन्य रहा है। जो रचना-संवत–सूचक छन्द विभिन्न प्रतियों में मिलते हैं वे निम्नलिखित हैं—

(१) वरसि अचल[७-८] गुण[3] अङ्ग[6] ससि[1], संवति, (१६३७ या १६३८)
तवियउ जस करि स्त्री–भरतार।
करि स्त्रवणे दिन–राति कंठि करि,
प्रामै स्त्रीफल भगति अपार ॥

इस छन्द में प्रयुक्त 'अचल' का अर्थ सात भी होता है और आठ भी। टीकाकारों ने दोनों ही अर्थ किये हैं। टैसीटोरी[5], सूर्यकरण पारीक[6], मंजुलाल मजुमदार[7], रामकुमार वर्मा[8], कृष्णशङ्कर शुक्ल[9] आदि ने 'अचल' का अर्थ सात

१—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर ग्रन्थाङ्क १६।१६

२—वही : ग्रन्थाङ्क २०।२०

३—यह पद्यानुवाद नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सम्पादित वेलि के संस्करण मे प्रकाशित हो चुका है। इसे गोपाल लाहोरी ने नवाब मिर्जाखांन (नवाब मुसाहिब खां के पुत्र सिरदार खा का पुत्र) के लिए किया था। इससे पता चलता है कि मुसलमानी नवाबों मे भी वेलि के प्रति आकर्षण था।

४—यह अनुवाद नरोत्तमदास स्वामी द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है (नरोत्तमदास स्वामी द्वारा सम्पादित वेलि : प्रस्तावना, पृ० ८०) युद्ध–वर्षा–रूपक प्रकरण का हिन्दी पद्यानुवाद स्वसम्पादित वेलि के परिशिष्ट मे दिया गया है।

५—वेलि (एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता) प्रस्तावना : पृ० ९

६—वेलि (हिन्दुस्तानी एकेडेमी) भूमिका पृ० ९७–९९

७—गुजराती साहित्य नाँ स्वरूपो : पृ० ३७५

८—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय संस्करण) पृ० २५७

९—वेलि (साहित्य निकेतन, कानपुर) : पृ० ११८

कर वेलि का रचना-काल सं० १६३७ माना है। डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा का भी यही मत है[१]। जयकीर्ति[२], कुशलधीर[३] और अगरचन्द नाहटा[४] ने 'अचल' का अर्थ आठ कर इसका रचना-काल सं० १६३८ माना है। यह छन्द कई प्रतियों में मिलता है।

(२) वसु[८] सिव-नयन[३] रस[६] ससि[१] वच्छरि, (१६३८)
विजय-दसमि रवि रिख व रणउत।
किसन-रुकमणी वेलि कलप-तरु,
की कमधज कलियाण-उत॥

इस छन्द में प्रयुक्त 'वसु' (जिसका अर्थ आठ होता है) के आधार पर श्री नटवरलाल इच्छाराम देसाई[५] ने वेलि को सं० १६३८ में रचित माना है। यह छन्द भी कई प्रतियों में मिलता है।

(३) सोलैसे संवत छत्रीसा वरखे, (१६३६)
सोम त्रीजू वैसाख समंधि।
रुक्मणि क्रुसन रहस रंग रमतां,
कही वेलि पथिराज कमंधि॥

इस छन्द से वेलि का रचना-काल संवत १६३६ सूचित होता है। यह छन्द कतिपय प्रतियों में मिलता है।

(४) सोलह सै समत चमाले वरसे, (१६४४)
सोम तीज वैसाख सुदि।
रुक्मिणि कृष्ण रहस्य रमण रस,
कवी वेलि पृथिराज कमधि॥

इस छन्द के आधार पर डा० मोतीलाल मेनारिया[६], डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित[७], डा० हीरालाल माहेश्वरी[८] आदि वेलि का रचना-काल संवत १६४४ मानते हैं। यह छन्द भी कतिपय प्रतियों में मिलता है।

१—बीकानेर राज्य का इतिहास : प्रथम खण्ड, पृ० १६१
२—राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति नं० ३६४३
३—महिमा भक्ति-जैन शास्त्र भण्डार बड़ा उपाश्रय, बीकानेर ग्रंथांक ३०।४६०
४—राजस्थान भारती (पृथ्वीराज विशेषाङ्क) : भाग ७ अङ्क १-२ नवम्बर, १९५९-६०, पृ० ४६
५—वेलि (फार्बस गुजराती सभा, बम्बई)
६—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १६३-६५
७—स्वसंपादित वेलि : भूमिका : पृ० ५१
८—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १६१

रचना-संवत-सूचक पद्यों वाली वेलि की जितनी भी प्रतियाँ मिलती हैं वे १७ वी शती के अन्त की या अठारहवी-उन्नीसवीं शती की मिलती हैं। कई प्रतियों में संवत-सूचक दो दो विभिन्न पद्य भी मिलते हैं। अब तक प्राप्य सबसे प्राचीन प्रति सं० १६६४ की है जो कोटा के विजयगच्छ के उपाश्रय से प्राप्त एक संग्रह (गुटके) में है। इस प्रति में वेलि के ३०१ पद्य है पर रचना-संवत-सूचक उपर्युक्त चार छन्दो मे से कोई भी नहीं है। प्रति की लेखन पुष्पिका इस प्रकार है—'इति वेलि समाप्ता सम्पूर्ण ।। सं० १६६४ वर्षे पोष मासे कृष्ण पक्षे ऐकादस्या तिथौ शनिसर वारे ।। लिखतें शिवराज ।। नागपुर मध्ये ।। शुभं भवतु ।।' वि० सं० १६६६ की अभयजैन ग्रन्थालय, बीकानेर की प्रति में भी ३०१ छन्द हैं और रचना-संवत-सूचक कोई भी छन्द नही है। इस प्रति की प्रशस्ति इस प्रकार है--'इति श्री कृष्णदेव रुपकरा वेलि सपूर्ण समाप्ता ।। राठौड़ श्री किल्याणमल सुत प्रतिराज तत्तं ।। बंधव सुरतांणजी गागरोणगढ़ मध्ये[1] ।। सं० १६६६ वर्षे माह सुदी ४ दिने लिषतं रांमां ।। फूलखेड़ा मध्ये ।। शुभंभवतु ।। किल्याणं'।। । सं० १६७३ और सं० १६६२ की प्रतियों मे भी रचना-संवत का सूचक पद्य नही है। उनमे ग्रन्थ की समाप्ति 'रूप लखण गुण तणी रुकमणी' इस पद्य के साथ हो जाती है। संवत-सूचक पद्य का उल्लेख सर्व प्रथम सारंग की सुबोधमंजरी नामक संस्कृत टीका मे मिलता है। यह टीका सं० १६७८ में रची गई थी और इसकी प्रति १६८३ की लिखी प्राप्त हुई है[2]। उसमें इस पद्य को उद्धृत नहीं किया गया है और न उसकी टीका दी गई है। केवल प्रतीक उद्धृत हुआ है—

तत्र कदायं ग्रंथस् संजातस् तत् कथयति।
द्वालकः । वरसीति । इति सुगमय् ।।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि रचना संवत सूचक पद्यों मे से कोई भी पृथ्वीराज की रचना नही है। वेलि से सम्बन्ध रखने वाले अन्यान्य कई-एक प्रशंसात्मन पद्यों की भाँति, जो वेलि की रचना के बाद बन गये थे और जिनको टीकाकारों अथवा लिपिकारों ने पीछे से जोड़ दिया, ये पद्य भी पीछे की रचना है[3]। यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जब सभी संवत (१६३६, ३७, ३८ व ४४) प्रक्षिप्त हैं तो फिर इनकी कल्पना क्यों की गई? अनुमान है कि ये संवत लेखक की जीवन सम्बन्धी महत्वपूर्ण घटनाओं से सम्बन्धित हैं या वेलिकार ने विशेष प्रसंगों पर स्वयं वेलि का पाठ, विद्वानों या भक्तजनों के समक्ष किया हो, जिनके आधार

१—इस प्रशस्ति से वेलि की रचना गागरोनगढ़ मे हुई प्रतीत होती है। उनके भाई सुरताण के उल्लेख से पता चलता है कि वे वहाँ पृथ्वीराज के साथ होगे और वेलि की रचना मे उन्होने प्रेरणा दी होगी।

२—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर की प्रति, ग्रंथाक २०।१७

३—क्रिसन रुकमणी री वेलि : प्रस्तावना-पृ० ७८ : नरोत्तमदास स्वामी।

पर विविध लिपिकारों ने भिन्न-भिन्न संवतों को उसका रचना-काल मान लिया हो[1]। संवत-सूचक पद्यों को प्रक्षिप्त मानते हुए भी यह अनुमान करना कि सं० १६३६ और १६४४ के बीच हो किसी समय वेलि की रचना हुई होगी, असंगत न होगा।

कथानक :

वेलि की कथा कृष्ण और रुक्मणी के वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित है। सम्पूर्ण कथा के सार को निम्नलिखित शीर्षकों में बांटा जा सकता है[2]—

(१) प्रस्तावना (१-९)
(२) रुक्मणी की बाल्यावस्था और वयः संधि (१०-२७)
(३) विवाह की मन्त्रणा और शिशुपाल की बरात का आना (२८-४२)
(४) रुक्मणी का कृष्ण को संदेश भेजना (४३-५८)
(५) रुक्मणी का संदेश (५१-६६)
(६) कृष्ण और बलराम का कुन्दनपुर जाना (६७-७८)
(७) रुक्मणी का शृंगार (७९-१०१)
(८) रुक्मणी का देवी-पूजा को जाना (१०२-१०८)
(९) रुक्मणी का हरण और शिशुपाल तथा रुक्मकुमार के युद्ध (१०९-१३७)
(१०) कृष्ण का द्वारका लौटना और रुक्मणी के साथ विवाह होना (१३८-१५८)
(११) वर-वधू का एकांत मिलन और निशापगमन (१५१-१८६)
(१२) ऋतु-वर्णन और ऋतु-विहार (१८७-२६८)
(१३) कृष्ण का परिवार और गृहस्थ-जीवन (२६९-२७७)
(१४) वेलि-माहात्म्य (२७८-२९९)
(१५) उपसंहार (३००-३०५)

कथा का मूल आधार भागवत पुराण है। भागवत के दशम स्कंध के उत्तरार्द्ध के अध्याय ५२-५३-५४ मे रुक्मणी की कथा आई है, परन्तु कवि ने इस कथा को केवल बीज रूप में स्वीकार किया है[3]। काव्य-सौष्ठव तथा वर्णन-शैली में उसकी अपनी मौलिकता है। श्री नरोत्तमदास स्वामी ने दोनों (भागवत तथा वेलि) में निकट अथवा दूर के भाव-साम्य के १४ स्थल[4] उद्धृत करते हुए दोनों की कथा में २५ अन्तर[5] बतलाये हैं। डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित ने विष्णुपुराण के

१—प्रो० भूपतिराम साकरिया का 'वेलि का काल-निर्णय' शीर्षक लेख राजस्थान भारती (पृथ्वीराज विशेषांक) भाग ७ अंक १-२, पृ० १७२

२—नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित वेलिः प्रस्तावना, पृ० ३४-३६

३—वेली तसु बीज भागवत, वायउ, महि थाणउ प्रिथुदास मुख।
मूल ताल, जड़ अरथ, माडहइ, सु-थिर करणि चढि, छांह मुख (२९१)

४—स्वसंपादित वेलिः प्रस्तावना, पृ० ३९-४१

५—वहीः पृ० ४१-४४

५ वें अध्याय के २६ वें खण्ड तथा हरिवंशपुराण के ५६ एवं ६० वें अध्यायों में आये हुए रुक्मणी-विवाह के प्रसंग की भी चर्चा की है[१]। पर वेलि के कवि ने उनसे कुछ लिया हो ऐसा नहीं जान पड़ता[२]। कथा-संयोजन में निम्नलिखित कथानक-रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है-

(१) नायिका का लक्ष्मी का अवतार होना और क्षण-क्षण में उसके रूप (अवस्था) का बदलना।

(२) वर-प्राप्ति के लिए नायिका का गौरी और शङ्कर की पूजा करना।

(३) कन्या के सगाई-प्रसंग को लेकर भाई अथवा परिवार के किसी सदस्य द्वारा विरोध प्रगट करना।

(४) नायिका का ब्राह्मण के द्वारा पत्र-भिजवाकर नायक को अपनी रक्षा के लिए बुलवाना।

(५) नायिका का नायक से मिलने के लिए शृंगार कर पूजा के बहाने अम्बिकालय में जाना।

(६) पूजा करके लौटने पर नायक द्वारा नायिका का हरण करना।

(७) हरण करने पर नायक तथा सगाई-प्रसंग को लेकर विरोध प्रकट करने वाले व्यक्ति तथा उसके द्वारा आमन्त्रित लोगों के बीच संघर्ष छिड़ना।

(८) संघर्ष में नायक का विजयी होकर नायिका के साथ अपने निवास-स्थान पर जाना तथा विधिवत् विवाह करना।

वेलि एक खण्ड काव्य है पर यह साधारण खण्ड-काव्य नहीं है[३]। उसका शरीर चाहे महाकाव्य की ऊंचाई को स्पर्श न कर पाया हो पर उसकी आत्मा में पाठकों को 'उत्तेजित, करुणाभिभूत, चकित और स्तम्भित' करने की शक्ति है।

वेलि की संपूर्ण कथा को स्थूल रूप से दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में कृष्ण-रुक्मणी के विवाहोपरान्त मिलन और प्रभात वर्णन (छन्द संख्या १८६ तक) का भाग सम्मिलित है। उत्तरार्द्ध में षटऋतु-वर्णन, वेलि-माहात्म्य, कवि-विनय (१८७-२०५) आदि आते हैं जिनका मूल-कथा से सीधा-सम्बन्ध नहीं है। वेलि की मुख्य-कथा कृष्ण और रुक्मणी से सम्बन्धित है। प्रासंगिक कथाओं में रुक्मणी और शिशुपाल की कथा, ब्राह्मण की कथा, बलराम की कथा आदि गिनाई जा सकती हैं। ये कथाएँ मुख्य-कथा को गति देकर अन्तर्विलीन हो जाती हैं।

१—स्वसंपादित वेलिः भूमिका, पृ० ५५-५६

२—स्वसंपादित वेलिः नरोत्तमदास स्वामीः प्रस्तावना, पृ० ३६

३—निम्नलिखित बातें उसके खण्ड काव्य होने में संदेह उत्पन्न करती हैं—

काव्य-वस्तु सुसंगठित है। उसमें विभिन्न अवस्थाओं का सुचारु रूप से निर्वाह हुआ है। रुक्मणी कृष्ण के गुणों को श्रवण कर मुग्ध होती है और उनको पतिरूप में पाने की इच्छा से, उनकी प्राप्ति के लिए, हर गौरी की पूजा करती है (आरम्भ)। रुक्मकुमार और शिशुपाल के रूप में बाधाएँ आती हैं जिससे कृष्ण की प्राप्ति संदिग्ध हो जाती है पर रुक्मणी ब्राह्मण को पत्र देकर द्वारकापुरी कृष्ण के पास भेजती है (यत्न)। कृष्ण ठीक समय पर आ पहुँचते हैं। रुक्मणी पूजा के लिए नगर के बाहर देवी के मन्दिर को जाती है जहाँ कृष्ण भी आ पहुँचते हैं और उसका हरण कर चल देते हैं, इस प्रकार प्रयत्न सफल होता है पर अभी और बाधाएँ बाकी हैं (प्राप्त्याशा)। शिशुपाल और रुक्मकुमार कृष्ण का पीछा करते हैं। प्राप्ति एक बार फिर संदिग्ध हो जाती है। युद्ध होते हैं जिनमें कृष्ण की विजय और विरोधियों की पराजय होती है। अब प्राप्ति निश्चित हो जाती है (नियताप्ति)। इसके पश्चात् कृष्ण रुक्मणी को लेकर द्वारका जाते हैं जहाँ दोनों का विवाह होता है। यहाँ फल की प्राप्ति एक प्रकार से हो जाती है पर विवाह की सफलता गृहस्थ-सुख और संतान-प्राप्ति तथा परिवार की समृद्धि में है। फलतः काव्य की समाप्ति पुत्र-पौत्रादि की प्राप्ति होने पर होती है (फलागम)[१]।

कथा में अलौकिक तत्वों का भी समावेश किया गया है। ऐसे चार स्थल हैं। पहला स्थल उस समय का है जब ब्राह्मण कहने के पहले ही लग्न लेकर चंदेरीपुरी में जा पहुँचता है[२]। दूसरा स्थल ब्राह्मण के कुन्दनपुर में सोकर द्वारका में जगने का है[३]। तीसरा स्थल रुक्मणी के रूप को देखकर समस्त सेना के मूर्च्छित होने का है[४] और चौथा स्थल कृष्ण का रुक्मकुमार के काटे हुए केशों को फिर उगा देने का है[५]।

---

(१) खंडकाव्य में नायक या नायिका के जीवन की किसी एक ही घटना या प्रसंग को लेकर रचना की जाती है पर वेलि में रुक्मणी की कथा उसके बाल्यकाल से लेकर पौत्र-प्राप्ति तक दी गयी है।

(२) खंडकाव्य की दृष्टि से काव्य का अंत रुक्मणी के विवाह के साथ ही हो जाना चाहिए था। पर ऐसा नहीं होता, यहाँ काव्य का मध्य ही होता है।

(३) काव्य में पाये हुए लंबे वर्णन महाकाव्य के ही उपयुक्त हैं, खंड-काव्य के नहीं। विस्तार और सर्गबद्धता को छोड़कर महाकाव्य के शेष सभी लक्षण वेलि पर घटित होते हैं।

नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित वेलि: प्रस्तावना, पृ० ६८

१—नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संपादित वेलि : प्रस्तावना, पृ० ६५-६६

२—छंद संख्या : ३६

३—छंद संख्या : ८७

४—छंद संख्या : ११०

५—छंद संख्या : १३७

चरित्र-चित्रण :

वर्णन-प्रधान काव्य होने के कारण वेलि में चरित्र-चित्रण का प्रयत्न नही है। अधिकांश मे वर्णनों के माध्यम से ही पात्रों का चरित्र चित्रण हुआ है। प्रमुख पात्रों में कृष्ण, रुक्मणी, रुक्मकुमार, बलराम और शिशुपाल हैं। गौण-पात्रों मे ब्राह्मण, रुक्मणी के माता-पिता, कृष्ण के माता-पिता, ब्राह्मण-पुरोहित, रुक्मणी की सखियां, कुन्दनपुर के नागरिक, रुक्मणी के साथ जाने वाले सैनिक, शिशुपाल के सुभट और द्वारिका के नागरिक आते है। पात्रों की तीनों कोटियां है। सुर-पात्रों मे कृष्ण और रुक्मणी आते हैं, असुर पात्रों मे रुक्मकुमार और शिशुपाल। मानव पात्रों मे शेष सभी पात्रों का समावेश किया जा सकता है। पात्रों मे चारित्रिक विकास की कमी है। लगता है सब पात्र प्रारम्भ से अन्त तक एक ही रंग में रंगे हैं।

कृष्ण :

कृष्ण काव्य के नायक और प्रमुख पात्र हैं। कवि ने उनको परब्रह्म और मानव दोनों रूपों मे देखा है। परब्रह्म रूप मे वे निर्गुण और सगुण दोनों है। निर्गुण रूप का संकेत एक दो स्थलो पर ही हुआ है[1]। सगुण रूप मे वे विश्व का पालन-पोषण करने वाले हैं, शरणागतों के आश्रय-स्थल है, बलि को बांधकर धर्म की रक्षा करने वाले हैं, वराह रूप मे अवतीर्ण होकर हिरण्याक्ष का वध कर पृथ्वी का उद्धार करने वाले है और रामावतार मे रावण का अन्त कर सीता को मुक्ति दिलाने वाले है। वे चतुर्भुज हैं। शंख, चक्र, गदा और कमल को धारण करते हैं[2]। भक्त के प्रति कृपालु हैं। रुक्मणी के पत्र पर अकेले ही रक्षार्थ दौड़ पड़ते हैं।

मानव रूप में वे आदर्श प्रेमी, सच्चे वीर, लोकप्रिय शासक और सद्गृहस्थ है। उन्हें कवि पृथ्वीराज का वीरत्व और स्वाभिमान मिला है। अन्य कृष्ण-काव्य धारा के कवियों की तरह वे माखन चोर, मुरलीधर और रास-विहारी नही है। उनका कर्तव्यनिष्ठ वीर-व्यक्तित्व हमे आकर्षित करता है। वह दुष्टों के दमन मे जितना क्रूर है सज्जनों की भलाई मे उतना ही करुण। उसे अपने आत्म-बल पर पूर्ण विश्वास है। वह अकेला ही रथ लेकर मंदिर के द्वार पर पहुँच जाता है और बिठा देता है अपने रथ पर सेना से घिरी हुई रुक्मणी को। उसका रुक्मणी-हरण चोर कृत्य नही है उसके पीछे स्वाभिमानी निर्भीक आत्मा की पुकार है—

वाहरि रे वाहरि, छइ कोई वर, हरि हरिणाखी जाइ हरि। (११२)

वह रुक्मकुमार से युद्ध करता है। उसके आयुधों को व्यर्थ करता है और अन्त मे उसके केश उतारकर उसे विरूप करता है। पर युद्ध की भयंकरता मे भी उसके हृदय का स्नेह सूखा नहीं है।[3]

१—छंद संख्या : २७२
२—छंद संख्या : ५६–६४
३—छंद संख्या : १३२–३३

कृष्ण सच्चे प्रेमी हैं। रुक्मणी से वे विधिवत् विवाह करते हैं। उनका अलौकिक व्यक्तित्व प्रणय की मादकता के आगे गल जाता है। हृदय की सुषुप्त प्रेम-भावना ब्राह्मण द्वारा रुक्मणी का पत्र पाते ही जाग उठती है (आणंद लहरा रोमांचित आसू ।।५७।।) नव-परिणीत वर के रूप में उनके हृदय की उद्दाम वासना बरसाती नाले की तरह फूट पड़ती है पर मर्यादाहीन नहीं होती, 'सुन्दर सूर सील-कुल करि सुध' (३०) के तट को नहीं डुबोती। प्रथम मिलनोत्कंठा उन्हें अधीर बनाती है। वे शय्या से द्वार तक और द्वार से शय्या तक बार बार चक्कर काटते रहते हैं। कान लगाकर प्रत्येक आहट को सुनते हैं और प्रिया के आगमन पर—

बार बार तिम करइ विलोकन, धण-मुख, जेहो रंक-धण। (१७०)

प्रेम में इतने तन्मय हैं कि रात्रि के बीतते समय उन्हें मुर्गे की पुकार ऐसी अप्रिय जान पड़ती है जैसी अप्रिय जीवन से मोह रखने वाले व्यक्ति को आयु के समय बीतते घड़ियाल के घण्टे की टंकार।[१]

ऋतु-विहार करते समय उनका भोगी रूप सामने आता है। ग्रीष्म में वे कस्तूरी के गारे और कपूर की ईंटों से निर्मित महल में कमल-पत्रों की मालाओं से अलंकृत हैं[२], वर्षा में गुलाल जल से धुले वस्त्र पहने हैं[३], शरद में रास क्रीड़ा में तन्मय हैं[४], हेमन्त में रुक्मणी से वाणी और अर्थ की तरह उलझकर शीत-निवारण में लगे हैं[५], शिशिर में धूप और आरती से आवृत हैं[६] और वसन्त में पुष्प घरों में काम-सुख भोगते हुए संगीत के नाद के साथ सोते और वेद पाठ की ध्वनि के साथ जागते हैं[७]।

कृष्ण सद्‌गृहस्थ हैं। ब्राह्मण को दूर से आता देख वे उठकर वन्दना के साथ आतिथ्य सत्कार करते हैं[८]। उनका परिवार भरा पूरा है। पुत्र प्रद्युम्न और पुत्र-वधू रति है, पौत्र अनिरुद्ध और पौत्र-वधू उषा है। उन्होंने मदिरा, क्रोध, निन्दा, हिंसा, दुर्वचन आदि को अस्पृश्यों की भांति सर्वथा दूर कर रखा है[९]। संक्षेप में कृष्ण का चरित्र लोकोत्तर होते हुए भी लोकबाह्य नहीं है, वह इसी लोक का है।

१—छंद संख्या : १८१
२—वहीं : १६२
३—वही : २०५
४—वहीं : २१५
५—वहीं : २२१
६—वही : २२५
७—छंद संख्या : २६७–६८
८ - वहीं : ५४
९—वही : २७७

रुक्मणी :

रुक्मणी काव्य की नायिका है। वह कुन्दनपुर के राजा भीष्मक की पुत्री है। उसके पाँच भाई हैं। वह अत्यन्त रूपवती और गुणमती है। बाल्यावस्था में सखियों के साथ गुड़ियाँ खेलती है। वह मानसरोवर में हंस-शावक की तरह क्रीड़ा करती है और मेरु पर्वत पर दो दलों वाली स्वर्णलता की तरह प्रस्फुटित होती है।[१] बत्तीस लक्षणों से युक्त रुक्मणी व्याकरण, पुराण, स्मृति, विविध शास्त्र, विद्या, कला आदि सब में प्रावीण्य प्राप्त करती है[२]।

वह युवती है। उसमें प्रेम-भावना का धीरे धीरे स्फुरण होता है। कृष्ण के गुणों का श्रवण कर वह उन पर मुग्ध होती है। उसमें शालीनता है, कुल-कानि है। रुक्मकुमार शिशुपाल के साथ उसका विवाह करना चाहता है पर वह प्रत्यक्ष रूप से मना नहीं कर सकती। बरात सजाकर आये हुए शिशुपाल को देखकर उसका मन मुरझा जाता है पर वह अधीर नहीं होती। कृष्ण के साथ जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध स्थापित करती हुई 'नख-लेखणि' से पत्र लिखकर सहायता के लिए पुकार करती है[३]। उसके पत्र में जादू की शक्ति है जिसके कारण कृष्ण अकेले ही सीधे दौड़ पड़ते हैं।

उसमें दूरदर्शिता और प्रत्युत्पन्न मति है। पत्र-वाहक का चुनाव, पत्र का वर्ण्य विषय, और देवी पूजा की योजना, इसी ओर संकेत करते हैं। उसके व्यक्तित्व में शील और लज्जा का अद्भुत मिश्रण है। माता पिता के आगे 'काम विराम छिपाडण काज' उसे लज्जा आती है, ऐसी लज्जा कि 'लाज करंती आवइ लाज'[४]। देवी-पूजा के लिए जाते समय उसका शील उभर आता है और वह सखियों के बीच ऐसी लगती है मानों 'सील आवरित लाज सूं।' पति से मिलने के लिए जाते समय भी इस गजगामिनी के पैरों में लज्जा के लंगर पड़ जाते हैं और चाल धीमी हो जाती है[५]।

रुक्मणी अनन्य प्रेमिका है। वह लक्ष्मी और सीता है, विष्णु की शक्ति और माया है। यद्यपि उसका शरीर घर में है पर मन उसी परम प्रभु से मिला हुआ है 'भुवणि मुतणु, मन तस मिलित।' प्रिय-मिलन की उत्कंठा और व्यग्रता उसे अधीर किये हुए है। वह प्रेमातुरी है, थोड़ी आशंका से ही उसका मन पीपल के पत्ते की तरह काँप उठता है। समागम होने पर वह घूंघट के भीतर से ही तिरछी चितवन द्वारा प्रिय को निरन्तर निहारती रहती है[६]।

१—वही : १२
२—वही : २८
३—वही : ५६-६६
४—छन्द संख्या १८
५—छन्द संख्या १६७
६—छन्द संख्या १७१

रति श्रान्ता के रूप में रुक्मणी का सौन्दर्य देखते ही बनता है। जिस सौन्दर्य ने समस्त सैनिकों को संज्ञाहीन बना दिया वही सौन्दर्य-प्रतिमा अब सर्वथा निश्चल होकर पड़ी है। उसके मुख पर पीलापन है, चित्त में व्याकुलता है और हृदय में धुकधुकी। नूपुरों की झंकार और कंठ की हिलोर बन्द है। केश खुले हैं, मोतियों की माला टूटी पड़ी है[१]। अन्त में पारिवारिक समृद्धि के रूप में प्रद्युम्न का जन्म काम-क्रीड़ा की सार्थकता और प्रेम की सिद्धि है।

रुक्मकुमार :

रुक्मकुमार रुक्मणी का बड़ा भाई है। वह पूरे काव्य में दो बार आता है। प्रथम रुक्मणी-विवाह विषयक विचार-विमर्श के समय। यहाँ वह दम्भी, अभिमानी और अविनीत बनकर आता है। उसे कृष्ण से चिढ़ है। वह उन्हें ग्वाला मानता है, अपने से पतित समझता है अतः माता-पिता को वृद्धावस्था के कारण पागल समझकर शिशुपाल के साथ रुक्मणी का सम्बन्ध ही तय नहीं करता वरन् शुभस्य शीघ्रम् के अनुसार बरात लेकर आने के लिए निमन्त्रण भी दे देता है।

दूसरी बार हम उसे रुक्मणी-हरण -प्रसंग में देखते हैं। शिशुपाल को परास्त होते देख वह तुरन्त कृष्ण का पीछा करता है और एक तिरछे मार्ग से चलकर रास्ता रोक लेता है। उसका क्रोध बरसाती नाले की तरह है तो उसकी गर्जना गुरु गंभीर। वह कृष्ण को ललकारता है-

अबला लेइ घणी भुंइ आयउ, आयउ हूं, पग मांडि अहीर (१३०)

पर उसके सारे आयुध व्यर्थ सिद्ध होते हैं और अन्त में वह-सिर के केश काटकर-विद्रूप बना दिया जाता है।

बलराम :

बलराम कृष्ण के बड़े भाई हैं। उनमें साहस, वीरता, भ्रातृ-प्रेम और अनुभव की गहराई है। कृष्ण को अकेले गये सुनकर, युद्ध की भावी आशंका समझ वे सहायतार्थ चुने हुए सैनिकों को लेकर इतने शीघ्र पहुँचते हैं कि कुन्दनपुर मे दोनों साथ साथ प्रविष्ट होते हैं।

वे युद्ध में प्रमुख रूप से भाग लेते हैं। अपने नाम हलधर के अनुरूप ही हल चलाकर शत्रुओं के कन्द-मूल नष्ट करते हैं, यश रूपी बीज वपन करते हैं, शत्रुओं के सिर काट-काटकर ढेर लगाते हैं और पैरों से कुचल-कुचलकर उनका संहार करते हैं। 'धरती भलाभली है' इस उक्ति को सत्य सिद्ध करके रहते हैं।

बलराम का व्यक्तित्व प्रेम और दया से सिक्त भी है। रुक्मकुमार को विरूप देख उनका व्यंग्य-बाण फूट पड़ता है-

---

१—छन्द संख्या १७६-१७८

'दुसट सासना भलो दयी ।
बहिनि जासु पासे बड़साणी, भलउ काम किउ, भला भई ।' (१३५)

ब्राह्मण :

ब्राह्मण दो हैं। एक रुक्मणी का संदेशवाहक वृद्ध ब्राह्मण और दूसरा शिशुपाल को बुलाने वाला रुक्मकुमार का ब्राह्मण-पुरोहित। पहला ब्राह्मण अपने दायित्व से चिंतित, भगवद् कृपा मे सिक्त और लोक व्यवहार से परिचित है। उसके ब्राह्मणत्व का सत्कार स्वयं कृष्ण करते है। वह अपने कार्य में सफल होता है। उसका चातुर्य वहाँ प्रगट होता है जब वह माता-पितादि गुरुजनो से घिरी हुई रुक्मणी को कृष्ण के आने का समाचार यों देता है—क्रिसन पधार्‌या लोक कहंति। दूसरा ब्राह्मण पुरोहित भी अपने कर्म के प्रति सच्चा है। वह आज्ञा का वशवर्ती हो बिना किसी वाद-विवाद के कहने के पहले ही लग्न लेकर चंदेरीपुरी पहुँचता है।

रुक्मणी की सखियाँ :

रुक्मणी की सखियां बार बार हमारा ध्यान आकर्षित करती है। वे रुक्मणी के साथ गुड़ियाँ खेलती है, उसे शृंगार करने मे सहयोग देती है, देवी-पूजन मे साथ जाती है, रति-क्रीड़ा सम्बन्धी बातों की जानकारी देती है, उपयुक्त अवसर पर भौंहों मे हँसती हुई एक-एक करके क्रीड़ा भवन से बाहर निकलती है और रतिश्रान्ता रुक्मणी से हास-परिहास करती है। रुक्मणी यदि 'शील' है तो सखियाँ, 'लज्जा' और रुक्मणी यदि 'वीरज अम्बहरि' है तो सखियाँ 'उडियण।'

वर्णन :

वेलि वर्णन-प्रधान काव्य है। उसका अधिकांश भाग निम्नलिखित [illegible] स्थलों से घिरा हुआ है।

(१) हरि-महिमा, कवि-विनय और कवि-कर्म की दुष्करता का वर्णन
(२) रुक्मणी की बाल्यावस्था, वयः संधि और
(३) कुन्दनपुर की साज-सज्जा और शिशुपाल
(४) रुक्मणी के पत्र का वर्णन
(५) द्वारका का
(६) कृष्ण
(७)
(८)

[illegible] ।
[illegible] मय
इसमे
१२)।
मे युद्ध
[illegible] राजित
[illegible] कने का
[illegible] विरूप

(११) युद्ध-वर्णन
(१२) द्वारिकावासियों द्वारा कृष्ण के स्वागत का वर्णन
(१३) रुक्मणी और कृष्ण के विवाह का वर्णन
(१४) वर-वधू के मिलन का वर्णन
(१५) सन्ध्या और प्रभात का वर्णन
(१६) षट्ऋतु-वर्णन
(१७) कृष्ण के परिवार का वर्णन
(१८) वेलि के माहात्म्य का वर्णन

हरि-महिमा-वर्णन और कवि-विनय के दो स्थल हैं। प्रारम्भ के ७ छन्दों में कवि ने अपनी असमर्थता और गुण-वर्णन की दुष्करता का उल्लेख किया है तो अन्त के (२९५-३०४) छन्दों में गर्वोक्ति-आत्मश्लाघा और विनय-भावना प्रदर्शित की है।

नगर-वर्णन के भी दो स्थल हैं। एक कुन्दनपुर का और दूसरा द्वारका का। शिशुपाल के आगमन पर कुन्दनपुर सजाया जाता है (३८-४०)। जगह जगह तंबू ताने जाते हैं, स्वर्ण-कलश बांधे जाते हैं, द्वार-द्वार तोरण स्थापित किये जाते हैं और नगाड़ों की चोटों से आकाश गूंज उठता है। द्वारका का दृश्य अमरावती की तरह प्रस्तुत किया गया है जिसे देखकर ब्राह्मण चकित रह जाता है (४८-५१) वहाँ वेद-पाठ की ध्वनि सुनाई पड़ती है, तालाब के घाटों पर चलते-फिरते तीर्थ-ब्राह्मण सन्ध्यादि करते नजर आते हैं और प्रत्येक घर यज्ञ के जप-तप से सुवासित दृष्टिगत होता है। कहना न होगा कि कवि ने वर्णन करते समय देशकाल का पूरा-पूरा ध्यान रखा है। यही कारण है कि एक मे वैवाहिक-राग-रङ्ग है तो दूसरे में विष्णु-पुरी की सुख सुरभि। शिशुपाल की नगरी चंदेरीपुरी का वर्णन नहीं किया गया है। उसकी आवश्यकता भी नहीं थी।

स्वागत-वर्णन के मुख्यतः चार स्थल हैं। दो कुन्दनपुर के और दो द्वारका के। कुन्दनपुर के नागरिक शिशुपाल और कृष्ण का पृथक्-पृथक् स्वागत करते हैं। शिशुपाल रूपी सूर्य को देखकर अन्य स्त्रियाँ तो कमलिनी की भाँति विकसित हो उठती हैं पर रुक्मणी कुमोदिनी के समान म्लान हो जाती है (४२)। कृष्ण का स्वागत अधिक उल्लास के साथ होता है। वे सम्मान के साथ राजप्रासाद में ठहराये जाते हैं। उनका व्यक्तित्व विविध रूपों में फूट पड़ता है। स्त्रियाँ 'काम' कहकर, शत्रु 'काल' कहकर, विद्वान 'वेदार्थ' कहकर, योगेश्वर 'योग-तत्व' कहकर और अन्य लोग 'नारायण' कहकर उनका स्वागत करते हैं (५५-५८)।

द्वारका में कृष्ण विधिवत् ब्राह्मण का स्वागत करते हैं (५४) और द्वारका के नागरिक बारात का आगमन सुनकर समुद्र की तरह उमड़ते हुए कृष्ण का स्वागत करते हैं (१३९-१४८)।

रुक्मणी के रूप-चित्रण और शृङ्गार-वर्णन के तीन स्थल हैं। प्रथम स्थल मे उसकी बाल्यावस्था, वयःसंधि और यौवनागम का वर्णन किया गया है। बचपन उसका मन भावन है। वह 'कनक-वेलि' की तरह कोमल और 'हंस-शावक' की तरह शुभ्र है। उसके शरीर का विकास अद्भुत गति से होता है। दूसरा बालक जितना वर्ष मे बढ़ता है उतना वह महीने में बढ़ती है और दूसरा जितना महीने में बढ़ता है उतना वह प्रहर मे बढ़ती है (१२-१४)। उसके शरीर में शैशव की सुषुप्ति है यौवन की जागृति नहीं। स्वप्नावस्था के समान वयःसंधि है। धीरे धीरे मुख में लालिमा प्रकट होती है, पयोधर उभरते हैं, लज्जा प्रवेश करती है (१५-१८) और यौवन रूपी वसन्त सम्पूर्ण परिवार लेकर आ पहुँचता है। उसका शरीर निर्मल हो जाता है, नेत्र खिल उठते हैं, स्वर सुहावना बन जाता है, मन मुकुलित हो उठता है, और सांस की गति तीव्र हो जाती है (१९-२७)।

दूसरे स्थल में देवी-पूजन के लिए जाते समय वह शृङ्गार करती है। गुलाब-जल से स्नानकर धुले हुए वस्त्र पहनती है। गले मे पोत की कण्ठी और कानों में कुण्डल धारण करती है। नेत्रों में अंजन आंजती है, ललाट पर तिलक लगाती है। भुजाओं मे काले रेशम के गुंथे बाजूबन्द बांधती है, हाथों मे कंगन पहनती है, पैरों में नूपुर सजाती है और मुख मे पान चबाती है (८१-९९)।

तीसरे स्थल मे नव परिणीता वधू के रूप में वह अपने प्रियतम से मिलने जाती है। लज्जा ने उसके पैरों में लंगर बांध रखा है। वह सखी का हाथ पकड़ कर धीरे धीरे पग-पग पर रुकती हुई शयनागार मे प्रवेश करती है। घूंघट-पट से कृष्ण को बार बार देखती है और रति-क्रीड़ा में लीन हो जाती है। रतिश्रान्ता के रूप मे उसका सौन्दर्य देखते ही बनता है (१५८-१८१)।

युद्ध-वर्णन के तीन प्रसङ्ग है। तीनों का सम्बन्ध रुक्मणी-हरण मे है। पहला प्रसङ्ग रुक्मणी की रक्षा का है। इसके लिए देवी-पूजन के लिए जाते समय उसके साथ रक्षक सेना जाती है जो मन्दिर को चारों ओर से घेर लेती है पर इससे रुक्मणी की रक्षा नहीं हो पाती और कृष्ण उसका हरण कर लेते हैं (१०४-११२)। दूसरा प्रसङ्ग शिशुपाल के सैनिकों का है वे कृष्ण का पीछा करते हैं। दोनों मे युद्ध होता है। बलराम भी यथा-समय पहुँच कर सहायता करते हैं और शत्रु पराजित होता है (११३-१२९)। तीसरा प्रसङ्ग रुक्मकुमार द्वारा कृष्ण के मार्ग को रोकने का है। दोनों मे युद्ध होता है। कृष्ण उसके आयुधों को व्यर्थ सिद्ध कर उसे विरूप बना देते हैं (१३०-१३४)।

युद्ध-वर्णन रूपक प्रधान है। उसका वर्षा तथा कृषि की समस्त प्रक्रियाओं के साथ विराट रूपक बांधा गया है विशेषता यही कि सारे उपमान लोक-जीवन से लिये गए हैं।

रुक्मणी का पत्र आत्मा का परमात्मा के प्रति आत्म-निवेदन है, जीवात्मा का परब्रह्म के साथ जन्म-जन्मांतर का सम्बन्ध-सूत्र है और है प्रभु को भक्त-वत्सलता और शरणागत प्रति-पालना का दिग्दर्शक (२९-६६)।

प्रकृति-चित्रण के लिए कवि ने बड़ी कुशलता के साथ कथानक में मार्मिक स्थल चुन लिए हैं। प्रकृति का 'केनवास' महाकाव्योचित गरिमा को लेकर फैला हुआ है। कहा जा सकता है कि कवि केवल राजप्रासादों के उद्यानों और नारी के अनद्य सुन्दर अवयवों तक ही सीमित नहीं रहा है उसकी विशाल दृष्टि ने जीवन के अन्यान्य क्षेत्रों में भी गहरी दौड़ लगाई है। संक्षेप में प्रकृति-चित्रण के निम्नलिखित स्वरूप वेलि में देखे जा सकते हैं–

(१) सन्ध्या-प्रभात आदि के वर्णन
(२) षटऋतु-वर्णन
(३) अलङ्कार-विधान

सन्ध्या-प्रभात-वर्णन के दो-दो स्थल हैं। पहला स्थल ब्राह्मण के प्रसङ्ग को लेकर है और दूसरा स्थल कृष्ण-रुक्मणी की प्रथम मिलनोत्कण्ठा को लेकर ब्राह्मण को कुन्दनपुर में निकलते ही संध्या हो जाती है। सूर्य की किरणें छिप जाती हैं। घरों में हलचल होने लगती है। मार्ग सूने हो जाते हैं, रह-रह कर कोई एकाध पथिक चलता दिखाई देता है (४६)। द्वारका पहुँचने पर प्रभात का चित्रण किया गया है। वेद-पाठ की ध्वनि, शंख-नगाड़ों की गूँज, पनघट की भीड़ और यज्ञ की चहल-पहल मानव-जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं (४८–५०)।

दूसरे स्थल पर संध्या प्रेमियों के लिए संकोच और विस्तार लेकर आती है। रति-इच्छुक कृष्ण को एक साथ इतनी वस्तुएँ–पथिकों की पत्नियों की आंखें, पक्षियों की पाँखें, कमलों की पंखुड़ियां और सूर्य की किरणें–सकुचित होती हुई दिखती हैं तो चन्द्रमा की किरणें, कुलटा स्त्रियां, राक्षस और अभिसारिकाओं की आंखें विस्तृत होती हुई (१६२–१६६)। कवि केवल रूढ़ि का पालन करता हुआ नजर नहीं आता वह प्रकृति के साथ मानव-जीवन की व्यस्तता और नायिका-नायक की प्रेम सम्बन्धी संकोच-विस्तार की भावना को समेटे चलता है। रत्यन्त वर्णित प्रभात वर्णन (१८२–१८६) कवि की सूक्ष्म दृष्टि और तीव्र अनुभूति का परिणाम है। उसे *अरुणोदय प्रिय-संयोगिनी नारी का चीर*, मथानी और कुमुदिनी की शोभा जैसे खुले हुए पदार्थों को बांधता हुआ तथा घर, हाटों के ताले, भ्रमर और गायों के बाड़े जैसे बन्द पदार्थों को खोलता हुआ, दिखाई देता है तो व्यापारी और उनकी स्त्रियाँ, गायें

और उनके बछड़े, कुलटा नारियाँ और लम्पट पुरुष आदि मिले हुओं को अलग करता हुआ और चोर तथा उनकी स्त्रियाँ, चकवा-चकवी, ब्राह्मण-घाटों का जल आदि बिछुड़े हुओं को मिलाता हुआ दृष्टिगत होता है। जड़-चेतन और मानव-मानवेतर पात्रों की भावनाओं तथा क्रियाओं को एक ही साथ देखने वाला यह कवि कितना क्रान्तदर्शी होगा ?

सन्ध्या और प्रभात के बीच रात्रि को भी उसने देखा है। योगी तत्व-चिन्तन में और कामी रति-क्रीड़ा मे रत है (१८०)।

षटऋतु-वर्णन कथानक को विराम देता है, कवि-परिपाटी का पालन करता है और प्रद्युम्न-जन्म के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है।

ग्रीष्म ऋतु का वर्णन ७ छन्दों (१८७–१९३) मे किया गया है। नदियों का जल और दिन बढ गये हैं, सरोवरों का पानी और रातें घट गई है। सूर्य ने वृष राशि का आश्रय ले लिया है। समस्त प्राणी आकुल-व्याकुल हैं। कृष्ण जल-विहार करते हैं। मृगशिर नक्षत्र के पवन ने सबको झकझोर दिया है और आर्द्रा नक्षत्र का मेघ पृथ्वी को सजल करने आ पहुँचा है।

वर्षा ऋतु का वर्णन १२ छन्दों (१९४–२०५) में किया गया है। बगुले, साधु और राजा लोग एक स्थान मे बैठ गये हैं। देवता सो गये हैं। मोर-पपीहे बोलने लगे हैं। सावन के बादल काली और सफेद घटाओं के साथ बरस पड़े है। पृथ्वी नायिका बन गई है। हरियाली के नीले वस्त्र पहन लिए है। नदी का हार भूल रहा है। दादुर के नूपुर बज रहे है। पर्वत-श्रेणी की कज्जल-रेखा है, समुद्र की करधनी है और वीर बहूटी की कुंकुम-बिंदी। रुक्मणी और कृष्ण पृथ्वी और मेघ की तरह गलबाहें दिये है।

शरद ऋतु का वर्णन ११ छन्दों (२०६–२१६) में किया गया है। वनस्पतियाँ पककर पीली हो गयी हैं। कोयल का बोलना बन्द हो गया है। ओस पड़ने लगी है। आश्विन का आकाश स्वच्छ हो गया है। धरती का कीचड़ अदृश्य हो गया है। पितरों को तर्पण मिलने लगा है। शुभ्र ज्योत्स्ना छिटक गई है। सूर्य के तुलाराशि में प्रविष्ट होने के साथ राजा लोग सोने के तुलादान करने लगे है। कार्तिक मे दीपक जले हैं। कृष्ण रासक्रीड़ा मे तन्मय हैं।

हेमंत ऋतु का वर्णन ६ छन्दों (२१७–२२२) मे किया गया है। उत्तर का पवन चलने लगा है। सर्प बिलों मे और धनी तहखानों मे छिप गये हैं। नदियों का जल घट गया है और शिखरों की ऊँचाई बढ गई है। दिन छोटे और रातें बड़ी हो गई हैं। सूर्य मकर राशि में पहुँच गया है, कमल जल गये हैं, आम्र फल गये हैं। कृष्ण और रुक्मणी आपस मे एक दूसरे से उलझ गये हैं।

शिशिर ऋतु का वर्णन ५ छन्दों (२२३-२२८) में किया गया है। उत्तर दि
के पवन ने ग्राम को छोड़ कर सबको भस्म कर दिया है। माघ महीने का ज
अग्नि की तरह और अग्नि शीतल-जल की तरह लगने लगी है। कृष्ण औ
रुक्मणी का तेज शीत को वरजने लगा है। सूर्य के कुम्भ राशि में प्रविष्ट होने प
भौरे ने पद्ध खोले हैं, कोकिल ने कण्ठ हिलाया है, युवक-युवतियों ने वीणा-डफ
बजाते हुए फाग खेली है और वृक्षों की डालियें गदराने लगी हैं।

वसन्त ऋतु का वर्णन ४० छन्दों (२२९-२६८) में किया गया है। वसन्त
ऋतुओं का राजा है अतः यह विस्तार तीन सांग रूपकों में फैलाया गया है। प्रथम
१० छन्दों में वसन्त-रूपी बालक के जन्म का चित्रण है। वनस्पति रूपी माता ने
उसे जन्म दिया है। होली ने दाई का काम किया है। शीतल, मन्द, सुगन्ध पवन ने
बालक में सत्व, रज, तम गुणों का विकास कर भूख-प्यास पैदा की है। भ्रमर-गुंजार
शिशु का रुदन और मधु-वर्षण माँ की दुग्ध-धार है। आम्र की मंजरियों ने स्वागत में
तोरण बांधा है, कलियों ने मङ्गल-कलश सजाया है, कोयल ने गीत उगेरे हैं।

आगे के १९ छन्दों में वसन्त रूपी राजा का चित्रण है। कामदेव उसका मंत्री
है, आम्रतरु राजछत्र है, पवन संचरित मंजरी चंवर है। चतुरङ्गिणी सेना के रूप
में हरिण पैदल सैनिक, लताकुंज रथ, हंस घोड़े और पर्वत हाथी हैं। उसकी
महफिल अनूठी है। वन मण्डप है, झरना मृदंग है, कामदेव नायक, कोयल गायक
और पक्षी दर्शक हैं। वहाँ विविध प्रकार के नृत्य और शास्त्रीय सङ्गीत होते रहते
हैं। उसका राज्य आदर्श राज्य है। चम्पा और केले ने खिलकर अपने वैभव को
प्रकट कर दिया है। मलय-पवन के रूप में सर्वत्र न्याय का प्रवर्तन हो गया है।
लताओं ने अपनी वंश-वृद्धि की है। भ्रमरों ने प्रेम से कर-वसूली करना आरम्भ
कर दिया है।

अन्त के ११ छन्दों में मलय-पवन का चित्रण है। उसे काम-दूत, दक्षिण
नायक, भार-वाहक, अपराधी पति, मतवाला नायक और मदोन्मत्त हाथी बनाकर
उसके शीतल, मन्द और सुगन्ध गुणों की विवेचना की गई है।

संक्षेप में षटऋतु-वर्णन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(१) अप्रत्यक्ष रूप से बारहमासा वर्णन भी कर दिया गया है। बीच-बीच में महीनों का नामोल्लेख इसका संकेत करता है। पर यह परम्परागत विरह-वर्णन से सम्बन्धित नहीं है।

(२) प्रत्येक मास के परिवर्तन पर राशि-नक्षत्र एवं कोण के प्रभाव का सूक्ष्म विचार किया गया है।

(३) ऋतु-परिवर्तन के साथ साथ हमारे सांस्कृतिक गौरव-त्यौहार, पर्व, दर्शन, पूजनादि को भी याद किया गया है।

(४) परिगणनात्मक शैली से दूर हटकर देश-काल का सम्यक् ध्यान रखा गया है। राजस्थान की ऋतुओं तथा दृश्यों का समावेश इसका प्रतीक है।

(५) जगह-जगह प्रकृति को शृङ्गारिक बनाकर नायिका-भेद का निरूपण किया गया है। मलय-पवन-वर्णन में नायक-भेद निरूपण स्पष्ट है।

(६) प्रत्येक ऋतु के आरम्भ का चित्रण आलम्बन रूप मे सामने आता है पर अन्त मे कृष्ण-रुक्मणी के साथ उसका सम्बन्ध जोड़कर उसे उद्दीपन का रूप दे दिया गया है।

(७) ऋतु-वर्णन में कवि ने अपने काव्य-शास्त्र, लोक–ज्ञान एवं मानव–प्रकृति का जी खोलकर प्रयोग किया है।

(८) *अलङ्कारों के पारस-स्पर्श से सारा वर्णन जगमगा उठा है।*

प्रकृति-चित्रण का तीसरा स्वरूप अलङ्कार-विधान है। संध्या-प्रातः आदि *तथा षटऋतु वर्णन मे भी इसका प्रयोग हुआ है। नखशिख-निरूपण और युद्ध-वर्णन* मे तो यह अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। युद्ध का वर्षा के साथ जो रूपक बाँधा गया है वह बहुत ही सुन्दर बन पड़ा है। उनके द्वारा कृषि सम्बन्धी समस्त ज्ञान प्रत्यक्ष हो उठता है।

वर्णन-स्थलों की उपर्युक्त विवेचना से कवि की बहुज्ञता का पता चलता है। *उसने पुस्तकों के माध्यम से ही ज्ञानार्जन नहीं किया है* वरन् जीवन और जगत की विविध परिस्थितियों का स्वयंमेव अनुभव किया है। वेलि के पठन से कवि के ज्योतिष और शकुन[1], वैद्यक[2], सङ्गीत-नृत्य और नाट्य-शास्त्र[3], योगशास्त्र[4], पुराण[5], कोष[6], राजनीति[7], कर्मकांड[8], भाषा[9], कृषि[10], वस्त्र बुनने की कला[11]

१—छंदः ७०,९३,९६,१८८,१९३ २१२,२२२,२३६,२८६
२—छंदः २८४, २८५
३—छंदः २४६, २४८
४—छंदः १५,१८०,१८४,२०८
५—छंदः ८४,९८,१०६,२१६,२६६
६—छन्दः २७३, २७४, २७५, २७६
७—छन्दः २४९-२५५
८—छन्दः २८०
९—छन्दः २९७
१०—छन्दः १२३-१२८
११—छन्दः १७१

लुहारो[1], सुनारो[2], सिकलीगरी[3], सामाजिक रीतियाँ[4], पशु-पक्षियों के स्वभाव एवं व्यापार[5], आभूषण[6], रत्न[7] आदि के ज्ञान का पता चलता है।

रस-व्यंजना :

वेलि का प्रधान रस संयोग शृंगार है। वीर रस की भी विशद व्यंजना की गई है। अन्य रसों में वीभत्स, रौद्र, भयानक, अद्‌भुत, वात्सल्य, हास्य और शान्त के नाम गिनाये जा सकते हैं।

'पूंयियै जेणि सिंगार-ग्रंथ' (८) के अनुसार कवि का ध्यान भी शृंगार रस के परिपाक पर ही रहा है। कृष्ण और रुक्मणी इसी के आलम्बन हैं। दोनों में शास्त्रीय गुणों[8] की प्रतिष्ठा की गई है। उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत सखा, सखी, दूती, ऋतु, प्रातः संध्यादि वर्णनों की यथावसर अवतारणा की गई है।

शृङ्गार के वियोग-पक्ष के लिए कथा में नहीं के बराबर स्थान रहा है। मान, प्रवास और करुण प्रसंगों को छोड़कर केवल पूर्वानुराग का चित्रण किया गया है वह भी केवल मात्र 'श्रवण' के द्वारा 'सांभलि अनुराग थयो मनि स्यामा' (२९)। प्रत्यक्ष दर्शन तो बहुत दूर 'अम्बिकालय' में जाकर होता है। वियोग की शास्त्रीय अवस्थाओं में नायिका को भटकने का अवसर ही नहीं मिला न कथानक के कलेवर ने ही उसे आज्ञा दी। फिर भी प्रथम चार अवस्थाएँ उसके प्रणय-विकास में सहायक होती हैं—

(१) *अभिलाषा :*

सांभलि अनुराग थयउ मनि, स्यामा, वर-प्रापति वंछती वर।
हरि-गुण भणि ऊपनी जिका हरि, हरि तिणि वंदइ गवरिहर (२९)॥

(२) *चिन्ता :*

रहिया हरि सही, जाणियउ रुकमिणी, कीध न इतरी ढील कई।
चिंतातुर चिति इम चितवन्ती, थयी छींक, तिम धीर थयी (७०)॥

१—छन्दः १३२
२—छन्दः १७५
३—छन्दः ८६
४—छन्दः १४०,१४२,१५३-१५८ः २०६,२१२,२१३,२१४,२२७,२३६-२३८
५—छन्दः १६३,१८४,२०६,२१०,२२६
६—छन्दः ८१-९६
७—छन्दः १८५,२००,२०३,२५७
८—किसन रुकमणी री वेलिः डा० आनन्द प्रकाश दीक्षितः भूमिका, पृ० ६६-६९।

(३) *स्मरण :*

रामा-अवतारि वहे रणि रावण, किसो सीख करुणा-करण ।
हूं ऊधरी त्रिकूट-गढ हूंतो, हरि ! वंधे वेळाहरण (६३)

(४) *गुण-कथन :*

वलि-वंधण ! मूझ, सियाळ सिंघ-बळि, ग्रासइ जउ बी-जउ परणइ ।
कपिल धेनु दिन पात्र कसाई, तुळसी करि चंडाल तणइ (५६)

सच तो यह है कि वियोग संयोग की पीठिका के रूप में ही प्रयुक्त हुआ है।

श्री कृष्णशङ्कर शुक्ल ने वेलि के संयोग शृंगार को 'अक्षरशः संभोग शृंगार माना है'[1] जो उचित नहीं कहा जा सकता। रीतिकालीन कवियों सी मांसलता और कामुकता यहाँ नहीं है। यहाँ जो शृङ्गार है वह आध्यात्मिक भावालोक से विमण्डित[2] और सात्विकता के लेप से सुवासित है[3]। यह ठीक है कि विवाह-संस्कार के बाद यहाँ भी रति-संस्कार की भूमिका प्रस्तुत की गई है पर नायक नायिका में जो आतुरता[4], उत्सुकता[5], विवशता[6], लज्जा[7] और संकोच[8] है वह उनके मर्यादित शृङ्गार की मूक घोषणा है।

डा० रामकुमार वर्मा[9] का यह कथन-कि पृथ्वीराज प्रेम की मादकता का रसास्वादन कराने में तत्पर थे। यही कारण है कि प्रेम के सामने भक्ति के निर्वेदपूर्ण आदर्श रखने में वे असमर्थ थे, इसलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि वेलि का आदि[10] मध्य[11] और अन्त[12] भक्ति-भावना की प्राण-स्पन्दना लिए हुए है। उनकी वल्लभ-सम्प्रदाय की भक्ति में विशेष आस्था प्रतीत होती है[13]। संक्षेप में निम्न-लिखित बातें वेलि को शृङ्गार काव्य बनने से रोकती हैं-

---

१—स्व संपादित वेलि, पृ० ३५
२—छंदः १५,१६ : ५६-६६
३—छंदः १०३,१६८, १७५
४—छंदः ७०,१६५
५—छंदः ४३,१७०, १७१
६—छंदः १६१, १८१
७—छंदः १८, १६७
८—छंदः ७१
९—हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (द्वितीय संस्करण) पृ० २५७
१०—छंदः १-७
११—छंदः ५६-६६
१२—छंदः २५८-३०५
१३—अकबरी दरबार के हिन्दी कवि : डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल, पृ० ४२

(१) कवि ने यद्यपि इसे 'शृङ्गार-ग्रन्थ' (८) कहा है पर इसका बीज (आधार) धर्मग्रन्थ भागवत में विद्यमान है। इसीलिए अन्त में जाकर वेलि को 'रुक्मणी-मङ्गल' (२८६) कहा है।

(२) नायक कृष्ण को जगह जगह मङ्गल-रूप (१), कमला-पति (३), त्रीकम (५), स्त्री-पति (६), जगत-पति (५४), अन्तरजामी (५४, ६४), असरण-सरण (५८), हरि (६१), पुरसोतम (६६), क्रिपा-निधि (६७), त्रिभुवण-पति (६८), त्रिभुवण नाथ (१११) आदि कहा गया है और नायिका रुक्मिणी को भी रामा-अवतार (१२)।

(३) रुक्मणी का पत्र (५६–६६) प्रेयसी का पत्र न होकर उस जीवात्मा का पत्र है जो परमात्मा के साथ जन्मान्तरवाद का सम्बन्ध जोड़ती है।

(४) द्वारका केवल कृष्ण का निवास-स्थान न होकर पुष्टिमार्ग के अनुसार अमरावती ही है (५१)

(५) काव्य का स्वरूप-विधान भक्ति-काव्यों की परम्परा सा है अतः यहाँ भी—

(क) प्रारम्भ में मङ्गलाचरण, हरि-गुण-वर्णन, कार्य की दुष्करता और कवि की असमर्थता तथा अयोग्यता का कथन है (१–७)।

(ख) अन्त में वेलि की पाठ-विधि का उल्लेख किया गया है (२८०)।

(ग) विस्तारपूर्वक वेलि का माहात्म्य गाया गया है (२७८–२९४)।

शृङ्गार के पश्चात् दूसरे रसों में वीर रस को प्रधानता मिली है। इसकी व्यंजना के लिए कवि ने शस्त्र-संचालन की विधि[1], शत्रुओं की पारस्परिक ललकार[2], सैन्य-संगठन[3] आदि का ओजमय चित्रण किया है। एक दो जगह-शत्रुओं को बहुरूपिया बनाकर[4] तथा बलराम को व्यंग्यमिश्रित हँसी हँसाकर[5]–सफल हास्य की सृष्टि द्वारा वीररस को सहायता पहुँचाई है।

रौद्र और वीभत्स वीर रस के ही सहायक बनकर आये हैं। भयानक की सृष्टि भी इसी प्रसङ्ग में हुई है।

१—छंद: ११८,११६,१३१
२—छंद: ११२,११३, ११४, १२३, १३०
३—छंद: ११८,११५,११६,११७
४—छंद: १११
५—छंद: ११५

रौद्ररस :

विलकुलियउ वदन जेम वाकारियउ, संग्रहि धनुख पुणच सर संधि ।
क्रिसन रुकम-आउध छदण कजि, वेलखि अणी मूठि द्रिउ वंधि (१३१)

वीभत्स-भयानक :

कंपिया उर काइरां असुभ-कारियउ, गाजंति नीसाणे गड़ड़इ ।
ऊजलियां धारां ऊवड़ियउ, परनाळे जळ रुहिर पड़इ (१२०)

इसी स्थल पर रस-विरोध की चर्चा की गई है। श्री सूर्यकरण पारीक[1] ने पांच-छ्ः (१२०-१२५ तथा १२८) छंदों को लेकर रस-विरोध की विवेचना की है तो श्री नरोत्तमदास स्वामी ने[2] इसका खंडन किया है। केवल ५-६ दोहलों के आधार पर रस-विरोध की कल्पना करके काव्य को दोषपूर्ण कहना विशेष संगत प्रतीत भी नहीं होता।[3] ।

कलापक्ष :

पृथ्वीराज का कवि कारीगर और कलाबाज दोनों है। कारीगर ऐसा कि जो अपनी कृति को पद-पद पर सजाना-संवारना जानता है और कलाबाज ऐसा कि जो पाठकों और श्रोताओं को मुग्ध किये रहता है।

वेलि की भाषा साहित्यिक डिंगल है। उसमें भावानुरूप बहने की शक्ति है। शृंगार रस मे यदि वह 'मदोमत्त मारुत मातंग' की तरह 'मधुमद स्त्रवति' है तो वीर रस मे 'कळ कळिया कुन्त किरण, कळि ऊकळि'। शब्दों को अनावश्यक रूप से तोड़ा मरोड़ा नही गया है।

कवि का व्रज और डिंगल दोनों भाषाओं पर समान अधिकार है। फिर भी जिस प्रकार उसने वेलि के लिए भाषा के चुनाव[4] में अपना कौशल प्रगट किया है उसी प्रकार शब्द-चयन मे भी अपना भाषा-नैपुण्य। शब्दों की आत्मा को पकड़ने की उसमे अद्भुत क्षमता है।

(१) रुक्मणी बालिका है अतः उसके लिए जो उपमान प्रयुक्त हुए हैं वे भी बालक हैं प्रौढ़ नहीं। यथाः—

(क) कनक-वेलि विहुं पान किरी (१२)

१—स्वसंपादित वेलिः भूमिका, पृ० ७६-८७
२—स्वसंपादित वेलिः प्रस्तावना, पृ० ५३-५७
३—स्वसंपादित वेलिः डा० आनन्द प्रकाश दीक्षितः भूमिका, पृ० ८७
४—इट इज सरटन देट हेड प्रीथिराज चूजन टु कम्पोज हिज 'वेलि' इन इमेक्यूलेटेड पिंगल ही वुड हेव गिवन अस ए वेरी डिफरेन्ट कम्पोजिशन, नोट सुपिरियर इन म्यूजिकेलिटी, एण्ड कन्सिडरेबली इनफिरियर इन नैवेटी-टेसीटोरी

(ख) वेलि *कली पद्मणी* परि (१४)
(ग) उडियण *वीरज श्रग्रहरि* (१४)
(घ) नीतवंणि-जंघ गु *करभ* निरुपम (२६)

यदि कोई दूसरा होता तो केवल कनक लता पद्मनी, चंद्रमा और हाथी से ही काम चला लेता।

(२) रुक्मणी कृष्ण को सन्देश भेजने के लिए अत्यन्त आतुर है। ब्राह्मण को देखते ही उसके मुंह से शब्द निकलते हैं 'वीर बटाऊ ब्राह्मण' (४४)

(३) कवि शृंगार-ग्रन्थ की रचना कर रहा है पर है पद-पद पर साज-सज्जा। अतः 'गुंथियइ' शब्द कितना सार्थक है-'गुंथियइ जेणि सिंगार-ग्रन्थ' (८)।

(४) 'वाकहीन' की तुलना में सरस्वती या भारती की जगह 'वागेसरी' शब्द कितना फिट है–'वाग-हीणि वागेसरी' (३)।

इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखकर डा० मोतीलाल मेनारिया ने लिखा है जिस प्रकार एक चतुर सुनार किसी नग को ठीक-ठीक परीक्षा कर लेने के पश्चात् फिर उसे आभूषण में बिठाता है उसी तरह पृथ्वीराज ने भी प्रत्येक शब्द को खूब सोच विचार कर, पूरी तरह से शोध मांजकर, वेलि में स्थान दिया है। अतः कोई शब्द कहीं बेमौके नहीं है। प्रत्येक शब्द चित्रोपम, भावोपयुक्त एवं उपादेय है और अपने स्थान पर ठीक बैठा है[1]।

शब्द-चयन में कवि की दृष्टि उदार रही है। संस्कृत शब्दों की बहुलता तो है ही। इसके अतिरिक्त अरबी (सिलह, हवाई, रासि,) फारसी (जोर, गरकाब, रुख) आदि के शब्द भी यत्र तत्र व्यवहृत हुए हैं। एक छंद में तो संस्कृत अपने व्याकरण के साथ भी आई है, यथा—

> कस्मात् ? कस्मिन् ? किल मित्र ! किमर्थं ? केन कार्य ? परियासि कुत्र ?
> ब्रूहि जनेन येन भों ब्राह्मण ! पुरतो मे प्रेषितं पत्र (५५)

भाषा की रोचकता के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का प्रयोग किया गया है।

मुहावरे :

(१) जाणेवाद माडियउ जीपण (३)
(२) तिणि हो पार न पायउ त्रीकम (५)
(३) म–म करिसि ढील (४५)

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य (द्वितीय संस्करण) पृ० १६६

(४) ग्रायउ हूं पग माडि ग्रहीर (१३०)
(५) ऊभा करि रोमा-सूं ग्राप (१६८)

लोकोक्ति :

(१) भला-भली सति, तो जिमंजिया (१२६)
तीन स्थलों पर कवि ने कूट-शैली का प्रयोग किया है।

(१) रुक्मकुमार के लिए सोना-नामी-निर-ग्राउध किउ तदि सोना-नामो (१३४)

(२) मकर राशि के लिए काम-वाहन-मकरध्वज-वाहणि चढिउ ग्र-हिमकर (२२२)

(३) उत्तर-दिशा के लिए कंजूस-वचन-पारथियां कृपण-वयण दिसि पवणे (२२३)

काव्य की भाषा मे चित्र खड़ा कर देने की अपूर्व शक्ति है। पवन की मन्द-गति के चित्रण की वर्ण-योजना ऐसी है कि पढ़ते समय बीच बीच मे रुकना पड़ता है।

तोइ भरण छुटि ऊपसति मलय तरि, ग्रति पराग-रज धूसर ग्रंग।
मधु मद स्त्रवति, मंद गति मल्हपति, मदोमत्त मारुत-मातग (२६३)॥

रुक्मणी को सखियाँ कृष्ण के पास ले जा रही हैं। रुक्मणी लज्जा के कारण रुक-रुक कर चलती है।

लाज-लोह-लंगरे लगाये, गय जिमि ग्राणी गय-गमणि (१६७)

पंक्ति के पूर्वार्ध मे ठहर-ठहर कर दीर्घ वर्णों का प्रयोग किया गया है जिसमे जिह्वा को बीच-बीच मे रुकते हुए चलना पड़ता है। निम्न पद में पेंगती सी पदावली और हिन्दोल सा शब्दों का ग्रारोह-ग्रवरोह है—

पणिहारि-पटळ वरण चंपक-दळ, कळस सीसि करि करि कमल।
तीरयि-तीरथि जंगम तीरथ,विमल ब्राह्मण जळ विमळ (४६)

वेलि मे शब्दालंकार ग्रौर ग्रर्थालंकार दोनों प्रचुर मात्रा में ग्राये हैं। शायद हो कोई ऐसा पद हो जो ग्रलंकृत न हो। ऐसे छंदों की संख्या भी पर्याप्त है जिनमें एक साथ चार-चार, पाँच-पाँच ग्रलंकार प्रयुक्त हुए हैं। सभी स्वाभाविक गति से चले हैं। उनमे कारीगरी है पर कृत्रिमता नही, चमत्कार है पर दिमागी कसरत नही।

शब्दालंकारों मे कवि को लाटानुप्रास ग्रौर छेकानुप्रास विशेष प्रिय रहे हैं। यमक की संख्या भी कम नही है। सामान्यतः दो-दो पंक्तियों तक ग्रनुप्रास का निर्वाह किया गया है। यथा :—

(१)· बहु विलखो वीछड़तइ बाला, बाल संघाती बालपण (१७)
(२) कामणि-कुच कठिण कपोल, करी किरि, वेस नवी विधि वाणि वखाणि (२४)
(३) तेज कि रतन कि तार कि तारा, हरि हंस-सावक सस-हर हीर ? (२७)

यमक के कुछ प्रयोग देखिये :—

(१) *आदर* करे जु *आदरी* (३)
(२) *हरि* गुण भणि ऊपनो जिका *हरि* (२६)
(३) कलस सोसि *करि करि* कमल (४६)
(४) *गुण*-मोती मखतूल-*गुण* (८१)
(५) *सिखर* सिखर-मइ मंदिर सिर (२०४)

श्लेष भी जगह जगह आया है। यहां दो उदाहरण दिये जा रहे हैं–

(१) सूरिज हो *व्रिख*-आसरित (१८८)
(सूर्य ने (२) वृष राशि का आश्रय ले लिया है मानों गर्मी से डरकर (२) वृक्ष का आश्रय ले लिया है)

(२) कंत संजोगणि किंमुख कहिया, विरहणि कहे पलास वण (२५६)
(संयोगिनी (१) ढाक को देखकर उल्लसित होकर बोल उठी (२) किंमुख ! कैसा मुख है ! वियोगिनी (१) ढाक को देखकर तन में क्षीण होकर बोली (२) पलाश ! यह मास को खाने वाला राक्षस है)

वयणसगाई शब्दालंकार का प्रयोग सर्वत्र हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं—

साधारण :

(१) चल-पत्र-पत्र पित दुज देखे चित (७१)
(२) जाणे सदनि-सदनि संजोयो (१०१)
(३) कन छूटी छुद्र घंटिका (१७८)

असाधारण :

(१) लाजवती-अंगि येह लाज विधि (१८)
(२) हेक वडउ हित हुवइ पुरोहित (३५)
(३) तिणि वार हो करायउ आदर (१६८)

अर्थालंकारों की दृष्टि से भी वेलि सम्पन्न काव्य है उसमें चालीस से ऊपर अर्थालंकार प्रयुक्त हुए हैं[1]। श्री कृष्णशंकर शुक्ल ने कवि के अलंकार-विधान की निम्नलिखित विशेषताएं बतलाई हैं[2]

१—सम्पादित वेलि: श्री नरोत्तमदास स्वामी, प्रस्तावना, पृ० ६५
२—सम्पादित वेलि भूमिका, पृ० ५१-६२

(१) कवि साधारण से साधारण बात को अनलंकृत नहीं छोड़ता (छंद १४३-१४६)।

(२) कवि प्रस्तुत के सब अंगों पर ध्यान रखता है और अप्रस्तुत नियोजित करते समय साग-विवरण के साथ ही पूरे दृश्य के प्रभाव पर भी दृष्टि रखता है (छंद १२,१४,१६,१४१,२३५)।

(३) कवि की अलंकार-योजना प्रसंग-प्राप्त-भाव से सदा समन्वित रहती है। यह समन्वय रूपात्मक तथा भावात्मक दोनों प्रकार का होता है (८१,८२)।

(४) इस द्विविध साम्य को स्थापित करने के लिए कवि कभी मानव पर प्रकृति का आरोप करता है कभी प्रकृति पर मानव का (१६८)।

(५) कवि एक प्रस्तुत के मेल मे अनेक अप्रस्तुतों की सृष्टि करता चलता है (१०७)।

(६) वह अपने चारों ओर के प्राकृतिक वातावरण से ही अलंकार-विधान की सामग्री ढूंढ निकालता है (४२,६७,६६)।

(७) कभी कभी कवि को रति-व्यापार से सम्बन्धित अप्रस्तुत-विधान की धुन सवार हो जाती है (१६५,१६७,२०६,२०७,२२०,२२८)।

आचार्य श्री रामचंद्र शुक्ल ने सादृश्यमूलक अलंकारों के दो उद्देश्य बतलाये हैं।

(१) किसी वस्तु के रूप या गुण या क्रिया का अनुभव अधिक तीव्रता से कराना।
(२) भाव का अनुभव तीव्रता से कराना।

कहना न होगा कि वेलि के अलंकार इन उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले हैं।

इस दिशा मे पृथ्वीराज ने सबसे अधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा का किया है। तदनन्तर उपमा और रूपक का। वह उपमान-चयन में शास्त्रीय लीक पर नहीं चला है वरन् प्रकृति और जीवन को भी नजदीक से देखता रहा है। इसीलिए पद-पद पर नवीनता, ताजगी और प्रभावना के दर्शन होते रहते हैं।

डा० मोतीलाल मेनारिया के शब्दों मे 'स्वरूप-बोध' और भावोत्तेजन की दृष्टि से इनकी योजना हुई है।"""हमारे प्राचीन कवि प्रायः आँख की उपमा कमल से और मुख की चन्द्रमा से देते आये हैं। इस तरह की उपमाओं से उपमेय-उपमान के बीच का थोड़ा सा सादृश्य अवश्य प्रकट हो जाता है पर वर्णन में सजीवता नहीं आती : न कथित विषय का पूरा दृश्य सामने आ पाता है। पर पृथ्वीराज की उपमाओं मे यह बात नहीं है। वे अपनी उपमाओं मे न केवल उपमेय-उपमान का

साधर्म्य कथन करते हैं प्रत्युत दोनों के आस-पास के पूरे वातावरण को ही शब्दों में ला उतारते हैं जिससे भाव सजीव होकर जगमगाने लगता है। यथा

> संग सखी सील कुल वेस समाणी, पेखि कली पदमणी परि।
> राजति राजकुंअरि राय अंगण, उडियण बीरज अम्बहरि (१४)

यहाँ पर कवि ने रुक्मणी की उपमा चंद्रमा से देकर ही अपने कार्य की इतिश्री नहीं कर दी है, बल्कि रुक्मणी की सखियों की समता तारों से दिखाकर दोनों के आसपास के समूचे वातावरण का शब्द-चित्र सामने ला रखा है[1]।

अधिकांश उपमाएँ पूर्णोपमाएँ ही हैं। लुप्तोपमाओं का प्रयोग नगण्य सा है। हमारा कवि रूपकों का सम्राट है। सांग-रूपक की सृष्टि करने में कवि की प्रतिभा महाकवि तुलसी से होड़ लेती प्रतीत होती है। इसके निम्नलिखित रूपक तो साहित्य-संसार में श्रेष्ठ माने जा सकते हैं—

(१) वसन्त और शिशु का रूपक (२२६-२३८)
(२) वसन्त और राजा का रूपक (२३६-२४२)
(३) वसन्त और महफिल का रूपक (२४३-२५५)
(४) युद्ध और वर्षा का रूपक (११७-१२६)
(५) लुहार और कृष्ण का रूपक (१३२)
(६) जुलाहे का रूपक (१७१)
(७) मुखमण्डल और रथ का रूपक (८६)

उदाहरण के लिए प्रथम तथा अन्तिम रूपक का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता—

वसन्त और शिशु का रूपक :

उपमेय	उपमान
(१) वनस्पति	जच्चा
(२) वसन्त	बच्चा
(३) भ्रमर की गुंजार	मन की व्याकुलता
(४) कोकिल की बोली	वेदनापूर्ण वचन
(५) भ्रमर गुंजार	बच्चे का रोना
(६) वनस्पति से मधु झरना	मां के स्तन से दूध टपकना
(७) पुष्पों की सुगन्ध	बधाईदार
(८) पवन	रथ

[1]—राजस्थानी भाषा और साहित्य (द्वितीय संस्करण) पृ० १६६-१६७

(९)	आम्रमंजरी	तोरण
(१०)	कमल की कलियाँ	मंगलकलश
(११)	एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर लिपटी लताएँ	वन्दनवार
(१२)	बन्दरों के फोड़े कच्चे नारियल की गिरी	मांगलिक दही
(१३)	पुष्पकेसर	कुंकुम
(१४)	किंजल्क	अक्षत
(१५)	कोयल गान	पिकवयनी स्त्रियों का गान
(१६)	पुष्कर में स्थित नलिनी के पत्रों पर जलकण	बधाई के लिए स्त्रियों द्वारा लाये गये मोतियों से भरे हुए थाल
(१७)	कर्णिकार और टेसू के पीले पुष्प	जच्चा के वस्त्र
(१८)	फाल्गुन मास के गान और वाद्य	शिशु को सुलाने के लिए लोरी गान[1]

मुखमण्डल और रथ का रूपक :

(१)	नायिका का मुखमण्डल	रथ
(२)	भौंहें	जुआ
(३)	नयन	मृग (जो यहाँ घोड़ों का काम कर रहे हैं)
(४)	टेढ़ी अलकें	सर्पमयी रास
(५)	कान की बालियाँ	रथ के वाक्रिये
(६)	मुखचन्द	सारथी
(७)	तोटक [कर्णफूल]	चक्र [पहिया][2]

इन अलंकारों के अतिरिक्त सन्देह (१६, २१, २७, ४१, ८४, ९० १६१, २६४) भ्रांतिमान (२५७) अपह्नुति (१००, १५६, १६०, १६४, २२६, २४६, २५०), अतिशयोक्ति (३६, १११, ११५) उल्लेख (७६, ९०, १०७, २८४) व्यतिरेक (८७, ९४, १६०, २५५), निदर्शना (५६, ६०) यथासंख्य (१२, १०६) मीलित (२१०, २११) दीपक (१४२, २०८) काव्यलिंग (१८८) प्रतीप (२६०) विरोधाभास (२२३) आदि अलंकार भी यथास्थान प्रयुक्त हुए हैं।

छन्द :

वेलि में प्रयुक्त छन्द छोटा साणोर है। इसके तीनों-वेलियो, सोहणो, सुद्द साणोर-भेद यहाँ व्यवहृत हुए हैं। सुद्द साणोर की संख्या सब से अधिक लगभग तीन चौथाई है। उसके बाद वेलियो छन्द की और तब सोहणो की।

१—क्रिसन रुकमणी री वेलि : श्री कृष्णशंकर शुक्ल, भूमिका पृ० ९८-९९

२—वही: पृ० ९४

उदाहरण :

(१) *वेलियो :*

जोइ जलद पटल दल सांवल-ऊजल, घुरइ निसाण सोइ घण-घोर।
प्रोलि-प्रोलि तोरण परठीजइ, मडइ किरि तंडव गिरि मोर ॥४०॥

(२) *सोहणो :*

काली करि कांठलि ऊजलि कोरण, धारे स्रावण धरहरिया।
गलि चालिया दसो दिसि जलध्रम, थंभिन, विरहणि-नइण थिया ॥१६॥

(३) *खुड्द साणोर :*

जिणि सेस सहसफण, फणि-फणि बि-बि जिह,
जीह-जीह नव-नवउ जस।
तिणि ही पार न पायउ श्रीकम,
वयण ढेडरां किसउ वस ॥४॥

(४) रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि

प्रस्तुत वेलि राम के चरित्र से सम्बन्धित है। शीर्षक-'रघुनाथ चरित्र नव रस वेलि'-से सूचित होता है कि इसमें राम का चरित्र नो रसों-शृंगार वीर, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीभत्स अद्भुत और शान्त-के माध्यम से चित्रित किया गया है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता महेसदास शाहजहाँ-औरंगजेब के समकालीन थे। इनके पिता बाघजी अकबर के समय विद्यमान थे। बाघजी, भीमजी तथा रामाजी लाडखानोत तीनों सगे भाई थे। बाघजी किसी कारण राजा मानसिंह (जयपुर) से नाराज थे। इस सम्बन्ध में उनका लिखा यह चरण प्रसिद्ध है :—

'मान नाम मागु नहीं, यही बाघ री टेक'

१—(क) मूल पाठ में वेलि-नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री कवि महेसदास विरचिता नवरस वेलि श्री रघुचरित्र संपूर्णम्'।

(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति-उदयपुर के [illegible] निजी संग्रहालय में महेसदास कृत अन्य हस्तलिखित ग्रंथों के साथ सुरक्षित है। प्रारंभ के सात पृष्ठ अच्छी अवस्था में हैं पर वेलि का सम्बन्ध उन पृष्ठों से नहीं है। प्रस्तुत वेलि प्रति के २२ पृष्ठों में लिखी गई है। प्रत्येक पृष्ठ में १४ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में २८ अक्षर हैं। प्रति का आकार १२"×६½" है।

वाघजी के पाँच पुत्र थे (१) कर्णकासोदास (२) महेसदास (३) कल्याणदास (४) गंगादास और (५) पोखरदास। इनमें से कल्याणदास (जो स्वयं अच्छे कवि थे) महाराणा राजसिंह (शासन-काल वि० सं० १७०६-१७३७)[1] प्रथम के समय उदयपुर में रहे थे।

महेसदास की प्रसिद्ध कृति है 'विनय रासो'। इसमें शाहजहाँ और उसके पुत्र दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद के बीच होने वाले युद्धों का वर्णन किया गया है। युद्ध-वर्णित घटनाएँ, तिथियाँ, व्यक्तियों तथा स्थानों के नाम सभी इतिहास-सम्मत हैं। उदयपुर के कवि राव मोहनसिंहजी के निजी संग्रहालय में जो हस्तलिखित प्रति मिली है उसमें विनयरासो और रघुनाथ चरित्र नवरस वेलि के अतिरिक्त महेसदास के निम्नलिखित ग्रन्थ और हैं—

(१) गौड़ राजपूतों की वंशावली (२) राणा राजसिंघजी में गुण (३) राव अमरसिंह जी को साको (४) गीत अरजन जी को (५) गीत गोपालदास झाला को आदि।

महेसदास डिंगल और पिंगल दोनों में कविता किया करते थे। प्रस्तुत वेलि में भी दोनों भाषाओं का प्रयोग हुआ है। इनका वंश राव गौड़ क्षत्रियों से सम्बन्धित है। कोटा क्षेत्र के बावड़ी-खेड़ा और सोपुर-बड़ौदा में अब भी इनके वंशज विद्यमान हैं।

रचना-काल :

वेलि में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। पुष्पिका-इति श्री कवि महेसदास विरचिता या नवरस वेलि वा रामचरित्र सम्पूरन मीति जेठ बुदि ११ बृहस्पतवार ने पूरी हुई सम्मत १८७६-से सूचित होता है कि इसे सं० १८७६ में लिपिबद्ध किया गया। कवि शाहजहाँ-औरंगजेब का समकालीन रहा है। 'विनय रासो' में उसने शाहजहाँ के पुत्रों, दारा, शुजा, औरंगजेब-मुराद के बीच हुए युद्धों का वर्णन किया है। इससे अनुमान है कि कवि का रचना-काल औरंगजेब के राज्याभिषेक (सन् १६५८) के आस पास का रहा है। सम्भव है प्रस्तुत वेलि इसी के आस पास अर्थात् १८ वीं शती (विक्रम) के प्रारम्भ में रची गयी हो।

रचना-विषय :

१२७ छन्दों की यह रचना राम के जीवन से सम्बन्ध रखती है। कवि का लक्ष्य नव-रसों के माध्यम से राम का चरित्र वर्णन करना प्रतीत होता है पर वह अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल नहीं हो सका है। यह अवश्य है कि प्रारम्भिक १३ पद्यों में एक-एक कर के नव-रसों का उल्लेख कर दिया गया है पर उसने

[1]—उदयपुर राज्य का इतिहास: द्वितीय खण्ड: भाग, पृ० ५५२ व ५७८

रस-परिपाक नहीं हो पाया है। नवरस-वेलि के बाद उसने राम की कथा को एक बार फिर उठाया है पर 'बालकाण्ड' की समाप्ति के साथ ही उसकी समाप्ति कर दी है। संक्षेप में कथा-सार का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है।

(१) *मंगलाचरण*:—कवि प्रारम्भ के तीन छन्दों में राम, सरस्वती, शिव, गणेश[1], ब्रह्मा, नारद, व्यास, हनुमान, वाल्मीकि, शुकदेव, नासिकेत[2] आदि का स्मरण कर वस्तु[3] की ओर संकेत करता है।

(२) *नव-रसों के माध्यम से राम-चरित वर्णन* :—अयोध्या शहर में जानकी-वल्लभ राम के शृंगार में शृंगार रस[4], धनुर्भंग-प्रसंग में वीर रस[5], राम वन-गमन, सीता-वियोग और दशरथ-मरण में करुण रस[6], शबरी-प्रसंग में हास्य रस[7], हनुमान के लंका-दहन तथा असुरों के नाश में रौद्ररस,[8], मेघनाद के रणोन्माद और राम के नाग-पाश बंधन में भयानक रस[9], राम-रावण युद्ध में वीभत्स रस[10], सेतुबन्ध में अद्भुत रस[11] तथा रावण-मरण

१—सीतापति सूमरि सूमरि सूरसूति, सहति ऊमा सिव सूमरि गिरीस।
गणपति सूमरि गाय गुंण गोविंद, जग तारक रूपग जगदीस ॥१॥

२—सूखि ब्रह्मा सूमरि सुमरि ब्रह्माणी, नारद व्यास सूमरि हणुमान।
बालमीक सूखदेव सूमरि वलि, नासकेत बलि सूमरि निदान ॥२॥

३—निज नवधा भगति मुकति जिह नीको, दुरो जमपुर तणो दुवार।
जिण जिण ही बीद रूपग जोड़ो, किणं ही विदि रीझै करतार ॥३॥

४—रस जेणि सिगार गायजे रसणा, सहरू अजोध्या तणो समाज।
वणे सिगार जानकी वलभ, रचै सिगार सदा रघुराज ॥४॥

५—वलवीर वरण रघुवीर तणो बल, धरू अंमर अहिपुर धीय धाक।
जोग जूगति सिव तणो जोड़ियो, पल माही तोड़ियो पिनाक ॥६॥

६—सूणि करुणा माहा आप करुणामय, जटा धारि धारे बल जोग।
अंत दसरथ कवसल्या अंतर, वन वसिबो जानकी वियोग ॥७॥

७—रस हासि रहस रघुनाथ तणो रचि, कहीयो यक भीलड़ी कहाव।
सैन्यापति लछिमण रघुवर सो, वंदर दीता रीछ बणाव ॥८॥

८—थईयो रस रऊद्र लंक आपाणों, बाले हणमत बीर बणाड़ि।
वलोया असूर किता दघ बूड़ा, पूलिया केइ नालिया पछाड़ि ॥९॥

९—रस भयो भयानक त्रकुट ऐ रसो, मेघनाद बालै समर।
नागपासि बंदीया नारायण, आस पास बधीया अमर ॥१०॥

१०—रावण श्रीराम माचीयो र रहचक, जूवल कंध धड़ सीस जूवा।
रुहिर बंबाल खाल रलतलीया, हुवता रस सो बीभछ हुवा ॥११॥

११—मंदोवरि सूणे सूणो यमरावण, मदभूत कथा तणा महदाण।
फवीयो सिर बंदर फहराता, पाणी सिर तरता पाखाण ॥१२॥

सीता-मिलन और अयोध्या-प्रवेश में शान्त रस[1] के मार्मिक-स्थलों की ओर संकेत-मात्र कर कवि ने 'नव रस वेलि' नाम की सार्थकता समझी है। शास्त्रीय दृष्टि से ऐसा वर्णन रस नहीं 'रसाभास' माना जायेगा।

(३) *राजप्रासाद वर्णन तथा राम का परमब्रह्मत्व प्रदर्शन* :—कवि ने राजा दशरथ के स्वर्ण प्रासादों का वर्णन कर यह प्रतिपादित किया है कि उनके घर जिस राम ने अवतार लिया है वह पर ब्रह्म परमेश्वर है। उसके असंख्य शीश, हाथ, और पैर हैं[2]। अनन्त फणीधर अहर्निश अपनी जिह्वाओं से उसका नव-नव यशोगान करते हैं[3]।

(४) *अयोध्या शहर वर्णन* :—अयोध्या-शहर का वर्णन करते समय कवि की दृष्टि वहाँ के मकानों, बाग-बगीचों, नदियों, नदियों में क्रीड़ा-रत विविध जल-पक्षियों, आश्रमों तथा महन्तों की ओर गई है। दशरथ के राज्य में सर्वत्र आनन्द छाया हुआ है। ब्राह्मण धर्म-कथा, पूजापाठ और यज्ञानुष्ठान में रत हैं[4], क्षत्रिय अस्त्र-शस्त्र-साधन, मृगया और रण-सज्जा में निमग्न हैं[5], वैश्य राजनियमों तथा धर्म-सिद्धांतों का पालन करते हुए अनन्त व्यापार में दत्तचित्त हैं[6], शूद्र अपने सेवा कर्म मे जुटे हुए धर्माचरण करते हैं[7]। दर्शन और धर्म के विभिन्न मतानुयायी सुखपूर्वक धर्माराधना मे तन्मय हैं[8]। राजा दशरथ के चारों पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न अपनी बाल्यावस्था सरयू तट पर मृगया आदि में सानन्द व्यतीत कर रहे हैं।

१—मिलीया हरि सीया मौखि खल मिलीया, सूरा सूरा त्रीय मिले समाज।
ऊपजे सात अजोध्या आवण, रावण मरण भभीखण राज ॥ १३ ॥

२—संख्या बिण सीस मुकट कुंडल सक, संख चक्र केइ गदा सरोज।
हसत चरण संख्या बिण कहिजै, आभूपण संख्या बिण ओज ॥ १८ ॥

३—पूंणिनाम अनत पूंणि अनत पराक्रम, अनत पूरख सोही आपों आप।
अनत फणी जिण सू जस अहीनिस, जिह जिह भवन नवा सूज जाप ॥ १६ ॥

४—विप्र वेद कथा पूजा बिसतारै, होय अगनि हुत जगि हवन।
धूवै तिण थिय सहर धूंधलो, सूर सूर-सी वेथवै प्रसन्न ॥ २८ ॥

५—खह बारण खाति भाति ऐ खत्रीया, ससत्रा ससत्र साधवै अपार।
अस्व गज रथ समरथ आरूढ़ं, सहल बाग वन तणी सिकार ॥ २६ ॥

६—बणि बणिक कर व्योपार अगत विधि, बणीयो येम राजपथ वाच।
दे भ्रम आदि दवन सोही दाखे, सतवादि बोलै मुख साच ॥ ३० ॥

७—बलि सूद्र करम आपं बिसतारै, करम करम आपरा करै।
कहियै मौखि तणा अधिकारी, भजे राम मुख उदर भरै ॥ ३१ ॥

८—केई ध्यावै रुद्र वृभ ध्यावै केई, बूदि ध्यावै केई न्याय विमेक।
मूणी ए क्रम ध्यामी मीमासा, अरिहंत भत ध्यावै केइ ऐक ॥ ४० ॥

(५) *विश्वामित्र का आगमन* :—इसी बीच विश्वामित्र आकर राजा दशरथ से यज्ञ रक्षा के लिये राम-लक्ष्मण को मांगते हैं। राजा दशरथ बिना किसी विरोध के दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के हवाले कर देते हैं और वे माता-पिता को प्रणाम कर रथारूढ़ हो जाते हैं। ताड़कादि असुरों का संहार कर यज्ञ की रक्षा की जाती है।

(६) *विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का मिथिला जाना* :—तत्पश्चात् दोनों भाई विश्वामित्र के साथ मिथिला जाते हैं। यहीं अहल्योद्धार और केवट-प्रसंग की चर्चा करते हुए कवि ने राम द्वारा धनुर्भंग कराया है।

(७) *चारों भाइयों का विवाह* :—जनक की प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर सर्वत्र आनन्द छा जाता है। पुरोहित संबंध की स्थापना के लिए अयोध्या नारियल लेकर जाता है और लग्न तय होने पर बरात सजकर आती है तथा विधिवत् चारों भाइयों का विवाह होता है। तत्पश्चात् मुँह दिखाई, जीमनवार, जुआ का खेल, दहेज आदि प्रथाओं की सम्पन्नता के साथ विदाई होती है।

(८) *परशुराम-आगमन* :—इसी बीच परशुराम धनुष-भंग की टंकार सुन क्रोधित हो वहाँ उपस्थित हो जाते हैं और रघुवंश को समूल नष्ट कर देने की चुनौती देते हैं। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की इनसे चर्चा होती है और अन्त में परशुराम चले जाते हैं।

(९) *अयोध्या-प्रवेश* :—इसके बाद सभी बराती सानन्द अयोध्या में प्रवेश करते हैं। अपार जन-समूह मंगल वाद्यों के साथ स्वागत करता है। माता कौशल्या, कैकयी और सुमित्रा भी अपने पुत्रों को बधाती हैं। अन्त में कवि कहता है कि सीता साक्षात् लक्ष्मी है और राम लक्ष्मीपति।

कवि का उद्देश्य सम्पूर्ण राम-चरित का वर्णन करना नहीं रहा है। उसने केवल वैवाहिक प्रसंग को लेकर काव्य की सुखमय इतिश्री की है। वर्णन-प्रसंगों में केशव की रामचन्द्रिका का प्रभाव यत्र-तत्र झलकता है। यह बात अलग है कि वह दुर्बोधता एवं क्लिष्टता नहीं आ पाई है।

परशुराम के प्रसंग में कवि ने वाल्मीकि तथा केशव का अनुकरण किया है। यहाँ परशुराम विवाह के बाद ही आते हैं मानस की तरह धनुर्भंग के तत्काल बाद नहीं। कवि अपने आप में मौलिक भी है। जहाँ मानस में केवल लक्ष्मण ही परशुराम के विपक्षी नजर आते हैं और केशव की रामचन्द्रिका में भरत। वहाँ प्रस्तुत कृति में कवि ने शत्रुघ्न को ही अधिक महत्व दिया है। परशुराम को समझाने के लिए यहाँ

केशव की तरह किसी शंकर को नहीं आना पड़ता वे तो शत्रुघ्न के तीक्ष्ण व्यंग-बाण से ही तिलमिलाकर चल देते हैं[1]।

कवि का ध्यान वस्तु-वर्णन की ओर अधिक रहा है। जहाँ उसे वर्णन करने का अवसर मिला वहाँ वह बढ़ता ही चला गया, उसे अपने कथानक के कलेवर का जैसे ध्यान ही नहीं रहा हो। प्रमुख वर्णन-स्थल निम्नलिखित हैं–

(१) मकान-वर्णन
(२) बाग-वर्णन
(३) जानकी-मुख-वर्णन
(४) राजा-दशरथ-राज्य-वर्णन
(५) धनुर्भंग वर्णन
(६) बरात वर्णन
(७) विवाह वर्णन
(८) अयोध्या में स्वागत वर्णन।

काव्य मे अलौकिक तत्वों का भी समावेश किया गया है। ऐसे स्थल दो हैं (१) राम का अलौकिक व्यक्तित्व : इसी में अहल्योद्धार का प्रसंग भी समाविष्ट है[2] (२) देवी-देवताओं का प्रसंग : कहीं वे स्वयं धरती पर उतर आते हैं और कहीं पुष्पवृष्टि करते हैं[3]। विवाह प्रसंग मे कवि ने राजस्थान मे प्रचलित लोक-रीतियों और लोक-विश्वासों का आश्रय लिया है। प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण नही किया गया है, वह अलंकार विधान के रूप में ही प्रकट हुई है।

१—विप्रन को धर्म छांडि धर्म छिन्निन को लीनो।
मातु बन्ध बत करे साहा तुम पातिग कीनो।
तुम पुस्तक परिहारि पानि फरसो अवधारीय।
बरन धर्म को त्यागि अघता के अधिकारीय।
रघुबन्स यहै परवी नहीं गऊ विप्र बध कीजिये।
मन मानि जाति रघुनाथ को आसीर्वाद दीजिये ॥११६॥

२—ब्रह्म महेस रज छुवत चरन यह,
गोतिम की घरनी अखिल पद ठाम है ॥५७॥

३—बन उपबन तरणा बणाय बरणिये, तरम हुवैही देवतर।
छहरति तरणा फूल फल छावै, भावै तिण छाया अमर ॥३२॥
अब ब्याहि चले मिथिलापुर तें, सब ही के उछाह बढ़े उर तें।
नभ मण्डल मे सुर यों हरखे, बहुपदम पोपन के बरखे ॥६५॥

चरित्र-चित्रण :

घटनाओं के द्वारा पात्रों का चरित्र-विकास हुआ है। प्रमुख पात्र राम है अन्य पात्रों में दशरथ, विश्वामित्र, परशुराम, सीता, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न हैं। पात्रों में चारित्रिक स्थिरता है। राम का चरित्र-गान ही कवि का अभीष्ट रहा है। प्रारम्भ में राम का परब्रह्म रूप प्रगट हुआ है। वे अनन्त, अथाह और अभव हैं। 'जोति सरूप' होते हुए भी 'अनेरा' हैं। उनके अनन्त सिर, अनन्त हाथ और अनन्त पैर हैं। स्वयं वेद स्वरूपी हैं। अहल्या के उद्धारक और यज्ञ रक्षक हैं। वे मानव भी हैं। धनुष-बाण हाथ में लेकर सरयू नदी के किनारे शिकार खेलते हैं तो ताड़का-वध कर ऋषियज्ञ को सम्पन्न बनाते हैं। वे रूपवान हैं। कानों में कुण्डल और गले में वनमाला धारण करते हैं। वीरता में भी सब से बढ़कर हैं। शिव-धनुष को कुसुम की तरह उठाकर तिनके की तरह तोड़ ही नहीं देते बल्कि स्वर्ग-पर्यन्त अपनी धाक जमा देते हैं। उनमें वीरोचित शालीनता एवं विनय है। विश्वामित्र के साथ यज्ञ-रक्षार्थ जाते हुए वे बड़ों को प्रणाम करते हैं और परशुराम को विवाहोपरान्त आते देख कर स्वयं नमस्कार ही नहीं करते बल्कि 'सब अनुजन सों यों कह्या, निमसकार करि लेहु।' वे ईश्वरलीला में जितने पटु हैं मानव-लीला में उतने ही तन्मय। सीता के प्रति उनमें पूर्ण निष्ठा एवं प्रेम भावना है 'वरत गहयो श्री रामजी, और न परसों नारि।' जुआ में जानकी को जयी बनाने के लिए स्वयं हार जाना मानव-लीला का ही प्रमाण है। वीरता, प्रेमपरायणता और कर्तव्य भावना का मूर्त्त रूप है राम का लोक-लोकोत्तर व्यक्तित्व।

दशरथ आदर्श राजा के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनके राज्य में जड़-चेतन सभी सुखी हैं। चतुर्वर्ण व्यवस्था होते हुए भी जाति और धर्म-भेद नहीं है। शूद्रों को धर्माराधन की ही स्वतन्त्रता नहीं है बल्कि मोक्षाधिकार भी है। दशरथ बड़े दानी और दयालु हैं। प्रजा की रक्षा करना ही उनका धर्म है। उनके राज्य में न 'चोर-नाहर' का डर है न न्याय-नीति को खतरा है। सभी सत्यवादी हैं। 'रिखन को धूम तोसे नृप सों रहत है' कह कर विश्वामित्र जब उनसे यज्ञ रक्षार्थ राम-लक्ष्मण की याचना करते हैं तो वे बिना किसी संकोच के उन्हें साथ कर देते हैं।

परशुराम खलनायक के रूप में हमारे सामने आते हैं। वे तपोपुंज, वीर और क्रोधी हैं। भयंकर इतने कि 'परसराम के दरस तैं, भय उपज्यो सबहीन।' वे क्षत्रियों के लिये काल हैं। शिवजी के परमभक्त होने के कारण ही शिव धनुष को भंग करने वाले राम का वे संहार करना चाहते हैं। पृथ्वी को इक्कीसबार वे क्षत्रियों से रहित कर चुके हैं। ब्राह्मण होकर भी वे ब्राह्मण नहीं हैं इसी लिये भरत कहते हैं 'वेद पढो सूरकाल जपो अरु, औरु करो तप तीरथ सोई' और शत्रुघ्न तो स्पष्ट कह देते हैं वे मातृघाती, पापी और परसाधारी हैं। अन्त में क्रोध कर ही वे रह जाते हैं।

विश्वामित्र में ऋषि की गम्भीरता एवं दया-भावना है, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न मे रघुकुलोचित वीरता और साहस है। सीता सौंदर्य और प्रेम की देवी है। इसके अतिरिक्त अन्य स्त्रियां भी हैं जो स्वागत-सत्कार मे सहयोग देती है।

कलापक्ष :

महेसदास का डिंगल और पिंगल दोनों भाषा-शैलियों पर समान अधिकार है। प्रस्तुत कृति में प्रारम्भ के ४५ पद्य राजस्थानी मे वेलियो छंद मे तथा अन्त के ४६ से १२७ पद्य ब्रज-भाषा में लिखे गये हैं। भाषा माधुर्य और ओज गुण सम्पन्न है। वह स्वच्छंद गति से प्रवाहित होती है। यथा—

डिंगल :

कंचण मै कोट कांगूरा कंचण, कंचण बुरजि नै कंचण कपाट।
कंचण पोलि माहा दीरघ कहि, हद कंचण आलीबन्द हाट ॥१४॥

पिंगल :

ब्रह्मा जू के मुख च्यार तिनते प्रगट भये,
वेद को सरूप च्यार पूरन अरथ है।
धरम अरथ च्यारि काम फल मोखि दाता,
तिन मै चतुरभुज माहा समरथ है।
कहत महेस माहाराज के कुमार माहा,
राम लखिमन सत्रघन जू भरथ है।
कवसल्या केकई सुमित्रा के सुफलदाता,
तिनै देखि देखि सुख लहै दसरथ है ॥४६॥

कहीं कहीं शब्दों को विकृत किया गया है। यथा—
ऊदोत भानं वंसयं। अनेक भानं अंसयं॥
सरीर स्याम सुन्दरम्। अजाद रूप मिंदरं॥
जलज नील संजलं। समंद घोष बीजुलं॥
सुगंद केसरी सने। पगो पगा भगा पने ॥७४॥

डिंगल भाषा के प्रयोग में सर्वत्र वयण सगाई शब्दालंकार आया है। उसके साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं।

साधारण :

(१) जोति सरूप अलेख जको (१७)
(२) रूपारा केई केई सोनारा (२२)
(३) भ्रन च्यारि वसै दरसै नित गोविंद (२७)

असाधारण :

(१) बीभत्स सांत अद्भूते सुणीया (४)
(२) *निज* षोडस दांन सदा *नित* प्रति व्रत (४१)

यमक का प्रयोग चार जगह हुआ है :

(१) *नोख नोख* केई *नोख* नखे (२१)
(२) तोरित *पिनाक नाक* नाथ थहरानो हैं (६०)
(३) सोव्रन की *सूधा* ते *सूधारियत* धोलहर (६४)
(४) *मंगल* को भाजन लै *मंगल* ऊचारती (७६)

अर्थालंकरों में उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्रांति, सन्देह, व्यतिरेक आदि प्रयुक्त हुए हैं।

उपमा का प्रयोग लगभग १० जगह हुआ है। राम की सुन्दरता पर मुग्ध होकर उन्हें 'काम की सी मूरति' कहा गया है तो वीरता पर रीझ कर कहा है—

'तनक सी वेर माझ धनुष चढाय ऐंचि,
जनक-जनक ये तिनुका जैसे तोरि हैं'

रूपकालंकार भी लगभग ८ स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है। राम के विवाह के समय स्नानोपरांत शृंगार करने पर कवि को लगता है-

"सुन्दर सरोज द्रग स्याम के तनत पेच भ्रकुटी तनो।"
चरण कमलों में जूतियां सुशोभित हैं-
'जरी जराय मोच री पदारविंद सों धरी।'
परशुराम क्रोधित होकर राम से कहते हैं—
'मेरे तामस उदधि में कीनो चाहो लोप।'
उत्प्रेक्षाएं अनूठी हैं। स्वर्ण-प्रासाद के सौन्दर्य का वर्णन देखिये—
'जगमग जिन जेह रतनमय जाली, जग चखि प्रगटयि अंते जोट।
नग नग में प्रतिबिंब नरखता, कोटि भाण ऊगा मधि कोट॥
मिथिला के मण्डप में बैठे राम-लक्ष्मण मानों करोड़ों सूर्य-चन्द्र हैं—
मिथिला के मण्डप में रिखि संग रामचन्द्र,
लछिमन थाय मानों रवि ससि कोटि है।
धनुष-भंग होते ही कवि को लगता है—
हेमगिर गिर्यो मनो आसमान फाट् है।'
कमल-दलों पर स्थित जल-बिन्दुओं को लेकर भ्रांति अलंकार की सुन्दर सृष्टि हुई है—

पड़वणि वहि पत्र सीस एम जल पूछि, जाणि रजत पारद ऊजल।
राजहंस करि जाणि रालिया, फोड़ि सीप मुकतास फल ॥३७॥
ऊपमां कवि दुतीय ऐणि जिण आणे, सूज श्रंम तणा ढूलंत सूढाल।
भ्रम पडीया यम सोतीयां मेलै, मेलै पखणि चंच मराल ॥३८॥

भाषा को सशक्त और रोचक बनाने के लिए यत्र तत्र मुहावरे भी आये है—

(१) बूरो मुख करि चले गांठि को सो खूटिगो।
(२) भृगुनन्दन तब कोपिकै कीने राते नैन।

छन्द :

डिंगल भाषा के साथ वेलियो छंद प्रयुक्त हुआ है तथा ब्रज-भाषा के साथ कवित्त, छप्पय, नराच, चौपाई, दोहा, निसाणी, सवैया, त्रोटक, कुंडलियां आदि विविध छंद व्यवहृत हुए है।

(५) महादेव पार्वती री वेलि[1]

महादेव पार्वती री वेलि चारणी-वेलि-साहित्य की महत्वपूर्ण कृति है। पृथ्वीराज की वेलि के अनुकरण पर लिखी गई इस साहित्यिक कृति के मूल्यांकन की महती आवश्यकता है। इसे 'हर पार्वती री वेलि' के नाम से भी अभिहित किया गया है। इसमे महादेव और पार्वती की कथा वर्णित है।

कवि-परिचय :

वेलिकार ने अपनी कृति में न तो रचना-स्थान का उल्लेख किया है न रचना-तिथि का। आत्म-परिचय भी नही सा दिया है। अन्त मे केवल इतना कहा है—

> अकल सकल अवगति अपरंपर, रामेसर मोटउ राजांन।
> किसनउ कहइ कृपा हिव कीजइ, वड दातार वधारण वांन ॥३८२॥

इससे यह संकेत मिलता है कि कवि का नाम किसनउ (किशना) है। पर यह किशना कौनसा है? इस बारे मे अनुमान ही किया जा सकता है। राजस्थानी-साहित्य में किशना नाम के दो कवि अधिक प्रसिद्ध हैं :

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आता है— सिव सकति तणी ताइ वेलि वर्ण विनु, सफल जनम करिशा संसार (२)

(ख) प्रति-परिचय:— इसकी हस्तलिखित प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के गुटके नं० ६८ मे सुरक्षित है। संपूर्ण गुटका ११७ पत्रों का है। प्रस्तुत वेलि केवल २४ पत्रों मे ही लिखी गई है। प्रत्येक पृष्ठ म १२ पंक्तियां है और प्रत्येक पंक्ति मे २४ अक्षर हैं। प्रति का आकार ६½"×४½" है।

(१) आढ़ा किशना- आढ़ा दुरसा का सबसे छोटा पुत्र।
(२) आढ़ा किशना- उक्त किशना के वंशज दूल्ह का तृतीय पुत्र[1]।

दुरसा का समय संवत् १५६५ से संवत् १७०८ माना गया है[2]। डा० मोतीलाल मेनारिया ने संवत् १५९२-१७१२ माना है[3]। अतः पहले किशने की विद्यमानता सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में स्पष्ट है। दूसरा किशना मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह (शासन-काल वि० सं० १८३४-८५)[4], का आश्रित कवि था जिसने 'भीमविलास' और 'रघुवर जस प्रकास' जैसे विशाल ग्रंथ लिखे। 'भीमविलास' की रचना संवत १८७९ में की गई और 'रघुवर जस प्रकास' की संवत् १८८१ में। अपनी वेलि में किशना ने यद्यपि रचना-काल नहीं दिया है पर अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर में जो प्रति[5] प्राप्त हुई है वह संवत् १७०२ के लगभग लिपिबद्ध की गई है। अतः यह तो मानना ही पड़ेगा कि रचना-काल निश्चित रूप से लिपिकाल के पहले का है। इस दृष्टि से दूसरा किशना- जिसका रचना-काल १९ वीं शती का उत्तरार्द्ध रहा है- प्रस्तुत वेलि का रचयिता नहीं हो सकता।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या वेलिकार किशना सचमुच दुरसा का पुत्र आढ़ा किशना ही है? श्री नरोत्तमदास स्वामी ने दोनों को एक व्यक्ति मानकर लिखा है आढ़ा किसना ने 'हर पार्वती री वेलि' की रचना कर पृथ्वीराज की क्रिसन रुकमणी री वेलि की सफल स्पर्धा की[6]। जिसे डा० हीरालाल माहेश्वरी ने विचारणीय बतलाया। उनके अनुसार दोनों व्यक्तियों को एक मान लिए जाने में सन्देह है। यह वेलि शुरू से अन्त तक जैन-शैली से प्रभावित है, और यह असंभव है कि चारण-शैली के सुप्रसिद्ध कवि आढ़ा दुरसा के पुत्र जो प्रायः जीवन भर अपने पिता के पास रहे, विरासत में मिली प्रचलित चारण-शैली को छोड़कर एक बारगी, जैन-शैली में रचना करें। अनुमान है कि कवि किसनउ जैन-शैली से प्रभावित कोई जैनेतर-चारणेतर कवि थे। इस 'वेलि' की विषय वस्तु के आधार पर कवि जैनेतर प्रतीत होता है, और शैली के आधार पर चारणेतर। संभवतः ये ब्राह्मण थे[7]।

१—दुरसा घर क्रिमनेस, किसन घर मुकवि 'महेसुर'
सुत 'महेस 'खूमाण' 'खांन साहिब' सुत जिणघर।
'साहिब' 'घर' 'रनसाह', 'पना' 'सुत' 'दुलह' सुकव पुण।
'दुल्ह' घरे पटपुत्र, 'दाने', 'जस', 'किसन' बुधोमणं।
'सारूप', 'चमन', सुघर, ऊतन, प्रगट नगर पाचेटिये॥
चारण जाती आढ़ा त्रिगत, 'किसन' मुकवि पिंगल किंयो॥
रघुवरजसप्रकास : सं० सीताराम लालस : पृ० ३४०
२—गुढ़ार्थ संजीवनी, प्रथम भाग: श्री शंकरदान जेठी भाई देथा
३—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १३८-१८५
४—उदयपुर राज्य का इतिहास : भाग २ पृ० ६७३, ७१६ तथा पृ० २७७-२७८
५—हस्तलिखित प्रति नं० ९८
६—राजस्थानी साहित्य : एक परिचय, पृ० ३०
७—राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १६४

डा० माहेश्वरी का अनुमान किसी ठोस आधार पर आधारित नहीं प्रतीत होता। वेलि मे कहीं भी जैन प्रभाव लक्षित नहीं होता। 'अइ' 'अउ' वर्तनी को देखकर उनको ऐसा भ्रम हुआ है पर संवत् १६०० के पूर्व 'अइ' 'अउ' ही लिखा जाता था, 'ऐ' 'औ' नही। सं० १६०० के लगभग 'ऐ' 'औ' लिखे जाने लगे पर बहुत दिनों तक दोनों रूप चलते रहे। त्रिपुर सुंदरी री वेलि (प्रति सं० १६४३ की) चारण कवि की रचना है पर उसमे भी नीचे लिखे रूप पाये जाते हैं—

'संहारउ', 'करइ', 'फलइ', 'भणइ', 'तेणइ', 'नासइ',

'पूरइ', 'संचरई', 'पामिइ', 'पसाइ' आदि। पृथ्वीराज की वेलि की पुरानी प्रतियों में भी ऐसे रूप मिलते हैं।

डा० मोतीलाल मेनारिया ने राजस्थानी साहित्य के पूर्व मध्य-काल (सं० १४६०-१७००) के फुटकर कवियों मे किशनदास का उल्लेख किया है और कोष्टक में (सं० १६६०) लिखा है[1]। हमारा अनुमान है कि यह किशनदास दुरसा का पुत्र और हमारी वेलि का प्रणेता किशना ही है। सं० १६६० कवि का रचना-काल रहा है। मृत्यु तिथि का उल्लेख एक प्रति[2] में इस प्रकार हुआ है—

'इणी सांवत्त काल की यौ— सां० १७०४ रा मागसर वदी १४ आढै कीसनै पचेटीग्रे'।

किशन कवि होने के साथ साथ तलवार का भी धनी था। यह महाराजा गजसिंह (शासन-काल वि० सं० १६७६-९५)[3] की फौज मे मुसाहब था। दो तीन युद्धों में उसने वीरता प्रदर्शित की थी। महाराजा गजसिंह ने उसकी कवित्व-शक्ति पर मुग्ध होकर लाखपसाव प्रदान किया था जिसका उल्लेख कविराजा श्यामलदास ने अपने वीर विनोद में किया है। लाखपसाव में महाराजा ने पांचेटियां सोजत परगने का गांव सं० १६७७ में प्रदान किया जो अभी तक उसके वंशजों के अधिकार में चला आता है। इसके अतिरिक्त महाराजा ने संवत १६७९ मे जोधपुर परगने का हिंगोली खुर्द नामक गांव भी उसे प्रदान किया। उसके कई फुटकर गीत भी मिलते हैं[4]।

रचना-काल :

इस वेलि की जो प्रति मिली है। उसमें न तो रचना-तिथि का उल्लेख है न अन्त में लिपिकाल ही दिया गया है। जो गुटका[5] मिला है उसमें इस वेलि के

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मेनारिया, पृ० १६२
२—प्रति सं० ६६ : अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर
३—जोधपुर राज्य का इतिहास प्रथम खण्ड, पृ० ३८८ व ४०७
४—डिंगल गीतकार : सीतारामः लालस (अप्रकाशित)
५—अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर : ह० प्र० नं० ६८

अतिरिक्त पांच और रचनाएं भी लिपिबद्ध की गई हैं। इनमें से वैताल पच्चीसी के अन्त में पुष्पिका दी है 'इतिश्री वेताल पचीसी चरित्रे राजा श्री विक्रमादीत प्रश्ने वेताल कवितं पांचीस कथा चउपई गाथा संपूर्ण ॥ ग्रंथाग्र १२८८॥ सर्व संवत् १७०२ वर्षे आसाढ़ वदि १३ दिने श्री बीकानेर मध्ये।' इससे स्पष्ट है कि महादेव पार्वती री वेलि संवत १७०२ के पूर्व रच ली गई थी। डा० मोतीलाल मेनारिया ने कवि आढ़ा किसना का रचनाकाल सं० १६६० माना है[१]। अतः अनुमान है कि सं० १६६० और १७०० के आसपास ही इसकी रचना की गई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ३८२ छंदों की रचना है। इसमें महादेव और पार्वती की कथा वर्णित है। पूर्वार्द्ध में सती की कथा तथा दक्ष-यज्ञ का वर्णन है। कथा-सार का विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) *मंगलाचरण:*—प्रारम्भ के दो छंदों में परमेश्वर, सरस्वती, और परमगुरु को हाथ जोड़कर कवि निवेदन करता है कि हे दीनदयाल आप मुझ पर दया करें। मैं बड़ी भक्ति के साथ आपका गुणगान करता हूं। बावन अक्षरों (१६ स्वर और ३६ व्यंजन) की ही पंक्तियां बांधकर मैं अपने जन्म को सफल बनाने के लिये शिव-पार्वती विषयक वेलि का वर्णन कर रहा हूं। (१-२)

(२) *हरि[२]-महिमा :*—जो उत्कट प्रेम भावना के साथ हरि का स्मरण करते हैं उन हरि-दासों का मैं दास हूं। हरि की महिमा अपरंपार है। वे ही हृदय में सर्व प्रथम आशा को उत्पन्न करते हैं और बाद में उसे फलित करते हैं। वे ज्योति-स्वरूप होते हुए भी ससार में अलोप हैं। उनके मुकुट का प्रकाश अनन्त करोड़ ब्रह्मांड तक व्याप्त है। वे निर्गुण और सगुण दोनों हैं। निर्गुण रूप में वे अज, अखंड और माता-पिता विहीन हैं। सगुण रूप में उनका व्यक्तित्व विराट और अलौकिक है। उन्होंने बाल्यावस्था को कसकर कछोटे से बाध दिया है। सातों समुद्र उनकी प्रदक्षिणा करते हैं और आकाश उनके वैभव की पताका है। वासुकि कंठ-भूषण है और वृषभ है वाहन। तपस्या का तेज बारह सूर्यों की तरह जाज्वल्यमान है। प्रलय-काल में दिग्पाल और धर्म-वृषभ उन्हीं के द्वार पर सुरक्षा पाते हैं। जब वे प्रसन्न होते हैं सभी को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं और अप्रसन्न होने पर बड़े बड़े दैत्यों का संहार करने में भी नहीं चूकते। (३-२३)

१—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १६२

२—*प्रति में महादेव के लिये जगह जगह 'हरि' शब्द का ही प्रयोग किया गया है।*

(३) *राजासगर की अश्वमेघ-यज्ञ-रचना* :—राजा सगर ने अश्वमेघ-यज्ञ के लिये तीनों लोकों में घोड़ा छोड़ा और उनके साठ हजार वीर पुत्र रक्षार्थ उसके पीछे पीछे चले। इस घटना से इंद्र भयभीत हो उठा और जाकर ब्रह्मा से पुकार की। ब्रह्मा ने रक्षा का उपाय बतलाते हुए कपिल मुनि के आश्रम मे जाकर घोड़े को बांध देने की सलाह दी। कपिल मुनि के आश्रम मे घोड़े को बंधा देख घोड़े की तलाश में परेशान सगर के ६० हजार पुत्रों को मुनि पर बड़ा क्रोध आया और वे एक ही साथ उन पर आघात करने लगे। इससे क्रुद्ध होकर कपिल मुनि ने तमोगुण रूपी तरकस साधकर उन्हें भस्मीभूत कर दिया, और कहा कि तीसरी पीढ़ी मे उद्धार होगा (२४-३२)

(४) *भागीरथ की तपस्या और गंगावतरण* :—तीसरी पीढ़ी मे भागीरथ का जन्म हुआ जिसने वंश का उद्धार करने के लिए भिक्षावृत्ति पर निर्वाह करते हुए एकान्त स्थान मे गंगा का ध्यान किया। गंगा ने प्रसन्न होकर वरदान दिया कि हिमालय और शिव की आराधना करो-जो पृथ्वी पर पड़ती हुई मेरी अजस्त्र धारा को झेल सकें। इस पर माता की आज्ञा लेकर भागीरथ कैलाश पर्वत पर पहुँचा और वहाँ बारह वर्ष निराहार-निर्जल तपस्या की। इस कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने मस्तक झुकाकर चन्द्रभाल पर जटा के माध्यम से वेगवती गंगा की धारा को ग्रहण किया। (३३-४३)

(५) *सृष्टि-रचना* :—परम प्रभु शिव ने अपनी नाभि से कमल और कमल से ब्रह्मा को प्रकट किया तथा ब्रह्मा को अपने तुल्य बनाकर सृष्टि रचना के वरदान स्वरूप उसके सिर पर दोनों हाथ रखे। तब ब्रह्मा ने दक्ष को राजा रूप मे प्रगट किया और उसके द्वारा सृष्टि-रचना का कार्य आरम्भ हुआ। (४४-४६)

(६) *सती का जन्म और उसका सौन्दर्य वर्णन* :—पूर्वी देश मे अंबापुर नामक नगर में राजा दक्ष के यहाँ गर्भवास के पूरे दस महीने व्यतीत न होने पर भी एक दिन और दस पलों में ही सती का आविर्भाव हुआ। सती जन्म से ही बड़ी रूपवान थी और प्रहर-प्रहर में उसकी कांति बढ़ती जाती थी। एक ही पक्ष मे वह पूर्ण युवती बन गई। उसकी मुख-श्री के आगे बारह सूर्यों का प्रकाश मन्द था। उसकी पगथलियों पर अनेक रेखाएँ चित्रित थीं। चरणों में पहने आभूषण सर्प-मणियों की तरह झिलमिलाते थे। वह चतुर्भुजा देवी के रूप मे इस प्रकार सुशोभित होती थी मानों हिमालय पर्वत के शिखर पर वसन्त-ऋतु अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य के साथ फैल गई हो। (४७ से ७४)

(७) *सती के विवाह के लिए दक्ष का नारियल भेजना* :—यद्यपि दक्ष शिव को पागल समझता था और सती का सम्बन्ध उनके साथ नही करना चाहता था।

पर परिवार के लोगों की बात का निरादर न करने की भावना में पुत्री के स्नेह में पड़कर उसने अनिच्छापूर्वक प्रधानों के साथ नारियल भेजा। प्रधान मन में उत्साह और चाह भर कर कैलास पर्वत की ओर चले। कैलास पर्वत पर अठारह प्रकार के वृक्ष फल-भार से झुके हुए थे और विविध पक्षी ईश्वर का नाम उच्चारण कर रहे थे। इन पक्षियों ने प्रधानों से उनके आने का कारण पूछा और कहा कि इन वृक्षों के आगे एक कुंड है जहाँ अनेक देवता स्नान करने आते हैं उनसे ज्ञान के साथ वार्तालाप करने पर प्रसन्न होकर वे तुम्हें रथ पर चढ़ायेंगे और अन्तर्यामी प्रभु शिव पहले ही दिन दर्शन दे देंगे। पक्षियों से मार्ग-दर्शन पाकर प्रधान कैलास पर्वत पर पहुँचे जहाँ शिव समाधिस्थ थे। उनके पहुँचते ही बारह युगों के बाद शिव ने अपनी समाधि छोड़ी और प्रधानों ने उनके चारों ओर प्रदक्षिणा देकर नारियल भेंट किया जिसे शिव ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। (७५-११०)

(८) *विवाह की तैयारी, बरात का प्रयाण और स्वागत* :—शिव के प्रधानों के यह पूछने पर कि शिव किस दिन बरात लेकर आयेंगे दक्ष के प्रधानों ने दक्ष का सन्देश कह सुनाया कि प्रभु के लिए लग्नों का क्या पूछना ? वे तो कभी भी अम्बापुर पधार सकते हैं, उनके लिये तो आठों ही प्रहर शुभ लग्न मुहूर्त हैं। शिव के यहाँ विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ हुईं। चारों ओर कुंकुम पत्रिकाएँ भेजी गईं। सर्व प्रथम ब्रह्मा और विष्णु पधारे। इन्द्रादि देवता और अन्य अधिपति अपने सम्पूर्ण आडम्बर के साथ एकत्रित हुए। हाथियों का इतना समूह इकट्ठा हो गया कि उसके पदाघात एवं भार से सारी पृथ्वी थिरक उठी। शिव ने अनन्त द्रव्य का दान करते हुए नगाड़ों की गड़गड़ाहट के बीच दूल्हे का रूप धारण कर वृषभ की सवारी की। उनके दोनों ओर बादलों रूपी सेना त्वरित गति से चल रही थी और शरीर पर लिपटे हुए फणीश उमंग से फुत्कार कर रहे थे। बरातियों के अपार समूह को देख कर अगवानी करने के लिए बधाईदार आये। राजा दक्ष अपना परिग्रह लेकर पैमारे के लिए आगे बढ़ा। शिव ने मृगत्वचा धारण कर रखी थी। गले में मुण्डमाला और शरीर पर भस्म का लेप था। उनके इस विचित्र रूप को देखकर नगर-निवासी तरह तरह की टिप्पणियाँ कर रहे थे। कोई राजा दक्ष को उपालंभ दे रहा था, कोई कर्मों को दोषी ठहरा रहा था। शिव के साले की स्त्रियाँ तालियाँ बजा बजा कर हँस रही थीं और कह रही थीं कि 'वर तो बुड्ढा है और वधू बालिका है'। शिव की सास इन बातों को सुन-सुन कर विद्रोह प्रकट कर रही थी। सुन्दरियों ने मंगल कलशों की आरती उतार कर शिव को बधाया और मंगल-गीत गा-गाकर बरात का स्वागत किया। (१११-१३५)

(९) *सती का शृंगार करना* :—सती स्नानोपरान्त वस्त्राभूषण धारण करने लगी। पैरों में उसने चाहड़ पहना तो हाथों में चन्दबांही चूड़ा। नेत्रों में काजल

आंजा और लिलाट पर कुंकुम का तिलक दिया। हृदय पर आंवले के समान बड़े बड़े दाने वाले मोतियों का हार झूल रहा था तो कंठ में कंठ-सरी सुशोभित हो रही थी। (१३६-१४६)

(१०) *सती और शिव का विवाह* :—सती और शिव दोनों माया के आगे आकर बैठे। इसी समय राजा दक्ष के सामने जाकर माया बोली 'हे राजा तुम रूखे रूखे क्यों दिखते हो? परीक्षा करके देखो' तो सारा अन्तःपुर आश्चर्य मे डूब गया। विवाह-वेदिका बड़ी सुन्दर थी। स्वर्ण-कलशों के इक्कीस खण्ड बनाये गये थे और कुन्दन की रस्सी से बांस बांधे गये थे। शिव मृगत्वचा बिछा कर बैठे और वाम पार्श्व में बैठी सती। आगे आठ गण खड़े रहे। विवाह संस्कार संपन्न कराने के लिए ब्राह्मण बैठे। नवग्रह और दसों दिग्पाल विधानानुसार व्यवहार कर रहे थे। तपःपूत शिव ने अग्नि को साक्षीभूत बना कर सती के हाथ में अपना हाथ देकर उसे ग्रहण किया। विवाहोपरांत सभी डेरे पर आये। प्रथम मिलन के समय ही सती ने जान लिया कि स्वामी से उसका पूर्वजन्म का प्रेम सम्बन्ध है। सती की बात मान कर शिव ने अपना पूर्व प्रशंसित दूल्हे का रूप धारण कर लिया। दक्ष को उसके प्रधानों ने बहुत समझाया कि शिव अनाथों के नाथ हैं, वेद और कुराण के प्रणेता हैं पर अभिमानी दक्ष के मन मे कुछ भी समझ न आया और वह अपने दामाद शिव से मन-मुटाव कर बैठा। शिव ने इस रहस्य को जानकर भी किसी के आगे प्रगट नही किया। दस दिन तक दक्ष के यहाँ रह कर वे सकुशल कैलास लौट आये। कैलास पर वर-वधू को मोतियों से वधा कर आनन्दोत्सव मनाया गया जिससे देवता तक मुग्ध हो गये। (१४७-१६८)

(११) *दक्ष का यज्ञानुष्ठान* :—दक्ष ने एक यज्ञ रचा जिसमें संसार के कोने कोने से यज्ञ-विशेषज्ञ बुलाये गये। नाग-लोक, स्वर्गलोक और मृत्यु-लोक के अधिपति भी आमन्त्रित किये गये। ब्रह्मा और विष्णु ससम्मान बुलाये गये पर शिव को आमन्त्रण नही भेजा गया यह रहस्य भोले शिव ने जान लिया। (१६९-१७१)

(१२) *सती का आग्रह कर यज्ञ में जाना और भस्म होना* :—सती यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए शिव से आग्रह करने लगी। शिव ने तो यह कह कर टाल दिया कि बिना निमन्त्रण के दूसरों के घर कैसे जाया जा सकता है? पर सती उनकी बात न समझ कर यज्ञ की चिता की आहुति बन कर जाने का उपक्रम करने लगी। उधर यज्ञ में शिव की उपस्थिति न देख विष्णु, ब्रह्मादिक देवता यह कहते हुए उठ चले कि 'शिव के अभाव में यह यज्ञ पूर्ण नही होगा।' इस घटना से राजा दक्ष चिंतित हो उठा उसी समय नंदी-गण पर चढ़ी हुई, आठ गणों को आगे लेकर सती के आने की सूचना मिली।

दक्ष ने सती के लिए एक शब्द भी मुँह से नहीं निकाला न किसी प्रका का आदर दिया, उल्टे पीठ फेर कर बैठ गया। माता ने थोड़ा सा सम्मा किया। दक्ष द्वारा पति शिव की निन्दा सुनकर सती का हृदय ग्लानि औ पश्चाताप से भर गया। उसने निश्चय किया कि जहाँ मान और मन भं होता है वहाँ मर जाना अच्छा है। अपने गणों को उत्साहित कर अन्त सती ने यज्ञ की आग में अपनी आहुति देकर दूसरे यज्ञ की रचना करदी (१७२-१९०)

(१३) *गणों द्वारा दक्ष की सेना से युद्ध* :—सती के भस्म होने की घटना से ब्रह्मां और पाताल के सातों खण्ड एक साथ सशंकित हो उठे। सती के गण दक्ष-सेना से युद्ध करने लगे। चारों ओर रक्त बहने लगा। मस्तक गिर गिर कर पड़ने लगे। धड़ें लुढ़कने लगीं। वीर अप्सराओं के साथ नृत्य करने लगे। यों यज्ञ का विध्वंस करते हुए आठों गण पीछे सरके। (१९१–१९९)

(१४) *वीरभद्र की उत्पत्ति और यज्ञ-विध्वंस* :—इसी समय शिव ने सुना कि सती यज्ञ में भस्म हो गई और गण युद्ध से पीछे हट गये तो उनके क्रोध की सीमा न रही। उन्होंने ललकार कर प्रतिज्ञा की 'मैं यज्ञ को जड़ से उखाड़ दूँगा' और अपनी त्रिकूट जटा से पैदा किया महान यशस्वी योद्धा वीरभद्र को। वीरभद्र ने अपने पदाघात से पृथ्वी को सातवें पाताल में पैठा दिया। सारा ब्रह्मांड कांप उठा। दक्ष की सेना भाग खड़ी हुई पर वीरभद्र ने त्रिविध (अश्वारोही, गजारोही, पैदल) सेना को घेर लिया। शत्रुओं के मस्तक पर तलवारें खेल रहीं थीं और शत्रु–काय भांडे की तरह फूट–फूट कर गिर रहे थे। वीरभद्र ने क्रुद्ध होकर दक्ष का वेणीदंड पकड़ लिया और ललकारा युद्ध के लिये। दोनों युद्ध में जुट गये। लगातार शस्त्राघात से खून खच्चर मच गया। दोनों के शरीर खड्गधाराओं में झूम रहे थे। वीर योद्धा 'तथई–तथई' की आवाज करते हुए नाच रहे थे। योगिनियों के पात्र रक्त से पहले ही भरे जा चुके थे। ओझणियाँ शत्रुओं के गुदे खा रही थी। वीरभद्र ने अस्थिपंजरों का ढेर लगाकर पर्वत तुल्य दुर्ग बना दिया था। दक्ष के शरीर के टुकड़े टुकड़े कर उसकी उसी यज्ञ में आहुति देकर वीरभद्र ने एक तीसरे यज्ञ की रचना करदी। (२००–२२३)

(१५) *दक्ष को पुनर्जीवित करना* :—इस समाचार को सुनकर इंद्र, राजा, नागपति आदि जय जयकार करते हुए शिव से कहने लगे कि हे दयालु अब दया कीजिये। दक्ष को अपने कर्मों का फल मिल चुका। ब्रह्मा और विष्णु ने भी दक्ष के अपराध को क्षमा करने की प्रार्थना की। अन्ततः शिव ने दयार्द्र होकर बकरे का माथा लगाकर दक्ष को जीवित कर दिया। (२२४-२३१)

(१६) *पार्वती का जन्म और सौन्दर्य-वर्णन* :—हेमाचल-विनोद-क्रीड़ा करने के लिए अपने सम्पूर्ण अन्तःपुर के साथ कैलास-शिखर पर आया। उसकी पत्नी मेना भी उसके साथ आई। दोनों यहाँ बिना पानी के कमल को विकसित होते देखकर आश्चर्य मे डूब गये। वन्दना करके उसके पास गये तो वह कमल यकायक बालिका रूप में परिवर्तित हो गया। मेना ने उसे छाती से लगा लिया और अपने घर ले आई। घर आकर खूब उत्सवादि मनाये। कभी बालिका को पालने मे झुलाया तो कभी गोद में दुलराया, कभी प्रेमपूर्वक स्तन-पान कराया तो कभी सखियों को एकत्र कर उसका जी बहलाया।

बालिका का शरीर समुद्र की तरह बढ़ने लगा। एक ही दिन में पूरे वर्ष का विकास होने लगा। बारह दिनों मे ही वह बारह वर्ष की युवती हो गई। नेत्रों मे चंचलता आ गई और गति में मस्ती। ब्रह्मा का ज्ञान भी उसकी सुन्दरता के आगे पराजित हो गया। वह ब्रह्मा के द्वारा निर्मित नहीं थी वरन् महासमुद्र को मथकर निकाली गई थी। उस पार्वती ने अपनी सौन्दर्य-गरिमा से रूप की मर्यादा बाँध दी थी। (२३२-२४५)

(१७) *पार्वती की विवाह चर्चा* :—नाट्य चरित करते हुए नारद हिमालय के यहाँ मेहमान बनकर आये। हिमालय ने आतिथ्य सत्कार कर पार्वती के लिये वर मांगा। इस पर नारद ने कहा 'शिव-पार्वती की जोड़ी युग युगों तक अचल रहेगी'। (२४६-२५०)

(१८) *पार्वती का शिव-पूजा करना* :—शिव-प्राप्ति के लिये पार्वती फूलों से छाब भरकर शिविकारूढ़ हो शिव-पूजन के लिये चली। विधिवत् पुष्प-जल-धूप आदि से उनकी आराधना कर वह ध्यानस्थ हो गई। लगातार ६ माह तक पार्वती शिव की कठोर सेवा करती रही पर शिव क्षण भर के लिए भी समाधि से विचलित नही हुए। (२५१-२५३)

(१९) *तारकासुर का उत्पात मचाना और देवताओं का विचलित होना* :—इसी बीच ब्रह्मा के वरदान से ताड़कासुर ने उत्पात मचाकर सभी देवताओं को परेशान कर दिया। इंद्र ने जाकर ब्रह्मा से इस बात का निवेदन किया। ब्रह्मा ने कहा यह दैत्य किसी के हाथ से नहीं मर सकता। इसे नष्ट करने का बल शिव-पार्वती के संयोग से उत्पन्न पुत्र के हाथों में ही निहित है। (२५४-२५७)

(२०) *शिव द्वारा कामदेव का भस्म होना* :—शिव-पार्वती के विवाह के लिये शिव में कामोत्तेजना भर उन्हे समाधि से विचलित करने का दायित्व कामदेव को सौंपा गया। वह बसन्त में वृक्षों के सिर पर अंकुरित सैंकड़ों नव मंजरियों को चंचल बाण बनाकर अपने धनुष पर चढ़ाता तथा विनोद प्रदर्शित

करता हुआ शिव के समीप उपस्थित हुआ। पार्वती पहले ही उनमें उत्तेजन भर चुकी थी। अतः कामदेव को आते देख उन्होंने अपनी कोप दृष्टि से उसे जलाकर भस्म कर दिया। शिव की समाधि भंग हो गई और वे कैलाश पर्वत पर चले आये। कामदेव की पत्नी रति को विलाप करते देखकर पार्वती ने आश्वस्त किया और कहा 'तेरा पति कृष्ण पुत्र प्रद्युम्न के रूप में उत्पन्न होगा। (२५८–२६१)

(२१) *पार्वती का तपस्या करना* :—शिव-मिलन की आकाशवाणी से उत्साहित होकर पार्वती माता-पिता को बिना पूछे ही विजया और जया नाम की सहेलियों को साथ लेकर एकान्त तप करने के लिए सघन वन में चल पड़ी। वहाँ गुफा के बीच धूणी लगाई। सखियों ने बार बार फलादि लाकर दिये पर उसने नहीं ग्रहण किये। ईश्वर और पवन के आधार पर ही वह अहर्निश तपस्या में लीन थी। अखण्ड तप करते हुए ६ मास व्यतीत हो गये। इस बीच उसके मुँह से शिव-शिव ही निकलता रहा। (२६२-२६६)

(२२) *शिव द्वारा पार्वती की परीक्षा लेना* :—एक दिन पार्वती की तपस्थली में एक वृद्ध ब्राह्मण-याचक आया जिसके लम्बी लम्बी डाढ़ी थी, हाथ में लकड़ी थी, शरीर काँप रहा था और गले में जनेऊ पड़ी थी। उसने पार्वती से कठोर तपस्या का कारण पूछा। सखियों से शिव-प्रेम की बात सुनकर उसने पार्वती को पागल बतलाते हुए कहा कि वह जिस शिव के लिये इतनी तड़प रही है वह दो तीन धोबे धतूरे खाता है, शरीर पर भस्म चढ़ाता है, नशीली वस्तुओं का सेवन करता है और निवास करता है गिरि–कन्दराओं में। उस बावाज ब्राह्मण से अपने प्रिय शिव की निंदा सुनकर पार्वती को अत्यधिक क्रोध आया वह वहाँ से उठकर चलने लगी तभी प्रभु शिव ने हँसकर उसका हाथ पकड़ लिया और सप्रेम कहा कि 'हे पार्वती तूने मुझे अपनी तपस्या से वश में कर लिया है।' (२६७–२७२)

(२३) *शिव-पार्वती विवाह की तैयारियाँ* :—पार्वती के विधिवत् विवाह करने के निवेदन पर शिव ने मंगनी के लिये सप्तऋषियों को हिमालय के घर भेजा। हिमालय ने इनका भावभरा स्वागत कर लग्न तय कर दिये। निश्चित समय पर शिव ने अपनी बरात सजाई। उनकी बरात में तीनों लोकों के बड़े–बड़े अधिपति सम्मिलित हुए। बरात के चलने से इतनी धूल उड़ी कि आकाश छा गया और नगाड़ों की गड़गड़ाहट में मेघ–गर्जन का भ्रम कर सिंह चकित हो उसी ओर झपटने को उद्यत हुए। हिमालय ने सबका हार्दिक स्वागत किया। शिव ने स्नानोपरान्त वस्त्राभूषण पहन दूल्हे का रूप धारण किया। तोरण बाँधने के लिये वे वृषभ पर चढ़े। वृषभ के चारों ओर घूघरे बज रहे थे। उसकी काठी जड़ाव जटित मखमल की

थी। पुट्ठों पर रत्नों की पाखर पड़ी थी। सूर्य के घोड़े उसके आगे आगे कोतल के रूप में चल रहे थे। वह वेल सवार होते ही पाँच योजन धनुष पृथ्वी को पार करने लगा। (२७४-३१०)

(२४) *शिव के सौन्दर्य पर स्त्रियों का मुग्ध होना* :—झरोखों पर चढ़कर स्त्रियाँ जगह जगह जालो से सिर निकाल कर शिव को देखती थीं। वे अपना अन्य काम काज छोड़कर दौड़ पड़ती थीं। एक स्त्री महावर लगे पैरों से ही दौड़ पड़ी जिससे सारा रायांगण चित्रित हो गया तो दूसरी स्त्री पति से बाह छुड़ा अस्त व्यस्त अवस्था मे ही छत पर चढ़ गई। देवताओं की स्त्रियाँ तो इतनी व्यग्र होकर दौड़ीं कि उनके छनछनाते हुए आभूषण छूट गये। कमर-स्थित मेखला—जो हाथों से सँभाली हुई थी—कब गिर पड़ी प्रेमोन्माद में पता ही नहीं चला। ऐसे दिव्य रूपाभ वाले शिव की हिमालय की पत्नी मेना ने आरती उतारी और कुंकुम का तिलक कर अक्षत चढ़ाये। (३११-३२५)

(२५) *पार्वती का शृंगार करना* :—पार्वती के स्नान करने पर उसके निर्मल कमल मुख की कला, नगों के हार तथा प्रेम रूपी रत्न के शरीर मे उत्पन्न होने से संसार मे प्रकाश फैल गया। उसने वेणी गूंथी, देवांगनाओं तुल्य वस्त्राभूषण-धारण किये। पैरों मे पायल पहनी और अंगुलियों मे बिछिया। हाथों में चूड़ा और कांकड़ तो नाक मे नथ। उसकी चूनड़ी की झांई चारों ओर रंग चुआ रही थी। भौंहों के बीच मांगलिक तिलक और गले मे सोने का चौसर हार भूले खा रहा था। (३२६-३४२)

(२६) *शिव-पार्वती का पाणिग्रहण संस्कार* :—शिव-पार्वती दोनों माया के आगे आकर बैठे। मंडप के चारों ओर मांडणे मांडे गये। नीले बांस और नीलम जटित कलश सजाये गये। आगमज्ञाता ब्राह्मण ने लग्नाचार शुरू कर फेरे दिलवाये। इस अवसर पर इंद्र चंवर ढोल रहा था, ब्रह्मा धन खर्च कर रहे थे और अप्सराएँ गीत गा रही थीं। ब्रह्मा, विष्णु और देवताओं की प्रार्थना पर शिव ने कामदेव को सजीव करने का आदेश दिया। पन्द्रह दिनों तक हिमालय ने विविध प्रकार से शिव के प्रति भक्ति भावना प्रदर्शित की। अनन्त द्रव्य का दान करते हुए शिव पार्वती सहित शिवपुरी में प्रविष्ट हुए। (३४३-३५६)

(२७) *शिव का पुत्रवान होना* :—समय पाकर शिव के घर पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। देवताओं ने एकत्र होकर आनन्दोत्सव मनाया और दुआ दो कि यह पुत्र असुरों का नाश करेगा। ब्रह्मा ने पुत्र का नाम कार्तिकेय रखा। पुत्र-जन्म मे दैत्यराज ताड़कासुर का सिंहासन काँप उठा। उसने जान लिया कि किसी के घर पर कोई बड़ा सिद्ध पुरुष प्रकट हुआ है। (३६०-३६१)

(२८) *ताड़कासुर का आतंक* :—इंद्र ने यज्ञ रचकर शिव को पार्वती सहित उसमें निमंत्रित किया। अन्य देवतादि भी एकत्र हुए। तैंतीस करोड़ देवताओं में से केवल आधे ही उपस्थित थे। शिव ने इसका कारण जानना चाहा। देवताओं ने बतलाया कि ताड़कासुर ने बड़ा आतंक फैला रखा है। दैत्य और देवता उसकी प्रजा होकर रह रहे हैं। उन्हें बिना उसकी आज्ञा के कहीं आने जाने की स्वतन्त्रता नहीं है। इस संवाद को सुनकर शिव ने अपना पिनाक उठा लिया। ब्रह्मा ने कहा कि यदि आपका पुत्र कार्तिक स्वामी देवताओं का सेनापति बनकर युद्ध करे तो उसका नाश हो सकता है। शिव ने पार्वती की सहमति लेकर पुत्र को युद्ध करने की आज्ञा दे दी। (३६२-३७०)

(२९) *सुर-असुर-युद्ध* :—कार्तिकेय ने रणभेरी बजाई। दैत्यों का देश दहल उठा। देव-सेना के आ पहुँचने पर युद्ध आरंभ होगया। दैत्य और देवता एक दूसरे पर तलवारों का प्रहार करने लगे। दैत्यराज ताड़कासुर गाल बजाता हुआ अपने समान आकाशस्पर्शी लाखों वीरों को साथ लिए हाथियों को धकेलता हुआ, पहाड़ों को ठेलता हुआ सामने आया। कार्तिकेय ने धनुष उठाकर उसका अन्त कर दिया। जो दैत्य सामने आये वे नष्ट कर दिये गये और जो शरण में आये वे बचे रह गये। असुरों के आतंक से देवताओं को मुक्ति मिल गई। सर्वत्र जीत के नगाड़े बजा बजाकर आनन्दोत्सव मनाया गया। (३७१-३८१)

(३०) *उपसंहार* :—किशना कवि कहता है कि हे रामेश्वर शिव! आप राजाओं के राजा, बड़े दातार, शोभा बढ़ाने वाले निराकार ब्रह्म हैं। मुझ पर कृपा करें। (३८१-३८२)

कवि ने पृथ्वीराज कृत 'क्रिसन रुकमणी री वेलि' से प्रभावित होकर इस वेलि की रचना की है। काव्य की कथा का आधार मुख्य रूप से 'शिव पुराण' रहा है। 'कुमार संभव' का आंशिक प्रभाव उत्तरार्द्ध में देखा जा सकता है। प्रधान कथा शिव-पार्वती से ही संबंधित है। पार्वती की कथा में सती की कथा को समुचित स्थान दिया है। वही कथा का पूर्वार्द्ध भाग है। कालिदास ने 'कुमार संभव' में सती-प्रसंग को नहीं उठाया है जबकि प्रस्तुत वेलिकार ने इस प्रसंग का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। प्रासंगिक-कथाओं में राजा सगर के अश्वमेध यज्ञ की कथा, कपिल मुनि की कथा, भागीरथ और गंगावतरण की कथा, दक्ष और उनके यज्ञानुष्ठान की कथा, तारकासुर की कथा आदि का समावेश किया जा सकता है। ये विभिन्न कथाएँ मुख्य कथा को किसी न किसी रूप में सहायता पहुँचाती हैं। सती को पार्वती का ही पूर्व रूप समझने के कारण दक्ष और उसके यज्ञ की कथा का औचित्य तो सिद्ध हो सकता है पर राजा सगर और भागीरथ की कथा का मुख्य-कथा से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। कथानक का धरातल तो बहुत

व्यापक हो गया है पर कवि आगे चलकर उसे सँभाल नहीं पाया है। कथा-प्रसंग एक के बाद एक छूटता चला जाता है।

वेलि का उठान महाकाव्योचित गरिमा को लेकर हुआ है। प्रारम्भ में मंगलाचरण[1] करते हुए शिव की महिमा[2] का विशद वर्णन किया गया है। कवि की दृष्टि शिव के अलौकिक व्यक्तित्व पर विशेष रही है पर लौकिक व्यक्तित्व भी जगह जगह प्रगट हुआ है। जहाँ वे अप्रगट हैं वहाँ ईश्वर हैं और जहाँ प्रगट हैं वहाँ लौकिक पुरुष।

काव्य की कथा के दो भाग स्पष्ट है। पूर्वार्द्ध[3] में सती-विवाह तक की कथा और उत्तरार्द्ध[4] मे पार्वती-विवाह तथा ताड़कासुर-दमन की कथा का समावेश किया जा सकता है। दक्ष का यज्ञानुष्ठान वह कड़ी[5] है जो पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की कथा को सफलतापूर्वक जोड़कर प्रबन्ध-निर्वाह और तारतम्य बनाये रखती है।

कवि ने शिव के दो विवाह कराये हैं। एक सती के साथ और दूसरा पार्वती के साथ। वेलि का उद्देश्य भी इन विवाहों के माध्यम से शिव-शक्ति के गुणों का वर्णन करना रहा है। दोनों विवाह-प्रसंग अपने आप में पूर्ण हैं, अतः कार्यावस्थाओं की स्थिति भी दोनों मे पृथक-पृथक देखी जा सकती है। सती-विवाह का 'आरंभ' दक्ष के नारियल भेजने मे निहित है। 'प्रयत्नावस्था' बाधक-साधक तत्वों के झूले में झूलती हुई घटती-बढ़ती है।

बाधक तत्व दो रूपों में सामने आते हैं—

(१) दक्ष का नारियल भेजते समय विरोध करना और बाद में शिव से मनमुटाव रखना[6]।

१—नमस्कारात्मक :

परमेसर सरसति परम गुरु, करा प्रणांम सजोड़ि कर।

आशीर्वादात्मक :

दीन दयाल दया दाखीजइ, हेत घणइ गाइजइ हरि ॥१॥

वस्तु निर्देशात्मक :

सिव सकती तणी ताइ वेलि वर्णविमु, सफल जनम करिवा संसार।

बावन अख्यर तणी ऊडबाधी, वसुवा अचल हुवउ विस्तार ॥२॥

२—छंद संख्या ३ से २३

३—छंद संख्या १ से १६८

४—२३२ से ३८२

५—१६६ से २३१

६—७८-७६

(२) नगर की स्त्रियों द्वारा शिव के रूप-वैभव का परिहास करना[1]।

साधक तत्व भी दो रूपों में सामने आते हैं—

(१) कैलास पर्वत के पक्षियों द्वारा पथिकों को शिव-मिलन का उपाय बतलाना[2]।
(२) देवताओं का रथ में बिठाकर उन्हें शिव के पास पहुँचाना[3]।

और जब शिव नारियल ग्रहण कर लेते हैं[4]–तब 'प्राप्त्याशा' की स्थिति बनती है। अब भी दक्ष के व्यवहार को देखते हुए कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता पर जब स्वयं माया बोलकर[5] सन्देह दूर कर देती है तब 'नियताप्ति' निश्चित हो जाती है। अन्त में विवाह, सती की विनती पर शिव के पूर्व प्रशंसित रूप-धारण और शिवपुरी में आनन्दोत्सव के साथ 'फलागम' की सिद्धि होती है[6]।

उत्तरार्द्ध कथा का उद्देश्य शिव-पार्वती के संयोग से उत्पन्न पुत्र द्वारा दैत्यराज ताड़कासुर के आतंक का शमन कर देवताओं को मुक्ति दिलाना है। शिव समाधिस्थ हैं अतः सारा प्रयत्न इस बात के लिए होता है कि वे किसी तरह पार्वती पर अनुरक्त हों। यहाँ नारद द्वारा हिमालय को पार्वती के वर के लिये शिव का संकेत[7] 'आरंभ' है। 'प्रयत्नावस्था' के दो स्वरूप हैं। पार्वती द्वारा प्रयत्न और इंद्रादि देवताओं द्वारा प्रयत्न। पार्वती द्वारा दो प्रकार का प्रयत्न होता है–

(१) उत्साहित होकर शिव–पूजा के लिये प्रस्थान करना[8]।
(२) ६ मास तक शिव की कठोर सेवा करना[9]।

इस पर भी जब शिव समाधि से विचलित नहीं होते तो इंद्रादि देवताओं द्वारा दो प्रकार का प्रयत्न होता है–

(१) इंद्रादि देवताओं का ब्रह्मा के पास जाकर ताड़कासुर के आतंक से मुक्ति का उपाय पूछना और ब्रह्मा का शिव–पार्वती–विवाह का परामर्श देना[10]।

१—महादेव पार्वती री वेलि : छंद संख्या १२४-१२८
२—वही : ९२-९५
३—वही : ९६-९७
४—वही : १०८-१०९
५—वही : १४८
६—छंद संख्या : १५४, १५८, १५९, १६०, १६८
७—वही : २४६-२५०
८—वही : २५१
९—वही : २५२-२५३
१०—वही : २५८-५९

(२) शिव को समाधि से विचलित कर पार्वती की ओर अनुरक्त करने के लिये काम का अपने मित्र वसन्त के साथ प्रयत्न करना[1]।

यहाँ भी सफलता नहीं मिलती। कामदेव भस्म कर दिया जाता है[2] पर जब आकाशवाणी[3] को सुनकर पार्वती एक बार फिर तपस्या करने को उद्यत होती है तो 'प्राप्त्याशा' की स्थिति बनती दिखाई देती है। शिव के वृद्ध ब्राह्मण-याचक के रूप मे पार्वती की परीक्षा लेने पर[4] 'नियताप्ति' निश्चित हो जाती है। अन्त में विधिवत विवाह, पुत्र जन्म, ताड़कासुर के दमन और देवताओं के जय-जयकार के साथ 'फलागम' की सिद्धि होती है[5]।

काव्य का वातावरण अलौकिक घटनाओं और संकेतों से भरपूर है। यह अलौकिकता दो रूपों में व्यक्त हुई है घटनात्मत और पात्रात्मक। घटनात्मक अलौकिकता के पांच स्थल है। पहला स्थल कैलास पर्वत का है जहाँ के कुण्डों में भरे जल का पान करने से सारे ब्रह्मांड की बातें ज्ञात होने लगती हैं[6]। दूसरा स्थल सती और शिव के विवाह के समय का है जब माया साक्षात दक्ष के सामने आकर बोलती है[7]। तीसरा स्थल वह है जब शिवजी ने अपनी त्रिकूट जटा से वीरभद्र को पैदा किया[8]। चौथा स्थल उस समय का है जब ब्रह्मा, विष्णु आदि देवताओं के प्रार्थना करने पर शिव बकरे का माथा लगाकर दक्ष को पुनर्जीवित कर देते हैं[9] और पाँचवा स्थल वह है जब आकाशवाणी होती है कि भोला चक्रवर्ती शिव आप स्वयं तप रहा है और तप करने से वह पार्वती को शीघ्र ही मिलेगा[10]।

१—वही : २५८–५९

२—वही : २६०

३—वही : २६२–६६

४—वही : २६७–२७५

५—वही–३४३–३८२

६—अमृत सहित ईख रस माखां, भरिया कुंड तणइ तइ मात।
उण-मोह इसो मो भावरतां, ब्रह्मंड तणी जाणि जुइ वात ॥६४॥

७—दिख राजा मागलि जाइ दाखियउ, राज परीछउ काइ रख।
अचरिज सहु रहियउ अंतेउरि, माया जरइं बोलिया मुख ॥१४८॥

८—मरियाम जिको विकराल वडालइ, हदव हद हद करण हद।
तीजो जटा काढियउ ताहरि, भड ताइ सुजसउ वीरभद ॥१०५॥

जाला नल जले न मरइ मारियो, पणिब दीन्हउ खडग सिध ॥१०८॥

९—मापउ छइ लइ तणउ माढियउ, की प्रगट जे हुंती काय।
दीन्हउ राजा नवले दिखनुं, दह नामी ताइ करे दयाल ॥२२७॥

१०—वाणी हम आकाश प वाणी, उमोली चक्रवर्ती भूवाल।
आउ तपइ रइ जो ईस्वर, तप करिस्युं मिलसी ततकाल ॥२६२॥

पात्रात्मक अलौकिकता के दो रूप हैं। मानव पात्रों में अलौकिकता और मानवेतर पात्रों में अलौकिकता। मानव पात्रों में शिव, सती, पार्वती, और कैलास पर्वत की स्त्रियों के नाम गिनाये जा सकते हैं तो मानवेतर पात्रों में कैलास पर्वत स्थित पक्षियों और शिव-वाहन वृषभ के। शिव के व्यक्तित्व और कृतित्व में अलौकिक तत्व भरे पड़े हैं[1]। वे ज्योति स्वरूप होते हुए भी संसार में अलोप हैं। किसी स्त्री ने न उन्हें रमाया है न दूध पिलाया है। न उनके कोई माता है न पिता। उनके दर्शन मात्र से ही स्वर्ग–सुख प्राप्त हो जाता है। सती गर्भवास को पूरे दस माह न होने पर भी एक दिन और दस पलों में जन्म ले लेती है[2]। प्रहर–प्रहर में बदलती हुई उसकी कांति एक पखवाड़े में ही उसे पूर्ण युवती बना देती है[3]। पार्वती का जन्म एक जल रहित कमल पुष्प से बतलाया गया है[4] और वह अपने माता पिता को तब प्राप्त होती है जब वे संपूर्ण अन्तःपुर के साथ विनोद क्रीड़ा के लिये कैलास–शिखर पर जाते हैं। कैलास पर्वत की स्त्रियों का व्यक्तित्व तो अलौकिक है ज्योंही वे जल से सनी हुई रेणु को अपने हाथ में लेती हैं त्योंही वह कुंभ के रूप में बदल जाती है[5]।

मानवेतर पात्र भी अलौकिक आभा से दीप्तमान हैं। कैलास पर्वत के पक्षी मानव–वाणी में ईश्वर का नाम उच्चरित करते हैं और बतलाते हैं पथिकों को ईश्वर दर्शन करने का उपाय[6]। शिव का वाहन वृषभ भी साधारण नहीं है। वह शिव के सवार होते ही पाँच योजन धनुष पृथ्वी को पार करने वाला है[7]।

१—आखइ तो पिता नही ईसर, पणइ अनेरी तूझ धरि।
रमाडियउ न रंग भरि रामा, घवराडियउ न गोद धरि ॥७॥

२—गर्भवास नही दस मास तणइ गर्भ, वात अचंभज उलहइ विचार।
एकण दिन दस पल अंतरइ, गउरी तणउ हूयउ अवतार ॥४६॥

३—पख एकण विचइ हुई वर प्रापत, राजकुमार अनोपम राज ॥५४॥

४—गिरवर रइ सिखर माडियउ गाहड, तिको अचरिज पेखियउ तिण।
सोचहूउ मन माहि संपेजै, वध कमल किम वार विण ॥२३३॥
किया प्रणाम जोड़े वेऊं कर, तिण नइडउ आवियउ तरइ।
बालक देखे लीयउ बोलाए, कामिण आप उछाह करइ ॥२३४॥

५—मुंठी भरि सती रेणु जल साम्ही, आपणपउ दाखइ अधिकार।
कुंभ हुवइ ततकाल कहंता, सो पाणी ल्यावै पणिहार ॥१०३॥

६—पंखि मुखि हरिनांम प्रणंता, सुरताय मानव तणै सुहाय ॥८३॥
वहिलउ दरसण हुवइ विसुंभर, असढ घ कहि पंखी ऊपाव ॥६२॥

७—आगलिरय सिणगार आणीयउ, तिण वेला जोवतां तयार।
जोजन पाच धनुख सिर धरतइ, वसुधा देखण तणइ विचार ॥३०६॥

काव्य निर्णय (पोइटिक जस्टिस) की ओर भी कवि की दृष्टि रही है। दुष्ट पात्रों को अपनी करनी का फल मिलता दिखाई देता है। दक्ष का अभिमान उसे नष्ट कर देता है, सती का पति की आज्ञा न मान-कर यज्ञ मे सम्मिलित होना न केवल उसके अपमान का कारण बनता है बल्कि उसको भस्म होने के लिए तक विवश कर देता है। ताड़कासुर को अन्त में अपने अन्याय और अत्याचार का फल मिल ही जाता है। कामदेव को भी कामोत्तेजना उत्पन्न करने का समुचित दण्ड मिलता है। पर भारतीय दर्शन संस्कार और हृदय-परिवर्तन मे विश्वास करता है-अतः कवि ने दुष्ट पात्रों के हृदय को पश्चाताप की आग मे तपा कर निखार दिया है। दक्ष और काम को पुनर्जीवित करना तथा सती को फिर पार्वती रूप में शिव का ग्रहण करना इसी सत्य के प्रतीक है। भले पात्र अपनी भलाई का समुचित फल पाते हैं। भागीरथ तपस्या के बल पर गंगा को धरती पर ले ही आता है और पार्वती अपने अखण्ड तप तथा अनवरत सेवा-भाव से शिव को प्रणय-पाश में बाध ही लेती है।

कथा-संयोजन में कवि ने निम्नलिखित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया है—

(१) नायिका का असाधारण-अलौकिक होना और क्षण क्षण में उसके सौन्दर्य का बदलना।

(२) नायिका का जल-रहित-कमल से यकायक बालिका रूप मे पैदा होना और माता-पिता को पर्वत-शिखर पर क्रीड़ा करते समय मिलना।

(३) नायिका का वर-विशेष से विवाह करने में परिवार के समस्त सदस्यों का सहमत होना पर भाई या पिता का विरोध-अनिच्छा-प्रकट करना।

(४) विवाह-सिद्धि में देवताओं तथा पक्षिओं का सहायता करना।

(५) पक्षियों का मानव-वाणी मे बोलना और रस्योद्घाटन करना।

(६) कुंड विशेष के पानी पीने से समस्त ब्रह्मांड की बात का समझना।

(७) स्त्रियों के सतीत्व प्रभाव से जलपूर्ण-रेत का घड़ा बन जाना।

(८) नायिका का नायक से पूर्व जन्म का स्नेह-संबंध होना।

(९) नायिका का नायक से मिलने के लिये शिव-पूजा करना और निराहार रहकर ६ मास तक तपस्या करना।

(१०) नायक का वृद्ध ब्राह्मण-याचक के रूप में नायिका की परीक्षा करना।

(११) बकरे का माथा लगाकर मृत व्यक्ति को जीवित करना।

(१२) राक्षसों का उत्पात मचाना और देवताओं का तंग आकर ब्रह्मा के पास जाना।

(१३) ब्रह्मा द्वारा नायक-नायिका के संयोग से उत्पन्न पुत्र द्वारा कार्य-सिद्धि होने का आश्वासन देना।

(१४) नायक-नायिका को आपस में मिलाने का प्रयत्न करना, आदि।

चरित्र-चित्रण :

वेलि में वर्णनों की प्रधानता है। चरित्र-चित्रण इन्हीं के माध्यम से हुआ है। प्रमुख पात्रों में शिव, सती, पार्वती, दक्ष, हिमालय आदि के नाम गिनाये जा सकते हैं। अन्य पात्रों में ब्रह्मा, इंद्र, मेना, नारद, कामदेव, ताड़कासुर, वीरभद्र, कार्तिकेय, सप्तऋषि, जया-विजयादि सखियाँ, सगर के ६० हजार पुत्र, कपिल मुनि, नगर के नागरिक आदि हैं। मानवेतर पात्रों में कैलाश पर्वत के पक्षी और शिव-वाहन वृषभ आते हैं। पात्रों की तीनों कोटियाँ हैं। अधिकांश पात्र सुर कोटि के हैं यथा-शिव, ब्रह्मा, नारद, कपिल, इंद्र आदि। असुर कोटि के पात्रों में ताड़कासुर और दक्ष रखे जा सकते हैं।

मानव-कोटि में हिमालय, मेना, सखियाँ, नागरिक आदि आते हैं। दक्ष और सती को छोड़कर शेष सभी पात्र स्थितिशील हैं।

शिव :

शिव काव्य के नायक और प्रमुख-पात्र हैं। वे आदि से अन्त तक संपूर्ण-पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध-कथा में छाये हुए हैं। कवि ने उनको परब्रह्म और मानव दोनों रूपों में देखा है। परब्रह्म रूप में वे सगुण भी हैं और निर्गुण भी। उनका सगुण रूप विराट और व्यापक है। एक एक रोम पर अनन्त करोड़ ब्रह्माण्डों की सृष्टि उसने की है। सातों समुद्र उसकी प्रदक्षिणा करते हैं और आकाश वैभव की पताका के रूप में लहराता है[1]। तारों की करधनी बंधी है तो मानसरोवर की तरह शीतल हृदय है[2]। कंठ में सींगी और वासुकि सुशोभित है तो वाहन के रूप में वृषभ का वैभव। निर्गुण रूप में वे अयोनि-अनादि हैं। न उनके माता है न पता, न वे कुलीन हैं न अकुलीन, न वे उत्पन्न होते हैं न नष्ट, न कहीं से आते हैं न कहीं जाते है[3]।

१—एकोकई रोम ऊपरह ईसर, मांडिया कोट उनत वृहमंड।
सायर सात दीपइ परदक्षिण, डंबर चा अंबर धजमंड ॥१२॥

२—उडोयाणी कसी मेखली उपरि, काख अंधारी डंड कर।
भल दीसइ फाविक्उ विसंभर, सिहरां हायउ मांनसरि ॥१४॥

३—उतपति कुण लहइ तो इसर, ए मानवियां हुवइ अचंत्र।
आद अनाद तणइ तूं आछइ, संभव नाथ नीसरइ संत्र ॥८॥
तू उपजइ न खपइ न हूं आदम, कुल न कहइ कहीयइ उकलीण।
भीनउ नाद बिनोद महा भडि, वृख भर चडइ तइ बावइ वीण ॥९॥

मानव रूप मे वे उदार, दानी, हितैषी और प्रेमी हैं। प्रलयकाल में सबकी रक्षा करने के साथ साथ लोकाचार में सबको मुग्ध करने वाले हैं। दक्ष के प्रधानों का ससम्मान स्वागत करते हैं। पार्वती के कहने पर विधिवत् बरात सजाकर विवाह-लीला रचते हैं। विवाह के मांगलिक प्रसंग पर अनन्त द्रव्य का दान करते हैं।

शिव आदर्श प्रेमी हैं। उनमें रूप और तपस्या के तेज का अद्भुत मिश्रण है। लगता है तप का तेज ही रूप बनकर उनकी रग-रग में रम गया है। वे लौकिक पुरुष की तरह सती और पार्वती के साथ विवाह रचकर अपनी प्रेम-भावना प्रगट करते हैं। उनका प्रेम रूपासक्ति मात्र नहीं है वह तप की ज्वाला में जलकर निखर उठने वाला हृदय का शुद्ध सात्विक नवनीत है। प्रेमी और प्रेमिका दोनों पहले तपस्वी हैं फिर प्रेमी। पार्वती पति के प्रेम की प्राप्ति के लिये अखण्ड तपस्या करती है तो शिव प्रेम से प्रभावित होते हैं पर कामदेव को भस्मीभूत कर। उनके प्रेम के साथ काम की वासना का मेल नहीं है। यह पुत्रोत्पत्ति के लिये ही जन्म लेता है और विकसित होता है अपने स्वार्थ के लिए नहीं बल्कि देवताओं की मुक्ति के लिये। शिव पार्वती को भोगिनी रूप मे नहीं बल्कि जीवनसंगिनी और सहधर्मिणी के रूप में अपनाते हैं। तभी तो पुत्र कार्तिकेय को देव सेना के सेनापति बनाकर भेजने के पूर्व वे पार्वती से राय पूछते है और पार्वती अपना अहोभाग्य मानती हुई सहर्ष स्वीकृति प्रदान कर देती है[१]।

शिव पार्वती को यों ही ग्रहण नहीं कर लेते, वे पहले वृद्ध ब्राह्मण-याचक का रूप बनाकर उसकी कठोर परीक्षा लेते है[२]। वे कहते हैं जिसकी प्राप्ति के लिये यह तपस्या कर रही है वह शिव दो तीन धोबे धतूरे खाता है, शरीर पर भस्म चढ़ाता है, नशीली वस्तुओं का सेवन करता है और रहता है गिरी कन्दराओं मे[३]। शिव की ऐसी निंदा सुनकर जब पार्वती वहां से उठकर चलने लगती है तो वे स्वयं प्रगट होकर उसका हाथ पकड़ लेते हैं[४]।

शिव स्वाभिमानी हैं। दक्ष के यज्ञानुष्ठान मे जब सती बिना निमंत्रण के ही सम्मिलित होने का आग्रह करती है तो उनका आत्म सम्मान बरबस फूट पड़ता

१—आहवइ सकति पूछीया ईसर, मेल्ही सकुंवर लियण ताइ माज।
एकण देव ऊपरइ इतरा, आखइ सती धन च दिन आज ।।३७०।।

२—लाबी दाढी, हाथ लाकड़ी, धड वाजइ जू-जुवा संधाण।
प्रवत्र जनोइ गलइ गलइ पहरतइ,आयउ विप्र जाचण आपाण ।।२६७।।

३—धोबा बितिनि खाय धतूरउ, चाढइ भसम ऊखधि चाढि।
वासउ गिरे कंदरे वासइ, तां गहिलां सरिस न कीजइ वात ।।२७१।।

४—चीत वीयउ इसउ ऊठिनइ चालो, हसि झालीयउ तरइ प्रभु हाथ।
बनिता तप वस कीया ईस्वर, निज आखीयउ अनाथा नाथ ।।२७२।।

है 'विण तेडिया परायइ वासइ, मोटा किम जायइ महंत' ॥१७४॥ और स्पष्ट घोषणा कर देते है 'जगन न होवइ' चाहे 'कितरा ही कोड प्रकार करइ'। दक्ष का मिथ्या दंभ शिव को अखरने लगता है और क्रोध में आकर वे अपनी त्रिकुट जटा से वीरभद्र को पैदा करते हैं जो दक्ष-यज्ञ का विध्वंस कर देता है। क्रोध-भावना के साथ साथ उनमें करुणा भी है, इसी से प्रेरित होकर वे दक्ष को पुनर्जीवित और कामदेव को सजीव बना देते हैं।

कवि की मूल भावना शिव को ईश्वर रूप में ही प्रगट करने को रही है। कुछ तो ऐसे अलौकिक कृत्य शिव द्वारा संपादित हुए हैं जिनसे उनका ईश्वरत्व स्वयंसिद्ध है। भागीरथ का उनकी आराधना करना, गंगा का प्रसन्न होकर उनकी जटा में प्रवेश करना, ताड़कासुर को दमन करने की शक्ति का उनके वीर्य में निहित होना आदि ऐसे ही प्रसंग हैं। जहाँ उनके मानव-पक्ष को कवि ने ग्रहण किया है वहाँ भी वह ईश्वरीय आतंक से ग्रस्त है। यही कारण है कि मानव-लीला-प्रसंग में भी कवि बार बार ईश्वरीय संकेत देता रहा है[1]।

पार्वती :

पार्वती काव्य की नायिका है। उसके जन्म की घटना अलौकिक है। वह बिना पानी के कमल से उत्पन्न बालिका है जिसे हिमालय और मेना प्रेमपूर्वक सोलाह पर लाकर पालते हैं। उसकी कांति समुद्र की तरह बढ़ती है और वह एक ही दिवस में वर्ष भर का विकास प्राप्त कर लेती है[2]। उसके नेत्र हिरण को तरह चंचल, उसकी गति गज की तरह मादक और उसका सौन्दर्य खुली चिट्ठी की तरह निरावरण है जिसे देखकर स्वयं ब्रह्मा विस्मित-विस्मृत हैं[3]।

१—सती-पार्वती के विवाह-प्रसंग में देखिये :

(क) प्रभु पै बंधावणी पधारउ, आठे पहुरे मगन अच्छइ ॥११२॥

(ख) जनम जनम वैकुंठ पामिस्यइ, बले वदा बड़ता नवे निधि ॥१३१॥

(ग) अचरिज छहु रहीयउ अंतरि, माया जरइं बोलीया मुख ॥१४८॥

(घ) कहइ सती प्रभु रूप प्रगट करि, मिगलउ ही देखइ संसार ॥१५८॥

(ङ) परधान कहइ किम धजा पटंबर, मनछा रथा थानइ महिराण।
भाजन घड़ग अउहीज अनमी भइ, कीया ईसरहीज वैद कुपण ॥१६३॥

(च) वर कन्या जिन्हे धातीया बानइ, वेइ बाप बरसाँ पा बाल ॥२८१॥

(छ) सारा तणइ जि दरसन मागइ, त्रिपी तन्न साइज रवइ पाप ॥२८३॥

२—वाधइ धार बल ज्युं ही जिम, वासुर बरस वनउ विस्तार ॥२३८॥

३—चढंती बदउ एमा चढती, रूप भोचनी कलाइर मोर।
दंति आगति गति मदह तणी गति, ओहर तणउ दिखावउ चीर ॥२६०॥
अब देखइ इक चिट्ठी उघाड़ी, विर आवइ तउ कहतउ वेद।
कउ बना गुहाउ महिमा, हुवउ यह बहुनालिक वेद ॥२६२॥

पार्वती आदर्श प्रेमिका है। नारद पहले ही शिव के साथ उसके अचल संबंध की घोषणा कर देते है। वह उन्हे पति-रूप मे प्राप्त करने के लिये शिविकारूढ़ हो पूजन के लिये प्रस्थान करती है। उसकी अल्पावस्था है पर लज्जा की मात्रा बढ़ी हुई है[1]। पूरे ६ मास तक अखण्ड-सेवा करती है फिर भी शिव मुग्ध नही होते तो वह अपने पिता के घर चली जाती है। आकाशवाणी सुनकर शिव-मिलन का नया उत्साह पा वह जया-विजया नामक सहेलियों को साथ लेकर एक गुफा मे समाधिस्थ होती है। ६ मास तक भूख प्यासादि को सहन करती हुई अखण्ड तप करती है। उसके मुँह से केवल शिव-शिव की ही ध्वनि निकलती है[2]। शिव द्वारा वृद्ध-ब्राह्मण याचक के रूप मे ली गई कठोर परीक्षा में पूरी उतर कर पार्वती अपने अनन्य प्रेम का परिचय देती है। पार्वती का प्रेम कोरी कामुकता नहीं है उसमें कामदेव को भस्म करने के बाद विकसित होने वाले प्रणय की सात्विक मादकता है। उसके प्रेम की पूर्ण परिणति कार्तिकेय के जन्म मे होती है। देवताओं का नेतृत्व कर जब कार्तिकेय दैत्यराज ताड़कासुर का अन्त कर देता है तो पार्वती को खुशी का ठिकाना नहीं रहता।

पार्वती रूप में जितनी मधुर है तप मे उतनी ही उग्र। उसके स्वभाव मे करुणा, सहानुभूति और दया का अपार सागर लहराता है। कामदेव के भस्म होने पर जब रति-हृदय को व्यथित कर देने वाला दारुण विलाप करती है तब पार्वती ही गोद मे लेकर इन पीयूष वर्षी शब्दों द्वारा उसे आश्वस्त करती है कि 'हे रति तू व्यर्थ का विलाप मत कर! तेरा पति ही कुंवर रूप में (कृष्ण-पुत्र प्रद्युम्न) उत्पन्न होगा[3]।

सती :

सती दक्ष की पुत्री है। वह अनुपम सुन्दरी और माता-पिता की लाड़ली बेटी है। उसका सौन्दर्य अलौकिक गति से बढ़ता प्रतीत होता है जिसमें मास और

१—फूले भरि छाब चढ़ी रथ फउरइ, आणंद हुउं वन दिनउं आज।
सज सिविहेक सहेली साथइ, लहुवी वय अधिकी घट लाज ॥२५१॥

२—वन उद्यान गुफा तरइ विचइ, धूंणी घाती सबल घड़इ।
मिलिया प्रभु भगडउ माडणरी, धणी स दाता जीव धडइ ॥२६४॥
विजया जया लियावइ नइ लामइ, बलेस फल किणही कइवार।
निस अह आराहइ दिवस नित, ईसर पवन तणइ आधार ॥२६५॥
खटमास लगइ तप कीयउ अखंडित, श्री असड़ा खेलता निघात।
सिव सिव सिवहीज कहंता सत्त, वदइ न काई वीजी वात ॥२६६॥

३—आया गिर कैलास ईस्वर, श्रो भरता लागी रत पास।
गिरवर कुंवर गोद करेनइ, गाया, वर, कुंवर वलेही बाधी आस ॥२६१॥

(४) कैलास-पर्वत का वर्णन
(५) सती का शृंगार-वर्णन
(६) बरात और विवाह का वर्णन
(७) दक्ष के यज्ञ का वर्णन
(८) यज्ञ-विध्वंस का वर्णन
(९) पार्वती के जन्म और सौन्दर्य का वर्णन
(१०) पार्वती की तपस्या और शिव द्वारा परीक्षा लेने का वर्णन
(११) वृषभ की साज-सज्जा, बरात और विवाह का वर्णन
(१२) पार्वती के शृंगार का वर्णन
(१३) ताड़कासुर के आतंक का वर्णन
(१४) सुर-असुर युद्ध का वर्णन

सती और पार्वती दोनों के विवाह-प्रसंगों को स्थान देने के कारण शृंगार, सौंदर्य, बरात और विवाह के वर्णनों की आवृत्ति हो गयी है।

प्रारम्भ में कवि ने शिव की महिमा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया है। उनको ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी से महान बतलाते हुए सगुण-निर्गुण के झूलों में झुलाया है।

सौन्दर्य और शृंगार वर्णन के दो-दो स्थल हैं। एक सती के सम्बन्ध में और दूसरा पार्वती के सम्बन्ध में। दोनों मे जन्म व सौन्दर्य-विकास की अलौकिकता है। सौंदर्य-शृंगार वर्णन मे कवि ने नख-शिख निरूपण की पद्धति ही अपनाई है। जगह जगह शास्त्रीय क्रम-विकास का अतिक्रमण किया गया है। सती के सौन्दर्य मे मुख का वर्णन करने के बाद उसी छंद मे पगथलियों का चित्रण कर दिया गया है, और उसके बाद चरणों, जंघाओं तथा कटि का वर्णन किया गया है[1]। शृंगार-वर्णन मे हाथ, नथ, नेत्र, तिलक, हार आदि का क्रम देखने को मिलता है[2]। पार्वती के सौंदर्य-शृंगार वर्णन मे भी ऐसा ही किया गया है। यह अवश्य है कि सारा-वर्णन अलंकारों के भार से लदा हुआ है।

बरात और विवाह-वर्णन बड़े सजीव बन पड़े है। इनके द्वारा कवि ने तत्कालीन प्रचलित सभी रीति-रिवाजों का सुन्दर चित्रण किया है[3]। राजस्थानी विवाह पद्धति के अनुसार यहाँ भी लड़की की ओर से नारियल भेजा गया है, लड़के की

१—छन्द : ५६, ७३
२—छंद : १३७–१४६
३—छंद : ७८, १०८–१११, ११३, ११८, ११९, १२२, १२३–१३३। १३६–१४६। १५२–१५६। १६५–१६८। २४७–२५३। २७६–३०४। ३३२–३५६।

ओर से लग्न मंगवाये गये हैं, कुंकुम-पत्रिकाएँ भेजकर संबन्धियों को बुलाया गया है, बरात सजाई गई है, बरात के स्वागत के लिए बधाईदार भेजे गये हैं, वर की विद्रूपता को देख कर नगर की स्त्रियों को हँसाया गया है तो वर की सुन्दरता पर सब को काम-काज छोड़-छोड़ कर छतों पर एकत्र किया गया है। तोरण बांदा गया है, मंगल-कलशों से आरती उतारी गई है, धवल गीत गाये गये हैं। विविध बोलियाँ बोलते हुए जोगिनियों द्वारा टूट्या निकाला गया है। वधू का चाहड़, चंदवाही, हांस, नथ, बाजूबन्द, कांकण, कंठसरी आदि गहनों से शृंगार कराया गया है। खेजड़ी की आग को घी से सींच कर ब्राह्मण द्वारा हथलेवा जुड़ाया गया है और विवाहोपरांत दस-पंद्रह दिन वर को घर पर रख कर दायचे के साथ विदाई दी गई है।

युद्ध-वर्णन के दो स्थल हैं। एक दक्ष के यज्ञ-विध्वंस प्रसंग में और दूसरा देव-दानवों के सम्बन्ध में। युद्ध-वर्णन परम्परागत है। किसी मौलिक उपमान का सहारा नहीं लिया गया है। वही शस्त्र-झंकार, शोणित-प्रवाह और खड्ग-संचालन है।

प्रकृति-वर्णन की ओर कथा के कलेवर को देखते हुए कवि ने कम ध्यान दिया है। संयोग-वियोग की पृष्ठभूमि में यहाँ प्रकृति को चित्रित नहीं किया गया है। अतः न तो बारहमासा वर्णन है न पटऋतु-व्यंजन। प्रकृति केवल अलंकारों की पिटारी बनकर आई है जिसे खोलकर कवि जब जी में आये तब सती-पार्वती के नख-शिख को सजा देता है। प्रकृति के चित्रण की दृष्टि से कैलास पर्वत का वर्णन[1] ही सुन्दर बन पड़ा है यद्यपि वह अलौकिक तत्वों से अनुरंजित है। उस पर्वत पर आम्र और चन्दन के वृक्ष हैं। अठारह प्रकार की वनस्थली फल-भार से झुकी हुई है। नदी के किनारे ताड़ वृक्षों की छाया में पहाड़ की भांति देते हुए हाथी चलते हैं। कोयल और मोर प्रसन्नता पूर्वक नाचते गाते हैं। अमृतोपम नीर से भरे जलकुण्ड हैं जिनका पान करने से सब कुछ ज्ञात होने लगता है। निरन्तर प्रवाहित होने वाली सरिता है जिसमें पैर देने मात्र से ही भव-प्राणियों का उद्धार हो जाता है। यहां विविध प्रकार के पक्षी हैं जो अपने मुख से सदा शिव-शिव जपा करते हैं। यह देवताओं की क्रीड़ा भूमि और शिव की समाधि-स्थली है।

१—जोयन वीस हजार जोवतां, सहस दस पहिलउ कइलास।
भलउउ रूप अनोपम आसीयइ, एकण थंभ तणउ आवास ॥८१॥
बृखराव तिसा गिर रा बिराजई, अति साखा संवलकता अंग।
सिसहर तणी पारवती सोहइ, ग्रह जांणे लागा गयणंग ॥८२॥
विण पग-पग चंदण तणा तरोवर, विविध विविध फली अणराइ।
पंखि मुखि हरिनाम प्रणैता, सुरताय मानव तणै सुहाय ॥८३॥
चिलता पहाड़ पहाड़ पारवती, अधर झरंता चरण धरइ।
भंवतण्य वृख लुंज आरोया, कुंजर विच सारखी करइ ॥८४॥

वृषभ की साज-सज्जा का वर्णन[1] कवि ने तन्मय होकर किया है। उस बैल का शारीरिक संघटन भी बड़ा सुन्दर और आकर्षक है। उसके अद्भुत लम्बे सींग स्तम्भ स्वरूप है, सबल स्कन्ध पृथ्वी के लिए अवलम्ब स्वरूप हैं फिर उसे क्यों न घुघरे बांधकर सजाया जाय ? क्यों न उसके जड़ाव जटित मखमल की काठी हो ? उसकी मोहरी रंग-बिरंगे रेशम की और पाखर रत्न जटित हैं । सूर्य के घोड़े उसके आगे आगे कोतल के रूप मे चलते हैं। वह अपने सीगों को झाड़कर नभ-शिखरों पर उनके आघात चिन्ह बना देता है। उसकी गति बड़ी तीव्र है। सवार होते ही पाँच योजन धनुष पृथ्वी को पार करने लगता है। सिरपर लगा दिव्य-तिलक दुर्जनों के हृदय में शूल बन कर खटकता है। ऐसा बैल है दूल्हे शिव का वाहन।

रस-व्यंजना :

वेलि का प्रमुख रस संयोग शृंगार है। वीर रस की भी विशद व्यंजना की गई है। अन्य रसों में शान्त, अद्भुत, वात्सल्य, रौद्र, वीभत्स, भयानक, करुण और हास्य के नाम गिनाये जा सकते हैं।

सती और पार्वती के विवाह-प्रसंगों मे शृंगार के संयोग-पक्ष की सुंदर व्यंजना देखने को मिलती है। दोनों स्थलों पर आलम्बन शिव ही है। वियोग-शृंगार के लिये न कवि मार्मिक स्थल ढूंढ सका है न उसे अवकाश ही मिला है।

प्रिय से मिलने के लिये सती मे जो व्यग्रता और जवानी की खुमारी है उसका चित्रण देखिये—

. उदमाद घणइ जगि चढ़ती वांनी, करि निरखति फोरती कंघ।
सांई मिलण कारणे सुन्दर, बांधिया चोली तणाज बंध ।।१४३।।

प्रथम मिलन के दिन ही सती ने जान लिया कि स्वामी से उसका पूर्व जन्म का स्नेह-संबंध है क्योंकि :—

१—अति सीग अजायबथंम घणइ थट, जाडइ कंधं सुवाधि जिहाज।
सझि कीजइ तिको चढण नुं साठीउ, महि जिण भुजे महोदधि माझि ।।३०५।।
घूघर माल चिहुं दिसि घमकइ, धंणू सघट्ट जोवतां घणउ।
मुखमल रउ गउ खउगेर मांडियउ, जडियउ जाण जडाव तणउ ।।३०६।।
जरबाफ तणा ताइ पाटा जोडीया, रेसमरी महुरी बहुरंग।
मन असवार तणउ ताइ मूंभइ, तरइ चलइ आपणइ तुरंग ।।३०७।।
रतनारी पाखर पुठि रुलेती, भिडज वधइ ताइ आगल भांण।
अंबर राव हतउ उभाडइ, सिहरा रा सीगे सहिनाण ।।३०८।।
सुरजन साल तिलक सिर दीन्हइ, बीडउ लीमउ पसारे बाहि।
चढ़ीयइ वृखभ कपूर चढावे, छिलता छात तणी ताइ छाहि ।।३१०।।

नयणां तणां यांग नोघटता, निमख निमख ताइ वाघइ नेह।
इत जांणती समउ जांणीयउ, साईं मु पहिलकउ सनेह ॥१५७॥

प्रियतम के आस्वाद के लिए पार्वती ने अपने यौवन-रस को कंचुकी में बांध रखा है इसलिये कि कहीं वह उलीच न जाय–

प्रीतम रइ कारण पारवती, रासियउ जांणे आंम रस।
मोडियउ उर ऊपर कांचू भर, कसण रेसम तणा कस ॥ ३३३ ॥

और अनियारे नयनों की यह अपूठी मूठ किसे घायल न करेगी—

अणीयाला नयण आंजिया अंजण, काजल रेख सुरेख करि।
इंद्र तणइ दिन मूंठ अपूठी, मलका नांखइ वांम वर ॥३३७॥

वीररस यों तो संपूर्ण कथा के मूल में रमा हुआ है क्योंकि जितने भी कार्य संपादित हुए हैं उनका प्रेरक भाव उत्साह ही रहा है। युद्धस्थलों पर तो यह छलक पड़ता है।

दक्ष के यज्ञ-विध्वंस-प्रसंग में शिव के गणों और दक्ष के सैनिकों के बीच गुत्यमगुत्था का चित्र देखिये :—

वाजीया भड सिंधुराग वडाला, लथ बथ हय भारथ घण लोह।
चंद्रपहास खेलता चाचर, छिलता धात तणो ताइ छोह ॥१६३॥
धडछइ धार विद्रूक हुवइ धड़, रवाग अजाग वावरण खेत्र।
गण आठे वाजिया विसम गति, निलवट सुर वाधियो नेत्र ॥१६४॥
विठता कुंभनि कुंभ वाकारइ, नव नाडिया जोयइरे नरिंद।
ऊंचड ग्रहे आछटइ अंवर, ग्रहइ वले आवतउ गिरिंद ॥१६५॥
सादूलउ एक अनेक सिंहलि, धूमर कोयइ फेरतउ घंस।
वंधा हुता ऊबडे बगतर, हाक समाती ऊडीयइ हंस ॥१६७॥

सुर-असुर-द्वन्द्व में ताड़कासुर हँसता हुआ अपने योद्धाओं की पीठ थपथपाता है–

तडकाइसुर दइत वांधियउ तरकस, देखे दल होसियउ दूठ।
हलकारइ भड आप अपूठउ, पूठो रखउ थापलइ पूठ ॥३७३॥

वीररस के प्रसंग में ही रौद्र, वीभत्स और भयानक रसों की सृष्टि हुई है।

रौद्ररस का स्वरूप देखना है तो वह स्थल देखिये जहां शिव रुद्र रूप धारण कर यज्ञ को जड़ से उखाड़ देने की घोषणा करते हैं—

रउदाल कोयउ तिण वार रूप रुद्र, घणइस तीजइ नेत्र धियाग।
कोट अनइ ब्रह्मंड कांपिया, जडाहूंती काढियउ ज्याग ॥२०१॥

चढिया जाइ पन्नंग कोप चढि, रोस सरोस थरकिया रोम।
पावन धूंवइ पखउ परजलोयउ, विकटी जटा विलागो वोम ।।२०२।।

वीभत्स :

धक चाल हुवइ उतवंग पडइ धड़, नड नाचइ अपछर निरलंग।
भारथ तणउ पहाड महाभड, जुडता अणी करइ वड जंग ।।१६२।।
तुछ जल ज्यांही माछला तड़फइ, भड तडफइ तिण विध भाराथ।
भभकइ रुधिर भंड जर भागा, एकण कहर लाविया हाथ ।।२१४।।

भयानक :

धनख ताइ धनकार करइ धन, विढवा भुज निमिजई जिवार।
इकवीसे ब्रह्मंड अउडवइ, सहइ न वासंग भार सहार ।।२०३।।
सूरातन जांही घणइ सूरातन, ईसर तणा वाधिया अंग।
प्रलयकाल हुसी ताइ प्रियमी, द्रोही तणा थरकिया द्रंग ।।१०४।।

अद्भुत :

कैलास पर्वत के वर्णन में इसका विशेष रूप से निर्वाह हुआ है—

नदी वरइ झाबूका नांखली, धोय उदकची लागी धार।
ईसर तणी प्रान्या इसडी, पइंडउ दइतउ तारइ पार ।।८६।।

रति-विलाप में कवि चाहता तो करुण रस को उद्‌भावना के लिये स्थान था पर उस प्रसंग की उपेक्षा कर केवल एक छंद लिखा है :-

आया गिर कैलास ईस्वर, प्रो झरवा लागी रत पास।
गिरवर कुंवर गोद करे नइ, (गायावर), कुंवर वले ही बाधी आस ।।२६१।।

हास्य रस का केवल एक उदाहरण विवाहोत्सव पर टूंट्या निकालने की प्रथा के निर्वाह के रूप मे मिलता है-

हेमउ बोलइ किसइ देसरी बोली, खंडत चरणं तणी खुडी।
अणवर वीद टंटीयउ मायउ, जोगी रसा जुगति जुडी ।।१३२।।

शिव-महिमा वर्णन में शान्त रस की प्रशान्त धारा प्रवहमान है-

बीजामुर खपइ ऊगजइ वाजइ, धुरा लगइ अवचल अवधूत।
चाडइ ब्रह्मा तणी चाचर री, बीजो चाडइ नहीं बभूत ।।१३।।
वासिगरउ कांठलउ विराजइ, सहस करइ फुग गिलण सति।
जग बारां आदितां जिसडी, तेज तपइ मुखिसा वरति ।।१७।।

पार्वती के प्रति हिमालय और मेना का वात्सल्य देखिये—

पउछाड़े लीधरि दइरइ भागइ, भणियउ ताइ मापरे आवास।
मिति यइनान उद्याह मांडिया, पल एक तीयां न छोडइ पास ।।२३५।।

खिण पालणइ गोद लीजइ खण, चवर ढुलइ चिहुँ दिसे सुचंग।
वालक तणइ बांधिया वंधण, ऐकीका सहसा ले ग्रंग ॥२३६॥

कलापक्ष :

कवि का भाव पक्ष जितना सहज-सुन्दर है कलापक्ष उतना ही मधुर-मनोहर। उसमें एक कलाकार की रुचि, कारीगर की लगन और भावुक की प्रतिभा के दर्शन होते हैं। वर्णन-क्षमता, चित्रोपमता और साज-सज्जा को देखते हुए कवि के अद्भुत कौशल की प्रशंसा करनी पड़ती है।

काव्य की भाषा विशुद्ध डिंगल है। वह भावों के अनुसार उछलती कूदती है। भक्ति-प्रसंग में अर्द्धनारीश्वर सी सुपमा, शृंगार में पार्वती सा लास्य और युद्ध-वर्णन में शिव सा ताण्डव नर्तन है। यथा–

(१) वासिगरउ कांठलउ विराजइ, सहस करइ फुग गिलण सति।
जगवांरा ग्रादीतां जिसड़ी, तेज तपई मुखिसा वरति ॥१७॥

(२) उदमाद घणइ जगि चढनी चांनी, करि निरखति फोरती कंध।
सांई मिलण कारणे सुन्दर, बांधीया चोली तणाज बंध ॥१४३॥

(३) घकचाल हवइ उतवंग पडइ घड़, नड नाचइ अपछर निरलंग।
भारथ तणउ पहाड़ महा भड़, जुडता ग्रणी करइ वड जंग ॥१६२॥

वेलि में ग्रलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है। शब्दालंकारों में वयणसगाई के साधारण और ग्रसाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं—

साधारण :

(१) करां प्रणाम सजोडि कर (१)
(२) धुरा लगइ ग्रवचल ग्रवधून (१३)
(३) न्हावीया गंग सनान कीयउ (६०)

ग्रसाधारण :

(१) पग ऊपल विचइ पदम विराजइ (११)
(२) नाक जरइ पड्रियो नक वेसर (३३६)
(३) वरइ विमन कहइ ग्रागलि सिंगर (३६७)

ग्रनुप्रास भी पूरे चरण में व्यवहृत हुग्रा है–

(१) दीन दयाल दया दाखिवइ, देव घणइ गाइजइ हरि ॥१॥
(२) भुज भ्यारे रूप विराजइ भारी, परहरती धुरती घण पाव ॥६७॥
(३) घण घट घनंइ जांणिए धुरते, ग्रासां ले परिग्गइ ग्रासाण ॥१२३॥

यमक और श्लेष के प्रयोग भी दृष्टव्य हैं—

यमक :

(१) वृखताइ चंदनणइ विलागउ, वृखलइ तउ घणइ वृखराव (७४)
(२) विढता कुंभनि कुंभ वाकारइ (१६५)
(३) काजल रेख सुरेख करि (३३७)

श्लेष :

हाक समाती ऊडीयइ हंस (१८७)

अर्थालंकारों में सबसे अधिक प्रयोग उत्प्रेक्षा का हुआ है। उसके बाद उपमा और फिर रूपक का। अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, उल्लेख, भ्रांतिमान, सन्देह, अपह्नुति आदि अलंकार भी यथास्थान आये हैं। सौभाग्य से कवि को सती और पार्वती जैसे दो प्रसंग भी कथानक मे मिल गये।

रूप-चित्रण में विशेष रूप से साधर्म्यमूलक अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। शिव के कंठ में सींगी ऐसी प्रतीत होती है मानों निर्मल चित्त वाले ब्राह्मण के हृदय मे वेदों ने स्थान पा रखा हो—

सींगी ताइ कंठ ऐहवी सोहइ, त्रिमल विप्र जोचंता निगेम ॥१५॥

जब शिव को रसायण की मादकता चढ़ती है तो लगता है 'सेहरां विचइ ऊगतउ सूर' (२२)

सती के सौन्दर्य और शृंगार वर्णन में अलंकारों का वैभव देखा जा सकता है। प्रारंभ से ही सती की गति ग्रहों के बीच सूर्य की तरह जाज्वल्यमान है—

आदी भ्रा साकतणी गति असड़ी, उगो ग्रहां विवह आदति ॥५०॥

उसकी त्रिवली पर पड़े हुए सल क्या थे मानों चित्रकार ने कुंभ (पेट) पर सोने की लकीरें खींच दी हों—

चित सालीव तइ चीतारइ, कुनग तणा मांडिया कुंभ ॥५६॥

चीर से परिवेष्ठित पीठ तक लटकते हुए चिकुर ऐसे दिखाई देते थे मानों कमल-नाल मे होकर जल उतर रहा हो—

आरीसइ जंही जोवतां आगल, चिहुर पूठ तइ दीसइ चीर।
पइतां कवल देखजइ प्रगटा, नाल कमल ऊतरतउ नीर ॥६१॥

नाभि मानों कुमोदिनी पुष्प हो जिसे चकती के रूप मे इसलिये चिपका दिया गया है कि कहीं कांति चू न जाय—

नालीनाइ नाभ निरखंता, पनूं स उजल ऊपर पणउ।
चक्वारइ वचइ ज्युं चुगती, तंत छाडियउ कुमोद तणउ ॥६२॥

उरोज मानों उस देवी के देवालय तुल्य शरीर के शिखर पर अनियारे इंडे (कलश) हों—

आंकुस मदन चा तन ऊपडिया, घट महिमा जोवतां घणी।
देवल जांही सिखर चा देवल, इडा चा मलकिया अणी ॥६३॥

कितनी सुन्दर रम्य कल्पना है! शृंगार और अध्यात्म का यह मेल देखते ही बनता है।

नथ को हाथी का मद और मदन-धनुष कहना कवि की सूक्ष्म-दृष्टि का परिचायक है—

(१) वांना जड़ित पहिरी नक वेसर, मद आवीया ज्याही मद गंय ॥१३८॥
(२) नाक नरइ पहिरी नक वेसर, मयण धनुख चाढ़ीय उमहि ॥३३६॥

कवि बहुज्ञ है। उसे रंगों का ज्ञान है जिसका प्रयोग मोतियों के वर्ण-साम्य में देखिये—

(१) गुण दाणा इसा अमोलक गाढा, मोती ताइ आंवला प्रमांण।
सुंदरि हार तिसउ उर सोइइ, बीजी गंग प्रकट की वांण ॥१४५॥
(२) मोती अति नृमल कोर सिर काढ़े, खासइ हीर पोविया खास।
भिलंती गंग समुंद जल भेली, ऊजस उदक तणइ ऊजास ॥३२४॥

पार्वती के चूड़े के वर्णन के साथ उसकी मन: स्थिति का चित्रण और शिव मिलन की सिहरन मानसरोवर की तरंगों के साथ कितनी 'फिट' बैठी है—

डंड हुंतासण सांधली सायर, घंण समुद्रइ पवन घणा।
चूडउ देखे इसउ चींतवइ, तुरंग सही मांनसर तणा ॥३३०॥

यहां कवि ने चूड़ा बनाते समय जो विधि काम में ली जाती है उसका समूचा उल्लेख कर दिया है। डंड, अग्नि, संध, पवन आदि उपादान-तत्व हैं।

पार्वती को सूर्य-रथ और कुंडल को सूर्य-रूप में देखना—

पारवती कान पहिराया कुंडल, सुरिज तिण ऊगा संसार।
जवहर नखत्र पारबती जड़िया, अर्क तणा रथरइ आकार ॥३३८॥

सती के मुख-चंद्र और लोचन-कमल को एक साथ विकसित कर असाधारण सौन्दर्य-सृष्टि करना और उसके अवलोकनार्थ संसार के बारह सूर्यों का आह्वान करना कितना दुष्कर कार्य है—

अति सुन्दर कवल मांडीया ऊपर सोभा अति पांम इं सादीत।
चंदवदनी मुख दिसउ चाहतां, ऊगा केरि बारह आदीत ॥६८॥

नेत्र-वर्णन में उल्लेख अलंकार का प्रयोग द्रष्टव्य है। सती के नेत्र विभिन्न परिस्थितियों मे विभिन्न रूप धारण कर लेते हैं। यौवनोन्माद मे घोड़े की तरह चचंल दिखाई देते है। दानवों को नष्ट करते समय वीरत्व उभरने पर उसके नेत्रों मे धैर्य झलकता है। वे ही नेत्र मृगछावक की तरह भोले और घाव करने वाले तीर की तरह तीखे भी हैं—

लड़ता जग लहरि तुरंगे लागा, सूरां तरण जोवतां सधीर।
मृगछावडई जिसा लोचन मुख, तीखा जिसा बुतंगी तीर ।।७१।।

वेणी को वासुकि मे उपमित करना परम्परायुक्त है पर शिव के साथ उसके संबंध-स्थापन में कवि की अपनी मौलिकता है। सती की वेणी ऐसी दिखाई देती है मानों विषपूर्ण वासुकि चंदन वृक्ष से लिपट गया हो, फिर भी विष व्याप्त होने की आशंका इसलिये नही की जा सकती क्योंकि उस चंदन वृक्ष-तुल्य कुमारी का पति वृषभध्वज है जो स्वयं विष को पचा जाने वाला है—

वेणी डंड जिसउ विराजइ वासउ, पिंड उदमाद धरंती पाव।
वृखताइ चंदनणइ विलागउ, वृखलइ तउ घणइ वृखराव ।।७४।।

कंठनली और नासिका के वर्णन में व्यतिरेक अलंकार का सुन्दर प्रयोग देखने को मिलता है। कंठ में जो रेखाएँ ब्रह्मा ने बनाई उसके लिये न घण का प्रयोग करना पड़ा न एरण का। किसी प्रकार का आघात (घाव) भी उनको नहीं लगा—

नालीनाइ कठ तणी निरखंतां, रची अचंभ परजापति राव।
विगताहीण रेखता बणाई, घण अहिरण अण लागइ घाव ।।६७।।

भ्रातिमान भी दो-तीन जगह आया है। कैलास पर्वत का वर्णन करते समय कवि कहता है आकाश में नक्षत्र ऐसे सुशोभित थे मानों कस्तूरी मृग पर संधानित बाण नभ मे जा लगे हों, फिर भी वहां के मृग बांसों की सनसनाहट से शर-संधान का भ्रम कर श्रमित थे—

कस्तूरी नामि निसंधि निकेवल, उडीयण जाइ लागा आकास।
मृग तेथि थकत हूया बन माहे, वाजइ पवन तणा सूरवास ।।८६।।

उत्प्रेक्षागर्भित सन्देह कटि और कांकण के वर्णन में देखिये —

कटि-वर्णन :

कडिलंक तिसी उपमां कहतां, पोरस तणी वाधीयइ पाल।
सादूलउ कुंजर घड सांमुहइ, अणभव लीयइ करंतो आल ।।६०।।

कांकण-वर्णन :

कर सोहइ हाथ तीयइ कर कांकण, दिणीयर जिम चउगिरद दिया।
कमल तणा फूलरइ कनारइ, कुंदण रा कागरा कीया ।।३३१।।

शिवजी जब दूल्हे बनकर पार्वती को ब्याहने के लिए बरात सजाकर चलते हैं तब उनके सौन्दर्य-वर्णन में कवि ने स्त्रियों की व्यग्रता और मुग्धता का जो चित्र खींचा है वह कवित्वपूर्ण है। झरोखों पर चढ़ी स्त्रियां जगह-जगह जाली मे मुंह निकालकर शिवजी को देख रही थीं। दृश्य ऐसा प्रतीत होता था मानों झरोखे रूपी तालाब से मुख रूपी कमल स्थित लोचन रूपी भ्रमर उड़-उड़कर दर्शकों के शरीर पर लग रहे हों—

देखण नु चढण ईस ताइ दीसइ, जालानल मथ काटी ज्याग।
मुख ताइ कवल गउख सर माहे, लोचन भवर रह्या तनु लाग ॥३१३॥

इसी प्रकार जब कार्य-रत स्त्रियाँ शिव को आते जान काम-काज छोड़कर दौड़ पड़ती थीं तो उनके पैरों में लगे महावर से रायांगण चित्रित हो जाता था। स्वेद सात्विक के कारण वह महावर-सूखने के बजाय और अधिक पतला हो जाता था—

देखणनु दूसइ आहुचइ दउडी, कितरा छोड़ अनेरा कांम।
चरणहुंता अलतइ चीतरीया, चिहुटा राय आंगणइ चित्रांम ॥३१४॥

जगह-जगह सूक्तियों और मुहावरों का प्रयोग भी हुआ है—

सूक्तियां :

(१) आदर जिण ठांम घणउ होवइ आगइ, थोड़ो हुवइ आदर तिण ठांम।
जईजइ क्यूं तिये जाइगह, महि अजाद रास जइ मांम ॥१७७॥
(२) मांण हुवइ मन भंग तेय मरीजइ ॥१८८॥
(३) मलधारी मानवी न मूंभइ ॥२२५॥

मुहावरे :

(१) वलेस आडउ आंक वलइ ॥१४६॥
(२) मुहडे भरी बोलीयउ महीपति ॥१८०॥
(३) लंक तणइ तोरण जाइ लागा ॥१८६॥
(४) इंद्र तणइ दिन मूंठ अपूटी, मलका नांखइ वांम वर ॥३३७॥

छंद :

इसमें छोटासाणोर के भेद वेलियो और सुइदसाणोर का प्रयोग हुआ है—

उदाहरण :

(१) वेलियो :

बोबानुर खरइ ऊरवइ वावइ, धुरा लगइ भवचल मवधूत।
चाउइ वडा नहि पावर रो, बीजो चाउइ नहीं वधूत ॥१३॥

(२) खुड़दसाणोर :

घरणीधर शंकर देव घियावउ, जोति प्रकास अलोप जग।
मस्तक मुगट प्रकास मांडियउ, अनत कोट ब्रह्मंड लगि ॥४॥

डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इसके ३८१ छंद माने हैं[1]। अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर में जो इसकी प्रति है उसमें भी अन्त में ३८१ ही लिखा है पर सचमुच इसमें ३८२ छंद हैं। इस गड़बड़ का कारण प्रतिलिपिकार की लापरवाही है। उसने छंद ३६ के अंक दो बार लिख दिये हैं जबकि वे दोनों भिन्न हैं। उनकी संख्या लगनी चाहिये ३६ व ४० न कि ३६-३६।

हमने विवेचन करते समय जो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं उनकी छंद संख्या ३८२ के आधार पर ही लगाई गई है।

पृथ्वीराज रचित 'किसन रुकमणी री वेलि' तथा किशना रचित 'महादेव पार्वती री वेलि' :

दोनों कवियों की वेलियों का अध्ययन करने से यह स्पष्ट पता चल जाता है कि कथानक अलग होते हुए भी कथा-शैली, वर्णन-क्षमता, सौन्दर्य प्रसंग, नख-शिख निरूपण एवं छंद-विधान में काफी समानता है। अतः यह मानने मे कोई संकोच नहीं होना चाहिये कि किशना पृथ्वीराज से काफी प्रभावित रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से भी पृथ्वीराज किशना के पूर्ववर्ती ठहरते हैं। पृथ्वीराज की वेलि प्रारंभ मे ही लोकप्रिय कृति रही और संभव है इसीसे प्रेरणा पाकर किशना ने कृष्ण और रुक्मणी की जगह महादेव और पार्वती को अपना पात्र बनाया हो।

दोनों कवियों में वेलि का उठान समान रहा है। मंगलाचरण दोनों ने किया है। यह अवश्य है कि पृथ्वीराज ने जहाँ केवल ८ छंदों मे ही अपनी असमर्थना के व्याज से कृष्ण-महिमा का वर्णन किया है वहाँ किशना ने २१ छंदो में प्रत्यक्ष रूप मे शिव की कीर्ति गाई है। कथा-संघटन भी दोनों का समान रहा है। पृथ्वीराज को केवल कृष्ण-रुक्मणी का ही विवाह सम्पन्न कराना पड़ा जबकि किशना को सती और पार्वती दोनों का। अतः एक मे प्रासकिक कथाओं की आवश्यकता नहीं पड़ी जबकि दूसरे मे कई प्रासंगिक कथाएँ संयोजित हुईं। यही कारण है कि पृथ्वीराज ३०५ छंदों मे ही ऋतु-वर्णन, वेलि माहात्म्य, कवि-विनय, कवि की गर्वोक्ति, रचना-तिथि आदि के लिए स्थान निकाल पाये जबकि किशना ३८२ छंद लिखकर भी यह सब कुछ नहीं कर पाया।

पृथ्वीराज के अनुकरण पर ही किशना ने रुक्मणी की तरह सती और पार्वती के सौंदर्य तथा शृंगार का पृथक-पृथक वर्णन किया है। पृथ्वीराज के

1—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १६३-१६४

द्वारिका वर्णन का प्रभाव किशना के कैलाश-पर्वत वर्णन पर पड़ा है। जिस गति से कृष्ण कुन्दनपुर आकर रुक्मणी की सहायता करते हैं उसी त्वरा के साथ शिव दक्ष-यज्ञ को विध्वंस करने का प्रयत्न करते हैं। वहाँ बलराम स्वयं कृष्ण की सहायता के लिए दौड़ पड़ते हैं तो यहां शिव स्वयं वीरभद्र को पैदाकर अम्बासुर भेजते हैं। कृष्ण रुक्मकुमार के सिर पर हाथ रखकर उसके उतारे हुए केश फिर लगा देते हैं तो शिव बकरे का माथा लगाकर दक्ष को पुनर्जीवित कर देते हैं। कृष्ण पुत्रवान होते हैं तो शिव भी। पर एक का पुत्र काव्य में निष्क्रिय ही रहता है जबकि दूसरे का पुत्र दैत्यराज ताड़कासुर का दमन कर देवताओं की रक्षा करता है।

यहां हम दोनों वेलियों से कुछ ऐसे छंद उद्धृत कर रहे हैं जिनसे पता चलता है कि किशना किस प्रकार पृथ्वीराज से प्रभावित रहा। यह आवश्यक नहीं है कि सर्वत्र समानता हो ही और न यह समझा जाय कि किशना का अपना कुछ भी मौलिक न था।

	पृथ्वीराज कृत वेलि	किशना कृत वेलि
(१)	परमेसर प्रणवि, प्रणवि सरसति, पुणि सद-गुरु प्रणवि, त्रिण्हे तत- सार। मंगल-रूप गाइजइ माहव, चार सु अे ही मंगलचार ॥१॥	परमेसर सरति परम गुरु, करां प्रणांम सजोड़ि कर। दीन दयाल दया दाखीजइ, हेत घणइ गाइजइ हरि ॥१॥
(२)	अनि वरस वधइ, ताइ मास वधइ अे, वधइ मास, ताइ पहर वधंति ॥१३॥	दिन दिन लइ अंतरा देवी, वरस मास रा किसा निवंध ॥४२॥ वाधइ सायर वले ज्युं ही विम्र, वासुर वरस तणइ विस्तार ॥२२८॥
(३)	राजति राज-कुंवरी राय अंगणि, उडियण वीरज अंवहरि ॥१४॥	जोति जुदी करतीयइ जोवतां, चंदवांही किनां ऊगउ चंद ॥१३८॥
(४)	आप तणउ परिग्रह ले आयउ तरुणापउ-रितुराउ तिणि ॥१८॥	हेमाचल गिरवर चा सेहर, वसंत तणि रुति हुई वणाव ॥६४॥
(५)	नीतंवणि-जंघ नु करभ निरुपम, रंभ-खंभ विपरीत-रस जुअलि नालि नमु गरभ जेहवी, क्रमसो बारवानइ विहुस(२६)	जंगस्थल मुग वेलि भ्रम जिसड़ा, गति जोवतां जिसा गज-गंड (५६)
(६)	ईखे पित-मात अेरिसा अवसव, चिन्त विचार करइ वीवाह।	परवार सवल राजांन पुर्थावउ, प्रुधोना वडा वडा प्रधान।

सुंदर सूर सील-कुल करि सुध,
नाह क्रिसन सरि सूभ नाह (३०)

दीजइ गवर जिसउ वर दाखउ,
वंस तणउ वधारण वांन (७६)
आलोप करे परवार आखीयउ,
अवर नको राजां न इसउ ।
वीद नको सारीखउ विसंभर,
सिहर नको कैलास जिसउ (७७)

(७) ग्रिह-ग्रिह प्रति भीति, सुगारी
हीमलू,
ईंट फिटक-मइ चुणी असंभ ।
चंदन पाट, कपाटइ चंदण,
खुंभी पनां, प्रवाली खंभ (३६)

कबाउच रतन गारि कुंदणरी,
सुगति सिलावट चुणी सुजांण ।
तेज खपइ कुण देख तीयांरउ,
भुवण भुवण जिहां ऊगइ भांण
(१०१)

(८) धुनि-वेद सुणति कहुं सुणति
संख-धुनि,
नद-भल्लरी, नीसाण-नद (४८)

वेद कथइ आगलि ब्रह्मादिक,
पडसादां गुंजीया पहाड़ (१०२)

(९) पणिहारि-पटल-दल वरण चंपक
दल,
कलस सीसि करि करि कमल (४६)

कुंभ हुवइ ततकाल कहंता,
सो पाणी ल्यावै पणिहार (१०३)

(१०) ऊठिया जगतपति अंतरजामी,
दूरन्तरी आवतउ देखि ।
करि वंदण आतिथ-ध्रम कीधउ,
वेदे कहियउ तेणि विसेखि (५४)

नालेर लीयउ प्रभु वात परीछी,
जाणणहार सुजांण जगि ।
आया महुल करे ताइ आइत,
प्रिथी प्रमांणइ धरण पगि (१०६)

(११) कुमकुमइ मंजण करि धउत वसत्रधरि,
चिहुरे जल लागउ चुवण ।
छीणे जाणि छछोहा छूटा,
गुण मोती मखतूल-गुण (८१)

ऊठी ताइ करे मांजणउ उमया,
वेणी भर अंब ग्रहवड ।
बादल स्वास तणउ ताइ वरसइ,
भीणी बूंदा करे भड़ (१२७)

(१२) अणियाला नयण बाण अणि-
याला,
सजि कुंडल-खुरसाण सिरि ।
वले वाढ दे सिलो सिलो वरि,
काजल जल वालियउ किरि (८६)

अणीयाला नयण आंजीया अंजण,
काजल रेख सुरेख करि ।
इंद्र तणइ दिन मूंठ अपूठी,
भलका नाखइ वांम वर (१३७)

(१३) कल मोतियां सु-सरि हरि-कीरति,
कंठ-सिरी सरसती करि (६१)

गुणदाणा इसा अमोलक गाढा,
मोती ताइ आंवला प्रमांण ।
मुंदरि हार तिसउ उर सोहइ,
बीजो गंग प्रगट को वाण (१४५)

(१४) मणि-मइ हीडि हींडलइ मणि-धर,
किरि साखा स्त्रीखंड-की (६२)

(१५) गजरा नव-ग्रही प्रोचिया प्रोंचइ,
वले वलय विधि-विधि वळित ।
हसत नखित्र वेधियउ हिमकर,
अरध कमल अळि आवरित (६३)

(१६) विप्र मूरति वेद, रतन-पइ वेदी,
वंस आद्र अरिजण-मइ वेह ।
अरणी अगनि, अगर-मइ इंधण,
आहुति घ्रित-घ्रणसार अछेह (१५३)

खुड़ीयां ऊपरी जांणि खांमीयां,
मणिधर राजा तणी मणि (५७)

कर सोहइ हाथ तीयइ कर कांकण,
दिणीयर जिम चउ गिरद दीया ।
कमल तणा फूलरइ कनारइ,
कुंदण रा कांगरा कीया (३३१)

सोनारा कलस घणुं ताइ सुन्दर,
खण मांडिया इकवीस अखंड ।
जड़िया कुंदण तणी जेवड़ी,
वांस जिके लागी ब्रह्मंड ॥१४६॥
वीवाह करण तेथ बैठा ब्राह्मण,
समधी अगनि सीचतइ सारि ।
नवग्रह दस दिग्पाल निजो-की,
अथ वायरइ करइ आचार (१५२)

(६) त्रिपुर सुन्दरी री वेलि[१]

प्रस्तुत वेलि त्रिपुर सुन्दरी देवी से संबंध रखती है। यह देवी शक्ति का ही एक रूप है।

कवि-परिचय :

वेलि में कवि ने अपना नामोल्लेख किया है[२]। उसके अनुसार ये कोई जसवन्त नाम के कवि थे। डा० हीरालाल माहेश्वरी ने इस वेलि को चारणी साहित्य की पौराणिक-धार्मिक रचनाओं में गिना है[३]। इस आधार पर ये चारण-कवि ठहरते हैं। श्री अगरचंद नाहटा के अनुसार ये जैन यति थे। काव्य-शैली से इनका कोई महात्मा मथेर्ण होना सूचित होता है[४]। जसवन्त नाम के ही एक कवि सत्रहवीं शती

१—(क) मूल पाठ में वेलि-नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री त्रिपुर सुन्दरी वेलि ।'
(ख) प्रति-परिचय :—इसकी हस्तलिखित प्रति मनूप संस्कृति लायब्रेरी बीकानेर के ग्रंथांक २७२ में सुरक्षित है। प्रति की अवस्था अच्छी है। आकार १०"×४½" है। सम्पूर्ण वेलि एक ही पत्र में लिखी गई है। प्रति पृष्ठ में ६ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ३७ अक्षर हैं।

२—रावराण सेवा करइ, इम भणइ जसवंत

३—राजस्थानी भाषा और साहित्य : पृ० १७१

४—लेखक की बात-चीत अपने बीकानेर प्रवास में

में हुए थे जिनका संबंध लोंकागच्छ से था[1]। कहा नहीं जा सकता कि वेलिकार जसवन्त ये ही थे या कोई भिन्न व्यक्ति ?

रचना-काल :

वेलि में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। पुष्पिका-इतिश्री त्रिपुर सुन्दरी वेलि ।। श्री संवत १६४३ वर्षे पोस बदि ६ दिने शुक्रवारे चे० देवजी लिखित० ।। कल्पवल्ली नगरे लिखितं ।। श्री० ।।-से संवत १६४३ मे इसका लिपिबद्ध होना सूचित होता है। अतः इससे पूर्व इसका रचा जाना निश्चित है।

रचना-विषय :

३० पंक्तियों की यह छोटी सी रचना त्रिपुर सुन्दरी देवी के महिमा-वर्णन से संबंधित है। इसमें कवि ने सर्वप्रथम सरस्वती की वंदना करते हुए वस्तु की ओर संकेत किया है[2]। तत्पश्चात त्रिपुर सुन्दरी का माहात्म्य गाया है। त्रिपुर सुन्दरी शक्ति का रूप है। वह सिंहवाहिनी पहाड़ों के बीच घूमती रहती है[3]। दुष्टों का दमन कर अपने भक्तों को सर्व सुखी बनाना उसका स्वभाव है[4]। जो भी शत्रु बनकर उसके सम्मुख आता है वह उसके त्रिशूल के प्रहार से टुकड़े-टुकड़े होकर नष्ट हो जाता है[5]। कवि देवी से प्रार्थना करता है कि उसे सब प्रकार का मन-चाहा सुख मिले, हाथी, रथ और घोड़ों का अपार धन मिले, सम्पूर्ण रोगों का नाश होकर पवित्र बुद्धि और रिद्धि-सिद्ध मिले[6]।

कलापक्ष :

काव्य की भाषा सरल-सुबोध राजस्थानी है। यत्र-तत्र शब्दानुप्रास भी आया है–

१—जिनवाणी (जयपुर) शोधाक प्रथम भाग : पुस्तक १७ भाग ७, पृ० २१४

२—मात मया मझनी करू', आपू वचन विलास।
त्रिपुरा देवी वर्णवुं, जे सवि पूरइ आस ।।१।।

३—सीह वाहन संचरइ, गिरिवरि शिखरि मझारि।
भक्ति लोक भाव विहरइ, सुक्ख करइ संसारि ।।२।।

४—दुष्ट ग्रह पीडा धरइ तितो संन्राम।
गमी गमी वांछित फलंइ, पूरइ आसभिराम ।।३।।

५—जे दुर्जन अति आकरा, विरुयं चिंति चित्त।
ते भाणी मुंकु करू, मछइ तुक धरि रीत ।।४।।

६—मात तणइ सुख्खा उलइ, नासइ संवला रोग।
सिद्धि बुद्धि दायक सदा, देज्यो वांछित भोग ।।१४।।
त्रिपुर पसाइ पामिइ सघ, रिद्धि वृद्धि भंडार।
गज रथ घोड़ा सबल धन, मन वांछित दातार ।।१५।।

(१) सुक्ख करइ संसारि (२)
(२) सत्रु सवि संहारउ (७)

छंद :

दोहा और कुंडलिया का प्रयोग हुआ है। ९ दोहे और २ कुंडलिया हैं।

तृतीय खण्ड

(जैन वेलि साहित्य)

षष्ठ अध्याय

जैन वेलि साहित्य (ऐतिहासिक)

सामान्य-परिचय :

सम्पूर्ण जैन वेलि साहित्य को हमने तीन रूपों में बाँटा है :—

(१) ऐतिहासिक
(२) कथात्मक
(३) उपदेशात्मक

इनमें ऐतिहासिक जैन वेलि-साहित्य को पात्र-दृष्टि से दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(क) श्रमणाचार्य तथा श्रमण
(ख) श्रावक

इसका रेखा-चित्र इस प्रकार बन सकता है :—

ऐतिहासिक जैन वेलि साहित्य

पात्र-दृष्टि

(क) श्रमणाचार्य तथा श्रमण

(१) सम्वत्व वेलि प्रबंध
(२) अइतपद वेलि
(३) गुरू वेलि
(४) सुजस वेलि
(५) शुभ वेलि

(ख) श्रावक

(६) संघपति सोमजी निर्वाण वेलि
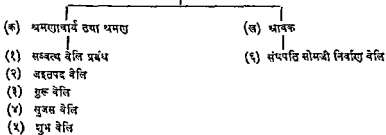
सामान्य-विशेषताएँ :

ऐतिहासिक जैन वेलि साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

(१) ऐतिहासिक चारणी वेलि साहित्य की तरह यहाँ जितने भी पात्र आये हैं वे सब ऐतिहासिक महापुरुष हैं। ये पात्र प्रधान रूप से वेलिकारों के धर्माचार्य रहे हैं और गौण रूप से संघपति श्रावकादि।

अकबर की सभा में तपागच्छवालों को पोपह की चर्चा में इन्होंने निरुत्तर किया था। सं० १६२२ वैशाख शुक्ला १५ को जिनचंद्र सूरि ने इनको उपाध्याय पद प्रदान किया था। सं० १६४६ की माह कृष्णा चतुर्दशी को जालोर में अनशन कर ये स्वर्ग सिधारे। इनकी निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख देसाईजी ने किया है[1]—

(१) सत्तर भेदी पूजा सं० १६१८ श्रा० शु० ५
(२) आषाढ़ भूति प्रबंध सं० १६२४ विजयादशमी
(३) शत्रुंजय (चैत्री) स्तवन
(४) प्रभाती
(५) नमि राजर्षि चौपई
(६) मौन एकादशी स्तोत्र सं० १६२४
(७) विमल गिरि स्तवन
(८) आदिनाथ स्तवन
(९) सुमतिनाथ स्तवन
(१०) पुंडरीक स्तवन
(११) स्थूलभद्र रास
(१२) जिनादि कवित्त
(१३) नेमि स्तवन
(१४) नेमि गीत

इसी नाम के एक और कवि पंद्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में वडतपगच्छ जिनदत्त सूरि के शिष्य साधु कीर्ति हो गये हैं[2]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-काल का उल्लेख नहीं किया गया है। वेलि को पढ़ने से पता चलता है कि इसमें पाट-परम्परा का उल्लेख करते हुए मुख्य रूप से युग-प्रधान जिनचंद्र सूरि की गुण-गाथा गाई गई है। सं० १६३२ में जिनचंद्र सूरि ने कवि को उपाध्याय पद प्रदान किया था। पर वेलि में इसका उल्लेख नहीं है। जिनचंद्र सूरि के जीवन-वृत्त का ऐतिहासिक विवरण भी उनके क्रियोद्धार (सं० १६१४) करने तक का ही प्रस्तुत किया गया। बाद की घटनाओं का वर्णन नहीं है। अनुमान है सं० १६१४ के आसपास ही इसकी रचना की गई हो।

रचना-विषय :

यह ५४ छंदों की रचना है। इसमे जिनभद्र सूरि से लेकर जिनचंद्रसूरि तक की खरतरगच्छीय पाट-परम्परा का वर्णन करते हुए मुख्य रूप से युग-प्रधान जिनचंद्र सूरि की यशो-गाथा गाई गई है।

प्रारंभ में कवि ने जिनेश्वर भगवान, गुरू महाराज और सरस्वती की वन्दना की है। तत्पश्चात् वस्तु का निर्देश करते हुए विनय-भावना का प्रदर्शन किया गया है[3]।

१—जैन गुर्जर कवियोः भाग १, पृ० २१९-२२१ः भाग ३ खण्ड १ पृ० ६९९-७००, खण्ड २ पृ० १४८०

२—जैन गुर्जर कवियोः भाग १, पृ० ३४

३—सबल सकल श्रुत सामिणी, सरसति दे मति माय।
विनयकरी जिणि वरणवुं, सिरि खरतर गुरुराय ॥५॥

(२) इन वेलियों में प्रायः धर्माचार्यों की पाट-परम्परा का निर्देश करते हुए कवि के गुरु-विशेष का जीवन वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है। सोमजी जैसे संघपति श्रावक भी श्रमण-कवि समय सुन्दर के वर्ण्य-विषय रहे हैं।

(३) धर्माचार्यों पर लिखी गई इन वेलियों से गच्छ विशेष की ऐतिहासिक परम्परा के संबंध-सूत्र जोड़ने में विशेष सहायता मिलती है।

(४) इन वेलियों के प्रारंभ में सामान्यतः दोहा छंद में गणेश, सरस्वती और गुरु की वंदना की गई है।

(५) भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है फिर भी यहाँ 'सव्वत्थ वेलि प्रबंध' के दोहों में तथा 'सोमजी निर्वाण वेलि' में चारणी अलंकार वयणसगाई का सफलतापूर्वक निर्वाह हुआ है।

(६) छंदों में विविधता है। मात्रिक छंद-दोहा सरसी, सखी, हरिपद-यहाँ व्यवहृत हुए हैं। 'सोमजी निर्वाण वेलि' में तथा 'सव्वत्थ वेलि प्रबंध' में वेलियो छंद प्रयुक्त हुआ है। 'सुजस वेलि' विभिन्न ढालों में लिखी गई है।

उपलब्ध प्रमुख वेलियों का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) सव्वत्थ वेलि प्रबंध[1]

प्रस्तुत वेलि मुख्य रूप से युगप्रधान जिनचंद्र सूरि से संबंध रखती है प
सुधर्मास्वामी से लेकर जिनचंद्र सूरि तक की खरतरगच्छीय पाट-परम्परा का इस
जो उल्लेख किया गया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। शीर्षक
सव्वत्थ वेलि प्रबंध-से सूचित होता है कि इस छोटी सी कृति में कवि ने सर्व अ
भर दिया है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता साधु कीर्ति[2] सत्रहवीं शती के प्रारंभ में विद्यमान थे।
खरतरगच्छीय मतिवर्धन-मेरु तिलक-दया कलश-अमर माणिक्य के शिष्य तथ
ओसवाल वंशीय संचिती गोत्र के शाह वस्तुपाल जी की पत्नी खेमलदेवी के पु
थे[3]। ये संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित थे। सं० १६२५ मिगसर वद १२ को आगरे में

१—(क) मूल पाठ मे 'वेलि' नाम नहीं आया है केवल प्रति में छंद का नाम वेलि दिया है। पुष्पिका मे लिखा है— 'इति सवच्छ वेलि प्रबंध'

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर के ग्रंथांक ७६०८ में सुरक्षित है। आकार १०३/४"×४१/२" है। प्रत्येक पृष्ठ में, १३ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ५० अक्षर हैं। कुल पत्र ३ हैं। प्रति की अवस्था अच्छी है।

२—साधु कीरति गणि इक पयंपइ, पूरउ वंछित काज (५४)

३—जैन गुर्जर कवियो : भाग १, सं० मोहनलाल दलीचंद देसाईः पृ० २१६

अकबर की सभा में तपागच्छवालों को पोषह की चर्चा में इन्होंने निरुत्तर किया था। सं० १६२२ वैशाख शुक्ला १५ को जिनचंद्र सूरि ने इनको उपाध्याय पद प्रदान किया था। सं० १६४६ की माह कृष्णा चतुर्दशी को जालोर में अनशन कर ये स्वर्ग सिधारे। इनकी निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख देसाईजी ने किया है[1]—

(१) सत्तर भेदी पूजा सं० १६१८ श्रा० शु० ५
(२) आषाढ़ भूति प्रबंध सं० १६२४ विजयादशमी
(३) शत्रुंजय (चैत्री) स्तवन
(४) प्रभाती
(५) नमि राजर्षि चौपई
(६) मौन एकादशी स्तोत्र सं० १६२४
(७) विमल गिरि स्तवन
(८) आदिनाथ स्तवन
(९) सुमतिनाथ स्तवन
(१०) पुंडरीक स्तवन
(११) स्थूलभद्र रास
(१२) जिनादि कवित्त
(१३) नेमि स्तवन
(१४) नेमि गीत

इसी नाम के एक और कवि पंद्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध में वडतपगच्छ जिनदत्त सूरि के शिष्य साधु कीर्ति हो गये हैं[2]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-काल का उल्लेख नहीं किया गया है। वेलि को पढ़ने से पता चलता है कि इसमें पाट-परम्परा का उल्लेख करते हुए मुख्य रूप से युग-प्रधान जिनचंद्र सूरि की गुण-गाथा गाई गई है। सं० १६३२ में जिनचंद्र सूरि ने कवि को उपाध्याय पद प्रदान किया था। पर वेलि में इसका उल्लेख नहीं है। जिनचंद्र सूरि के जीवन-वृत्त का ऐतिहासिक विवरण भी उनके क्रियोद्धार (सं० १६१४) करने तक का ही प्रस्तुत किया गया। बाद की घटनाओं का वर्णन नहीं है। अनुमान है सं० १६१४ के आसपास ही इसकी रचना की गई हो।

रचना-विषय :

यह ५४ छंदों की रचना है। इसमें जिनभद्र सूरि से लेकर जिनचंद्रसूरि तक की खरतरगच्छीय पाट-परम्परा का वर्णन करते हुए मुख्य रूप से युग-प्रधान जिनचंद्र सूरि की यशो-गाथा गाई गई है।

प्रारंभ में कवि ने जिनेश्वर भगवान, गुरू महाराज और सरस्वती की वन्दना की है। तत्पश्चात् वस्तु का निर्देश करते हुए विनय-भावना का प्रदर्शन किया गया है[3]।

१—जैन गुर्जर कवियोः भाग १, पृ० २१६-२२१: भाग ३ खण्ड १ पृ० ६९९-७००, खण्ड २ पृ० १४८०

२—जैन गुर्जर कवियोः भाग १, पृ० ३४

३—सकल सकल श्रुत सामिणी, सरसति दे मति माय।
विनयकरी जिणि वरणवूं, सिरि खरतर गुरुराय ॥५॥

पाट-परम्परा का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि सुधर्मा स्वामी के अनुक्रम में जिनभद्र सूरि हुए[१]। ये सं० १४७५ में गच्छनायक बनाये गये। ये एक प्रतिभाशाली विद्वान थे। इन्होंने जैसलमेर, जालोर, देवगिरि, नागौर, पाटण, मांडवगढ़, आशापल्ली, कर्णावती, खंभात आदि स्थानों पर हजारों प्राचीन तथा नवीन ग्रंथ लिखा करके भण्डारों में सुरक्षित किये। सं० १५१४ मिगसर वद ९ को कुंभलमेर में इनका स्वर्गवास हुआ[२]। इनके बाद जिनचंद्र सूरि हुए[३]। ये साहु शाखा के वच्छराज की भार्या स्याणी के पुत्र थे। संवत १५३० में जैसलमेर में इनका स्वर्गवास हुआ[४]। इनके बाद जिनसमुद्र सूरि हुए[५]। इन्होंने पंचनदी साधन आदि करके खरतरगच्छ की उन्नति की। जैसलमेर के श्री अष्टापद प्रासाद में जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा कराई। सं० १५५५ में अहमदावाद में इनकी मृत्यु हुई। इनके बाद जिनहंस सूरि[६] हुए इन्होंने सिकन्दर लोदी को चमत्कृत कर ५०० बन्दी जनों को कारागृह से मुक्त करवाया[७]। (सं० १५८२ में पाटण मे इनका स्वर्गवास हुआ) इनके बाद जिनमाणिक्य सूरि हुए[८]। ये कूकड़ चोपड़ा गोत्रीय संघपति राउलदे के पुत्र थे। इन्होंने बीकानेर के मंत्रीश्वर कर्मसिंह के बनवाये हुए श्री नमिनाथ स्वामी के मंदिर की प्रतिष्ठा की।

गरुस्वागुरु खरतर गणइ, भरिया गुणह भंडार।
वदनि रसन सत अणवइ, पणि को न लहइ पार ॥६॥
चमकइ भगति भली चितइ, बोलवइ ते वाणि।
कोइल जे कलरव करइ, पुणि सहकार प्रमाणि ॥७॥
खरतर गछ सायर खरउ, सुगति सुहिर गुणि जोइ।
पुरुष रयण करि पूरीयइ, सकइ न गंजी कोइ ॥८॥

१—सुहम स्वामि अनुक्रमि सवे, धरिजे जुगह प्रधान।
सिरि जिणभद्र जतीसरु, थयउ वियारह थान ॥९॥

२—युग-प्रधान श्री जिनचंद्र सूरिः पृ० १७

३—तयणु पाटि थाप्यउ तिणइ, रूपवंत महिरेह।
श्री जिनचंद्र सु संजमी, गुणमणि माणिक मेह ॥१२॥

४—ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रहः पृ० १८ (काव्या ना ऐतिहासिक सार)

५—समुद्र सूरि सा वडस गुरु, पाट तिणइ सुप्रसिद्ध ॥१४॥
गुणह अगाह अंग जंयउ, विपन विदारण वीर।
समुद्र सूरि जइसउ समुद्र, भाग गहीर गभीर ॥१५॥

६—हंस सूरि तेहन हुयउ, पाटइ अधिक प्रताप :
वंति चोरड़ा विसेसीयइ, प्रणम्या जायइ पाप ॥१६॥

७—बंदी खाणइ बंदीया, संग्रहीया सुरताजि।
श्री सूरि छोडवीया मन्त्रि पंच सया परिमाण ॥

८—माणिक सूरि महा गुणी, पाटइ तेह प्रधान।
चतुर चितामणि चोरड़ा, वंस वधारण वान ॥१८॥

इनके बाद जिनचंद्र सूरि हुए[1]। ये जोधपुर राज्यान्तर्गत खेतपुर गांव के निवासी थे (सं० १५६५ चैत्र कृष्ण १२ को इनका जन्म हुआ) इनके पिता श्रीवन्तशाह ओसवाल जातीय रीहड़ गोत्र के थे। इनकी माता का नाम श्रियादेवी था[2]। (इनका जन्म-नाम सुलतान कुमार था) सं० १६०४ में ये दीक्षित हुए[3]। सं० १६१२ आषाढ़ शुक्ला ५ को जिनमाणिक्य सूरि का स्वर्गवास हुआ। वे किसी को अपना पट्टधर न बना सके। तब जैसलमेर के समस्त संघ और वहाँ के राउल श्री मालदेव (शासन-काल सं० १६०७-१६१८) ने इन्हें (सं० १६१२ भादवा शुक्ला ६ गुरुवार को) आचार्य पद दिलाया[4]। तब से ये जिनचंद्र सूरि कहलाये। बीकानेर के मंत्री (संग्रामसिंह बच्छावत) ने इनके पास बीकानेर पधारने की विनती भेजी। सं० १६१३ में इनका बीकानेर चातुर्मास हुआ। साधुओं में शिथिलाचार देखकर (सं १६१४ मे) क्रियोद्धार किया[5]।

ये महिमा में मेरु पर्वत के समान और दीप्ति मे सूर्य की तरह जाज्वल्यमान थे। इनका जीवन निर्विकार और गंगाजल की तरह पवित्र था। दूसरों के गुणों की ये प्रशंसा करने वाले थे। छिद्रान्वेषण की प्रवृत्ति इनमें नही थी[6]। जंबूकुमार की तरह उन्होने कामदेव को वश मे कर लिया था[7]।

कलापक्ष :

कवि की भाषा साहित्यिक राजस्थानी है। उसने चारणी शैली के प्रमुख शब्दालंकार वयणसगाई का सर्वत्र प्रयोग किया है—

जिणवर जग गुरु जागतउ, पहिलउ प्रणमुं पास।
जासु पसायइ संपजइ, विधि विधि सवे विलास ।।१।।

१—पाटि हिवइ तिणि प्रगटीयउ, पुण्यउ करइ प्रकास।
चंद्रसूरि चारित चतुर, नितु सवि सुखां निवास ।।२०।।

२—जनय भूमि मरु देसिजसु, रीहड कुलइ रतन्न।
उरि सिरीयादे प्रवतरयउ, सिरिवन्त साह सुतन्न ।।२१।।

३—श्री जिनमाणिक्य सूरि नइ, सइ हथि संजम सार।
आदरीयउ प्राणंदसुं, चालइ निरती चार ।।२२।।

४—पाम्यउ श्री गुरि पूज्य पद, जैसलमेरु सुजंगि।
महा महोछव मंडीयउ, राउल मोलि सुरंगि ।।२३।।

५—मुनिमंडल सुं माल्हतइ, बीकानयर विशेष।
किरियोद्धार जिणइ करी, राखी नवखंड रेख ।।२४।।

६—पर परि सवि गुणि परखीयउ, दूषण किणइ न दीध।
वड भागी वसुहतरइ, संजम सदा समृद्ध ।।३४।।

७—जबूं वयर कुमार जिउं, अनुपम सील उदार।
मयण महा भड मोडीयउ, एणि गुरइ इकतार ।।३५।।

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक आदि व्यवहृत हुए हैं—

उपमा :

(१) कोइ विकार नही कन्हइ, महिमा मेरु समान (२५)
(२) तप तेजइ अहनिसि तपइ, अरुण जेम आकासि (२७)
(३) गंगा-जल जइ सउ गुणे, धरम धुरन्धर धीर (२८)

सांगरूपक :

खरिण तिणि सुहाथि खमा करि खइड्ड, कीधउ तपो करवाल।
आणंद परक्कम चाप आरोपी, बाण गमासु विसाल॥
आयुप छत्रीस गुहि अनुपम, रंजवीया रायराण।
तरसाइ विवेकउ रंगम ताजी, प्रीति परट्ठी पलाण॥४३॥

छंद :

कवि ने दोहा और वेलि[1] छंद का मिश्रित प्रयोग किया है। प्रारंभ में ४१ दोहे आये हैं। बाद में चार वेलि छंदों के बीच दो-दो दोहे। यहाँ जिस वेलि छंद का प्रयोग हुआ है उसके विषम चरण में १८ तथा सम चरण में ११ मात्राएँ हैं।

उदाहरण:

दोहा :

सदासहु सुख संपजइ, पुरि जिरिण करइ प्रवेस।
सिरजिणहार सिरिजयिउ, नवखंड तणउ नरेस॥४६॥

वेलि :

नवखंड नरेस नव निधि नामई, सीलि विघइ सुविचार।
जसवंति सदा सहु अइगुण जोतां, साधु तणउ सिणगार॥
सेवक्क सुद्रे ढि सुधीर सखीवइ, न्याय धणी विधि नूर।
वंदउ जिणचंद मुणिंद भली विधि, दंसणि पातक दूरि॥५०॥

अन्तिम छंद के लिए 'रामगरी रागे' लिखा है। लक्षणों के अनुसार वह सरसी है[2]। छंद इस प्रकार है—

जां लगि मेरु महीधर निश्चल, जां जगि दू रविचंद।
जां लगि दीप सवे जयवंता, सागर जाम अयंद॥
तां लगि श्री जिनचंद मुणीसर, सुखइ करउ चिर राज।
साधु कीरति गणि इम पयंपइ, पूरउ वंछित काज॥५४॥

१—हस्तलिखित प्रति में छंद का नाम 'वेलि' लिखा है।
२—इसमें १६-११ के क्रम से २७ मात्राएँ होती हैं। अन्त में ऽ। रहता है।

(२) जइतपद वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि का संबंध पौषध संबंधी ऐतिहासिक शास्त्रार्थ चर्चा से है। यह चर्चा तपागच्छ और खरतरगच्छ वालों के बीच सम्राट अकबर की सभा में हुई थी।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता श्री कनकसोम सत्रहवीं शती के कवियों में से थे। ये खरतरगच्छीय दयाकलश के शिष्य अमरमाणिक्य के शिष्य साधुकीर्ति के गुरु भ्राता थे[2]। ओसवाल नाहटा परिवार मे इनका जन्म हुआ था। संवत् १६३८ मे जब जिनचंद्र सूरि सम्राट अकबर के आमन्त्रण पर लाहौर पधारे तब ये भी साथ थे[3]। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं—

(१) जइतपद वेलि (सं० १६२५)
(२) जिनपालित जिन रक्षित रास (सं० १६३२)
(३) आषाढ भूति चौपाई (संबंध) (सं० १६३८)
(४) हरिकेशी संधि (सं० १६४०)
(५) आर्द्रकुमार चौपाई (सं० १६४४)
(६) मंगल कलश रास (सं० १६४९)
(७) थावच्चा सुकोशल चरित्र (सं० १६५५)
(८) जिनवल्लभ सूरि कृत पांच स्तवनों पर अवचूरि
(९) कालिकाचार्य कथा
(१०) जिनचंद्र सूरि गीत
(११) हरिवल संधि
(१२) नेमि फाग

१—(क) मूल पाठ मे वेलि-नाम नही आया है। आरंभ में लिखा है "जइतपद वेलि"

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर के ग्रंथांक, ७६१७ मे सुरक्षित है। प्रति का आकार १०$\frac{1}{2}$"×४" है। यह ३ पत्रों मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में ११ पक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति मे ३७ अक्षर हैं।

(ग) प्रकाशित-ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रहः संपादक-अगरचंद-भंवरलाल नाहटा, पृ० १४०–१४४।

२—"दया" अमरमाणिक्य "गुरुसीस" साधुकीर्ति लही जगीस।
मुनि "कनकसोम" इम भाखइ, चउविह श्री संघ की साखइ ॥४९॥

३—युग-प्रधान श्री जिनचंद सूरिः अगरचंद-भंवरलाल नाहटा

अर्थालंकारों में उपमा, रूपक आदि व्यवहृत हुए हैं—

उपमा :

(१) कोइ विकार नही कन्हइ, महिमा मेरु समान (२५)
(२) तप तेजइ अहनिसि तपइ, अरुण जेम आकासि (२७)
(३) गंगा-जल जइ सउ गुणे, धरम धुरन्धर धीर (२८)

सांगरूपक :

खणि तिणि सुहाथि खमा करि खड्गउ, कीधउ तपो करवाल।
आणंद परक्कम चाप आरोपी, वाण गमासु विसाल॥
आयुध छत्रीस ग्रुहि अनुपम, रंजवीया रायराण।
तरसाइ विवेकउ रंगम ताजो, प्रीति परट्ठी पलाण॥४३॥

छंद :

कवि ने दोहा और वेलि[1] छंद का मिश्रित प्रयोग किया है। प्रारंभ में दोहे आये हैं। बाद में चार वेलि छंदों के बीच दो-दो दोहे। यहां जिस वेलि छंद प्रयोग हुआ है उसके विषय चरण में १८ तथा सम चरण में ११ मात्राएं हैं।

उदाहरण:

दोहा :

सदासहु सुख संपजइ, पुरि जिणि करइ प्रवेस।
सिरजिणहार सिरजियिउ, नवखंड तणउ नरेस॥४६॥

वेलि :

नवखंड नरेस नव निधि नामई, सीलि विधइ सुविचार।
जसवंति सदा सहु अइगुण जोतां, साधु तणउ सिणगार॥
सेवक्क मुद्रे ठि सुधीर ससीवइ, न्याय धणी विधि नूर।
वंदउ जिणचंद मुणिंद भली विधि, दंसणि पातक दूरि॥५०॥

अन्तिम छंद के लिए 'रामगरी रागे' लिखा है। लक्षणों के अनुसार य सरसी है[2]। छंद इस प्रकार है—

जां लगि मेरु महीधर निश्चल, जां जगि दु रविचंद।
जां लगि दीप सवे जयवंता, सागर जाम अयंद॥
तां लगि श्री जिनचंद मुणीसर, सुखइ करउ चिर राज।
साधु कीरति गणि इम पयंपइ, पूरउ वंछित काज॥५८॥

१—हस्तलिखित प्रति में छंद का नाम 'वेलि' लिखा है।
२—इसमें १६-११ के क्रम से २७ मात्राएं होती हैं। अन्त में ऽ। रहता है।

(२) जइतपद वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि का संबंध पौषध संबंधी ऐतिहासिक शास्त्रार्थ चर्चा से है। यह चर्चा तपागच्छ और खरतरगच्छ वालों के बीच सम्राट अकबर की सभा में हुई थी।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता श्री कनकसोम सत्रहवीं शती के कवियों मे मे थे। ये खरतर-गच्छीय दयाकलश के शिष्य अमरमाणिक्य के शिष्य साधुकीर्ति के गुरु भ्राता थे[2]। ओसवाल नाहटा परिवार में इनका जन्म हुआ था। संवत् १६३८ में जब जिनचंद्र सूरि सम्राट अकबर के आमन्त्रण पर लाहौर पधारे तब ये भी साथ थे[3]। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं—

(१) जइतपद वेलि (सं० १६२५)
(२) जिनपालित जिन रक्षित रास (सं० १६३२)
(३) आषाढ भूति चौपाई (संबंध) (सं० १६३८)
(४) हरिकेशी संधि (सं० १६४०)
(५) आर्द्रकुमार चौपाई (सं० १६४४)
(६) मंगल कलश रास (सं० १६४९)
(७) थावच्चा सुकोशल चरित्र (सं० १६५५)
(८) जिनवल्लभ सूरि कृत पांच स्तवनों पर अवचूरि
(९) कालिकाचार्य कथा
(१०) जिनचंद्र सूरि गीत
(११) हरिवल संधि
(१२) नेमि फाग

१—(क) मूल पाठ में वेलि-नाम नही आया है। आरंभ मे लिखा है "जइतपद वेलि"
(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर के ग्रंथांक, ७६१७ में सुरक्षित है। प्रति का आकार १०½"×४" है। यह ३ पत्रों मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे ११ पंक्तियां हैं और प्रत्येक पंक्ति मे ३७ अक्षर हैं।
(ग) प्रकाशित-ऐतिहासिक जैन काव्य-संग्रहः संपादक-अगरचंद-भंवरलाल नाहटा, पृ० १४०–१४४।

२—"दया" अमरमाणिक्य "गुरुसीस" साधुकीर्ति लही जगीस।
मुनि "कनकसोम" इम भाखइं, चउविह श्री संघ की साखइं ॥४६॥

३—युग-प्रधान श्री जिनचंद सूरिः अगरचंद-भंवरलाल नाहटा

रचना-काल :

प्रस्तुत वेलि की रचना सं० १६२५ में आगरा में हुई थी[1]। काव्य में घटित घटना का समय एवं स्थान भी यही है।

रचना-विषय :

संवत् १६२५ मिगसर बदी १२ को आगरे में खरतरगच्छीय साधुकीर्ति ने अकबर की सभा में तपागच्छ वालों को पौषध की चर्चा[2] में निरुत्तर किया था, इसी ऐतिहासिक घटना का वर्णन कवि ने प्रस्तुत वेलि के ४६ छंदों में किया है।

प्रारंभ में सरस्वती की वन्दना करते हुए वस्तु का संकेत किया गया है[3]। तत्पश्चात् संवत १६२५ में उपाध्याय दयाकलश के आगरे में हुए चातुर्मास तथा उनके साथ रहे हुए रतनचंद, साधुकीर्ति, हीररंग, देवकीर्ति, हंसकीर्ति, कनकसोम, पुण्यविमल, देवकमल, ज्ञानकुशल, यशकुशल, रंगकुशल, इलानंद, कीर्तिविमल आदि मुनियों का विवरण दिया गया है। इसी चातुर्मास में तपागच्छीय मुनि बुद्धिसागर की ओर से पौषध-चर्चा उठाई गई और संघवी सतीदास के माध्यम से खरतरगच्छीय साधु साधुकीर्ति को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा गया[4]। मिगसर बदी ६

१—सोलहसय पंचीसइ समइं, वाचक 'दया' मुनीस ।
चउमासि आया आगरे, बहु परि करि सुजगीस ॥३॥

२—पौषधोपवास को लेकर खरतरगच्छ और तपागच्छ की शास्त्रीय मान्यताओं में दो प्रकार का भेद है—

(१) खरतरगच्छ के अनुसार पौषध पर्व तिथियों मे ही किया जाना चाहिए जबकि तपागच्छ के अनुसार वह किसी भी दिन किया जा सकता है।

(२) खरतरगच्छ के अनुसार पौषध उपवास में ही किया जाना चाहिए जबकि तपागच्छ के अनुसार वह एकासणे में भी किया जा सकता है

(प्रश्नोत्तर चत्वारिंशत शतक : सं० बुद्धिसागर गणि)

३—सरसति सामणी वीनवुं, मुझ दे अमृत वाणि ।
मूल थकी खरतर तणा, करिस्यूं विरुद वखाणि ॥१॥
श्रावक आवी मिली सुणौं, मन धरि अति आणंद।
चित्त विषवाद न को धरउं, साचउं कहइ मुणींद ॥२॥

४—तपले चरचा उठाई, श्रावक ने बात सुणाई ॥८॥
मो सरिखो पंडित जोई, नहीं मझि आगरे कोई ॥
तिणि गर्व इसो मन कीधउ बुद्धिसागर अपयश लीधउ ॥६॥
श्रावक आगै इम बोलइं, मन्ह गाथा रस (थ?) कुण खोलइ।
श्रावक कहइ गर्व न कीजइ, पूछी पंडित समझीजइ ॥१०॥
संघवी सतीदास कुं पूछइं, तुम्ह गुरु कोइ इहां छइ।
संघवी गाजी नइं भाखइं, साधुकीर्ति स्युं इम दाखइं ॥११॥

को प्रातःकाल विद्वानों के बीच चर्चा हुई जिसमे साधुकीर्ति विजयी घोषित हुए[1]।

इस विजय से तपागच्छीय साधु पद्म सुन्दर तिलमिला उठे और उन्होंने जाकर बादशाह अकबर को फिर शास्त्रार्थ के लिये निवेदन किया। फलस्वरूप मिगसर वदी १२ को कविराजाओं की सभा में बादशाह के समक्ष चर्चा प्रारंभ हुई फिर भी विजय श्री खरतरगच्छ के हाथों रही[2]।

इससे संपूर्ण खरतरगच्छ में उत्साह की लहर दौड़ गई, विजय के नगाड़े गूंज उठे अतः द्वेष प्रेरित होकर तपागच्छ वालों ने बादशाह को इस बात की शिकायत की कि ये बिना राजाज्ञा के नगाड़े कैसे बजाये जा रहे हैं ? इसके प्रतिवाद के लिये खरतरगच्छ के घोघू, चाइमल्ल, नेतसी, मेघउ, पारस, नेमिदास, धणराज, सहजसिंघ, गंगादास, भोज, श्रीचंद, श्रीवच्छ, अमरसी, दरगह, परबत, छाजमल, सामीदास आदि श्रावक बादशाह अकबर से विजय के नगाड़े बजाने की राजाज्ञा प्राप्त करने के लिये गये[3]। बादशाह ने तत्संबंधी आज्ञा हो नही दी वरन् सबको शाबाशी भी दी। इस प्रकार तपागच्छ की पराजय और खरतरगच्छ की विजय हुई[4]।

कवि ने तत्कालीन धार्मिक परिस्थिति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। जिस प्रकार शैव और वैष्णवों में पारस्परिक संघर्ष था उसी प्रकार जैन-धर्म मे भी शास्त्रार्थ करने का पूर्ण-उत्साह और नियम था जिसमें श्रावक ही नहीं स्वयं

लिखि कागद तिणि इक दीन्हउं, श्रावक वचनै न पतीनउं।
पोसह तिहि एक प्रकार, भ्रमि भूलउ ते अविचार ॥१२॥
साधुकीर्ति तत्व विचार्यो, तत्वारथ माहि संभार्यो।
पोषध छंइ दोइ प्रकार, बूझ्यो नहीं सही गमार ॥१३॥

१—अनिरुद्ध महादे मिश्र, मिलिया तिह भट्ट सहश्र।
साधुकीर्ति संस्कृत भासइं, बुधिसागर स्युं स्युं दासइं ॥२४॥
पंडित कहइ मूढ गमार, तेरो नाम छै बुद्धि कुटार।
पोषह चरचा दिन पंच, साचउं खरतर पक्ष संच ॥२५॥

२—पंडित सभ बोलइं एम, निर्णय कीधो छै जेम।
खरतरगच्छ कउं पक्ष साचउं, तपना पखि कोइ न राचउ ॥३२॥

३—छंद संख्या, ३४-४२

४—खरखरे जइतपद पायो, मागत जन सहु अनु लायउं।
पंच सबद व बाइ अनेक, पहिरावा संधि विवेक ॥४६॥
हारयंउ तपनो सहु जाणइं, खरतर कुं लोक वखाणइं।
साखी भट्ट घरइं इण बाजइं, खरतर पक्ष गुरु दिस्पावइ ॥४७॥

सम्राट तक रस लेता था। शास्त्रार्थ में अन्य प्रान्तीय (गुजराती आदि) भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत का अधिक प्रभाव पड़ता था[1]।

कलापक्ष :

कवि में वर्ण्य-विषय को स्पष्ट करने की पूर्ण क्षमता है। भाषा भावानुकूल उठती गिरती है। उसमें अलंकारों का चमत्कार न होने पर भी प्रवाह है। यत्र-तत्र मुहावरे भी आये हैं—

(१) मिली पदमसुन्दर नई आखउं, गच्छव्यासी को पत राखउं ॥१४॥
(२) गाल बजाडइं ऋषिमती, हिव ढीला तुम्ह कांइं ॥१८॥

एक जगह संघ-विस्तार के लिते वट वृक्ष की उपमा बड़ी सुन्दर है—

वड़ जिम साखा विस्तरी, दिन दिन चड़ते वान ॥७॥

छंद :

दोहा और सखी छंद का प्रयोग किया गया है। जगह-जगह मात्राएँ घटती-बढ़ती रही हैं।

(३) गुरूवेलि[2]

प्रस्तुत रचना का संबंध वेलिकार धर्मदास के गुरु भट्टारक गुणकीर्ति से है। गुणकीर्ति का काल १७वीं शती का प्रारंभ रहा है[3]। ये सुमतिकीर्ति के शिष्य थे[4]।

कवि-परिचयः

इसके रचयिता धर्मदास हैं। ये दिगम्बर संप्रदाय के सुमतिकीर्ति के शिष्य भट्टारक गुणकीर्ति के शिष्य थे[5]।

१—साधुकीर्ति संस्कृत भाखइं, बुधिसागर स्युं स्युं दाखइं (२४)

२—(क) मूल पाठ मे वेलि-नाम आया है—ब्रह्म धर्मदास भणि मुविचारी, गुरु वेलि रचिये रसाल (२८)

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति भट्टारक भंडार, अजमेर के गुटका नं० ५६ मे सुरक्षित है। प्रति का आकार ६"×५½" है। यह ३½ पत्रों (पृष्ठ २० से २८ में) लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में १८–१६ अक्षर हैं। प्रति की अवस्था अच्छी है।

३—राजस्थान के जैनशास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूचीः भाग २ : सं० कस्तूरचन्द कासलीवाल, पृ० १७ (चित्रसेन पद्मावती चरित्र ले० का० १६५६)

४—श्री सुमतिकीर्ति तणि पाटि प्रगटो, जिम उदयाचलि भाण ॥३॥

५—श्री गुणकीरति भट्टारक प्रगटो, संघ सहित विख्यात।
ब्रह्म धर्मदास भणि सुविचारी, गुरुवेलि रचिये रसाल ॥२८॥

रचना-काल :

वेलि मे रचना-काल का उल्लेख नहीं है न पुष्पिका ही दी है। धर्मदास की एक रचना 'समाधि' का उल्लेख मिलता है जो श्री दि० जैन मंदिर बड़ा तेरह पंथियों का भंडार, जयपुर में गुटका नं० ११५, वेष्टन नं० ५४५ में है। इसी गुटके में कनकसोम रचित 'आषाढ भूति मुनि चौपाई' (रचना संवत १६३८) भी है[१]। इस आधार पर यह अनुमान करना कि प्रस्तुत रचना सं० १६३८ के पूर्व रची गई है असंगत न होगा।

रचना-विषय :

यह २८ छंदों की छोटी सी रचना है। इसमें कवि ने अपने गुरु भट्टारक गुणकीर्ति का जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया है। प्रारंभ मे जिनेश्वर भगवान, गुरुराय और शारदा की वन्दना करते हुए वस्तु का निर्देश किया गया है[२]। सुमतिकीर्ति के पाट पर गुणकीर्ति बैठे। गुणकीर्ति परम सुन्दर, प्रतापी और जगत वन्दनीय थे। बचपन से ही वे बुद्धिमान, सकल कलाओं के जानकर और पिंगल, व्याकरण, तर्क, प्रमाण शास्त्र आदि के मर्मज्ञ थे। इनकी माता का नाम शरियादे था। चतुर्विध संघ ने मिलकर डूंगरपुर मे[३] इनके कंधों पर गच्छ का भार डाला। ये देश के विभिन्न प्रान्तों[४] मे धर्मोपदेश देते हुए घूमते रहे। बड़े बड़े राजा-महाराजाओं और कवियों ने इनकी प्रशंसा की। चरित्र-पालन और तप-संयम मे ये गणधर के समान वीर थे। इनके गुणों की थाह लेना समुद्र की लहरों या आकाश के तारों को गिनना है[५]।

कला-पक्ष:

काव्य की भाषा सरल होते हुए भी साहित्यिक है। उसमें माधुर्य और प्रवाह है। यथा:—

१—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारो की ग्रंथ सूची : सं० कस्तूरचन्द कासलीवाल, भाग २, पृ० ३४८।

२—शुभकर जिन पद प्रणमवि, समरवि सहि गुरु राय।
सारदा मभ्क कृपा करी. निर्मल बुधि द्यो माय ॥१॥
गिरुउ गछपति जाणिजि, श्री गुणकीर्ति गुणमाल।
वर्णवूं तेह गुंण रंग भरी, मधुरी वाणि विलास ॥२॥

३—गिरिपुरि पाटा सुथापिया, त्रिभूवान होय जयकार ॥६॥

४—गुरु पूरब पल्लव दिस प्रसिद्ध, वलि कुकर्णनि कर्णाट।
कामरु कोशल निवारु जागल, मालवनि मेदिराट ॥१२॥
दक्षण देशी गुरु जाणिता वलि, राय देश गुजरात।
सोगथि सोभा मति घणी, वागडि बीर विख्यात ॥१३॥

५—समुद्र कल्लोल संख्या नही, जिम तारा मे मंभ्यार।
तिम श्रीपूज्य ना गुण मति घणा, कहिता न लिहुं पार ॥२५॥

सहजि सुन्दर रुपि पुरन्दर, परम प्रतापी एहा।
जगत्रमि वन्दन पाप निकन्दन, चन्दन चर्च्चित देहा ।।४।।

अलंकारों में उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षा का ही विशेष रूप से प्रयोग हुआ है। सांग रूपक के उदाहरण देखिये-

चरित्र-नायक क्षमा रूप खड्ग हाथ में लेकर क्रोधादि शत्रुओं को नष्ट करता है—

क्षमा खड्ग वलि करि धरी, करयु क्रोध वोरी संघार।
अशुभ कर्म्म सवि नीरजरी, परहरि लोन असार ।।१८।।

उसने ज्ञान रूपी अंकुश से मन रूपी हाथी को वश में कर मदन रूपी महाराजा पर भी अधिकार कर लिया है—

ज्ञान आंकुश हृदेइ करि, मन मेंगल वश कोघ।
मयण महाराय जीपिनो, जगत्र माहि जश लीध ।।२१।।

छंद :

कवि ने दोहा और हरिपद[1] का प्रयोग किया है।

उदाहरण :

दोहा :

जगि जोतां जपति वर भलो, विद्यावंत विशेष।
तप तेजि दिनकर समो, महिमा देश विदेश ।।१०।।

हरिपद:

जिपिवाद शाद संघनि परिगाजि, भाजिवा दिगज धीर।
वादि शिरोमणि वादि विभूषण, दूषण रहित शरीर ।।१५।।

(४) सुजस वेलि[2]

प्रस्तुत वेलि श्रीमद्यशोविजय के ऐतिहासिक जीवन-वृत्त से संबंध रखती है।

१—इसके विषम चरण में १६ तथा सम चरण में ११ मात्राएँ होती हैं। अंत में गुरु लघु होते हैं—छंद प्रभाकर, पृ० ८६

२—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—सुजस वेलि सुणतां संघेजी,
कातिं सकल गुण पोष।

(ख) प्रकाशित—सम्पादक : मोहनलाल दलीचंद देसाई : ज्योति कार्यालय, धनतोल, अहमदाबाद।

यशोविजय तपागच्छीय नयविजय के शिष्य थे[1]। ये संस्कृत-प्राकृत के प्रकाण्ड पंडित थे। इनकी छोटी-बड़ी कई कृतियां मिलती हैं।

कवि-परिचय:

इसके रचयिता कांतिविजय[2] अठारहवीं शती के प्रसिद्ध कवियों में से थे। ये तपागच्छ के आचार्य हीरविजय सूरि के प्रशिष्य कीर्तिविजय के शिष्य और उपाध्याय विनयविजय के गुरुभ्राता थे[3]। इसी शताब्दी में कांतिविजय नाम के एक और कवि हो गये हैं जो विजयप्रभ सूरि के शिष्य प्रेमविजय के शिष्य थे[4]। देसाई जी ने आलोच्य कवि की निम्नलिखित दो कृतियों का उल्लेख किया है[5]–

(१) संवेग रसायन बावनी
(२) सुजस वेलि

रचना-काल :

वेलि के रचना-काल का उल्लेख न तो कवि ने किया है न प्रतिलिपिकार ने। पुष्पिका से केवल इतना पता चलता है कि इसकी प्रतिलिपि 'ठाकोर मूलचन्द पठनार्थ' की गई। देसाईजी के अनुसार इसकी रचना संवत १७४५ के आस-पास पाटण में की गई[6]।

रचना-विषय :

यह वेलि ४ ढालों के ५२ छन्दों मे लिखी गई है। इसमें तपागच्छीय आचार्य यशोविजय की गुण गाथा गाई गई है। इसके पढ़ने से चरित्र-नायक के जीवन-इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। संक्षेप में वेलि का सार इस प्रकार है–

गुजरात में कनोडु नामक ग्राम था। वहाँ नारायण नामक वणिक् रहता था उसके सोभागदे नाम की स्त्री थी। यशोविजय इन्हीं की सन्तान थे। इनका

१—जैन गुर्जर कवियो : भाग २ : मोहनलाल दलीचन्द देसाई : पृ० २०–३७
२—इस वेलि की प्रत्येक ढाल के अन्त में कवि ने अपना नामोल्लेख किया है–
(१) सुजस वेलि सुणतां संपेजी, कांति सकल गुण पोष ॥ ढाल १ ॥
(२) कांति महारङ्ग रेलि, सही लहिस्यें तिके हो लाल सही ॥२॥
(३) सुजस वेलि इमि सुणता, संपजेंजो, कांति सदा जयकार ॥३॥
(४) कांति कहे जसवेलड़ी सुणतां हुइ धन धन दोहा रे ॥४॥
३—जैन गुर्जर कवियो : भाग २, पृ० १८१
४—वही : पृ० ५२६
५—वही : पृ० २८१–२८२
६—'श्री पाटणना संघनो सही, अति आग्रह सुविशेषि रे।
सोभागी दुणकुलइ इमि सुजस वेली म्हे लेखि रे' ॥८॥ ढाल ४॥

जन्म-नाम जसवन्तकुमार था। संवत् १६८८ में नयविजय के धर्मोपदेश से विरक्त होकर ये दीक्षित हुए। संवत् १६९९ में इन्होंने राजनगर में अष्ट अवधान किया। शाह धनजी की आर्थिक-सहायता से ये अध्ययन के लिए काशी गये और एक भट्टाचार्य के सान्निध्य में रह कर न्याय, मीमांसा, दर्शन आदि का गंभीर ज्ञान प्राप्त कर दूसरे हेमचन्द्राचार्य का विरद धारण किया। वहीं एक सन्यासी को शास्त्रार्थ में पराजित कर 'न्याय विशारद' की उपाधि प्राप्त की और तीन साल बाद आगरा आये।

आगरे में एक न्यायाचार्य के पास चार वर्ष तक तर्क, सिद्धान्त एवं प्रमाण शास्त्र का अध्ययन किया तत्पश्चात् विजय वैजयन्ती फहराते हुए इन्होंने अहमदाबाद में प्रवेश किया। वहां उनकी कीर्ति चारों ओर फैल गई। गूर्जरपति महोबतखां भी इनसे प्रभावित होकर दर्शनार्थ आये। संवत १७१८ में विजयप्रभ सूरि ने इन्हें उपाध्याय पद प्रदान किया। ये तपागच्छ में अक्षोभ यति और महान तपस्वी थे संवत् १७४३ में डभोई में इनका स्वर्गवास हुआ।

कला-पक्ष :

कांति-विजय ने सीधी-साधी भाषा में अपने चरित्र-नायक के जीवन-प्रसङ्ग की प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया है। भाषा भावानुकूल और प्रवाहमयी है। उसमें गुजराती का पुट है। यत्र-तत्र अलङ्कार भी आये हैं-

यशोविजय को सूर्य की उपमा देते हुए कहा है-
'कुमत-उत्थापक ए ज्योजी, वाचक कुलमां रे भाण ॥३॥ ढाल १॥

उनकी ज्ञान-गरिमा के लिये कहा है-
'साकरदल मां मिष्टताजी, तिम रही मति श्रुत व्यापि' ॥१४॥ ढाल १॥

रूपक और उत्प्रेक्षा का प्रयोग देखियेः-

(१) भट चट वादी विबुधें बींटीओजी, ताराई जिम चंद।
भविक चकोर उल्लासन दीपतोजी, वादी गुरुड गोविंद ॥३॥ ढाल ३॥

(२) संवेगी शिर सेहरो, गुरू ग्यानरयण नो दरियो रे।
परमत-तिमिर उच्छेदिवा, ए तो बालारुण दिनकरियो रे ॥७॥ ढाल ४॥

उनके उपकार की समता गङ्गाजल से की है-
'गङ्गाजल कणिका थकी, एहना अधिक अर्छे उपगारो रे' ॥१॥ ढाल ४॥

वचन-रचना को एक ओर उपनिषद् और वेद की तरह गूढ़ बतलाया है तो दूसरी ओर चांदनी की तरह शीतल भी-

वचन-रचना स्यादवादनां, नय निगम अगम गंभीरो रे।
उपनिपदा जिम वेदनी, जस कठिन लहें कोई धीरो रे ।।२।।
शीतल परमानन्दिनी, शुचि, विमल स्वरूपा साची रे।
जेहनी रचना चंद्रिका, रसिया जण सेवें राची रे ।।३।। ढाल ४।।

छन्द :

ढाल । तर्ज इस प्रकार है–

(१) पहली ढालः–झांझरी ग्रानी देशी,
झांझरिया मुनिवर, धन धन तुम अवतार–ए देशी

(२) दूसरी ढालः–थांरा मोहलां ऊपरि,
मेह झबुके बीजली हो लाल झबुके बीजली ग्रे देशी।

(३) तीसरी ढालः–खंभाईती
चालो साहेली वीद विलोकवा जी ग्रे देशी

(४) चौथी ढालः–ग्राज ग्रमारें ग्रागणिये ग्रे देशी।

(५) शुभ वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि तपागच्छीय जैन साधु शुभविजय के जीवन वृत्त से सम्बन्ध रखती है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वीरविजय शुभविजय के शिष्य थे। ये उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध के श्रेष्ठ कवियों में से थे। ये राजनगर (ग्रहमदाबाद) के रहने वाले थे। इनके पिता जद्गेसर गुजराती ब्राह्मण थे। इनकी माता का नाम विजया ग्रौर पत्नी का रत्नीयात था। एक बार ये बहुत ग्रधिक बीमार पड़ गये ग्रौर किसी भी डाक्टर से ग्रच्छे नहीं हुए तब काव्य के चरित्र-नायक शुभविजय ने इनके रोग को दूर किया। संवत १८४८ के कार्तिक मे खंभात मे दीक्षा ग्रङ्गीकृत कर ये शुभविजय के शिष्य बन गये। तबसे इनका नाम श्री वीरविजय पड़ गया। ये बड़े शास्त्राचार्य ग्रौर तार्किक थे। धर्म-प्रभावना के इन्होने कई महत्वपूर्ण कार्य किये। वीरविजय ग्रौर भाणविजय इनके गुरु भ्राता थे। संवत १९०८ मे भाद्रपद कृष्णा तृतीया गुरुवार को इनका स्वर्गवास हुग्रा। देसाईजी ने इनके निम्नलिखित ग्रन्थों का परिचय दिया है[2]–

१—प्रकाशित–वीरविजय उपासरा : ग्रहमदाबाद

२—जैन गुर्जर कवियो : भाग ३ खण्ड १ : सपादक मोहनलाल दलीचन्द देसाई, पृ० २१० से २४६

(१) सुर सुन्दरी रास
(२) अष्टप्रकारी पूजा
(३) नेमिनाथ विवाहलो
(४) शुभ वेली
(५) स्थूलिभद्रनो शीयल वेल
(६) दशार्णभद्रनो सज्झाय
(७) कोणिक राजा भक्ति गर्भित वीर स्तवन
(८) त्रिक चतुर्मास देव वन्दन विधि
(९) अक्षय निधि तप स्तवन
(१०) पैंतालिस आगम नी पूजा
(११) चौंसठ प्रकारी पूजा
(१२) नवांण प्रकारी पूजा
(१३) बार व्रतनी पूजा
(१४) ऋषम चैत्य स्तवन
(१५) पंच कल्याणक पूजा
(१६) अंजनशलाका स्तवन
(१७) धम्मिलकुमार रास
(१८) चन्द्र-शेखर रास
(१९) हठीसिंहनी अंजनशलाका नां ढालीयां, ६ ढाल
(२०) सिद्धाचल गिरनार संघ स्तवन
(२१) संघवण हरकुंवर सिद्ध क्षेत्र स्तवन

रचना-काल :

इसकी रचना कवि ने अपने गुरु शुभविजय की मृत्यु के बाद संवत् १८६० में चैत्र शुक्ला ११ को राजनगर (अहमदाबाद) में की थी।

रचना-विषय :

इसमें कवि ने अपने गुरू शुभविजय का जीवन वृत्तान्त दिया है[1]। जिसका सार इस प्रकार है—

शुभविजय जशविजय के शिष्य थे। इनका जन्म सोरठ प्रान्त के वीरमगाम में श्रीमाली वणिक कुल के रहिदास की धर्मपत्नी राजकुंवरी की कुक्षि से संवत् १७८८ धनतेरस को हुआ था। इनका जन्म-नाम केशवजी था। इनके महिदास नामक एक भाई थे। संवत १८०६ के चैत्र मास में इन्होंने खंभात में सत्यविजय के शिष्य क्षमाविजय और क्षमाविजय के शिष्य जशविजय से दीक्षा अङ्गीकृत की। दीक्षा लेने पर इनका नाम शुभविजय पड़ा। इनके गुरु भ्राता का नाम हर्षविजय था। इन्होंने सूरत, सिद्धाचल, घोघा बन्दर में चातुर्मास किये। पाटण में मोहनविजय के पास रहकर इन्होंने अध्ययन किया। खम्भात में दो चातुर्मास किये जहाँ पद्मविजय से इनकी भेंट हुई। सिद्धाचल की यात्रा कर भावनगर में चातुर्मास किया। सं० १८२६ मे सिद्धाचल चातुर्मास किया। दो चौमासे लींबड़ी तथा एक चौमासा वढवाण किया जिसमें तिलकविजय साथ थे। खंभात में वीरविजय को दीक्षित किया। सं० १८५७ में खेड़ा का चातुर्मास किया। सं० १८६० फाल्गुन शुक्ला १२ बुधवार को अहमदाबाद में इनका स्वर्गवास हुआ।

१—जैन युग पुस्तक ४ : अङ्क ३–४, पृ० १३१

(६) संघपति सोमजी निर्वाण वेलि[1]

जैन-दर्शन में चार तीर्थ-साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका-माने गये हैं। श्रावक-श्राविका श्रावक-धर्म का परिपालन करते हुए साधु-साध्वियों के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते हैं। पर इस वेलि मे एक ऐसे श्रावक का आख्यान गाया गया है जो साधु के लिए भी आलेख्य (वर्णन) योग्य रहा है। इस श्रावक का नाम था सोमजी।

सोमजी का जन्म प्राग्वाट जातीय मन्त्रीश्वर वस्तुपाल के पुनीत वंश मे हुआ था। इनके पिता का नाम जोगीदास और माता का नाम जसमादे था। श्री जिनचन्द्र सूरि के सम्पर्क मे आकर ये जैनधर्म में दृढ़ हुए। इन्होंने तीर्थ-यात्रा, नवीन बिम्ब-निर्माण, जीर्णोद्धार और स्वधर्म वात्सल्य आदि शुभ कार्यों मे लाखों रुपये व्यय करके जैन-शासन को महती सेवा और उत्कट प्रभावना की थी। इन्हें 'संघपति[2]' का पद प्रदान किया गया। संवत् १६४४ मे जोगीशाह और सोमजी ने शत्रुंजय का विशाल संघ निकाल कर सूरिजी के साथ शत्रुंजय गिरिराज की यात्रा की थी। सोमजी केवल धर्म परायण व्यक्ति ही नही थे वरन् क्रांतिकारी समाज-सुधारक भी थे। अब भी विवाह पत्र के लेख में 'शिवा सोमजी की रीति प्रमाणे' लेन देन की मर्यादा लिखी जाती है[3]।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता महाकवि महोपाध्याय समय सुन्दर १७ वीं शती में पैदा हुए थे। ये सकलचन्द्र गणि के शिष्य थे। पोरवाड़ जाति के रूपशी शाह की भार्या लीलादे की कुक्षि से साचोर में इनका जन्म हुआ था। बचपन से ही ये विद्याव्यसनी और मेधावी छात्र थे। यौवनावस्था में कदम रखते ही ये युग-प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि से दीक्षित हुए। तर्क, व्याकरण, दर्शन एवं जैनागमों के गम्भीर अध्येता एवं प्रकाण्ड पण्डित थे। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी एवं पिंगल भाषाओं पर इनका अनन्य अधिकार था। मुगल सम्राट अकबर को-एक पद 'राजानो ददते सौख्यम्'-के ८ लाख अर्थ बताकर-इन्होंने चमत्कृत किया था। इनकी पांडित्य-गरिमा

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही आया है। 'पुष्पिका में लिखा है—
'इति सोमजी निर्वाण वेलि गीत सम्पूर्णम्'

(ख) प्रकाशितः—समय सुन्दर कृति कुसुमांजलि : सम्पादक—अगरचन्द भंवरलाल नाहटा : पृ० ४१५-१७ तथा जैन सत्य प्रकाश वर्ष ६, अङ्क २ क्रमाङ्क ६८, पृ० ६१

२—संघपति शब्द का अर्थ है सम्पूर्ण व्यय उठाकर जैन-तीर्थ यात्रा के विशाल संघों का आयोजन करने वाला व्यक्ति (नेता या पति)।

३—विशेष परिचय के लिये द्रष्टव्य—
युग प्रधान श्री जिनचन्द्र सूरि : अगरचन्द भंवरलाल नाहटा, पृ० २४०-२४५

से प्रभावित होकर जिनचन्द्र सूरि ने लाहौर में इन्हें 'वाचक' पद प्रदान किया और लवेरे में सं० १६७१ में श्री जिनसिंह सूरि ने 'उपाध्याय' पद देकर इनका सम्मान बढ़ाया। इनके बारे में प्रसिद्ध है-'समय सुन्दर ना गीतड़ा, भींता पर ना चीतरा या कुंभे राणा ना भीतड़ा' अर्थात्-जिस प्रकार दीवालों पर किये गये चित्रों या तथा राणा कुंभा की बनाई गई इमारतों का पार पाना कठिन है, उसी प्रकार समय-सुन्दर के गीतों को एकत्रित कर मूल्याङ्कन करना कठिन है[1]। देसाईजी ने इनकी निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख किया है[2]–

(१) चोवीशी सं० १६५८ (२) गुण रत्नाकर छंद संवत् १६५६
(३) सांब प्रद्युम्न प्रबन्ध सं० १६५६
(४) दान शील तप भावना संवाद-संवाद शतक सं० १६६२
(५) चार प्रत्येक बुद्ध नो रास संवत् १६६५
(६) मृगावती चौपाई सं० १६६८
(७) प्रियमेलक (सिंहलसुत) रास सं० १६७२
(८) पुण्यसार चरित्र सं० १६७३ (९) नलदवयंती रास – सं० १६७३
(१०) वल्कलचीरी रास सं० १६८१ (११) वस्तुपाल तेजपाल नो रास सं० १६
(१२) सीता-राम प्रबंध सं० १६८७ (१३) बारव्रत रास सं० १६८५
(१४) गौतम पृच्छा सं० १६८६ (१५) शत्रुंजय रास सं० १६८६
(१६) चंपक श्रेष्ठीनी चौपई सं० १६६५ (१७) धनदत्त चौपई सं० १६६६
(१८) साधु वंदना सं० १६६७ (१९) पुण्याढ्य रास
(१०) सुसढ रास (२१) पुंजारुषिनो रास
(२२) मयणरेहा रास (२३) जीवराशी क्षमापना
(२४) द्रूपदी संबंध सं० १७०० (२५) पौषध विधि स्तवन सं १६६७
(२६) कर्मछत्रीसी सं० १६६८ (२७) शीलछत्रीसी सं० १६६६
(२८) पुण्य छत्रीशी सं० १६६६ (२९) संतोष छत्रीशी सं० १६६६
(३०) क्षमा छत्रीशी सं० १६६६ (३१) महावीर स्तवन
(३२) अमरसरपुर मंडन शीतलनाथ स्तवन
(३३) उदयन राजर्षि गीत
(३४) दादाजी (जिनकुशल सूरि) स्तवन (३५) शत्रुंजय मंडन आदि वृहत्स्तवन
(३६) महेवामंडण पार्श्वनाथ स्तवन (३७) बीकानेर मंडण ऋषभजिन स्तवन
(३८) पार्श्वनाथ जिन पंच कल्याणक स्तवन
(३९) तीर्थमाला स्तवन

१—विशेष परिचय के लिए देखिये—समय सुन्दर कृति कुसुमांजलि: संपादक: अगरचंद भंवरलाल नाहटा, भूमिका।

२—जैन गुर्जर कवियोः मोहनलाल दलीचंद देसाई, भाग १, पृ० ३३१-९३।

(४०) साचोर मंडन वीर स्तवन
(४१) मुनिसुव्रत स्वामी स्तवन
(४२) सीमंधर स्वामी स्तवन
(४३) राणकपुर स्तवन
(४४) अष्टापद स्तवन
(४५) एकादशी स्तवन
(४६) पंचमी वृद्ध स्तवन
(४७) पंचमी पर लघु स्तवन
(४८) उपधान तप स्तवन
(४९) दान शील तप भाव पर प्रभाती
(५०) आदिसर विनति
(५१) नागला गीत
(५२) अर्हन्नक सज्झाय
(५३) निंदावारक सज्झाय
(५४) अनाथी ऋषि सज्झाय
(५५) बाहुबल सज्झाय
(५६) अरणिक मुनि सज्झाय
(५७) शालिभद्र सज्झाय
(५८) मेघरथराय सज्झाय
(५९) प्रसन्नचंद ऋषि सज्झाय
(६०) गज सुकुमाल सज्झाय
(६१) राजुल सज्झाय
(६२) रेवती सज्झाय
(६३) धोबीडा पर सज्झाय
(६४) स्थूलिभद्र गीत
(६५) नलदवयंती गीत
(६६) चेलणा सती सज्झाय
(६७) चार प्रत्येक बुधनी सज्झाय
(६८) नमिराज गीत
(६९) सनतकुमार गीत
(७०) अर्हन्नद गीत
(७१) शांतिनाथ पद
(७२) आलोयणा छत्रीसी
(७३) चार शरणा गीत
(७४) विभिन्न गीत
(७५) संस्कृत मे विभिन्न टीकाएँ

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-काल का उल्लेख नहीं है। पुष्पिका में केवल इतना ही लिखा है "इति सोमजी निर्वाण वेलि गीत संपूर्णम्। कृतं विक्रम नगरे समय सुन्दर गणिना॥ शुभं भवतु॥" पर वर्ण्य-विषय से स्पष्ट है कि इसकी रचना सोमजी की मृत्यु (सं० १६७० के आस-पास) के तुरन्त बाद हुई हो।

रचना-विषय :

यह १० छंदों की छोटी-सी रचना है। "निर्वाण वेलि" शीर्षक से सूचित होता है कि इसमे सोमजी के निर्वाण होने पर उनके यश का वर्णन किया गया है। कवि लाक्षणिक शैली में कहता है कि सोमजी का यश अठारह वर्णों को जिह्वा पर तैरता है। जो लोग उसके मरण की चर्चा करते है वे मूर्ख हैं क्योंकि उसकी मृत्यु नहीं हुई है। वह तो स्वर्ग मे नलिनी गुल्म विमान (प्रथम देवलोक) देखने गया है[1]। शत्रुंजय तीर्थ-स्थान पर जिस चतुर्मुख जिन प्रासाद का उसने निर्माण कराया[2]

१—दीपक वंश मंडायउ देहरउ, अद्भुत करण धरयउ अविकार।
नलिनी गुल्म विमान निरखवा, सोम सिधायउ सरग मझार ॥२॥

२—बाद मे सोमजी के पुत्र रूपजी ने इसकी प्रतिष्ठा कराई।

उसके परिकर के लिए (पृथ्वी पर न होने के कारण) वह इंद्र के पास गया है[1]। उसने भामाशाह और कर्मचंद्र को सब प्रकार की राज-काज संबंधी नीति बतलाई थी उसी रीति-नीति को पूछने के लिए हरि ने उसे स्वर्ग में आमंत्रित किया है[2]। उसने इतना पुण्य कमाया कि उसके प्रभाव से सुरपति सशंकित हो उठा। वह इंद्र को इस शंका से मुक्त कराने के लिए ही स्वर्ग गया है कि उसे (सोमजी को) इंद्र सिंहासन की चाह नहीं हैं वह तो केवल मुक्ति का वरण करना चाहता है[3]। वह उदार दानी स्वर्ग में कुबेर को यह समझाने के लिए ही गया है कि धार्मिक कार्यों में धन क्यों नहीं खर्च करते[4] ?

कला-पक्ष :

चारणी-शैली में लिखी गई इस कृति का कलापक्ष अत्यन्त निखरा हुआ है। जगह-जगह भाषा सरल होते हुए भी साहित्यिक है। पद-पद पर उक्ति-वैचि उत्प्रेक्षा एवं कौतूहल की छटा देखने को मिलती है। वयणसगाई का प्रयोग स हुआ है। उसके साधारण और असाधारण दोनों प्रकार देखे जा सकते हैं—

साधारण :

(१) *संघपति सोम तणउ जस सगलई* (१)
(२) *करिवा मांड्यउ सोम सुकाज* (३)

असाधारण :

(१) *सोम सिधायउ सरग मझार* (२)
(२) *सोम गयउ पूछण सुर लोके* (४)

छंद :

चारणी-गीतों मे प्रसिद्ध छोटासाणोर के एक भेद वेलियो का प्रयोग हुआ है

उदाहरण :

संघपति सोम तणउ जस सगलई, वरण अठारह करइ वखाण।
मूयउ कहइ तिके नर मूरिख, जीवइ जगि जोगी सुत जाण ॥१॥

१—मोटा सबल प्रासाद मंडायउ, करिवा माडयउ सोम सुकाज।
पृथ्वी माहि तिसउ नहीं परिकर, इंद्र पास लेण गयउ साज ॥३॥

२—भामउ भनइ करमचंद भाखइ, राज काज तणी सवि रीति।
हरि तेड़यउ सोम तु हिवणां, पूछण धरम तणी परतीति ॥५॥

३—पुण्य करतूत किया अति परिधल, सुरपति सबल पड़ी मन सांक।
पहुंचउ सोम इंद्र परिचावा, वरस्युं मुगति नहीं तुझ वाक ॥७॥

४—वड दातार दान गुण विक्रम, संघपति जोगी साह सुतन।
सोम गयउ धनद समझावा, धरमइ काय न खरचइ धन ॥८॥

जैन वेलि साहित्य (कथात्मक)

सामान्य परिचय :

जैन वेलि साहित्य का दूसरा रूप कथात्मक है। इसे वर्ण्य-विषय की दृष्टि से दो भागों मे बाँट सकते है—

(क) पात्र-कोटि
(ख) तीर्थ-व्रतादि

पात्रों की पाँच कोटियाँ हैं—

(१) तीर्थंकर
(२) चक्रवर्त्ती
(३) बलदेव
(४) सती
(५) अन्य महापुरुष

तीर्थ-व्रतादि के दो रूप हैं—

(१) तीर्थ
(२) व्रत

इसका रेखा-चित्र इस प्रकार बन सकता है—

कथात्मक जैन-वेलि-साहित्य

(क) पात्र-कोटि
(१) तीर्थंकर
(१) आदिनाथ वेलि
(२) ऋषभगुण वेलि
(३) नेमिश्वर की वेलि
(२) चक्रवर्त्ती
(१२) भरत वेलि
(३) बलदेव
(१३) बलभद्र वेलि
(४) सती
(१४) चंदनबाला वेलि
(५) अन्य महापुरुष
(१५) रहनेमि वेल
(१६) जम्बूस्वामी वेलि

(ख) तीर्थव्रतादि
(१) तीर्थ
(२६) सिद्धाचल सिद्ध वेलि
(२) व्रत
(२७) कर्मचूर व्रत-कथा वेलि

(४) नेमि परमानंद वेलि
(५) नेमिराजुल बारह मासा वेल प्रबंध
(६) नेम राजुल वेल
(७) नैमिश्वर स्नेह वेलि
(८) नेमिनाथ रस वेलि
(९) पार्श्वनाथ गुण वेलि
(१०) वर्द्धमान जिन वेलि
(११) वीर जिन चरित्र वेलि
(१७) प्रभव जम्बूस्वामी वेलि
(१८) लघु बाहुबली वेलि
(१९) स्थूलिभद्र मोहन वेलि
(२०) स्थूलिभद्रनी शीयल वेल
(२१) स्थूलिभद्र कोश्या रस वेलि
(२२) वल्कल चीरकुमार ऋषिराज वेलि
(२३) गुणसागर पृथ्वी वेलि
(२४) सुदर्शन स्वामीनी वेलि
(२५) मल्लिदासनी वेलि

सामान्य-विशेषताएँ :

कथात्मक जैन वेलि साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) कथानक सामान्यतः त्रिषष्ठिशलाका पुरुष, सतियों और अन्य महापुरुषों से संबंधित है। पर वेलिकार तीर्थंकरों में ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीरस्वामी, सतियों में राजमती और चंदनबाला तथा महापुरुषों मे रहनेमि, जम्बूस्वामी, बाहुबली, स्थूलिभद्र आदि पर ही अधिक मुग्ध हुए हैं। इन पात्रों के अतिरिक्त तीर्थ (सिद्धाचल) तथा व्रत (कर्मचूर व्रत) आदि को भी कथानक का विषय बनाया गया है। कथानक की रचना का आधार जैनियों के कर्म-विपाक का सिद्धान्त रहा है। यही कारण है कि स्थल-स्थल पर पुनर्जन्मवाद, कथानक रूढ़ियों और अलौकिक तत्वों का सहारा लिया गया है।

(२) अपने धर्म के प्रति अडिग आस्था होते हुए भी अन्य धर्मों के प्रति इन कवियों की उदार दृष्टि रही है। धार्मिक सहिष्णुता का यह स्वरूप वस्तु और शिल्प दोनों में यथास्थल प्रगट हुआ है। वस्तु के अन्तर्गत कई पौराणिक नाम-वासवदत्ता-उदयन, सैरन्ध्री-कीचक, लाछलदे आदि— आये हैं। शिल्प के अन्तर्गत छंद और लय पर लोकगीतों-विशेषकर ढालों-का प्रभाव है। इसका कारण शायद यह रहा है कि ये कवि अपने धर्म के नैतिक-सिद्धान्तों के लिए जन-साधारण को आकर्षित करना चाहते थे।

(३) यहाँ जो पात्र आये हैं वे सामान्य नहीं हैं। सभी प्रमुख पात्र राजवर्ग से संबंधित हैं। उनमें विशेष सौन्दर्य, शक्ति और शील-बुद्धि है। वे तीर्थंकर चक्रवर्त्ती, बलदेव और विशिष्ट महापुरुष हैं। नारी-चरित्र भी अपने में महान है। देव-पात्र भी धरती पर बार बार उतरते हैं। वे प्रधान पात्र की प्रेम-स्फुरणा में भी सहायक होते हैं और संयम-धारणा में भी। मोहग्रस्त नायक को प्रतिबोध भी देते हैं (बलभद्र वेलि)। मानवेतर पात्र भी कथा को

मोड़ देते हैं। कहीं अपनी करुण-कातर स्थिति से सारे कथा-सूत्र को बदल देते हैं (नेमिश्वर की वेलि) कहीं सती के शील की रक्षा करते हैं (चंदनबाला वेलि) तो कहीं सद्भावना से अपनी आत्मा का कल्याण करते हैं (बलभद्र वेलि)। खल पात्र और प्रतिनायक अभिशापित होते हैं या पश्चाताप की आग में तपकर निखर जाते हैं, संसार मे विरक्त हो जाते हैं।

(४) यह साहित्य साधारणतः प्रेमकथापरक है। सारा वातावरण शृंगार से सुवासित है जो अन्त में आत्म-रति तथा ब्रह्म-रति का रूप ग्रहण कर लेता है। प्रेमोदय रूप-गुण-श्रवण, स्वप्न-दर्शन या साक्षात्दर्शन से होता है। कहीं नायक प्रयत्नशील होता है तो कहीं नायिका। अधिकांशतः नायिकाएँ प्रयत्नशील हैं। नायक विरक्त हैं। उनकी विरक्ति को बदलने के लिए कभी *जल-क्रीड़ा का आयोजन होता है, कभी हास-परिहास होता है* (नेमिश्वर की वेलि) तो कभी नायिकाओं द्वारा कथा-संवाद सुनाये जाते हैं (जम्बूस्वामी वेलि) नायक अनुरक्त हो उठते हैं पर किसी की मृत्यु, राज्य-भोग की निरर्थकता या पशुओं की चीत्कार सुनकर उनकी प्रेम-भावना तिरोहित हो जाती है और विवाह संयम में बदल जाता है। शिव-रमणी उन्हे प्यारी लगने लगती है। वे शील से सगाई कर मुक्ति-वधू के साथ गठ-बंधन बाध बैठते है। नायिकाएँ भी संयम-मार्ग को अपना लेती हैं।

(५) सारा साहित्य प्रेम कथापरक होते हुए भी धर्म-भावना से आवृत और निर्वेद भावों से अनुस्यूत है। शान्त रस अंगी रस है। दूसरा प्रमुख रस शृंगार है। उसके संयोग और वियोग दोनों रूप व्यक्त हुए हैं। यह शांत रस की पीठिका बनकर आया है (स्थूलिभद्र वेलि, नेमिश्वर वेलि)। वीर रस अन्य रसों में प्रधान है यह भी शांत रस को ही उद्दीप्त करता है (लघुबाहुबली वेलि)।

(६) इन कथा-प्रबंधों मे वर्णनों की प्रधानता है। रूप-वर्णन और प्रकृति-चित्रण बड़े सुन्दर बन पड़े हैं। रूप-वर्णन नायक और नायिका दोनो का किया गया है। नायिका के रूप-वर्णन मे रूढ़िगत उपमानों का ही प्रयोग किया गया है। इसे नखशिख परम्परा का ही निर्वाह कहना ठीक होगा। प्रकृति-चित्रण के तीन रूप मिलते हैं— बारहमासा वर्णन, पखवाड़ा वर्णन और आलंकारिक रूप। यहाँ प्रकृति दो काम करती है। शृंगार-भावना को उद्दीप्त करती है और संयम-भावना को पुष्ट करती है। संयम-भावना की पुष्टि के रूप में वह उपसर्ग-परीषह बनकर आती है। वर्षा, शरद और ग्रीष्म का वर्णन इसी प्रसंग में किया गया है (लघुबाहुबली वेलि)।

(७) प्रारंभ मे प्रायः मंगलाचरण, कवि की असमर्थता, सज्जन-दुर्जन-प्रशंसा-निन्दा, कवि की गर्वोक्ति आदि महाकाव्योचित परम्परा का निर्वाह किया

गया है तो अन्त में कवि की गुरु-परम्परा, कवि का नाम, रचना-स्थल, रचना-तिथि, रचना-माहात्म्य और चतुर्विध संघ की मंगल-कामना का उल्लेख मिलता है।

(८) काव्य-स्वरूप की दृष्टि से प्रबंध और मुक्तक दोनों रूप मिलते हैं। जहाँ कथा-संकोच और वर्णनाभाव है वहाँ मुक्तक और जहाँ कथा-विस्तार तथा वर्णन-बाहुल्य है वहाँ प्रबंध। प्रबंध को सर्गों या काण्डों में विभक्त न कर प्रायः ढालों में ही गाया गया है।

(९) ये कवि किसी के राज्याश्रय में नहीं पले। अतः यहाँ किसी लौकिक पुरुष को अपनाकर उसकी प्रशस्ति नहीं गाई गई। राज-वर्ग का जो रूप यः मिलता है वह इसलिये कि उसने अध्यात्म भाव को ग्रहण किया है।

(१०) इस साहित्य में बीच-बीच में सुन्दर संवादों की भी सृष्टि हुई है 'जम्बूस्वामी वेलि' तथा 'प्रभव जम्बूस्वामी वेलि' तो लगभग पूरी की पू संवादात्मक ही है।

(११) इन कवियों ने शिक्षित और पंडित-वर्ग के लिए ही नहीं लिखा है बलि अशिक्षित और साधारण वर्ग के लिए भी लिखा है। यही कारण है कि इनकी भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है। उसमें अलंकारों के प्रति आग्रह नहीं है फिर भी जगह-जगह शब्दालंकार और अर्थालंकार आये हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, संदेह, भ्रांति आदि अलंकार ही इन्हें विशेष प्रिय रहे हैं। ध्वन्यात्मकता भाषा की एक विशेषता है। भाषा में माधुर्य और प्रसाद गुणों की प्रधानता है। अधिकांश अलंकार लोक जीवन से चुने गये हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग हुआ है। जैन-दर्शन से संबंधित पारिभाषिक शब्द-आश्रव, संवर, अभिग्रह, शुक्ल ध्यान, समोसरण, केवल ज्ञान-आदि यथा प्रसंग आये हैं।

(१२) इस साहित्य का प्रमुख गुण गेयता है। अतः ढालों का विशेष प्रयोग किया गया है। लोक धुनें इन्हें विशेष प्रिय रही हैं। प्रचार की दृष्टि से भी यही आवश्यक था। ढालों की तर्जें लोक-प्रचलित हैं। बीच-बीच में राग सामेरी, केदार गुड़ी आदि का निर्देश कर दिया गया है। अन्य छंदों में दोहा, सखी, हरिपद, आदि प्रमुख हैं।

उपलब्ध प्रमुख वेलियों का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) आदिनाथ वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि का संबंध जैन धर्म के आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव से है। प्रथम तीर्थंकर होने के कारण इन्हें आदिनाथ भी कहा जाता है। वे महाराजा

१—(क) इस पद में वेलि नाम आया है—
वेली कहि मुनि इंदो, संस्नापाणिण्य अमंदो।

नाभिराय के पुत्र थे। इनकी माता का नाम मरुदेवी था। इन्हीं के समय से कर्मभूमि का प्रारंभ हुआ[१]।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता मंडलाचार्य भट्टारक धर्मचंद्र हैं। वेलि के अंत में कवि ने अपना नामोल्लेख किया है[२]। ये दिगम्बर जैन थे।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि दी है[३]। उसके अनुसार संवत् १७३० में आषाढ़ की नवमी को महारोठपुर[४] में इसे रचा गया।

रचना-विषय :

यह ५ भागों में गुंफित छोटी सी रचना है। इसमें आदिनाथ भगवान ऋषभदेव के पंच कल्याणक उत्सवों का वर्णन किया गया है। प्रत्येक तीर्थंकर के पंच कल्याणक उत्सव गर्भ के समय, जन्म के समय, तप के समय, केवल ज्ञान प्राप्त होने पर और मोक्ष जाने पर इंद्रादि देवों द्वारा मनाये जाते हैं[५]।

जो प्रति प्राप्त हुई है उसमें आरंभ का अंश नहीं है। अनुमान है उसमें कवि ने गर्भ-कल्याणक उत्सव का ही वर्णन किया होगा। अन्य जो चार उत्सव मनाये गये हैं उनका वर्णन इस प्रकार है—

(१) जन्म कल्याणक उत्सव :

भगवान का जन्म हुआ जानकर सब देवता अयोध्या आये। उन्होंने अयोध्या की प्रदक्षिणा दी और इन्द्राणी को भेजकर भगवान को मंगवाया। इंद्र ने एक

(ख) प्रति-परिचयः— इसकी हस्तलिखित प्रति दिगम्बर जैन मंदिर (चौधरियों का) मालपुरा (राजस्थान) के गुटका नं० ५० में सुरक्षित है। प्रति अपूर्ण है। प्रारंभ के दो पत्र नहीं हैं।

१—भोग-भूमि के समय के कल्पवृक्षादि नष्ट हो चुके थे, अतः असि, मसि, कृषि का प्रारंभ करा इन्होंने संसार को कर्म करने की ओर प्रेरित किया।

२—वेली करी मुनि इंदो, मंडलाचारिज धर्मचंदो ॥
पढे सुणे नर ज्ञाता। सुरग मुकति सुख दाता ॥

३—संवत सतरां से तीसे। मास असाढ़ नवमी से ॥
महारोठपुर मंभारी। आदिनाथ भविजण तारी ॥

४—यह जोधपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन स्थान है जो मारोठ के नाम से प्रसिद्ध है। आज भी यहाँ दिगम्बर जैन सम्प्रदाय के पर्याप्त अनुयायी निवास करते हैं।

५—प्राचीन जैन इतिहास : बाबू सूरजमल जैन : प्रथम भाग, पृ० १२१–२८

हजार नेत्रों से भगवान के रूप को देखा फिर भी तृप्ति न हुई[१]। मेरु पर्वत पर क्षीर सागर के जल से उनका (भगवान का) अभिषेक किया गया। भगवान को वस्त्राभूषण से सजाया गया[२]। अन्त में आनन्दोत्सव के साथ[३] अयोध्या आकर देवताओं ने भगवान ऋषभदेव को माता के पास पहुँचाया और सभी अपने अपने निवास-स्थान को गये[४]। ऋषभदेव का शरीर कनकवर्णीय और ऊँचाई ५०० धनुष की थी। जन्म से ही वे तीन ज्ञान[५] के धारक थे।

(२) तप-कल्याणक उत्सव :

नीलांजना[६] नामक अप्सरा को मृत देखकर ऋषभदेव संसार मे विरक्त होगये। भगवान को विरक्त देखकर लोकांतिक[७] देव सेवा में उपस्थित हुए और उन्हें पालकी में बिठलाकर वन में ले गये जहां उन्होंने चैत्र वदी नौमी के दिन पंचमुष्ठि लोच कर दीक्षा अंगीकृत की[८]। दीक्षा धारण करते ही ऋषभ भगवान ने छह माह का उपवास धारण कर तप करना आरम्भ कर दिया। इससे उन्हें मनःपर्यय ज्ञान की उत्पत्ति हुई। अन्त में वैशाख सुदी तीज को श्रेयांस[९] के यहां इक्षु-रस द्वारा इनका पारणा हुआ।

(३) ज्ञान-कल्याणक उत्सव :

भगवान आदिनाथ का अडिग तपोव्रत ध्यान संसार-समुद्र से तिरने के लिए नौका के समान था। इसी तपश्चरण से उन्हें फागुन वदी ११ को केवल ज्ञान की

१—रूप देखि जिन सुरराया। सहस चखि तृपति न पाया।।

२—वस्त्र आभरण पहराया। केसर चन्दन ले आया।।

३—इक उचरै जय जयकारो। नाचै अपछर परिवारो।।
इक वर वादित्र बजावै। किंनर सुभ गीत जु गावै।।

४—अयोध्या नाभि घर आया। नृत गीत वादित्र बजाया।।
मात नैं सौंपि जिनराया। गया सुरगं सुरराया।।

५—(१) मतिज्ञान (२) श्रुतिज्ञान और (३) अवधिज्ञान

६—यह एक अप्सरा थी जिसे इन्द्र भगवान के मनोरंजनार्थ नृत्य कराने के लिए राज दरबार में लाये थे। इसकी आयु बहुत थोड़ी रह गई थी जो नृत्य करते करते ही पूरी हो गई। यद्यपि इन्द्र ने ऐसा प्रबन्ध कर दिया था कि उसके मरते ही दूसरी अप्सरा उसी के रूप की होकर नृत्य करने लगी और कोई इस रहस्य को नहीं समझ सका, पर भगवान ऋषभदेव सब समझ गये और संसार को नश्वर जानकर विरक्त हो गये।

७—लोकांतिक देव पांचवे स्वर्ग में होते हैं, वे ब्रह्मचारी होते हैं।

८—पंचमुठि केस उपाड्या। सयल परिगह जिन छाड्या।।
चैत वदि नै व्रत धार्‌यो। मोह महा रिपु जिण मार्‌यो।।

९—सेयास घरि जिन राये। पारणो कीय वन जाय।।
तप कल्याणक करि देवा। सुरगति तणौ फल लहेवा।।

प्राप्ति हुई। श्रेसठ कर्मों का नाश हो गया। छयालीस गुणों के वे धारक बन गये। अठारह प्रकार के दोष तिरोहित हो गये[1]। इन्द्रादि देवों ने भगवान को वन्दना कर जय जयकार किया। एक विशाल सभा मंडप (समवसरण) की रचना की गई। जहां भगवान ने अहिंसा[2], सत्य[3], अचौर्य[4], ब्रह्मचर्य[5] एवं अपरिग्रह[6] की धर्मोपदेशना दे बारह प्रकार के तप धारण करने की प्रेरणा दी।

(४) मोक्ष-कल्याणक उत्सव :

अपने समस्त कर्म रूपी शत्रुओं का नाश कर भगवान आदिनाथ ने माघ कृष्णा १४ को मुक्ति रूपी वधू के साथ परिणय किया[7]। अब उन्हे किसी प्रकार का रोग, शोक तथा क्लेश नहीं रहा। वे सच्चिदानंद अनंत वीर्य, सुख और ज्योति के स्वामी बन गये। आवागमन और जन्म मरण का चक्र मिट गया[8]। भगवान का निर्वाण सुनकर देवताओं ने निर्वाण कल्याणक उत्सव मनाया। भगवान के शरीर की अष्ट-द्रव्यों[9] से अर्चना कर दाह-संस्कार किया। उनकी भस्म को मस्तक पर धारण कर उन्हें वंदना की और जन्म-जन्मांतर तक सेवा करने का वर मांगा[10]।

१—भवदधि तारण नाव सम, मंडिग तपोव्रत ध्यान।
फागुण वादि वर गारस्या, उपनो केवल ग्यान॥
उपनो केवल ज्ञानो। तेसठि करम कीय हानो॥
गुण छियालीस विराजे। दोष अठारा गये भाजे॥

२—जीव दया जे चित्र राखे। सुर नर तणा सुख चाखे॥

३—असत्य वचन नवि बोले। ते दुरगति कही न डोले॥

४—चोरी धन मनि नहो धारे। तिह नैं कोई नहि मारे॥

५—परतिय संग न मनि मार्णे। सयल आभरण वखाणे॥

६—परिग्रह नरगां ले जाई। इस जाणि छोड़े रे भाई॥

७—सयल करम रिपु चूरि करि, कैलास गिरि जिनेस।
माह किसन चउदस्या, मुकति वधू परिणेस॥

८—मुकति वधू परिणेसो। रोग सोग नहीं कलेसो॥
चिदानंद चिद रूपा। ज्ञान दरसण सुध रूपा॥
अनंत वीरज सुख स्वामी। अनंत जोति अभिरामी॥
आवागवण नही जैठे। काया वाचा नहीं तैठे॥
मनसा दुख नही व्यापै। जामण मरण नहीं जापै॥

९—जल, चंदन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल।

१०—पापहरण जिन उचरंता। भसमो मसतकि धारंता॥
जिन स्तुति करि मागे देवा। जनमि जनमि द्यो तुम सेवा॥

कलापक्ष :

कवि की भाषा सरल राजस्थानी है। उसमें प्रवाह है। कहीं भी भाषा दुर्बोध नहीं हो पाई है।

भाषा की प्रवहमानता :

इक उचरै जय जयकारो। नाचैं अपछर परिवारो ॥
इक वर वादित्र बजावै। किन्नर सुभ गीत जु गावै ॥
रूप देखि जिन सुर राया। सहस चखि तृपति न पाया ॥
वस्त्र आभरण पहराया। केसर चंदन ले आया ॥

यत्र-तत्र अलंकार भी आये हैं:—

उपमा :

(१) भवदधि तारण नाव सम, अडिग तपो व्रत ध्यान।
(२) जाण्यो अथिर संसारो। जैसे बीज चमतकारो ॥
मूंमो गहत मंजारो। कोण राखै तिण वारो ॥
(३) ज्युं छिद्र नाव भव सिंधो। बूडो करमाश्रव अंधो ॥

विरोधाभास :

रूप देखि जिन सुर राया। सहस चखि तृपति न पाया ॥

रूपक :

मुकति वधू परिणेस।

छंद :

कवि ने दोहा[1] और सखी[2] छंद का प्रयोग किया है। कहीं कहीं मात्राएं कम-अधिक भी आ गई हैं।

उदाहरण :—

दोहा :

तेयासीलखि पूर्व ने, भोगवि भोग अपार।
नीलांजना मृति देखिकर, जाण्यो अथिर संसार ॥

सखी :

इक सुर नर वर सुख पावै, इक तिरजग नरगां जावै।
अवर ननु (ब) अवरै भ्राता, पिता अवर अवरै माता ॥

१—विषम चरण में १३ और सम चरण में ११ मात्राएं। अंत में लघु।
२—यह १४ मात्राओं का छंद है। अंत में मगन (ऽऽऽ) या यगण (।ऽऽ)

(२) ऋषभ गुण वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि प्रधानतः आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के विवाह-वर्णन से संबंध रखती है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता ऋषभदास[2] सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध के कवियों में से थे। ये प्राग्वंशीय श्रावक कवि थे। इनका जन्म खंभात मे हुआ था। इनकी माता का नाम सरूपादे तथा पिता का नाम सांगण था। इनके पितामह महिराज वीसल नगर के मूल निवासी थे। जिन्होंने शत्रुंजय की यात्रा कर संघपति पद प्राप्त किया था। इनके पिता सांगण ने उसी प्रकार की यात्रा कर संघपति की ख्याति बनाये रखी। ऋषभदास जैन शास्त्रों में वर्णित धर्माचार का पालन बड़ी निष्ठापूर्वक किया करते थे। इन्होंने शत्रुंजय, गिरनार, शंखेश्वर आदि की यात्राएँ भी कीं। ये विद्यार्थियों को भी पढ़ाया करते थे। संक्षेप मे ये एक धर्म-संस्कारी, बहुश्रुत एवं शास्त्राभ्यासी श्रावक थे। कवि की दृष्टि से ये प्रेमानंद और अखा के टक्कर के कवि थे। सरस्वती की इन पर पूरी कृपा थी। ये प्रतिदिन उसकी स्तुति किया करते थे। तपागच्छीय आचार्य विजयसेन सूरि को इन्होंने गुरु रूप में अंगीकृत किया था। बाद में चलकर विजयदेव सूरि, विजयतिलक सूरि और विजयाणंद सूरि को इन्होने अपना गुरू माना।

इन्होने छोटी-मोटी कई कृतियां लिखी। देसाईजी ने इनकी निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है[4]—

(१) आदिश्वर आलोयण सं० १६६६ (२) व्रत विचार रास सं० १६६६
(३) नेमिनाथ स्तवन १६६७ (४) सुमित्र राजर्षि रास सं० १६६८

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम आया है—
गुणठणी वेलडी विपुल धारतो, फिरत महि मंडलइं ऋषवदेवो।
(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद के मुनि पुण्यविजयी के संग्रह के ग्रंथांक ५८४२ मे सुरक्षित है। यह ५ पत्रो मे लिखी हुई है।

२—वेलि के अन्त मे कवि ने लिखा है—
वरतपागछइं पाटइं प्रभु प्रगटीओ स (सू) री श्री विजयाणंद पूरे आसो।
ऋषभना नाम थी सकल सुख पामीइं, कहे कवीनर ऋषभदासो ॥७१॥

३—विशेष परिचय के लिए देखिये— देसाईजी का निबंध 'श्रावक-कवि ऋषभदास' जैन श्वेताम्बर कान्फरेन्स हेरल्ड (इतिहास अंक) १६१५, अंक ७-६

४—जैन गुर्जर कवियो : भाग १, पृ० ४०६-४५८

(५) स्थूलिभद्र रास सं० १६६८ (६) कुमारपाल रास सं० १६७०
(७) जीव विचार रास सं० १६७६ (८) नव तत्व रास सं० १६७६
(९) अजापुत्र रास सं० १६७७ (१०) भरत बाहुबली रास सं० १६७८
(११) समकित सार रास सं० १६७८ (१२) बार आरा स्तवन सं० १६७८
(१३) पूजाविधि रास सं० १६८२ (१४) श्रेणिक रास सं० १६८२
(१५) हितशिक्षा रास सं० १६८२ (१६) रोहणिया मुनि रास सं० १६८४
(१७) हीरविजय सूरि ना बार बोलनो रास सं० १६८४
(१८) मल्लिनाथ रास सं० १६८५ (१९) हीरविजय सूरि रास सं० १६८५
(२०) अभयकुमार रास सं० १६८७ (२१) ऋषभदेवनो रास
(२२) क्षेत्रप्रकास रास (२३) समय स्वरूप रास
(२४) देवगुरु स्वरूप रास (२५) शत्रुंजय रास
(२६) कुमारपाल नो नानो रास (२७) जीवंत स्वामीनो रास
(२८) उपदेशमाला रास (२९) श्राद्ध विधि रास
(३०) आर्द्र कुमार रास (३१) पुण्यप्रसंसा रास
(३२) कईवन्नानो रास (३३) वीरसेन नो रास
(३४) महावीर नमस्कार (३५) आदिश्वर विवाहलो
(३६) श्री शत्रुंजय मंडण श्री ऋषभदेव जिन स्तुति
(३७) स्थूलिभद्र सज्भाय (३८) धूलेवा श्री केसरीयाजी स्तवन
(३९) मान पर सज्भाय (४०) तीर्थंकर ना कवित्त
(४१) गीत (४२) सुभाषित

रचना-काल :

वेलि मे रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। न पुष्पिका ही है। कवि की अन्य कृतियों को देखने से पता चलता है कि उसका रचना-क सं० १६६६ से सं० १६८७ रहा है। अनुमान है इसी के आसपास इस वेलि रचना की गई हो।

रचना—विषय :

९ ढालों के ७१ पद्यों की इस रचना मे भगवान ऋषभदेव के जीवन प्रमुख घटनाओं—जन्म, दीक्षा, मुक्ति आदि-का उल्लेख करते हुए उनके विवाह और तत्संबंधी सभी प्रकार के रीति-रिवाजों का विस्तारपूर्वक वर्णन कि गया है।

प्रारंभ के दो दोहों में कवि ने ऋषभदेव की आदि तीर्थंकर, प्रथम मुनीश्व प्रथम दानी तथा प्रथम केवलज्ञानी के रूप में वंदना की है [१]। तत्पश्चात् देवताओं

१—आदी धरम जीण आदर्यो, अवनीपति आधार।
जुगला धरम निवारीओ, प्रथम ज (जि) न अवतार ॥१॥

द्वारा मनाये गये उनके जन्मोत्सव का वर्णन है[१]। ऋषभ के जन्म होने पर देवताओं ने सुगन्धित जल-पूर्ण कलशों से उनका अभिषेक किया। बाल-साथी बनकर उनके साथ विभिन्न प्रकार के खेल खेले[२]। सुर-वधुओं ने गृहिणी का महत्व समझाकर उन्हें विवाह के लिए प्रेरित किया[३]। दो कन्याओं (यशस्वती और सुनंदा) के साथ उनका पाणिग्रहण संस्कार हुआ जिनसे उनके १०१ पुत्र और दो पुत्रियाँ (ब्राह्मी तथा सुन्दरी) उत्पन्न हुईं[४]। विवाह की तैयारी में सुरवधुओं ने कन्याओं का[५] तथा इंद्र ने ऋषभ का[६] शृंगार कराया। यथासमय वर-निकासी हुई। सुर-सुन्दरियों ने

प्रथम मुनि (नी) सर जे हुआ, प्रथम दीधा दान।
प्रथम हुआ भीक्षाचरू, प्रथम केवलज्ञान ॥२॥

१—नाभीराय कुलमंडणो, मरुदेव्या तस माय।
ऋषभदेव सुत जनमीया, सुरगिरि ओच्छव थाय ॥३॥
अष्ट प्रकार कलशा कीया, साठ लख एक कोड।
नीर सुगंधा तिहा भर्या, नमण करें कर जोड़ो ॥४॥
पुजो प्रणमो सुर दिइं, चिवर कुंडल सार।
जीनवर जीनवर मुकीया, हइयडे हरप अपार ॥५॥

२—देव नानां छोकरा थाय, जण साथे रंमवा जाय ॥६॥

३—छंद्र इंद्राणी आवी कहें रे, सुणो जिन राज।
ऋषभस्वामी तमे परणो, मम घर जीरे मनमा वली लाज कें
सामी सुरवधु इम बोलइं ॥७॥
घरणी विणा घर कुण खोलें, घरणी थकी घर सुत चालइं।
घरनुं मंडण नार सणो भीतर पदमलोरे ॥८॥

४—एक सौ पुत्र हुया भला ॥६०॥ दोय पुत्री गुणमाल ॥६७॥

५—सुर-वधु न्दान करे तिहा, नवरावि कन्याय।
तेल सुगन्धी चोली करी, पीठ करे तस ठाम ॥१२॥
कनक तणा कुंभ भराणीरे, भराए सुगंधाए पाणीरे.
कन्या दोय नवरावीरे, अमीरी नें वस्त्रे रे लुहीरे ॥१४॥
कर्या रे तिलक सीचो पालें, गमारे बधावा ते दोयारे।
पेंहरण मानेतर यमलोरे, कुमरी नो कुंचको धवलोरे ॥१५॥
बाध्या बेहरखा हाथेरे, चुडीलो ने कंकण साथेरे।
वेंटी वेंढ अंगुट्ठीरे, देखी रमवाए तुट्ठीरे ॥१६॥
अंजन आखडी सोहतीरे, नाके नंवलखुं मोती रे।
सिरें अंखोडो वालीरे, वदन नै पान बोरालो रे ॥१७॥

६—सिर मुगटे आसाबो सोहीए, देखी कुंमर तणा मन मोहे।
कानइ कुंडल कलंगीने, हार केडइं कंदोरो बेरखां सार ॥३०॥
हायो हथि सोंकली गालो, इन्द्र पेंहेरावइं बीटाआली।
देव दुपी वस्त्र पेंहरावें, पंचवरणादिक तायो सोहावे ॥३१॥

मंगल गान गाये और देवताओं ने लूण उतारा[1]। विधिवत तोरण वांदने के बाद वर-वधू को चंवरी में बैठाया गया[2]। वहां अन्य सारे संस्कार सम्पन्न हुए[3]।

इस प्रकार ऋषभ का विवाह कर सभी सानन्द घर लौटे। माता मरुदेवी ने वर-वधू को बधाया[4] और आठ दिनों के बाद वर-वधू के काकण दोवड़े छोड़े गये[5]।

कलापक्ष :

काव्य की भाषा सरल-सुबोध राजस्थानी है। अलङ्कारों की ओर कवि का ध्यान नहीं रहा है फिर भी एकाध जगह अनुप्रास तथा उपमा का प्रयोग हुआ है—

करइं आप उतारासण हाथे, आप्यां पांन ने सीफल हाथे।
टीलुं काढीने चोखा जडया, पग पील्या चड्या वर घोडइं ॥३२॥

१—गांन करे सुरसुन्दरी, ने सुर ऊतारइं लूण ॥३४॥

२—तोरण जिनवर आया ॥ए देशी॥

जय जयकार करे तिहा ए थाल छाननो आणी सहीए।
कुंकम दो घृत तीहा धरे ए, मांगी घुमरू पूखणु करें एं ॥४३॥
वली मंखाइओ करि करें ए, पुंख पामइं नु ते मस्तक धरेए।
पछे मणवो मुसल श्री करे, प्रभु तुमे जीवजो दहुलाए ॥४४॥
पुख तीसीरोमो सीर धरीए, पछें इडो पीडी तीहा करी ए।
उछालता द्रो पुष्पमाल ए, परमु कु (तु) में जीवजो बहुकाल ए ॥४५॥
सरीयो ने संपूट पछे साज करोए, पछे मगनर्ने मीहुं माहे धरोए।
चांपता डाभे पाय, भोग अंतराय चुरणें थाय रे ॥४६॥
छांटती मुख तंबोल ए, प्रभु प्रीत वहंग्यो रङ्गचोल ए।
नाक ग्रही वर तांणी, प्रभु मण्डप माहि आणिआए ॥४८॥
घाटडी ते गलामाहि धारेए, प्रभु पिबीविया बहु प्रकरीए।
आंणी कुमरी रूपें रसाल ए, राय कंठ ठवें वरमालए ॥४९॥
प्रीति करी कर तिहा ग्रहे, कुलवन्ती वेहु नारी।
मङ्गल चारें वरतीइंए, चोरी छे माजोर ॥५०॥

३—पैहलुं मङ्गल वरतिहं, सुरवधू करे तीहा गान ॥
दाधा मस्त ते मति घमाए ॥ सुर देआ तिहा दान ॥
बिजु मङ्गल वरतीए ॥वि०॥ हस्तीदान अनेक ॥पि०॥
सुरनरलोक वखाण्ताए, वेवाण सवन वीवेक ॥पि०॥
त्रीजुं मङ्गल वरतीए ॥वि०॥ भूषण दान ज जोइ।
चोथु मङ्गल वरतिउ ॥ पुर्थी मरुरें तणी होए ॥वि०॥

४—मरुदेव्या करें तन लुंछणा, आदन पानी उतार रे ॥६४॥

५—आठ दीवस गया पछी, कंकण छूटइ नर नारी ॥६४॥

अनुप्रास :

(१) स्वामी सुरवधु सहु इम बोले ॥११॥
(२) कुंकुम श्रीफल श्रोदही, फोफल ने वरमाल रे (४२)

उपमा :

(१) वर वधु सरग्युं ग्र जोडलु, जिम खीर माहें दोवरे (६२)
(२) धवल मङ्गल गाइ गोरडी, कोकील सरीखो छे नाद (६३)

छन्द :

इसमें दोहा तथा ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रति में निम्नलिखित रागों (देशी) के नाम मिलते हैं—

राग केदारी :

(१) पीठी करो पीठी करो पितराणि रे ॥ ए देशी छे ॥
(२) कलपतरु जिशो वायेइ ॥ ए देशी ॥
(३) श्री राग ॥ ए देशी ॥
(४) तोरण जिनवर ग्राया ॥ ए देशी ॥
(५) पुफमालनी ॥ ए देशी ॥
(६) कसारनी ॥ ए देशी ॥
(७) चंदलानी ॥ ए देशी ॥
(८) साहेलडानी ॥ ए देशी ॥
(९) हिमचरे रो ॥ देशी ॥

(३) नेमिश्वर की वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि का सम्बन्ध नेमिनाथ और राजमती से है। नेमिनाथ २२ वें तीर्थंकर तथा शोर्यपुर के महाराजा समुद्र विजय के पुत्र थे। ये हरिवंश के काश्यप-गोत्रीय क्षत्रिय थे। इनका वाग्दान मथुरा के राजा उग्रसेन की पुत्री राजमती से हुआ था। पिंजड़ों में बन्दी पशु-पक्षियों की करुण पुकार सुनकर इन्होंने अपनी बरात को वापिस लौटाकर संयम धारण कर लिया था।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आता है। पुष्पिका में लिखा है—'इति नेमिनाथ की वेलि समाप्त' : तथा प्रारम्भ में लिखा है—'नेमिश्वर की वेलि लिख्यते'।

(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति भट्टारक भण्डार, अजमेर के गुटका २६१ तथा गुटका नं० ६२ में सुरक्षित है। गुटके का आकार ४$\frac{1}{2}$"×४$\frac{1}{2}$" है। यह पाठ पत्रों (५५-६२) में लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में ९ पंक्तियां हैं और प्रत्येक पंक्ति में १६ अक्षर हैं। प्रति अच्छी अवस्था में है। यही प्रति 'नेमि-

कवि-परिचय :

इसके रचयिता ठाकुरसी[1] (ठकुरसी) १६ वीं शती में पैदा हुए थे। ये संस्कृत, हिन्दी के विद्वान थे और छोटी-छोटी रचनाएँ लिखकर स्वाध्याय प्रेमियों का दिल बहलाने में रस लेते थे। इनके पिता का नाम घेल्ह था जो स्वयं भी कविता किया करते थे। ये दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी थे। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं[2]—

(१) कृपण चरित्र (२) पंचेन्द्रिय वेलि
(३) नेमिश्वर की वेलि (४) पार्श्वशकुन सत्तावीसी
(५) चिन्तामणि जयमाल (६) सीमंधर स्तवन

(७) गुण वेलि[3]:–यह कोई अलग रचना न होकर 'पंचेन्द्री वेलि' ही है। लिपिकार ने प्रारम्भ तथा अन्त में 'इति गुण वेलि लिख्यते' लिख दिया है जिससे भ्रम होता है कि यह दूसरी कृति है पर देखने से प्रतीत हुआ कि यह वस्तुतः पंचेन्द्रिय वेलि से अभिन्न है।

रचना-काल :

वेलि मे कहीं भी रचना-तिथि का उल्लेख नही है। 'पंचेन्द्री वेलि' में रचना-तिथि सं० १५५० कातिक सुदी तेरस (संवत पनरै से पचासै, तेरिस सुद कातिक मासै) दी गई है। अनुमान है इसी के आस पास इसकी रचना की गई हो।

रचना-विषय :

५ भागों मे गुंफित प्रस्तुत वेलि का कथानक भगवान नेमिनाथ से सम्बन्धित है। कवि ने संक्षेप में प्रमुख घटनाओं का वर्णन करते हुए नेमिनाथ की महानता एवं विरक्त-भावना का परिचय दिया है। कथा का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है:—

राजमति वेलि' नाम से दो जगह और मिलती है। एक श्री दि० जैन मंदिर बड़ा तेरह पंथियां, जयपुर के शास्त्र भण्डार (गुटका नं० ६३ वेष्टन नं० १३११) मे तथा दूसरी श्री दि० जैन मन्दिर बधीचन्द जी जयपुर के शास्त्र भण्डार (गुटका नं० २५ वेष्टन नं० ६७१) मे।

१—कवि घेल्ह सुतन ठाकुरसी। कियो नेमि सुरति मति सरसी॥

२—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रंथ सूची ३ भाग, प्रस्तावना, पृ० १४

३—दिगम्बर जैन मन्दिर लूणकरण जी पाड्या जयपुर मे गुटका नं० ६२ वेष्टन नं० ३१४ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची : सं० कस्तूरचन्द कासलीवाल : द्वितीय भाग, पृ० ६८

(१) वसन्त ऋतु में वन-क्रीड़ा के लिए प्रस्थान :

नेमिनाथ के पिता समुद्रविजय और माता शिवादेवी अपने परिजनों के साथ वसन्त ऋतु के आते ही वन-क्रीड़ा के लिए राजसी ठाटबाट के साथ प्रस्थान करते हैं। साथ में कृष्ण और उनकी सोलह हजार रानियाँ भी हैं।

(२) विरक्त नेमिनाथ को अनुरक्त करने के लिए प्रयत्न :

कृष्ण की रानियाँ मिलकर कुमार नेमिनाथ के विरक्त मन को अनुरक्त बनाने के लिए विविध प्रकार के प्रेमालाप करती हैं पर कुमार का राग-भाव फिर भी उद्दीप्त नहीं होता। अन्ततः सभी श्रान्त-क्लान्त हो सरोवर में जल-क्रीड़ा करती हैं।

(३) नेमिकुमार का आयुधशाला में जाकर धनुष चढ़ाना और शंख बजाना :

जल-क्रीड़ा करने के बाद शिवादेवी ने रुकमणी से नेमिकुमार की धोती निचोड़ने को कहा। इस पर व्यंग्य करते हुए रुकमणी ने जवाब दिया 'यदि ये कृष्ण की तरह नागशय्या पर चढ़कर सारंग धनुष चढ़ा दें और पांचजन्य शंख बजाकर सर्व दिशाओं को कम्पायमान कर दें तो मैं वस्त्र निचोड़ सकती हूँ'। यह सुनकर नेमिकुमार का स्वाभिमान जागृत हो गया और वे सबके रोकने पर भी हठात् आयुधशाला में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने नागशय्या पर चढ़कर चरणांगुलि से धनुष चढ़ाया और पांचजन्य शंखनाद किया।

(४) नेमिनाथ का बरात चढ़ाकर जाना और तोरण से वापिस लौटना :

नेमिनाथ के अद्‌भुत पराक्रम के समाचार ने कृष्ण के हृदय को ईर्ष्या की भावना से भर दिया अतः नेमिकुमार के बल को कम करने के लिए वे सोचने लगे कि किसी न किसी तरह उग्रसेन की कन्या राजमती के साथ इनका संबंध-सूत्र जोड़ दिया जाय। सगाई की बातचीत तय होने पर यथावसर नेमिकुमार ने राजसी ठाट-बाट के साथ विवाह करने के लिये प्रस्थान किया। उग्रसेन के द्वार तक पहुँचने पर उन्हें पास के बाड़े में बंदी पशु-पक्षियों की करुण-चीत्कार सुनाई दी। रथ रोककर सारथी से कारण मालूम किया तो पता चला कि कृष्ण ने बरातियों के आतिथ्य-सत्कार (जीमणवार) के लिये इन सब जीवों का प्रबंध किया है। इस घटना से नेमिकुमार का अनुरक्त मन फिर विरक्त हो गया। रथ वापिस लौट पड़ा। पशु-पक्षी मुक्त कर दिये गये और नेमिनाथ सांसारिक जन्म-मरण की स्थिति पर विचार करते-करते दीक्षा लेने के लिये कटिबद्ध हो गये।

(५) नेमिनाथ और राजमती का संयम धारण करना :

परिजनों ने बहुत समझाया पर नेमिनाथ ने किसी की बात नहीं मानी और गिरनार पर्वत पर संयम धारण कर लिया। कुमारी राजमती ने जब ये समाचार सुने तो उसने अपने सारे शृंगार उतार दिये और 'पीउ' 'पीउ' करती हुई

कवि-परिचय :

इसके रचयिता ठाकुरसी[1] (ठकुरसी) १६ वीं शती में पैदा हु
हिन्दी के विद्वान थे और छोटी-छोटी रचनाएँ लिखकर स्वाध्याय
बहलाने मे रस लेते थे। इनके पिता का नाम घेल्ह था जो स्वयं
करते थे। ये दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी थे। इनकी निम्नि
मिलती हैं[2]—

(१) कृपण चरित्र
(२) पंचेन्द्रिय वेलि
(३) नेमिश्वर की वेलि
(४) पार्श्वशकुन सत्ताबीसी
(५) चिन्तामणि जयमाल
(६) सीमंधर स्तवन
(७) गुण वेलि[3]:—यह कोई अलग रचना न होकर 'पंचेन्द्री वेलि' ही
ने प्रारम्भ तथा अन्त मे 'इति गुण वेलि लिख्यते' लिख दिया है जिस
कि यह दूसरी कृति है पर देखने से प्रतीत हुआ कि यह वस्तुतः पंचे
अभिन्न है।

रचना-काल :

वेलि मे कही भी रचना-तिथि का उल्लेख नही है। 'पंचेन्द्री वेलि
तिथि सं० १५५० कार्तिक सुदी तेरस (संवत पनरे से पचासे, तेरस
मासे) दी गई है। अनुमान है इसी के आस पास इसकी रचना की गई है

रचना-विषय :

५ भागों में गुंफित प्रस्तुत वेलि का कथानक भगवान नेमिनाथ के
है। कवि ने संक्षेप मे प्रमुख घटनाओं का वर्णन करते हुए नेमिनाथ की
एवं विरक्त-भावना का परिचय दिया है। कथा का वर्गीकरण इस प्रकार
सकता है:—

राजमति वेलि' नाम से दो जगह और मिलती है। एक श्री दि०
बड़ा तेरह पंथियां, जयपुर के शास्त्र भण्डार (गुटका नं० ६१ वेष्टन नं०
मे तथा दूसरी श्री दि० जैन मन्दिर बधीचन्द जी जयपुर के शास्त्र भण्डा
नं० २५ वेष्टन नं० ६७१) में।

१—कवि घेल्ह सुतन ठाकुरसी। कियो नेमि सुरति मति सरसी॥

२—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रंथ सूची ३ भाग, प्रस्तावना, पृ० १८

३—दिगम्बर जैन मन्दिर लूणकरण जी पाड्या जयपुर मे गुटका नं० ६१ वेष्टन नं०
राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रंथ सूची : सं० कस्तूरचन्द कासलीवाल,
भाग, पृ० ६८

(१) वसन्त ऋतु में वन-क्रीड़ा के लिए प्रस्थान :

नेमिनाथ के पिता समुद्रविजय और माता शिवादेवी अपने परिजनों के साथ वसन्त ऋतु के आते ही वन-क्रीड़ा के लिए राजसी ठाटबाट के साथ प्रस्थान करते हैं। साथ में कृष्ण और उनकी सोलह हजार रानियाँ भी हैं।

(२) विरक्त नेमिनाथ को अनुरक्त करने के लिए प्रयत्न :

कृष्ण की रानियाँ मिलकर कुमार नेमिनाथ के विरक्त मन को अनुरक्त बनाने के लिए विविध प्रकार के प्रेमालाप करती हैं पर कुमार का राग-भाव फिर भी उद्दीप्त नहीं होता। अन्ततः सभी श्रान्त-क्लान्त हो सरोवर में जल-क्रीड़ा करती हैं।

(३) नेमिकुमार का आयुधशाला में जाकर धनुष चढ़ाना और शंख बजाना :

जल-क्रीड़ा करने के बाद शिवादेवी ने रुकमणी से नेमिकुमार की धोती निचोड़ने को कहा। इस पर व्यंग्य करते हुए रुकमणी ने जवाब दिया 'यदि ये कृष्ण की तरह नागशय्या पर चढ़कर सारंग धनुष चढ़ा दें और पांचजन्य शंख बजाकर सर्व दिशाओं को कम्पायमान कर दें तो मै वस्त्र निचोड़ सकती हूँ'। यह सुनकर नेमिकुमार का स्वाभिमान जागृत हो गया और वे सबके रोकने पर भी हठात् आयुधशाला में पहुँच गये। वहाँ उन्होंने नागशय्या पर चढ़कर चरणांगुलि से धनुष चढ़ाया और पांचजन्य शंखनाद किया।

(४) नेमिनाथ का बरात चढ़ाकर जाना और तोरण से वापिस लौटना :

नेमिनाथ के अद्भुत पराक्रम के समाचार ने कृष्ण के हृदय को ईर्ष्या की भावना से भर दिया अतः नेमिकुमार के बल को कम करने के लिए वे सोचने लगे कि किसी न किसी तरह उग्रसेन की कन्या राजमती के साथ इनका संबंध-सूत्र जोड़ दिया जाय। सगाई की बातचीत तय होने पर यथावसर नेमिकुमार ने राजसी ठाट-बाट के साथ विवाह करने के लिये प्रस्थान किया। उग्रसेन के द्वार तक पहुँचने पर उन्हें पास के बाड़े में बंदी पशु-पक्षियों की करुण-चीत्कार सुनाई दी। रथ रोककर सारथी से कारण मालूम किया तो पता चला कि कृष्ण ने बरातियों के आतिथ्य-सत्कार (जीमणवार) के लिये इन सब जीवों का प्रबंध किया है। इस घटना से नेमिकुमार का अनुरक्त मन फिर विरक्त हो गया। रथ वापिस लौट पड़ा। पशु-पक्षी मुक्त कर दिये गये और नेमिनाथ सांसारिक जन्म-मरण की स्थिति पर विचार करते-करते दीक्षा लेने के लिये कटिबद्ध हो गये।

(५) नेमिनाथ और राजमती का संयम धारण करना :

परिजनों ने बहुत समझाया पर नेमिनाथ ने किसी की बात नहीं मानी और गिरनार पर्वत पर संयम धारण कर लिया। कुमारी राजमती ने जब ये समाचार सुने तो उसने अपने सारे शृंगार उतार दिये और 'पीउ' 'पीउ' करती हुई

नेमिनाथ के पास जा पहुँची। वहाँ उसने भी संयम धारण कर लिया। अंत में आत्म-साधना करते हुए एवं सांसारिक प्राणियों को धर्मोपदेश देते हुए दोनों सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

काव्य की कथा सीधी-सरल है, उसमें वक्रता-जटिलता का अभाव है। चरित्र-परिवर्तन में अलौकिक घटनाओं अथवा चमत्कारिक प्रसंगों का आधार नहीं लिया गया है। कवि का उद्देश्य अपने चरित्र-नायक की उदारता एवं उन्नत भावना का उद्घाटन करना ही रहा है। नेमिकुमार प्रारंभ से ही राग-भावनाओं से परे हैं, उन्हें अनुरागी बनाने के प्रयत्नों में ही कथा का विकास होता है जिसके निम्नलिखित सोपान हैं :—

(१) सबका मधुमास के आते ही वन-क्रीड़ा के लिये प्रस्थान करना[1]।

(२) विरक्त नेमिकुमार को अनुरक्त बनाने के लिए रानियों का परिहास करना और नेमिकुमार का आयुधशाला में जाना[2]।

(३) कृष्ण का राजमती के साथ नेमिकुमार का संबंध-सूत्र जोड़ना[3]।

प्रारंभ में ऐसा लगता है कि कृष्ण अपने उद्देश्य में सफल हो रहे हैं। बरात सज जाती है। नेमिकुमार उग्रसेन के द्वार तक पहुँच जाते हैं पर 'प्राप्त्याशा' की स्थिति बन नहीं पाती। अचानक बाड़े में बंदी पशु-पक्षियों की कातर-पुकार

१—आई मास वसंत रितु, जरा मरा भयो अनंदु।
सवइ वन कीढा चल्या, मिलि द्वारिका नीरंदु ॥

२—जलि विनोद करि निसर्‌या, मनि हरखी नर नारि।
पहरि वस्तु आभरण अंगि, आवहि नगर मझारि ॥
तब स्यवदे रुपिणि स्यों कहिउ, कहा रहो मुहु मोड़ि।
नेमिकुंवर की पडदणी, देने बहू निचोड़ि ॥
आ देनो बहू नीचोड़ो, तिणि उत्तर दियो बहोड़ो।
जो सारंग धनुख चढ़ावे, ले संखु पंचाइणु वावे ॥
चढ़ि नाग सेज जो सोवें, रुपिणि तसु वस्तु निचोवे।
सुणि सती भामा कर जोड़ी, ले दीन्हो वस्त्र निचोड़ी ॥
सुणि सिवदे तणउ कुमारो, मनि लिपटिउ अहंकारो।
वरजता सहि रखवाला, प्रभु पैठउ आयधसाला ॥
मनि गिणे नहीं रंगि छूटो, चढ़ि नागसेज जो सूतो।
टिचअंगुलि धनख चढ़ायो, नासिका संख परिआयो ॥

३—तब देखी मनि लयवंती। आइ उग्रसेणि धीय मंगी ॥

सुनकर नेमिनाथ उल्टे पाँव लौट पड़ते हैं[1] और जीवन का मोड़ ही बदल जाता है।

कथा का अंगीरस शांत रस ही है। प्रारंभ में नेमिकुमार की संसार के प्रति उदासीनता और अन्त की संयम-तप-सिद्धि रसानुकूल ही है। बीच में शृंगार का मनग्रानित प्रवस्य मानस को उद्वेलित कर देता है। भाभियों के परिहास में हास्य तथा नेमिकुमार के आयुधशाला में प्रदर्शित पराक्रम में वीर भावनाओं का उन्मेष हुआ है। बंदी पशु-पक्षियों की पुकार में करुणा का स्वर है।

चरित्र-चित्रण :

कवि ने घटनाओं के माध्यम से चरित्र का विकास किया है। प्रमुख पात्रों में नेमिकुमार और राजमती हैं। गौण-पात्रों में समुद्रविजय, शिवादेवी, रुकमणी, सत्यभामा, कृष्ण, सारथी, सखियाँ आदि आती हैं। पशु-पक्षी मानवेतर पात्रों में आते हैं।

नेमिकुमार का व्यक्तित्व प्रारंभ से ही स्थितप्रज्ञ का व्यक्तित्व है। वे सांसारिक ममता-माया से उदासीन हैं, राग-रंग उनके व्यक्तित्व के बाह्य उपादान हैं, जिनमें वे रस लेते भी हैं तो दूसरों को सरस बनाने के लिये। थोड़े समय के लिये वे अपने बाहुबल का जोर भी आयुधशाला में जाकर दिखा देते हैं जिससे कृष्ण तक भयभीत हो जाते हैं और राज्य-सुरक्षा के दृष्टिकोण से ही उन्हें विवाह-बंधन में बाँधने का उपक्रम करते हैं। वे मन-बहलाव के लिये बरात सजाकर चल भी देते हैं पर पशु-पक्षियों का रुदन उनकी राग-भावना को-जो आरोपित है-दबाकर फिर से विराग-भावना को जगा देता है और वे गिरनार पर्वत पर जाकर तपस्वी बन जाते हैं। वीर, करुण और शान्त रस की त्रिवेणी का अद्भुत संगम है नेमिनाथ का प्रभाव-व्यक्तित्व। इसके चारों ओर जो प्रेम का वातावरण है वह उन्हें और अधिक पवित्र बनाने के लिये ही।

राजमती[2] काव्य की नायिका है। उसका पति उसकी यौवन-देहरी में बिना

१—सुर नर जाइम मिलि चल्या, व्याहण नेमिकुमार।
पसु दीठा बाड़ै बह्यो, करुणा सुणइ पुकार॥
हरण रोझ सूयर ससुय, पुकारहि मुह उचाहि।
नेमिकुमार रथ राखि करि, पूछ्यो कारण काहि॥
ऐ कारण ए ताहि, पसु बंधिया विविधु काजि।
तिणि अंध्यो विरति सपराना, पसु छाडि चले मन ध्याना॥
पोरिसा अर्थ बताणी, पसु बंदिया सहु छुटाणी।
तब नेमिकुमार रथ फेरि, पसु मुकलाया सहु छाडि॥

२—यह बीसहू पद्यों में से चौथी कड़ी ली गई है।

प्रवेश किये ही लौट गया। फिर भला वह कैसे राग-रंग में डूबी रहे? उसके आभूषण उतर गये, उसका शृंगार फीका पड़ गया और वह 'पीउ'-'पीउ' की रट लगाये सबके मना करने पर भी अपने तपस्वी (नेमिनाथ) के चरणों में जा पहुँची स्वयं तपस्या का सुहाग प्राप्त करने।

कला-पक्ष :

कवि का ध्यान कला-पक्ष की ओर नहीं रहा है। फिर भी वर्णन क्षमता और भाषा-सारल्य कवि की अपनी विशेषता है। वर्णन-शैली और संवाद-शैली दो ऐसे उपादान हैं जिनके द्वारा कथा आगे बढ़ी है वर्णन के स्थल मुख्यतः दो जगह आये हैं :—

(१) राजाओं की वन-यात्रा का वर्णन
(२) नेमिकुमार के साथ अन्य परिजनों का हास-परिहास-वर्णन।

संवाद-स्थल तीन जगह आये हैं :—

(१) शिवादेवी-रुक्मणी संवाद
(२) राजमती-सखी संवाद
(३) नेमिनाथ-सारथी संवाद

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। उसमें भावानुकूल आरोह-अवरोह है-

सुणि सिवदे तणउ कुमारो। मनि खिचडिउ अहंकारो॥
वरजता सहि रखवाला। प्रभु पैठउ आवधसाला॥
मनि गिणै नहीं रंगि रूतौ। चडि नागसेज जो सूतौ॥
चरणांगुलि धनख चडायो। नासिका संखु धरिवायो॥

यत्र-तत्र अलंकार भी आये हैं—

अनुप्रास :

(१) तजि मोहु मान मदरीसा
(२) वाजा वजहि बहु भंते, वंदियण बिड़द पभणंते।

रूपक :

सरसइ स्वामिणी पय-कमल, नमउ जोड़ि कर दोइ।

अतिशयोक्ति :

दल रज परी चउपासे। नहु सूझइ सूर अगासे॥

छन्द :

काव्य में दोहा और सखी छंद का प्रयोग हुआ है-

उदाहरण :

दोहा :—सुणिय बात रजमती कवरि, परहरियो सिंगारु ।
पिउ पिउ करती तहि चली, जहि वनि नेमि कुमारु ॥

सखी :—तजि मोहु मान मदरोसा, अति सहिया विषम परीसा ।
तह अट्ठ करम बलुवायो, तिन्नि केवल ग्यानु पायो ॥

[४] नेमि परमानंद वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि भगवान नेमिनाथ के ज्ञानकल्याणक उत्सव तथा मोक्ष कल्याणक उत्सव से संबंध रखती है । 'परमानंद' शब्द मुक्ति के आनंद का व्यंजक है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता जयवल्लभ[2] साध पूर्णिमागच्छ के माणिक्यसुन्दर सूरि के शिष्य थे[3] । ये सोलहवीं शती के उत्तरार्द्ध के कवियों में से थे । देसाईजी ने इनको निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख किया है[4]—

(१) श्रावक व्रत गृही धर्म रास सं० १५७७
(२) स्थूलभद्र बासठीओ
(३) धन्ना अणगार नो रास

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है न लिपिकाल ही दिया है। कवि की एक कृति-श्रावक व्रत गृहीधर्म रास का रचना-काल सं० १५७७ है। इससे अनुमान है कि इसीके आस पास इस वेलि की भी रचना की गई हो।

१—(क) मूल पाठ मे वेलि-नाम आया है—
परमाणंद रस वेलि रे, हृदय कमलि तु ं भेलि रे (१)
(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद के नगरसेठ कस्तूरभाई मणिभाई-संग्रह के ग्रंथांक १०८५ में सुरक्षित है। यह ४ पत्रों में लिखी हुई है।

२—वेलि के अन्त में कवि ने अपना नामोल्लेख किया है—
श्री जयवल्लभ मुनीश्वर भवइ, सुणु सुणु नेमि जिणंद।
दोइ कर जोड़ी सेवा तोरी, मांगू वली वली एह रे ॥४८॥

३—जैन गुर्जर कवियो: भाग ३, पृ० ५१७

४—वही: पृ० ५१७-१८ तथा १४६१

रचना—विषय :

४८ छंदों की इस रचना में बाइसवें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ और उनकी वाग्दता पत्नी सती राजमती (जो बाद में साध्वी बन जाती है) के केवल ज्ञान प्राप्त करने एवं मोक्ष में जाने का वर्णन किया गया है। काव्य के प्रारंभ में ही कवि ने नेमिनाथ को परम योगीश्वर के रूप में देखा है। उन्होंने भरी जवानी में नवयौवना राजकुमारी राजमती का परित्याग कर संयम धारण कर लिया[1]। बरसते हुए श्रावण और गरजते हुए आसमान में वे गिरनार पर्वत पर चढ़ गये[2]। वहाँ ५४ दिन तक निश्चल मन से कायोत्सर्ग किया फलतः ५५ वें दिन केवल-ज्ञान की प्राप्ति हुई[3]। आकाश में देव-दुन्दुभी बजी और देवताओं ने समवशरण[4] की रचना की। आठ प्रतिहार्य[5]-अशोक वृक्ष, सिंहासन, तीन छत्र, भामंडल, दिव्यध्वनि, पुष्पवृष्टि, चौंसठ चमर, दुंदुभी बाजे-तथा चौंतीस अतिशय हुए। धर्मचक्र चलने लगा, आकाश गूंज उठा, सुगंधित जल (गंधोदक) की वर्षा हुई, पृथ्वी कंटक रहित

१—भरि नव यौवनि परिहरी रे, रायमइ रायकुमारी।
कृपा करी जिणि पिशूअ ऊगारिया, आपुण थ्या ब्रह्मचारी रे ॥२॥
रथ वाली प्रभु पाछा वलीया, पुहता गिरि गिरनारि।
सहस पुरुषसुं दीक्षा लीधी, सुर करइ जयजयकारे रे ॥३॥

२—श्रावण वरसइ सरवडेरे, गयणइं घोर अंधार।
अंबरि गाजइं मेहडीरे परवति मोर किंगार रे ॥४॥
दीक्षा लेई गिरवरि चढीया, स्वामी नेमि जिणंद।
परम योगीश्वर समरसि पूरिया, पूरइ परमानंद रे ॥५॥

३—ध्यानधरो मनि निश्चल रहीया, काउसग चोपन दिनरे ॥६॥
दिन पंचावनि ध्यान धरंता, ऊपनूं केवल ज्ञान ॥७॥

४—समवशरण केवल ज्ञानी तीर्थंकरो की सभा का नाम है।
प्राचीन जैन इतिहासः प्रथम भागः बाबू सूरजमल जैन, पृ० ११७-२०

५—देवदुंदुभि आकाशइ बाजी, आवइ अमर विमाण रे ॥७॥
सोना रूपा रयणातणा रे, त्रिणि गढ च्यारि पोलि।
पंचवर्ण मणि रयण कोसीसा, सोहइ तेहनी ओलि रे ॥८॥
सुरनर किंनर सेवा सारइ, आवइ इन्द्र उपेंद्र।
समवसरणि तिहां स्वामी बइट्ठा, प्रणमइ सुरनर वृंद रे ॥९॥
त्रिणि छत्र जसु शिरवरि सोहइ, ढालइ चामर इंद।
अशोकवृक्ष पूठइं भामंडल, वाणि वरसइ वृंद रे ॥१०॥
पचवर्ण मणिरयण सिंहासनि, बइठा करइ वखाण।
योजन लगइ जिनवाणी, सुणीइ उदया त्रिभुवन नाथ रे ॥११॥
पाखे बर्नें पुर उभारे, पूरिया चमर अपार।
महुमहणा तिहां धूर डोंबर, कुसुम भरइ तिहार रे ॥१२॥

हो गई, भगवान के विहार करते समय देव उनके चरणों के नीचे कमल रचने लगे, दसों दिशाएँ निर्मल हो गई, जीवों की हिंसा बंद हो गई, छहों ऋतुएँ बारह मास फल-फूल उठीं और सर्वत्र मंगल गीत गाये जाने लगे[१]।

संसार को अस्थिर समझकर राजमती भी दीक्षा अंगीकृत कर भगवान को वंदना करने के लिए गिरनार पर्वत पर चली। तप-संयम की कठोर आराधना से केवल-ज्ञान की प्राप्ति कर वह भगवान नेमिनाथ से पहले ही मुक्ति-लोक मे पहुँच गई[२]। नेमिनाथ ने गिरनार पर्वत पर कायोत्सर्ग[३] कर परमानंद (मुक्ति) प्राप्त किया।

१—गयणंगणि अणवाई वाजइ, दुंदभि कोडाकोडि।
धर्मचक्र गयणंगणि झलकइ, अणहुंतइ सुरकोडि रे ॥१५॥
इंद्रधजा आकाश अलंबित, घंटा रणरणकार।
वीणा वंश सुहावा वाजइ, झल्लरि रण झणकार रे ॥१६॥
कुसम वृष्टि गंधोदक सरा, कंटक ऊधा थाइ।
सीतल सुरहा पवन ज वाइ, संकट दूरि पुलाइ रे ॥१७॥
जिणवर पाय ट्ठवइ तिहा सुरवर, सोवन कमल संचारइ।
दह दशि फिरता पंचवीस जोअण, ईत्त अमारि निवारइ रे ॥१८॥
सेव करइ समकालिज आवी, छइ रति बारह मास।
फलफूले तिहा तिरुअर पूरिया, ममता करइ उल्हास रे ॥१९॥
त्रिणि प्रदक्षण देई वंदइ, चातक चक्र चकोर।
गयवर सिंह करइ तिहां क्रीडा, नाग सरीसा मोर रे ॥२०॥
नवनव छंदइं मादल वाजइ, नाचइ अपछर रंभा।
गुहिरइं सादइं पंचम भाइं, वाइं भेरी भंभारे ॥२१॥
सोवन दंडि धजा तिहा लहकइ, रणकइं घंटीनाद।
अमरवधू मधुरध्वनि गाइ, सुणीइ किनर साद रे ॥२२॥

२—रायमइ राणी एमइ जाणी, जाणिओ अथिर संसार।
बहु परिवारइ दीक्षा लीधी, वंधा नेमिकुमार रे ॥२३॥
नेमि निरंजन सेवा करतां, तप जप संजिम पालइ।
केतकि परिमल भमरतणी परि, आपइ आप संभालइ रे ॥२४॥
परम पुरुषनी सेवा करतां, ऊपनुं केवल ग्यान।
स्वामी पहिलां सवपुरि पुहता, पामियां सुखनिधान रे ॥२५॥

३—ऊंचानइं रुलियामणारे, गिर गिरनारह शृंग।
तिहां चडी रपि काओसग कीधा, पूरिला मनना रंग रे ॥२६॥
इक पदमासन सूरी बइसइ, इक वीरासन वाधइ।
ऊरधबाहे करइ इक काउसग, नवमे सूरिज साधइ रे ॥२७॥
सहइ सीआलइ सीत परीसह, उन्हालइ झलझूअ।
चोविहार तिहां करइ चुमंसी, कर्म खिगावइ रूडइ रे ॥२८॥

अन्त में कवि ने नेमि-नाम का माहात्म्य गाया है। भव-भय-दुख-दावानल के लिए नेमिनाथ का नाम जल है[1]। उससे अहर्निश अमृत झरता रहता है[2]। वह हृदय-सरोवर के लिए हंस के समान है[3]। उसके बिना पल भर भी नहीं रहा जा सकता[4]। उसकी प्राप्ति का एक मात्र साधन संसार के समस्त सम्बन्ध-सूत्रों को तोड़कर मुनि-दीक्षा धारण करना है[5]।

कलापक्ष :

काव्य की भाषा सरल-सुबोध राजस्थानी है। उसमें नाद-सौन्दर्य और माधुर्य की छटा देखिये—

श्रावण वरसइ सरवडेरे, गयणइं घोर अंधार।
अंबरि गाजइं मेहडोरे, परवति मोर किगार रे ॥४॥
नव नव छंदइं मादळ वाजइ, नाचइ अपछर रंभा।
गुहिरइं सादइं गंध्रव गाइं, वाइं भेरी भंभारे ॥२१॥

अलङ्कारों में उपमा और परम्परित रूपक का विशेष प्रयोग हुआ है—

उपमा :

केतकि परिमल भ्रमर तणी परि, आपइ आप संभालइ रे ॥२४॥

परम्परित रूपक :

(१) भव-भय-दुख-दावानल जलिहर, नेमिजी जगदाधार रे ॥३४॥
(२) हृदय सरोवरि हंस तणी परि, नेमिजी नाम तुम्हारुं ॥३६॥
(३) दुरगति दुख-दावानल वारण, पूरइ परमानन्द रे ॥४७॥

छन्द :

इसमें हरिपद[1] छन्द का प्रयोग हुआ है। उसे लययुक्त बनाने के लिए अन्तिम चरण के अन्त में 'रे' को विशेष रूप से जोड़ा गया है।

१—राजरिद्धि रमणीना संगम, ते तु करवत धार।
भव–भय–दुख–दावानल जलिहर, नेमिजी जगदाधार रे ॥३४॥
२—नेमिजी नाम अमीरस वरसइ, अहनिसि होइ अम्हारइ।
परमानंद पयोनिधि ससिहर, मुखि थीर लेवी सारद रे ॥३५॥
३—हृदय सरोवरि हंस तणी परि, नेमिजी नाम तुम्हारुं।
अति आनंदइ रमति करंतु, वलीय वली संभारूं रे ॥३६॥
४—नेमिजी नेमिजी नाम जपंतां, रंग भरि रयणि विहाइ।
दिवसि रमइ तुं हीयडा भितरि, तुम्हा विण रहुं न जाइ रे ॥४०॥
५—विषम (१,३) चरण में १६ तथा सम (२,४) चरण में ११ मात्राएँ।
अन्त में गुरू लघु (ऽ।)

उदाहरण :

नयणानन्दन नेमि निरन्जन, ध्याऊं हृदयानन्द ।
दुरगति दुख दावानल वारण, पूरइ परमाणंद रे ।।४७।।

'श्रांचली' के रूप मे निम्नलिखित पंक्तियां प्रयुक्त हुई हैं—

हीयडा लाहेलि रे, नेमजी नाम मेल्हि ।
परमाणंद रस वेलि रे, हृदय कमलि तुं भेलि रे ।
उपशम रङ्ग ज रेलि रे, नेमि० श्रांचली ।

(५) नेमि राजुल बार मास वेल प्रबन्ध[1]

प्रस्तुत वेल नेमिनाथ और राजमती से सम्बन्ध रखती है । 'नेमि राजुलबार मास वेल प्रबन्ध' शीर्षक से सूचित होता है कि इसमे बारहमासा वर्णन द्वारा राजुल की विरह-भावना व्यंजित की गई है ।

कवि-परिचय :

इस वेल के रचयिता जयवन्त सूरि सोलहवी शती के उत्तरार्द्ध मे पैदा हुए थे । इनका नाम गुण सौभाग्य भी था[2] । ये तपागच्छीय उपाध्याय विनयमण्डन के शिष्य थे[3] । ये विनयमण्डन के प्रधान शिष्य नहीं थे । श्रृङ्गार मंजरी अथवा शील-वती चरित्र मे दो शिष्यो–विवेकमण्डन और सौभाग्यमण्डन–के नाम गिनाकर इन्होने स्वयं 'जयवन्त लघु सीस तासे' लिखा है । संवत् १५८७ वैशाख कृष्णा ६ रविवार को शत्रुंजय पर ऋषभनाथ तथा पुण्डरीक के मूर्ति-प्रतिष्ठान के समय अपने आचार्य विनयमण्डन के साथ ये भी उपस्थित थे[4] । देसाईजी ने इनकी निम्नलिखित रचनाओं का परिचय दिया है[5]—

(१) श्रृङ्गार मंजरी अथवा शीलवती चरित्र सं० १६१४
(२) ऋषिदत्ता रास सं० १६४३ मागसर शुद १४ रविवार

१—(क) मूल पाठ में वेलि-नाम आया है—
वेधक जन मन रीझवइ मानिनि मोहण वेलि (२)
(ख) इसका परिचय गुजराती साहित्य ना स्वरूपो (पृ० २८२–८४) मे प्रस्तुत किया गया है ।

२—गुण सोभाग सोहामणि वाणी थउ रङ्गरेलि (२)

३—श्री विनयमण्डन उवझाय अनोपम तपगछ गयणे चन्द्र ।
तसु सीस जयवंत सूरिवर, वाणी सुणंता हुई आणंद ।।७७।।

४—मुनि जिनविजय कृत शत्रुंजय तीर्थोद्धार की प्रस्तावना

५—जैन गुर्जर कवियो : भाग १, पृ० १६३–९८ तथा भाग ३ खण्ड १, पृ० ६६६–६७२

(३) सीमंधर स्तवन
(५) सीमंधरना चन्द्राउला
(७) शाध्य प्रकाश की टीका
(४) स्थूलभद्र प्रेम विलास फाग
(६) लोचन-काजल संवाद.
(८) स्थूलिभद्र मोहन वेलि

रचना-काल :

संवत १६५० के आसपास इसकी रचना की गई[१]।

रचना-विषय :

७७ छन्दों में रचित इस वेलि का सम्बन्ध नेमिनाथ और राजमती के उस प्रसङ्ग से है जहाँ नेमिकुमार तोरण से वापिस लौट पड़ते हैं और राजमती विरहाधिक्य से मूर्छित हो गिर पड़ती है। कवि ने राजुल की विरह-व्यंजना के लिए बारहमासा पद्धति को अपनाया है[२]। प्रारम्भ के दूहे में प्रत्येक मास का उल्लेख कर आगे की राग मल्हार देशी में तद्जन्य राजुल की विरह-भावना की विवेचना की गई है।

भाद्रमास बादलों की घटा, बिजली की चमक और मोर की पुकार लेकर राजुल को सताने लगता है[३]। कार्तिक मास का मेह प्रिय की निर्ममता और प्रेम का दिखावा लेकर आता है[४] उससे विरह की ज्वाला और अधिक प्रज्वलित हो उठती है[५]।

१—गुजराती साहित्य नां स्वरूपो : पृ० २८२-८४

२—द्वादश मास सोहामणा, गांउ जिण गुणगान ॥१॥

३—दल मनमथ बादलिइ, घन-घन-घटा रे,
जे जे वरसइ धार, ते विरह-तनि सटारे।
बीजली असि झलकाइ, उभराति वीछड्यारे,
केकि बोल सुणंति कि, मूरछाई पड्यारे।
गेह की आरति आरति, आवी मोरडी रे।
आरति सेजि आरति, झूरइ गोरडी रे।
भ्रादविइ गुहिर गंभीर, कि मेह झड़ी करी रे,
रेयणी घोर अंधार, कि वाल्हा सांभरइ रे।

४—सजन खोटारा तेहवा, जेहवा काती मेह,
आडम्बर अति दाखवइ, आस न पूरइ मेह।
ऊनईउ वरसि नही, करि वप्पीया संतोष,
ते सज्जन अणदीठा भला, जे मलीइ मन लोइ सोसि।

५—नवि गमि सूतां वलीय बिइठां, विरह व्यापिइ पापीउ।

पौष माह मे विरह की मात्रा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि भोजन, पान, फूल आदि कुछ भी अच्छा नही लगता[1]। आँखों मे नीद नही आती, नीर रहित मछली सी वेदना लिये विरहिणी तड़पती रहती है[2]। फाल्गुन मे होली पर तो बारहमास के बिछुड़े हुए भी घर आकर खेलते है[3] पर बिना प्रियतम के यह वासन्ती विकास और रंग का उफान कैसा[4] ?

कलापक्ष :

काव्य की भाषा माधुर्य गुण-सम्पन्न है। यत्र-तत्र अलंकार भी आये है—

अनुप्रास :

हेमंत कालि सजन सालि, नयणि नाठी नीद्रड़ी।

उपमा :

(१) विलविलि बाला, विरह-जाला, निर विण जिम माछिली।
(२) सजन खोटारा तेहवा, जेहवा काती मेह।

मुहावरे का प्रयोग भी हुआ है—

दाधां उपरि लूण, लगावी आपीया रे।

छंद :

दोहा और ढाल (राग मल्हार देशी) का प्रयोग हुआ है।

क्षण माहि बाहिरि, सास सोसिइ, विलपि तन संतापेज ॥
प्रिय पंथ जोता, ध्रतक रोता, दीस दोहिलइ नी गमूं।
नवि जाइ वयरणि, रयणि किमहि, कंत विण सूनो भंमू।

१—पोसिइ सोस व अति घणउ, पिय विण किस्यु रंगरोल।
भोजन तु भावि नहिं, किस्यु कुसुम तंबोल ॥

२—विलविलि बाला, विरह-जाला, निर विण जिम माछिली ॥
ताल बियु सीमु जिम उसीसु, सेजि-स्यू लेस्यूं जड़ी।
हेमंत कालि सजन सालि, नयणि नाठी नीद्रडी।

३—फागुणि होली सहु करइ, वीछड्याही बार मास।
सजन छोडावु दिरहथी, जु अम्ह जीवित आस।

४—फूंपल्या केसू, लाल वेसू, कपूर केसर छाटणा।
राती गुलालि, छीटी माली, उपरी आछा ऊंढणां ॥
अे जोडि मदमति, हसति खेलति, देख तिई दुख संभरइ।
पियु बिना कहिस्यूं वसंत खेलूं, छांटणां पत्तरकी भरई ?

६ नेम राजुल वेल[1]

प्रस्तुत वेल भी नेमिनाथ और राजमती से संबंध रखती है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता चतुरविजय हैं। वेलि के अन्त में कवि ने दो जगह अपना नामोल्लेख किया है[2]। सं० १७६४ के कल्पसूत्र स्तवक में भी इनका नाम मिलता है। ये तपागच्छीय आणंदसूर शाखा के आचार्य विजयऋद्धि सूरी (सं० १७६६-६७) के प्रशिष्य और रविविजय के शिष्य थे[3]। इन्होंने प्रस्तुत रचना के अन्त में गुरु-परम्परा का उल्लेख भी किया है[4]। उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में चतुर-विजय नाम के एक और कवि हुए हैं जो नवलविजय के शिष्य थे[5]।

रचना-काल :

कवि ने वेलि के अन्त में रचना-काल दिया है[6]। इसके अनुसार सं० १७८६ पौष सुदि १४ गुरुवार को यह रची गई।

१—(क) मूल पाठ में वेल-नाम आया है—नेम राजूल वेल वारू रोपावी (२०१)
(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति मुनि कांतिसागर जी के पास है। इसका आकार ८¾"×४½" है। कुल ६ पत्र हैं जिनमें से ८ वां पत्र खो गया है। प्रत्येक पृष्ठ में १५ पंक्तियां है और प्रत्येक पंक्ति में ३६ अक्षर हैं। इस वेल का नाम अभंग वेल भी मिलता है। कवि ने स्वयं कहा है—
अभंग वेल मति सारे भाखी, पंडित कोइम कर जोईस (१६८)
२—(क) कर जोडे प्रणमे जिन नेमीसर, विधएण जंपें मुनि चतुर (२०३)
(ख) चतुर विजय साथ सुं हीइं, सुप्रसन्न भव भव सेव दिजे कमल तुम्ह (२०४)
३—राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोजः मुनि कांतिसागर (अप्रकाशित)
४—दीपंतो दरीयाव तपागच्छ, वडोवडि हीरविजय सूरि।
जगत गुर तास पाट किरतिविजय, उवझाया अमृतविजय तिण अधिकें नूर
रतन विजय रवि रतन सारिखो, कवी गुर लहीउं नाम निहालि।
पाटें विजय मान सूर पटोधर, विजयरिद्ध सूरि जयो आसिहलि (२००)
तासु राजरी नवीउं नेम जिन, श्री सकल संघ सदाई मंगल।
नेम राजूल वेल वारू रोपावी, भलो वदीउं जस कमाई भल (२०१)
पंडित माहे गुण निरामणी भावो, रविविजय कहीइं कवि गुर।
कर जोडे प्रणमे जिन नेमीसर, विधएण जंपें मुनि चतुर (२०४)
५—जैन गुर्जर कविओः भाग ३, खण्ड १, पृ० ३०६
६—संवत सतर छिउतरे सुदि पोसे, रचीउं पुण्य चवदस गुरुवार (२०२)

रचना-विषय :

यह २०४ छंदों की रचना है। इसमें ठकुरसी कृत 'नेमिश्वर की वेलि' की कथा को ही विस्तार के साथ गाया गया है। कथा-सार का विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) *मंगलाचरण :*

प्रारंभ के दो पद्यों में सरस्वती तथा गुरु की वंदना करते हुए वस्तु का निर्देश किया गया है[1] (१-२)।

(२) *द्वारका नगरी वर्णन :*

द्वारका कृष्ण की राजधानी है। वह इंद्र की नगरी की तरह रम्य है। उसमें ८४ बाजार हैं और ५६ करोड़ यादव निवास करते हैं, वहाँ के गढ़, महल, वन, उद्यान आदि दर्शनीय हैं। नेमिकुमार यहीं अपना यौवन-काल व्यतीत करते हैं (३-८)।

(३) *नेमिकुमार का आयुधशाला में जाकर चक्र चलाना, धनुष चढ़ाना और शंख बजाना :*

नेमिकुमार आयुधशाला मे जाकर अपनी वीरता का प्रदर्शन करते है जिससे सारा त्रिलोक कांप उठता है। समुद्र मर्यादा छोड़ देता है, पर्वत टूट-टूटकर गिरने लगते है और सूर्य तथा नक्षत्र अपनी गति भूलकर पथभ्रष्ट हो जाते हैं[2] (९-१८)।

(४) *कृष्ण का आशंकित होकर नेमिकुमार के बाहुबल की परीक्षा लेना :—*

इस परीक्षा मे नेमिकुमार कमल नाल की भांति कृष्ण की भुजा को झुका देते हैं पर कृष्ण नेमिकुमार की भुजा को नही झुका पाते हैं वह मेरु पर्वत की भांति अडिग रहती है[3] (१९-२३)।

१—सारद मात सुमति, समपसुत, विध २ रित वाखाणुं वयण।
प्रणमु प्रेम धरे गुरु पंकज, संय जीउं भेणं ग्यान नयण ॥१॥
समुद्र विजय कुलचंद इंद समोवड, शिवादेवी मात उपंनोउ अरि।
बंधव कृशन बलिभद्र सरिसा, राज करे वसुदे कुंअर ॥२॥

२—सब्द सह काने संचरीउ, कंपीआ सुर असुर तणा दल।
माहो माहे हूआ अमूड मति, बोलाहल होइं काइन चले कल ॥१२॥
उछके उदधि जल लोय इंलीह, त्रुटें गिर टुकयडे घर चाल .
भल हल तें रथ थंभीउं, किरणाकर चालता नक्षत्र चूकीया चालि ॥१३॥

३—पसारी भुज पहेलो नारायण, कहे नेम वालो अमकर।
कुंअर नेम भालो भुज डोरा, वले कमलनाल कना कृशन कर ॥२१॥

(५) *नेमिकुमार के विवाह के लिए कृष्ण का प्रयत्नशील होना :*

नेमिकुमार विवाह से उदासीन हैं। उनकी इस उदासीनता को दूर करने के लिए वसन्तोत्सव का आयोजन होता है[1]। सत्यभामा, रुक्मणी, राधा आदि कृष्ण की १६ हजार रानियाँ नेमिकुमार से परिहास कर उनके साथ फाग खेल, उन्हें काम-क्रीड़ा का रहस्य बतलाती हैं[2]। किसी तरह नेमिकुमार से विवाह की स्वीकृति लेकर कृष्ण उग्रसेन की पुत्री राजमती के साथ उनका संबंध तय कर लेते हैं (२४-४७)।

(६) *उग्रसेन तथा समुद्र विजय द्वारा विवाहोत्सव की तैयारी करना :*

राजमती के पिता उग्रसेन विवाहोत्सव की समस्त तैयारियाँ प्रारंभ करते हैं। भव्य पुष्प-मंडप छाया जाता है। जगह-जगह चित्रित द्वार बनाये जाते हैं। मंगल-गीतों से आकाश गूंज उठता है (४८-५५) नेमिकुमार के पिता समुद्र विजय बरात सजाते हैं। बरातियों में ५६ करोड़ यादव सम्मिलित हैं। विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाये जाते हैं, जिनमें भाद्रमास की मेघ-गर्जना की भांति कर हाथी मदोन्मत्त हो उठते हैं। कृष्ण और बलदेव केसरिया वस्त्र पहने हैं। नेमिकुमार ने रत्नजटित मौड़ बांध रक्खा है। (५६-६८)।

नेमकुमार पसार भुज पोंहें, नारायण नमावण काज।
गें गिरमेर नेम भुज न डिगें, मन मे गिर मार न जाइं भाज ॥२२॥

१—सोल सहस नारि मील सामलों, माखें विध विध वयण प्रचार।
आवो देवर बसंत रित आई, बन राई फूली सहकार ॥१५॥
पमरीउं पवन मिलयाचल मीठो, दीठो बसंत तणो दीदार।
भार अढार फुली बन राई, मह गलीं भ्रा मय-गल मद धार ॥१६॥
बन २ तन तन पमरीउं अती प्राक्रंम, वले हुउ मृगंमद तणो वास।
मुरिख माज कुंण मंदिर मुंमें, बनवासा तणा मेल विलास ॥१७॥
नली झंबो झलो भरी निव नीरे, केसर चंदन बासित कपूर॥
कर ग्रहे चाली कमला केलि करवा, ताल मृदंग बाजंत मूर ॥१८॥

२— भर पचकारी नाखें नेम सांमुहौ, गुलाल अबीर तणी भरि मुंठ।
रमाईं रास रमि तरंग राति, सहस सोल पड़ें सामवी पाटै ॥१९॥
हस हस कामिन कर ग्रहे एम कहतो, किसोउम देवर एह मतवार।
नारि तणो रस नह जाणे, दीधो नहि दिन दिन स्युं प्यार ॥४०॥
तरुणी तनउं तन किम तुम जाणो, नह जाणो पंच भेद प्रारंभ।
भेदीया नही तुव कुंभ कठोन के, मदुरे मदर नउं निलोउं डिब ॥४१॥
" भ्रमणि वहें केलु पमा तणो रस आणोउ, नही मन न माणोउं तन
१—मुरत मोनव मद मूरख, तुं ही दग्ग सान्धोउणो भव ॥४२॥

को धारे

(७) *राजमती का शृंगार और सखियों का परिहास :*

राजमती ने सोलह शृंगार धारण कर रखे हैं। कानों में कुंडल पहने हैं, नेत्रों में अंजन आंजा है, नासिका में नथ है। हृदय पर एकावली हार सुशोभित है। कटि में मेखला, हाथों में चूड़ियाँ और पैरों में पायल की झंकार है[1]। झरोखे में बैठी हुई वह बरात के आडम्बर को देखती है और नेमिकुमार जैसे सौन्दर्यवान वर को पाकर सखियों से अपने भाग्य की सराहना करती है। इस पर एक सखी परिहास करती हुई कहती है-तेरा पति काला है, मुझे तो पसन्द नहीं। यह सुनकर राजमती उत्तर देती है-तूने उसका बाहरी आवरण ही देखा है, आन्तरिक गुण (हृदय) नहीं। वह तो लोह-भार से लिपटे हुए स्वर्ण की तरह अमूल्य है[2]। (६९-७८)।

(८) *नेमिकुमार का तोरण द्वार से अनब्याहे ही लौट पड़ना :*

इस बीच राजमती के दाहिने नेत्र फड़क उठते हैं और नेमिकुमार-जलचर-थल-चर जीवों को रसोई के लिए बंधे देख उनके करुण क्रन्दन से दुखी हो रथ को वापिस फेर लेते हैं। राग-रंग से उनका मन उचट जाता है। वे वरसी-दान देकर संयम धारण कर लेते हैं (७९-८५)।

(९) *राजमती की विरह-व्यथा :*

इस आकस्मिक परिवर्तन को देखकर राजमती कदली-स्तम्भ की भाँति धरती पर मूर्च्छित हो गिर पड़ती है। जल-रहित मछली की तरह वह तड़पती

१—रति रामति रमवा रति राजूल सजोया, तंत्र सोलै सिणगार।
कुंडल तिलक नेत्रंजन नथ नाशिका, पहोंवलउ परि एकावल हारि ॥६९॥
कटि मेखल खलकै कर चूडी, उंडी नाभी भालीइं उभरि।
पाए नेऊर घुघर घमकै रवि, सूर नर पेखता चित्त जाइं हरि ॥७०॥
बैठी गोखि सही परस हूटोने, भोलै चित्त भामणि भली भाति।
पावंती जान देखे पाडंबर, नयण कमल निरखीउं कंत ॥७१॥

२—तब सखी कहे संभलि एक साबो, कालो नहीं तुम वर मा कांइ।
तूं न मन्त्रे ससमान सरिसो तेप तुझ वर मुझ नावें दाय ॥७३॥
साभलि मुं सखी बाहिर जन जाणें, अंतर कला न जाणें काय।
लोह भार लपेटीउं सोनें, सोकि मुं सो जन तोल वे काय ॥७४॥
किमु होउं स्यामं काम सह दुष मुं, दुष विष गोरपणो कुंण काम।
द्राख भरी आकलो फूल द्यो कर, कुंण समर्पेत गुहे कब दाम ॥७५॥
कसतूरी घनसार अगर मिलि एता, हुंइ स्याम मुहुंगा अति मोल।
घन स्यांम बरसें अति जोरें, करें बसुधा वचि वारि भकल्लोले ॥७६॥
तिण कारण साभल वयण सखीउं, नेम वर सारिसों कुंण पवर वर।
जस प्राक्रम कला त्रिहुं जग जाणें, कर जोरे उभा असूर सूर ॥७७॥

रहती है। नेमिनाथ के बिना उसका जीवन व्यर्थ हो जाता है। वह भट्टी की तरह तपती रहती है। उन्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता। पलंग पर उसका पंजर मात्र रह गया है। प्राण तो जाकर नेमिनाथ से मिल गये हैं[1] (८६-१०१)।

(१०) *बारहमासा-वर्णन :*

चैत्र मास खिल गया है पर प्रियतम के विरह में राजमती के दिन कैसे बीतें? (१०२-१०४)। वैशाख ने आकर आम्रवन को मौरों से लाद दिया है (१०५-१०६)। जेठ मास ने नदियों का पानी कम कर दिया है। दिन लम्बे हो गये हैं। आम्र-वन पक गया है। रसिक लोग बगीचों में जाकर आराम करने लगे हैं पर राजमती का यौवन-रस सूखा जा रहा है (१०७-१११)। आस करते करते आषाढ़ भी आ गया है। पृथ्वी की जलन शान्त हो गई है। पर्वतों और प्रासादों पर मोर शोर करने लगे हैं। मेघों की घटा उमड़ चली है। खल-खल करते हुए जल के नाले बह चले हैं। राजमती इन सबको कैसे सहन करे? (११२-११३)। सावन के बादल आकाश पर छा गये हैं। पानी इतना बरसा है कि बादल और पृथ्वी एकमेक हो गये हैं। नारी और नदी का यौवन उफन पड़ा है। सभी स्त्रियों ने नीले वस्त्र धारण कर लिए हैं। राजमती को यह पावस ऋतु साल रही है (११४-११७) भाद्रमास के बादल बरस-बरसकर फट गये हैं। पृथ्वी जल से परिपूर्ण हो गई है। पहाड़ हरियाली से लद गये हैं (११८-१२१)। सुन्दर आसोज ने आसमान को निर्मल बना दिया है। चारों ओर पवित्र चांदनी छिटक गई है। कुंद-पुष्प खिल उठे हैं। संसार दशहरा मनाकर शक्ति की पूजा कर रहा है। राजा लोग विजय-यात्रा के लिए निकल पड़े है (१२२-१२५)।

कार्तिक मास में फसल कट गई है। किसान लोग भोग (लगान) भर चुके हैं। उमड़ती हुई नदियों की बाढ़ शान्त हो गई है पर स्त्रियों में कामदेव की बाढ़ चढ़ गई है (१२६-१२७) मगसर में शीतल वायु बह चली है। तरुणी-तरुण आलिंगन-पाश में आबद्ध हो गये है। (१२८-१३२) पौष माह समस्त संसार का पोषण करने लगा है पर राजमती का मन नेमिनाथ के अभाव में किस तरह पोषित होगा? (१३३-१३६)। माघ मास की शीतल वायु से वन दग्ध हो गया है। सूर्य की किरणें कायर (मन्द) हो गई हैं। विरह का वेग चढ़ गया है (१३७-१४०)। फाल्गुन रंग का त्योहार लेकर आ गया है। चंग, मृदंग बज उठे हैं। अबीर-गुलाल से आकाश रंग गया है। भामिनी और भरतार एक दूसरे पर रंग की पिचकारियाँ चला रहे हैं। सहेलियों की टोली प्रतीक्षा मे खड़ी है। हे नाथ, फाल्गुन आने पर अब तो आओ (१४१-१४६)।

(११) *रहनेमि की कामुकता और राजमती का उद्बोधन :*

प्रियतम के न आने पर राजमती स्वयं उनसे मिलने के लिए गिरनार पर्वत की ओर चल पड़ती है। वर्षा के कारण उसके वस्त्र भीग गये हैं। वह निर्वस्त्र

१—पंजर तो रहीउं पलंग विच एडिउं, प्राण जाय रहीउं नेम छाहि ॥१००॥

होकर एक गुफा में अपने शरीर को सुखाती है। वही ध्यानस्थ मुनि रहनेमि (नेमिनाथ के छोटे भाई और राजमती के देवर) उसके नग्न सौन्दर्य को देखकर संयम से विचलित हो उठते है। राजमती उन्हें इस प्रकार उन्मत्त देखकर उद्बोधन देती हुई कहती है-हे महामुनि ! क्यों हाथी को छोड़कर गधे पर आरूढ़ हो रहे हो ? स्वर्ण को फेककर कंकड़ ग्रहण कर रहे हो ? तप के बल से मन रूपी भ्रमर को वश मे कर शिव-सुख की आराधना करो[1] (१४९-६०)

(१२) राजमती का नेमिनाथ से मिलना :

गिरनार पर्वत पर भगवान नेमिनाथ से राजमती की भेंट होती है। उसके हृदय में अपार आनंद लहरें लेने लगता है। तप की कसौटी पर अपनी कंचन-काया को कस कर वह प्रियतम से पहले ही मुक्ति प्राप्त कर लेती है (१६१-६४)

(१३) नेमिनाथ की महिमा का वर्णन :

भगवान नेमिनाथ की महिमा अपरम्पार है। वही एक सच्चा ईश्वर है। वही दाता और भोक्ता है। वही वारण और वधारण है। जल, थल, अग्नि आदि सभी तत्वों में वह समाया हुआ है। उसकी गति अलख, अगम और अपार है। वह लोक-अलोक सर्वत्र व्याप्त है। घट-घट में उसका तेज फैला हुआ है। सुर और नर सभी उसका जाप करते है[2] (१६५-६६)।

१—कुंण गज छोडि रासिभ आरूढे, तूठें कुंण समुंद कें छोडि प्रवहण।
कूंण कंकर ग्रहे कंचन उलालें, कुंण बंधे काक छोडि किरवण ॥१५५॥
भसम कारण कुंण यदुकुल जालें, पालें कुंण शाखामृग मेल।
कामधेन सजल थल छोडि जाइ वसे कुंण थल छोडि साथ साह कुंण संग चले
तेण ॥१५६॥
राजान छोडि रंक कुंण याचें, राचें कुंण काच मुंके मुताहल।
कुंण संगति करें निखल छोडि, सबला सजन छेडि कुंण जाए वसें मझि खलि ॥१५७॥
सुख छोडि कुंण दूख मे राचें, सरग सुख छोडि नरग वाछइं कवण।
कवण रे नेम छोडि रहनेमी राचें, रहनेमी कवण भोग उग्र तप हण ॥१५८॥
सुंदरि तन किसुं नही साचो, राचो किसुं देवर इण राह।
दाह किसो तप वलि परिदेवो, जेण हुइं सुगम शिव सुख तणो पह ॥१५९॥

२—नारायण अनें राम तको तुझ नांम पुराणां तको पीतमनूं जोहै जग।
खुदा हेक तुंहि अवर सह खोटा, शिव मिलण सेवता तुझ पग ॥१६२॥
दाता तुंहि जग भुगता पिण तुंहिज, वारण नें वधारण तुंहिज वसें।
जल तुंहि थल अंगनि पिण तुंहिज, आतम अवतारण तुंहि सर वरसि ॥१६३॥
अलख अगम अपार गित ताहरी, लोक अलोक अलंकीउं आप।
आप ताहरो जपें सुर अनें जन, व्यापीउं घट घट ताहरो ताप ॥१६४॥

(१४) *उपसंहार :*

अन्त में कवि ने हीर विजय सूरि, कीर्ति विजय, अमृत विजय, रतन विजय, विजयमान, विजयरिद्धि और रवि विजय का स्मरण कर उनको वंदना की है तथा वेल का माहात्म्य गाया है[1] (१६७-२०४)

कलापक्ष :

प्रस्तुत वेलि का कला-पक्ष समृद्ध है। वस्तु-वर्णन की ओर कवि की विशेष रुचि प्रदर्शित हुई है। मुख्य वर्णन-स्थल निम्नलिखित हैं—

(१) द्वारका-वर्णन
(२) आयुध-शाला-वर्णन
(३) वसन्त ऋतु वर्णन
(४) बरात-वर्णन
(५) बारह-मासा-वर्णन

काव्य की भाषा सरल-सुबोध राजस्थानी है। अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, भ्रांतिमान आदि विशेष रूप से प्रयुक्त हुए हैं—

अनुप्रास :

(१) कंत विण कांमण तणी कुण गति कहीउं, किसो जनम रहीइं गिरनार (१६५)
(२) वेश वणाय वलगी वांमा वरि, ताप किसो तिण दिन सहेस (१३१)

उपमा :

(१) धरणी ढली जसी कदली थंभ (८६)
(२) विकिसे वनिता मेह आगिम मोर जेम, चकवी जेम निश माहि सर्वत (११)
(३) मेज तन वेज करें कुंत जिम काटी, भाठी जिम विरहानल थाय (६६)

रूपक :

(१) मूरो होइं कर सावन शिव मारग, तन पंकज विचि मन भमर धरि (१६०)
(२) तप कसौटी काया कंचन कस, किध्य विस मन वच काय (१६२)

अतिशयोक्ति :

(१) उदकं उदधि जल लोप इंलीह, मूटें गिर ढूकयडे धर घाल।
मनहुल नें रथ थंभीउ किरणाकर चालता नक्षत्र चूकिया चाल (१३)

१—नेमिनाथ और राजमती की यह कथा लगभग एक सी है। अतः विस्तारभय से यहाँ कथानक, चरित्र-चित्रण और रस परिपाक पर विचार नहीं किया गया है। इनके लिए कृत 'नेमिनाथ स्नेह-वेलि' में इस प्रसंग पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

(२) घडी एक जाय दिन दस समोवड, दिन दस मास समो दोसंत (१०१)

व्यतिरेक :

महिले महिले मांडिया उच्छव, भलंकत भारीसे रवि जाइ छिप (५१)

भ्रांतिमान :

मलपीया गज जाणि भादव मेघमाला, तस उपरि धज लइके बहरंग (५८)

छन्द :

चारणी-शैली का छंद छोटासाणोर प्रयुक्त हुआ है। उसके वेलियो और सोहणो भेद ही अधिक संख्या मे आये है। मात्राएं सर्वत्र घटती-बढती रही हैं।

(७) नेमिश्वर स्नेह वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि भी नेमिनाथ और राजमती के जीवन से सम्बन्धित है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता उत्तमविजय १९ वीं शती के उत्तरार्द्ध के कवियों मे से थे। ये तपागच्छीय गौतम विजय के पद-सेवक हेमविजय के लघुबांधव खुशालविजय के शिष्य थे। वेलि के अन्त मे इस तथ्य की ओर संकेत किया गया है[2]। देसाईजी ने इनकी निम्नलिखित कृतियों का परिचय दिया है[3]—

(१) रहनेमि राजमती चोक-संवत १८७५ फा० शु० १२ रविवार
(२) धनपाल शीलवती नो रास संवत १८७८ मागसर ५ सोमवार
(३) ढुंढक रास संवत् १८७८ पोष सुद १३

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम भाया है—
श्रीनेमिस्वर नी रचूं, स्नेह वेल सुखकार (४)

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के ग्रंथाङ्क २०१७ में सुरक्षित है। प्रति का भाकार ८३/४"×५" है। यह ७ पत्रों मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे १७ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति मे ४१ अक्षर हैं। पुष्पिका से सूचित होता है कि संवत १८७७ फा० वदी ६ को छाणि नगर में भाग्य सोम श्री ने इसे लिपिबद्ध किया था। यथा—'इति श्री स्नेह वेलि संपूर्ण सं० १८७७ ना फागण बदी ६ लिखित भाग्य सोम श्री छाणी नगर मध्ये'।

२—गुरू श्री गौतम्म विजयजी रे, जेव ने सन्देह गाठि ने भंजी रे।
पाटे हेम विजयजी रंजी रे, तप भाई खुशाल विजय जी रे ॥१२॥ ढाल १५॥

३—जैन गुर्जर कवियो : भाग ३ खण्ड १, पृ० २९५–३०५

(४) सिद्धाचल सिद्ध वेलि सं० १८८५ कार्तिक शु० १५
(५) नेमिनाथ रस वेलो सं० १८८६ फा० शु० ७

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-काल का उल्लेख है[1]। इसमें संवत १८६७ में आश्विन शुक्ला पंचमी भृगुवार (शुक्रवार) को इसका रचा जाना सूचित होता है।

रचना-विषय :

१५ ढालों के १७४ पद्यों में कवि ने चतुरविजय कृत 'नेमि राजुल वेल' की कथा को हो गाया है। प्रत्येक ढाल का कथासार इस प्रकार है :—

मंगलाचरण :

(१) प्रारंभ के सात दोहों मे शंखेश्वर, सरस्वतो, हरि, हर आदि की वंदना[2], वस्तु का निर्देश[3], सज्जनों को प्रशंसा, दुर्जनों की निन्दा[4], वेलि-माहात्म्य[5] तथा कवि की गर्वोक्ति[6] है।

(२) पहली ढाल के १२ पद्यों मे नेमिकुमार के आयुध-शाला में प्रदर्शित बल-पराक्रम का वर्णन है।

(३) दूसरी ढाल के १२ पद्यों में जल-क्रीड़ा के प्रसंग से रानियों द्वारा नेमिकुमार को अनुरक्त बनाने का उपक्रम वर्णित है साथ ही है कृष्ण द्वारा राजमती के साथ नेमिकुमार के संबंध-स्थापन का चित्रण।

१—अही मही भोजन दधि जेहरे (१८६७) संवत संवमर एह रे।
रोप्ठ आश्वन में भृगुवार रें, तिथि पंचमी ग्रह्यो सुची वार रे ॥११॥ ढाल १५ ॥

२—श्री संखेस्वर पासजी, हरी जरा हर नार।
तस प्रणंमु प्रेमें करो, शिव रमणी उर हार ॥१॥
सरस वचन दायक सदा, भगवति भारती जेह।
शब्दोदधि तारण तरो, ते त्रिपुरा प्रण मेह ॥२॥
गुरू गुंणमयो द्वारावलि, धरीई हृदय मझारि।
जया मोटो उपगार छे, प्रणमुं वारंवार ॥३॥

३—श्री नेमिस्वर नी रचूं, स्नेहू वेल सुखकार।
वचन फूल छे जेहना, शिव फल छे श्रीकार ॥४॥

४—सांभली सज्जन सुख लहे, दुर्जन मन डोलाय।
वपू वधे पय पान थी, अहि विष अधिको थाय ॥५॥

५—एह कथा कहतां थंका, उपजे नव नव बुद्धि।
घन थी तरु विकसे जिस्यो, फूल फलन की वृद्धि ॥६॥

६—भवियण भाव धरी करी, सुणतां बहु सुख थाय।
इम उतम वचने करी, कहिस्यूं सुणज्यो भाय ॥७॥

(४) तीसरी ढाल के ११ पद्यों में रूढिगत उपमानों के द्वारा राजमती के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

(५) चौथी ढाल के ८ पद्यों में नेमिकुमार को दूल्हा बनाकर उग्रसेन के द्वार पर राजमती मे विवाह करने के लिये भेजा गया है।

(६) पांचवीं ढाल के १६ पद्यों में बाड़े में बंदी पशुओं के कातर-क्रन्दन से विह्वल होकर नेमिकुमार के उल्टे पांव लौट पड़ने का वर्णन है।

(७) छठी ढाल के १५ पद्यों में नेमिकुमार के प्रति माता-पिता का आदेश-उपदेश है और है राजमती के मूर्च्छित होने का संकेत।

(८) सातवी ढाल के ६ तथा आठवीं ढाल के ६ पद्यों मे राजमती का नेमिकुमार के प्रति उपालम्भ और विरह-निवेदन वर्णित है।

(९) नवमीं ढाल के १२ पद्यों मे संसार की असारता बताते हुए नेमिकुमार का शिव-रमणी के साथ गठ-बन्धन बांधने का संकल्प वर्णित है।

(१०) दसवीं ढाल के १६ पद्यों मे पखवाड़े का वर्णन कर राजमती के प्रेमोन्मत्त हृदय की झांकी प्रस्तुत की गई है।

(११) ग्यारहवीं ढाल के १३ पद्यों में बारहमासे को स्मृति के आधार पर राजमती की प्रेम भावना का नेमिकुमार के प्रति समर्पण है।

(१२) बारहवीं ढाल के १० पद्यों मे नेमिकुमार का दीक्षित होकर केवल ज्ञान प्राप्त करना वर्णित है।

(१३) तेरहवीं ढाल के ७ पद्यों में वर्षा और वसन्त ऋतु-वर्णन के व्याज से राजमती की विरह-व्यथा को जाग्रत किया गया है और उपालम्भ-वाण मे निर्मोही प्रिय को वेधा गया है।

(१४) चवदहवी ढाल के ७ तथा पंद्रहवी ढाल के ६ पद्यों मे नेमिनाथ के उपदेशों के प्रभाव से राजमती का संयम ग्रहण कर संसार से मुक्त होना वर्णित है।

(१५) पन्द्रहवी ढाल के अन्तिम ४ पद्यों मे रचना-तिथि तथा गुरु परम्परा का उल्लेख करते हुए कवि ने अपने धर्माचार्य के प्रति कृतज्ञता प्रगट की है।

कवि ने कथानक के रसात्मक स्थलों की पहिचान कर इतिवृत्त के अस्थि-पंजर मे नया खून भरा है। मुख्य-कथा का संबंध राजमती और नेमिनाथ से है। दोनों के बीच लोकोत्तर संबंध की स्थापना करना काव्य का उद्देश्य है। यों नेमिकुमार और राजमती का भव-भवान्तर का संबंध है पर जिसे कोई जानता नहीं। नेमिकुमार के आयुध-शाला मे बल प्रदर्शन के साथ ही 'आरम्भ' अवस्था उभरती दिखाई देती है। जब कृष्ण का शंकालु मन नेमि को विरागी जानकर राग के धागों में बांधने के लिये राजमती के साथ सगाई तय करता है। तब लौकिक सिद्धि के लिये यही 'प्रयत्नावस्था' है। पशुओं की कातर चीत्कार से दुखी होकर तोरण के

द्वार से नेमिकुमार का वापिस लौट पड़ना जहां 'प्राप्त्याशा' में बाधक है वहां लोकोत्तर सिद्धि के लिये यही घटना 'प्राप्त्याशा' में साधक है। जब नेमिकुमार राजमती से स्पष्ट कह देते हैं—

'तूम थी नवी कर मूं यारी, शिव रमणी लागै प्यारी'

श्रोर जब राजमती भी दृढ़ निश्चय कर लेती है—

'भव भव केरो नेह इ मूं'

तब लौकिक भावना का अध्यात्म भावना में पर्यवसान हो जाता है। राजमती विरह की विविध मानसिक दशाओं में तब तक तड़पती रहती है जब तक कि उसे नेमिनाथ के दीक्षित होने के समाचार नहीं मिल जाते। ज्योंही उसे नेमिनाथ के साधु-स्वरूप का ध्यान आता है वह अपना रास्ता तय कर लेती है और बन जाती है संयम-मार्ग की अडिग आराधिका। यही 'नियताप्ति' की अवस्था है। शीलधर्म की रक्षा करते हुए पथभ्रष्ट रथनेमि को सद्बोध दे नेमिनाथ के साथ राजमती के अमर आत्म-मिलन में 'फलागम' की सिद्धि है।

काव्य में अलौकिक तत्वों का समावेश नहीं सा है। केवल एक जगह नेमिनाथ के दीक्षोत्सव पर देवताओं की अवतारणा हुई है[1] जो उन्हें शिविका में बिठला कर उनका अभिनन्दन करते हैं और पंचमुष्ठि लोच करने पर स्वयं इन्द्र उनके बालों को ग्रहण कर क्षीर समुद्र में प्रवाहित करता है। यों काव्य पर अलौकिकता का गहरा रंग छाया हुआ है। इसका कारण है नायक-नायिका की अखण्ड चारित्रिक दृढ़ता, अनन्त शारीरिक शक्तिमत्ता और अगाध आत्मिक गांभीर्य।

चरित्र-चित्रण :

नेमिनाथ और राजमती प्रमुख पात्रों में से हैं। अन्य पात्रों में कृष्ण, समुद्र विजय, शिवादेवी, सखियां, देवता, सारथी आदि आते हैं। पात्रों की दो कोटियां हैं मानव और मानवेतर। मानव पात्रों में नेमिनाथ, राजमती, कृष्ण आदि आते हैं जो चारित्रिक ऊंचाई पर चढ़कर देव बन जाते हैं। मानवेतर पात्रों में थोड़ी देर के लिए देवता दीक्षोत्सव पर प्रगट होते हैं और पशु-पक्षी कातर चीत्कार करते हैं पार्थिव संबंध को नया मोड़ देने। नायक-नायिका को छोड़कर सारे पात्र स्थितिशील हैं।

१—अवधि थई आवे सुरराजि दीक्षा अवसरे, जिन नें काजि के साभलां गुणवंता।
जन्माभिषेक ज्यूं ही दीक्षा जांणों, करे अभिषेक तिहां सुर राणो ॥१॥
उत्तर कूरू शिवीका नीअ सक्के, कीधी सुरासुर भली बहु भक्ते ॥२॥
प्रभु सिर केश सुरेस ग्राह्या, क्षीर समूद मझारि प्रवाह्या ॥६॥ ढाल १२॥

नेमिकुमार काव्य का नायक है। वह उच्च कुलोत्पन्न क्षत्रिय, समुद्रविजय का पुत्र और कृष्ण का चचेरा भाई है। रूप और बल में वह अद्वितीय है। "रूपे मदन तणो अवतार"। नेमिकुमार कृष्ण की आयुध शाला में पहुँचकर चक्र उठाकर शंखनाद करता है जिससे दसों दिशाएँ गूंज उठती हैं[1]। उसकी भुजाओं में इतना बल है कि स्वयं कृष्ण भी बंदर की भांति शाखा पर लटक कर ही रह जाते हैं[2]।

नेमिकुमार रूपवान होते हुए भी जन्म से ही विरक्त है। रानियाँ जल-क्रीड़ा में उसे निमन्त्रण देकर उसके साथ हास-परिहास करती हैं पर वह मूक ही रहता है। इस मौन स्वीकृति को सत्य समझकर ही कृष्ण राजमती के साथ उसका संबंध स्थापित कर देते हैं फिर भी वह विचलित नहीं होता। उसे अपनी आत्मा पर अगाध विश्वास है। वह सभी लोक प्रचलित रीति-रिवाजों का पालन करता है। यथा-समय लग्न-तिथि पर कानों में कंचन के कुंडल और हाथों में कड़े पहने वह पूर्ण आडम्बर के साथ बरात सजाकर राजमती को परणने के लिए जाता है पर वह तो मुक्ति के अनन्त पथ पर बढ़ने वाला मुसाफिर था, प्रेम के इस पचड़े में क्यों कर पड़ता? बाड़े में बंदी पक्षियों के करुण क्रन्दन ने उसकी राग-भावना पर विराग की अमिट दीप-शिखा प्रज्वलित कर दी। वह तत्व-चिन्तक यह कहता हुआ तोरण के द्वार से लौट पड़ा—

'थोड़ा सुख ने कारणे, करे कुंण अकांम।
क्षण उद्योत नें कारणें, कुंण बाले धांम॥'

प्रेय ने श्रेय का रूप धारण कर लिया, कामना ने कर्त्तव्य के गले में माला डाल दी, वासना आत्म-चिन्तना की आग में तपकर अमिय बन गई।

माता-पिता का प्यार उसे कोमल बाहों में नहीं बाँध सका। उसे एक ही रट लग गई 'शिव रमणी लागे प्यारी'। यौवन का लटका उसके आगे चार दिन की चाँदनी बन गया, पीपल का चंचल पात बन गया और बन गया हाथी का अस्थिर कान[3]। काया वृक्ष की चंचल छाह बन गई और बन गई बाजीगर की माया[4]। उसे एक नया संसार दिखाई दिया—

१—जई चक्रायुध फेरयो, संख ना सबद थी सहु जिन घेरयो।
  हंसो दिग्गो दिग्गरें नाठा, छरल तुरंगम बिहु दिसि नाठा॥५॥ढाल १॥

२—जब हरि कर थी रे भटकें, जिम कपि भख सासाई लटकें॥६॥ढाल १॥

३—जिम चंचल पिपल पान, चंचल गजवर नो कांन,
  तिहुरो चंचल नो थांन॥७॥ ढाल ६॥

४—चंचल वृक्ष तणी छाया, जिम बाजीगर नी माया,
  तिम चंचल यौं ए काया॥६॥ ढाल ६॥

'नव कोश मां एक छें गाम, अमे जई रहिस्यूं तिणं ठाम।
तिहां ताहरू' कांयि नही कांम ॥६ ढाल ६॥

देवताओं ने आकर उसका दीक्षोत्सव मनाया। वह साधु बन गया और अन्त में अपने तप के प्रभाव से केवल ज्ञान की प्राप्ति कर सिद्ध बन गया। उसने अपनी आत्मा का ही कल्याण नहीं किया बल्कि राजमती को भी अपने समान निर्विकार-निर्मुक्त बना दिया।

राजमती काव्य की नायिका है। वह उग्रसेन की कन्या और भगवान नेमिनाथ की वाग्दत्ता पत्नी है। उसमें स्त्रीयोचित्त लज्जा है और है सखियों के साथ हास-परिहास करने की जिन्दादिली। जब सखियाँ नेमिकुमार के साथ राजमती का वाग्दान होने पर विनोद करती हैं—

'पुरव पुन्याई थकी, पामी वर गुंण धांम।
पण अवगुण एतो छे, वरणे छे स्यांम ॥३॥ ढाल ५॥

तो राजमती सहज भाव से कह उठती है—

'....... काला कृष्ण कहाई।
कालि कस्तूरि वली, मुंहगी वेचाई ॥४॥
काला झूले हाथिया राजा दरबार।
कालो घटा आकाशनी वरसे जलधार ॥५॥
कालो कीकी आंख मां ते नेहवी चीयें।
काला मां गुण मोटा अछें, गोरी ने जोये ॥६॥ ढाल ५॥

कितनी स्वाभाविकता और सरलता, भोलेपन की इससे अधिक और क्या सबूत हो सकती है?

यही सरल बालिका नेमिकुमार को बरात सजाकर आते देख जितनी प्रसन्न होती है उतनी ही विषादग्रस्त उन्हें वापस लौटते देख-'मुणी मूरछा पांमी रे, अचेत ढली धरणी'। उसके बाद तो राजमती का जीवन विरह की घड़ियों में ही व्यतीत होता है। प्रियतम से उसका शारीरिक मिलन नहीं हो सका। वह उन्हें उपालम्भ दे देकर अपनी व्यथा को भुलाती रही[1], और देती रही अपने अनन्य प्रेम की दुहाई—

१—इम नीमनेहा तुम्हें किम थया, मुझ थी उवराटा थई गया।
बलो मोटा जेह अंगी करे, तिणा पालण कही किम मरदा ॥२॥
पशु दोस देई रथ वालियो, निज नारि तणो नेह टालियो।
स्यूं दोस जोई तुम्हें अंविया, ते मुझ मंदिर तू में नाविया ॥४॥ढाल७॥

'तुम्हें प्रेम नहीं मुझ सारिखो, पीउ रंग पतंग मे पारिखो।
मुझ रंग मजीठ लाग्यो सही, जे फटि पिण फीटे नहीं ।।५।।ढाल ७।।

राजमती के दो रूप हमे स्पष्ट दिखाई देते है। एक मोह ग्रस्त रूप दूसरा शुद्ध समकित रूप। मोह दशा मे आकर वह विविध प्रकार से विरहालाप करती है[1] और शुद्ध समकित का बोध होने पर उसके व्यक्तित्व का मधुरतम उज्ज्वल पक्ष निखर उठता है। वह स्वयं संयम मार्ग मे दीक्षित होकर न केवल अपनी आत्मा का कल्याण करती है वरन् रथनेमि को भी पथभ्रष्ट होने से बचाकर भारतीय आर्य-ललना का उच्चादर्श उपस्थित करती है। राजमती का चरित्र उस नारी का चरित्र है जिसने यौवन की देहरी पर आये हुए काम को भस्मीभूत कर शील-धर्म का अभिषेक किया। तभी तो कवि को कहना पड़ा—

'नेम पेहलो शिव जई बेठो रे, सास्वत सुख मा पेठो रे'।

रस-व्यंजना :

इस वेलि मे वीर, शृङ्गार और शान्त रस को अवतारणा की गई है। नेमिकुमार के आयुध-शाला-प्रसङ्ग मे वीर भावों को अच्छी व्यंजना हुई है। शृङ्गार के संयोग और वियोग दोनों रूप सामने आये है। संयोग-शृङ्गार को धारा जल-क्रीड़ा-प्रसङ्ग में ही उठ कर अन्तर्धान हो गई है। इसका कारण है वाग्दान का पूर्ण परिणय-पक्ष मे न खिलकर लोकोत्तर अध्यात्म भावना मे ही विलीन हो जाना। हास्य-रस के भी दो प्रसंग आये है। एक देवर-भाभी परिसंलाप के रूप मे जल-क्रीड़ा के समय और दूसरा राजुल-सखियों के बीच नेमिकुमार के कृष्ण-वर्ण को लेकर बरात के आगमन के समय। करुणा की धारा वन्दी पशुओ के आर्त्तनाद के साथ बंधी है जो अन्त में जाकर निर्वेद का कारण बनकर शात रस की सृष्टि करती है। राजमती प्रकृति के माध्यम से अपनी आन्तरिक विरह-व्यथा प्रगट करती है जिससे विप्रलंभ शृङ्गार रूप धारण करता है। अद्भुत रस की झांकी देवताओं के प्रगट होकर दीक्षोत्सव मनाने में दिखाई देती है। ये सभी रस सहायक बनकर आते हैं शान्त या भक्त रस के जो लोक-रति को आत्म-रति मे परिणत कर ब्रह्म-रति में विलीन कर देता है।

प्रकृति-चित्रण :

कवि ने मूल-कथा मे प्रकृति चित्रण के कई मार्मिक स्थल ढूंढ निकाले हैं। यहाँ की प्रकृति रूढ एवं परम्पराभुक्त ही है। उसके निम्नलिखित रूप देखे जा सकते हैं—

(१) आलंकारिक रूप :

राजमती के रूप वर्णन मे प्रकृति के विविध उपादान काम आये है—

१—ढाल १० और ११

मुखे सारद चंद सकाय उगे आकाशे रे।
वेणी निरखी फणीधर जाय धरणी मां नशिरे ।।२।।
लाल तिलक नो तेज अपार नासा शुक चंचीरे।
तस देखी नें दिनकार रह्यों रथ खेंचो रे ।।३।।
अधरारुण लाल प्रवाल ते पेण नावेरे।
कली दाड़िम दंत रसाल उपम आवे रे ।।४।।
वली लोचन थी मृग लाजि चंद मां बैठो रे।
देखी भमर भमर गयो लाजि पद्म मां पैठो रे ।।५।।
पांणी चरण पेखो पद्म जाय जल मां वसीया रे।
कटी लङ्क केहरी गिरि मांहि किध रे धसीया रे' ।।६।। ढाल ३।।

प्रेम की अनन्यता के प्रतीक भी परम्परागत ही हैं :

(१) मुझ स्नेह दशा मन लावो रे, जल बिण मछली जिम तलपें।
(२) तन बाले पतंग उडीजई, पिण दीपक के मन में नही ।।

(२) उद्दीपन रूप :

प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण न होकर उद्दीपन रूप में ही उसका वर्णन है। संयोग की परिस्थितियों में प्रकृति हरी-भरी, रङ्ग-बिरङ्गी और हृदय-हारिणी है तो वियोग-अवस्था में वह दहनशील, रसहीन और भयावनी है। वर्षा ऋतु संयोगियों के लिये क्रीड़ा-स्थली, प्रेम-वाटिका और आनन्द-समाधि है तो वियोगियों के लिये 'वयरीनो'—

'बादल परस्पर बादल आया, अरु दिनकर अन्दर छाया।
प्यारी के मन प्रेम उपाया, पंथी जिन सब घर आया ।।
पीउ स्त्री साथे प्रेम नी बातें, करता केई तिन माल्हे छे।
पण वीरहणी नें बहुए वरमाली, वयरीनो परि साल्हे छे ।। ढाल १३ ।।८।।

(३) पखवाड़ा तथा बारहमासा वर्णन :

राजमती की भावनाओं को व्यक्त करने के लिए कवि ने पखवाड़ा[1] तथा बारहमासा[2] का वर्णन किया है। वर्णन परम्परानुक्त है। पखवाड़ा वर्णन में पड़वा (प्रतिपदा) से लेकर पूर्णिमा तक का वर्णन है। बारहमासा वर्णन श्रावण से लेकर आषाढ़ तक हुआ है। श्रावण मास में नायिका की स्थिति देखिये:—

श्रावण वरसे मरवडीए जलधार रे वानाजी

१—ढाल १० छन्द १ से १६
२—ढाल ११ छन्द १ से १३

विरहणी नेत्र यूं खोए नवो खंडे धार मारा : वालाजी :
मोर टिहूकडा करता बादल मलतां रे । वालाजी० ।
ते देखि नें विरहणी नां मन चलतां ।। ढाल ११ ।।२।।

श्रौर आषाढ़ में फिर कवि कहता है :

'आशाढ़ि आवी धरुवकीयों वरसात र ।
लीला वरण धरणी ई पेहर्या नाथ ।।
भूई तणो भर मेहुल्यो आव्योरे ।
तो पण स्वामी ने मने रागी नाव्यो ।। ढाल ११ ।।१२।।

कलापक्ष :

वर्णन-शैली में यह कवि वीरविजय कृत 'स्थूलिभद्रनी शीयल वेल' से अत्यधिक प्रभावित है। काव्य की भाषा बोलचाल को सरल राजस्थानी है पर अलंकृत, मधुर और लययुक्त। नाद-सौन्दर्य और अनुरणन-छटा का उदाहरण देखिये—

झरमर झरमर मेहूलो बरसे, घोर घटा मिचा काजलियो ।
तरवर तरवर बैठे पंखी, निरखि जल भरि बादलियो ।।१।।
घनन घनन धन गरजे बरसे, जोर धकी जलधार करें ।
धड़ड़ धड़ड़ देइने धमकारा, दडड दडड परनाल् पडे ।।२।।
झबक झबक वली बीज झब्बकें, टपक टपक मेहूलो टबकें ।
टिहूक टिहूक करी मोर टिहूकें, सरवर पर दादूर डबके ।।३।। ढाल१३।।

अनुप्रास यत्र-तत्र व्यवहृत हुआ है—

(१) दंती दिशों दिशरें नाठा, तरल तुरंगम चिहूं दिशि आठा ।।१।।४।।
(२) काम कलाई कांमनी केई कटाक्षे प्रेरती रे लो ।।२।।४।।
(३) कर कडां कंचन ना दिप छे ।।४।।३।।

दो जगह यमक आया हैं—

(१) केई केसर नी काढी आडि केस हो उभी रही रेलो ।।२।।२।।
(२) देखी *भमर भमर* गयो लाजि पद्म मां पेठो रे ।।३।।५।।

अर्थालंकारों में सादृश्यमूलक अलंकार ही विशेष प्रयुक्त हुए हैं:—

बल-परीक्षा मे नेमिकुमार के हाथों से कृष्ण के लटकने को उपमा वृक्ष-डाल और बन्दर से सुन्दर बन पड़ी है—

'तव हरि कर थी रे अटकें, जिम कपि भरु शाखाई लटकें ।।१।।६।।

आध्यात्मिक रूपक-सृष्टि में 'शिव-रमणी लागे प्यारी' बड़ा भव्य है—

'रसीली सीव साथे रमस्यूं, ते साथें सुख भोगवस्यूं ।

तू तो कहवा इं अवला, सोही थकी जांणे सवला,
भव भव दुख आपे अवला रे ।।ढाल६।।२।।

नव कोश मां एक छै गांम, अमे जई रहिस्यूं तिणं ठाम,
तिहां ताहरू काय नहीं कांम।
पिता माता बांधव परिहरि ने, दश वाधव छुडा करी ने,
सत्तर नी सेवा वरी ने ।।६।।
कही इम कर्म्म तरु वाली, मोह धु भेद नां मद गाली,
चाल्या जिन उत्तम रथवालि ।।१०।।ढाल६।।

विरह-वर्णन तथा रूप-सौन्दर्य वर्णन में अलंकारों की झड़ी लगी है पर है परम्परा का ही निर्वाह। कहीं-कहीं उत्प्रेक्षाएं बड़ी सुन्दर बन पड़ी है। शृंगार और अध्यात्म का यह मेल देखियेः—

'लट छूटी शिरथी जेह कूचे लपटाई रे।
जांणे पूजवा शंकर एह नागिनी आई रे ।।३।।८।।

नेमिकुमार ने हाथों में कड़े और कानों में कुंडल पहन रखे हैं, कवि को लगता है—

'तेह तेजे झलामल जीपे छे, जांणे चंद सूरज बे पाशि।।४।।३।।

राजमती ने नेमिनाथ को जो उपालंभ दिये हैं वे बड़े ही कवित्वपूर्ण हैं। नेमिकुमार पशुओं पर तो दया कर तोरण से वापिस फिर गये पर बेचारी राजमती का जीवन व्यथा की भट्टी बन गया—

'पशु उपर करुणा करी स्वामी, हरि मुंनें छाडी तुमें छटकें।
कामनी कंत विरह न सहाई, जल विण धरणी जिम त्रठकें।

धूर थी न जाण्यूं नेम नीरागी, मेरु चढावि महि पटके ।।ढाल१४।३-५

आश्विन की रात में अपनी स्थिति का चित्रण करती हुई राजमती कहती है-
जिणी रतें मोती नीपजें सागर मांहि रे।
तो कांमनी कंत रहित नी निशि किय जांइ।।ढाल११-४।।

कितनी असहायता, निरवलम्बता और हृदय-दारिद्रय।

जेठ मास में तालाव की जल-विरलता के साथ उसकी शरीर क्षीणता का चित्र देखिये—

नदी जलवधीया वधिया छे वली दिन्न।
सर जल घटीया घटीया विरहिणी तन्न ।।ढाल ११-११।।

छंद :

कवि ने शास्त्रीय छंदों का प्रयोग न कर लोक-धुनों मे ही अपनी भावना को राग का विषय बनाया है। विभिन्न ढालों की राग-रागिनियाँ इस प्रकार है—

ढाल १—गोकुल मथुरां रे वाल्हा ।।ए देशी।।
ढाल २—वालाजी रे चंद्रावन नें चोक कें वेहला पधार जो रे लो ।।ए देशी।।
ढाल ३—सखी आनदें आदितवार सहीयर कहुर छुरे ।।ए देशी।।
ढाल ४—मारो वाल्हो दरिव्या पार मोरली वागे छे ।।ए देशी।।
ढाल ५—गोकुल नी गोवालणी मही बेचवा चालि ।।ए देशी।।
ढाल ६—तुमे उरंगनि आवोरे कहु एक वातडली ।।ए देशी।।
ढाल ७—राजकुलें रह्या राजकुंमार वर पातलीयाजी ।।ए देशी।।
ढाल ८—मै तो दुखना डूंगर डोल्या रे नाथ म्हारां निगुणा छो ।।ए देशी।।
ढाल ९—आवो हरो लासरिआ वाला ।।ए देशी।।
ढाल१०—रघुपति राम हृदयमां रहेज्यो रे ।।ए देशी।।
ढाल११—डमरो भरूयो गुलतोंरी गुलतारो रि वालाजी ।।ए देशी।।
ढाल१२—तखते बैठा केशरियोजी सोहे दरशण
देखी ने मनडूं मोहे के साभला गुणवंता ।।ए देशी।।
ढाल१३—हवे लावनी ।।ए देशी।।
ढाल१४—हरिइंयां सुं जास्ये ताहरूं, मोहनराय मही ढलस्ये माहरूं ।।ए देशी।।
ढाल१५—मनें भली जसोदा नें छइं इंरा ।।ए देशीस।।

(८) नेमिनाथ रस वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि भी नेमिनाथ और राजमती से संबंधित है।

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम आया है—
गोतम गुरु नें रे वंदी रचस्युं रस वेली रसकंदी ।।१।।

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी प्रति देसाई जी को विजापुर जैन ज्ञान मंदिर मे प्राप्त हुई। उसकी पुष्पिका इस प्रकार है 'इति श्री नेमनाथस्य रसवेली लिखितं उत्तम विजय गणिना। संवत् १८९१ ना वर्ष पोष वदी १ दिने श्री राजनगरे सामलाजी नी पोली मध्ये श्रीमत्तपागच्छनभे नभोमणि लघु पोषध शालीय सुरि सोम मोददः श्रापंद: तच्छिष्य भानुदय सोम सूरिभिः लिपिकृतोयं मुगमार्थं सिद्धये, स्वकृतं स्वलिखितं सुधिभिः नैर्ष्यया वाचनीयम् १८६४ ना आश्विन सुद १३,—जै० गु० क० भाग ३ खण्ड १, पृ० ३०३

(ग) प्रकाशित—कवि के प्रशिष्य पंयास ममृत विजयजी रत्नविजयजी द्वारा सं० १९४२ में।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही उत्तमविजय[1] हैं जिनका परिचय 'नेमिश्वर स्नेह वेलि' के साथ पहले दिया जा चुका है।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-काल का उल्लेख हुआ है[2]। उसके अनुसार इसकी रचना सं० १८८६ फागुण सुदी ७ को हुई।

रचना-विषय :

इसमें कवि ने नेमिनाथ और राजमती की कथा का सरस वर्णन किया है। यहाँ वेलि का आदि और अन्त भाग दिया जा रहा है—

आदि-भाग :

मारे घरि आवज्योरे रसिया, तमें मारा हृदय कमल मां वसिया अे देशी
सुखकर सरसती माता वंदू वाणी दोलति दाता।
गौतम गुरुनें रे वंदी रचसु रस वेली रसकंदी ।।१।।
रसिया सुणज्योरे रंगे, सुणतां आणंद आवे अंगे ।।रसिया०आंकणी ।।
शोरीपुरनो रे स्वामी, नरपति समुद्र विजय वडनामी।
राणी शिवा देवी राजे, गिरुओ नेमिकुमार गुण गाजे रे ।। रसिया०।।

अन्त-भाग :

रस माहें विरस न वरणीयें, अे वरण न नो विवहार रे।
साकर मां खार न नांखीये, समझे ते जांण संसार रे ।।११-३।।
तेणें राजुल विरह विलापनें, नवि वरणव्या रसवेलि माटे रे,
तिहां कांटा कांई न नाखीयें, फले वेलि कमल जिम वाटे रे ।।१२-३।।
धरम निंदा नें भेद पंकित नो निंदा छेदक निरधार रे।
सुकथा-भंगी गुरु छंडियो पाच मध्यम शास्त्र मझार रे ।।१३-३।।
में रास रच्यो रसवेलि नो, रस शास्त्र नें नवर्ण निहालो रे,
कयुं रसमय सास्त्र अे रमकुं वालहुं जे धरि नित्य दिवालो रे ।।१४-३।।
अढार नव्यासियें नेहथी, फागुन सुदि सातिमें माचो रे।
कहे उत्तमविजय सुमालनो, रसीयाना रसमां राचो रे ।।१५-३।।
इति रसवेलि रसिया रनो ।।

१—कहे उत्तमविजय सुमालनो रसियाना रस मां राचो रे ।।
२—अढार नव्यासिये नेहथी, फागुन सुदि सातिम माचो रे।

(६) पार्श्वनाथ गुण वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि जैनियों के २३ वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ से संबंधित है।

कवि-परिचय :

इस वेलि के रचयिता जिनराजसूरि[2] खरतरगच्छीय जिनसिंह सूरि के शिष्य थे[3]। इनका जन्म वि० सं० १६४७ में हुआ। इनके पिता का नाम धर्मसिंह और माता का नाम धारल देवी था। सं० १६५६ मगसर सुदि ३ को बीकानेर में इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। इनका पूर्व नाम राजसमुद्र था। सं० १६६० में इन्हें वाचक पद मिला। सं० १६७४ में ये आचार्य बने। तर्क, व्याकरण, छंद, अलंकार, कोश, काव्यादि के ये अच्छे जानकार थे। सं० १६९९ में आषाढ़ सुदि नवमी को पाटण में इनका स्वर्गवास हुआ। देसाई जी ने इनकी निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख किया है[4]

(१) धन्नाशालिभद्र रास सं० १६७८
(२) चतुर्विंशति जिन गीत (चौवीशी)
(३) वीस विहरमान गीत (वीशी)
(४) गुणस्थान बंध विशप्ति स्तवन
(५) स्तवनावलि
(६) गजसुकुमाल रास सं० १६९९
(७) नैषध चरित्र पर 'जैनराजी' नाम की संस्कृत टीका।

सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बीकानेर की ओर से श्री अगरचन्द नाहटा के सम्पादकत्व में इनकी प्रायः समस्त महत्वपूर्ण रचनाओं का संकलन 'जिनराज कृति कुसुमांजलि' नाम से प्रकाशित हुआ है।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि दी गई है[5]। उसके अनुसार सं० १६८९ पोष वदी ८ को यह रची गई।

रचना-विषय :

४४ छन्दों की इस रचना मे भगवान पार्श्वनाथ का गुण गाया गया है[6]।

१—जैन गुर्जर कवियो भाग ३ खण्ड १, पृ० १०४६
२—जिनराज गरीब निवाज स्तवना, संघयन हुई मति खुसो (४४)
३—जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० ५५३
४—जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० ५५३–६१ तथा भाग ३ खण्ड १, पृ० १०४७–४६
५—शशिकला संवत सिद्धि निधि युत, वरस वदि पोष मास मे।
निधिराज नंदन वार शुभ संख्या तिथि तिथि उल्ल सी (४४)
६—भगवान पार्श्वनाथ से ही सम्बन्धित एक 'कलि कुण्ड पार्श्वनाथ वेल' भी मिलती है। इसकी हस्तलिखित प्रति श्री आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर के गुटका नं० १५ वेष्टन सं० २५३

(१०) वर्द्धमान जिन वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी के पंच कल्याणक उत्सव से संबंधित है। महावीर जैनियों के अन्तिम तीर्थंकर होने के कारण चरम

में सुरक्षित है। गुटके का आकार ६"×७" है। प्रत्येक पृष्ठ में १६ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १५ अक्षर हैं। पत्र ३१ से ३४ पर यह लिखी हुई है। १७ छन्दों की इस रचना के प्रारम्भ के ८ छन्दों में भगवान पार्श्वनाथ के नाम-स्मरण व गुणगान का माहात्म्य बतलाते हुए कहा गया है कि उनका जाप करने से सर्व विघ्न-बाधाएं दूर हो जाती हैं। अन्तिम ६ छन्दों में उनका संक्षिप्त जीवन वृत्त प्रस्तुत किया गया है। अन्तिम छन्द से पता चलता है कि इसकी रचना ब्रह्मचारी धर्मरुचि ने की थी। यहाँ वेल का आदि-अन्त भाग दिया जा रहा है—

आदि-भाग :

अथ श्री कली कुंडि पार्श्वनाथ नी ढाल वेलनी ॥
पास जिणेसर गुण समरो कलिकुंड हो,
कलि कुंड अंत्र गुण गाइ जिये।
कलि कुंड का गुण जे पुजे,
तस विघन हो विघन चतुर गति चुरीये ए ॥१॥

अन्त-भाग :

त्रूटकः—येहिला रे भव को वैर जाणी, कमठ उपसर्ग लावीयो।
धरणेन्द्र आसन कंप जाणी, सेवा तत्क्षण आवीयो॥
नाग फणे करी स्वामी छहायो, लगार दुःख न पावियो।
मेघ माली कमठ पापी, कालुं मुह करि भागीयो ॥१६॥

चालिः—भट्टारिक श्री लक्ष्मीचन्द्र सुरिवरू, भव जल तारण समरथुए।
बीज मंत्र अक्षर करी मंगल होये, मंगल दाता समरथुए।
कली कुण्ड पास को गीत कीयो, ब्रह्मचारी हो ब्रह्मचारी धर्मरुचि आपमीए।
सुद्ध भावि करी जेह भणसे, ते पामिहो पामि अमर पद गामीए ॥१७॥
॥ इति श्री कलि कुंड पारस्वनाथ वेल समाप्तः ॥

१—(क) वर्द्धमान जिनगुण सुर वेली, हीयडा करी रे सहेली (६५)

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूर भाई मणिभाई के संग्रह के ग्रंथांक ११३१ में सुरक्षित है। यह ४ पत्रों में लिखी गई है। पुष्पिका में लिखा है—
यादृशं पुस्तकं दृष्टा तादृशं लिखीतं मया।
यदि शुद्धमशुद्धं वा, मम दोषो न दीयते॥

तीर्थंकर कहलाते हैं । ये सिद्धार्थ के पुत्र थे। इनकी माता का नाम त्रिशला था। इनके जन्म होने पर राज्य मे ऋद्धि-सिद्धि की वृद्धि हुई थी अतः इन्हें वर्द्धमान कहा गया[1]।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता सकलचंद्र[2] उपाध्याय सत्तरवी शती के मध्य के प्रसिद्ध कवियों में से थे। ये तपागच्छीय आचार्य हीरविजय सूरि के शिष्य थे[3]।

देसाईजी ने इनकी निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख किया है[4]—

(१) मृगावती आख्यान-रास (२) वासुपूज्य जिन पुण्यप्रकाश रास
(३) साधु वन्दना (४) सत्तर भेदी पूजा
(५) ऐकवीस प्रकारी पूजा (६) बार भावना सज्झाय
(७) गणधर वाद स्तवन (८) महावीर हींच स्तवन
(९) साधु कल्पलता-साधु वंदना मुनिवर सुर वेलि
(१०) ऋषभ समता सरलता स्तवन (११) वीर स्तवन
(१२) कुमत दोष विज्ञप्तिका श्री सीमंधर स्तवन
(१३) गौतम पृच्छा (१४) हीरविजय सूरि देशना सुर वेलि
(१५) मुनि शिक्षा स्वाध्याय

रचना-काल :

वेलि में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। अन्य रचनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि कवि का रचना-काल सं० १६४३ से १६६० रहा है। अनुमान है इसी काल के मध्य यह रची गई हो।

रचना-विषय :

यह ३ ढालों के ६७ पद्यों की रचना है। इसमें 'आदिनाथ वेलि' की तरह भगवान महावीर के पंच कल्याणक-गर्भकल्याणक, जन्म कल्याणक, तपकल्याणक, ज्ञान कल्याणक, मोक्ष कल्याणक-उत्सवों का वर्णन किया गया है। प्रधानता प्रारम्भ के दो-गर्भ कल्याणक तथा जन्म कल्याणक-उत्सव वर्णनों की ही है। संक्षेप में कथा-सार इस प्रकार है—

१—ऋद्धि सिद्धारथ वाधियो, जनम मोत्सव कीनो !
वर्धमानाभिध थापीयो, कुलमुगट नगीनो ।।मा०।।२०।।ढाल २।।

२—वीर पटोधर श्रेणिं आयो, हीरविजय गुरु हीरो।
सकलचन्द कहें सो नित्य समरें चरम जिनेसर वीरो रे ।।ह०।।२३।।ढाल ३ ।।

३—जैन गुर्जर कवियो, भाग १, पृ० २७५

४—जै० गु० क०, भाग १, पृ० २७५–८४ तथा भाग ३, खण्ड १ पृ० ७६६–७७४

(१) गर्भ-कल्याणक उत्सव :

वर्द्धमान के गर्भ में आने पर माता त्रिशला ने १४ स्वप्न[1] देखे। गर्भस्थ-शिशु ने माता को कष्ट न पहुँचाने के विचार से हलन-चलन बन्द कर दिया। इससे माता त्रिशला को गर्भ गल जाने की आशङ्का से अत्यधिक वेदना होने लगी। यह जानकर वर्द्धमान ने पुनः हिलना-डुलना प्रारम्भ कर दिया[2] जिससे सर्वत्र आनन्द छा गया। और देवियों ने आकर माता का अभिषेक किया[3]।

(२) जन्म कल्याणक-उत्सव :

गर्भ पूरा होने पर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को त्रिशलादेवी ने वर्द्धमान को जन्म दिया। इससे इन्द्र का आसन कांप उठा और देवताओं के यहाँ स्वयमेव घण्टे बजने लगे[4]। जन्मोत्सव मनाने के लिए इन्द्र भगवान को मेरु-पर्वत पर ले गये वहाँ पांडुकवन में उनका अभिषेक हुआ[5]। वर्द्धमान जन्म से ही अत्यन्त रूपवान थे। उनके मुख-सौन्दर्य के आगे चन्द्रमा पराजित था। उनके होठ गुलाल की तरह लाल,

---

१—आषाढ सुदि छटे चवीयो, हरी पूजयो अवतरीयोरे।
 चउदे सुपने सच्यो हम कुल, पुत्र पुन्ये ठवियो रे ॥२॥ढाल १॥

२—गाम गल्यो में मोलें जांण्यो, चिंतासागर साल्यो रे।
 सोही दुःख सालत बहुज्यों, चिंतवति पुन हाल्यो रे ॥३॥
 उदरथी तेंमो दुख जाणि, ते सलसलिओ साल्यो रे।
 वचहुं हुंस्यें आपंदे बोली, हाल्यो हाल्यो हाल्योरी ॥४॥ढाल १॥

३—आठ जोयणनो हार कीधो, फीरतो समीरें सोध्यो रे।
 वृष्टि गंधोदकस्युं सुचि, कुसुम भरी सम रंध्यो रे ॥७॥
 आठें मुख दर्पण देखाड्या, आठें वर भृङ्गारा रे।
 आठें हु वरविजणें वेंजे, आठें चमर उदारा रे ॥८॥
 दीपक च्यार धरें ते चतुरा, च्यार धेरें नालरे।
 म्हवरावी नेंहें पहें पहेंरावें, भुगण मोतीजालि रे ॥९॥
 धन धन कहे तुम्ह जननि माता, तिं प्रसव्यो जगदीशो रे।
 ईम आसिस दिइं ते कुमरी, तुम्ह पुत्रो चीरंजीवो रे ॥१०॥
 विणा वालि नाणिणि नाचें, हाथे बजावे तालि रे।
 गुण गावि तुम्ह गुणनिधि केरा, मुख सब इलति टालीरे ॥११॥
 तुम्ह गुण अतिसय खाची भाखें, थावें मुख्नें गुर्जीरे।
 कहें मुखें अमरीउ हालरावी, सुत जननी नहीं दुजीरे ॥१२॥ ढाल १॥

४—चैत्रमासें सुदि तेरसी, त्रिलोकोदुक जायो।
 इन्द्रनो आसन कंपीयो, सुरें घंटसो वायो ॥२॥ ढाल २॥

५—मात बेरे हन गुटाड्यो, मेरु मेकर जास्युं।
 त्रिसलादेवी सुं रे मत बीहे, तेरे पुत्र को मास्युं बहुत अभूत पास्युं ॥७॥

आँखें कमल-पंखुड़ियों सी सुकुमार, कपोल स्वर्णवेलि सदृश, जीभ कमल-पत्तों सी, कान काम-हिंडोल से, नासिका शुक-चोंच सी, कण्ठ शंख-सदृश तथा भुजा कमल-नाल सी थी। नाभि अमृत की कुंपी थी, हृदय पर श्रीवत्स का चिन्ह था[1]। ऐसे बालक वर्द्धमान को अप्सराओं ने कुण्डल, माला आदि से अलंकृत कर माता त्रिशला को सौंप दिया[2]।

भगवान महावीर का बचपन बड़े लाड़-प्यार से बीता। उनके पैरों में रत्नों के घुघरे बाँधे गये, नाक में फुल्ली पहनाई गई। मणि-जटित स्वर्ण हिंडोले में उन्हें झुलाया गया। सिर पर रत्नों की टोपी तथा गले में मणि-कंठला डाला गया[3]। भगवान बड़े होने पर खेलने के लिए नगर से बाहर वन में गये। वे इतने वीर और निर्भीक थे कि उनसे इन्द्र तक डर गया। इन्द्र की बात पर विश्वास न कर एक देवता ने सर्प बनकर उनको डराना चाहा पर वर्द्धमान ने उसे पकड़कर दूर फेंक दिया[4]। इस पर देवता ने बालक का रूप धारण कर वर्द्धमान के साथ खेलना

जनम महोत्सवे पूजस्युं, सवी इन्द्र इन्द्राणि।
नवनवि भांति हुलावस्युं पछी आपस्युं माणि ॥५॥
एक उत्संगें लेई वीरनें, कोई चामर ढालें।
छत्र चोघो हरी सिर धरें, एक आगलि चालें ॥६॥
पंडग वनि शिला उपरि, सिंहासनें थापें।
चउसट्ठि इन्द्रे न्हवरावियो, नव दुरितनें कापें ॥७॥ ढाल २॥

१—प्रभु मुखि हार्यो चंदलो, होठ लाल गुलाल।
आंखि इंदीवर पाखडी, कन वेलडी गाल ॥१२॥
पोयण पांनसी जीभडी, श्रवण काम हिंडोलि।
नासिका सूअडा चंचडी, कंठ शंखनें तोलि ॥१३॥
कमल नालसि बांहडी, नाभि अमृतकुंपी।
हृदय श्रीवत्सस्युं सोभतो, कटि हरिकडी लुंपी ॥१४॥ ढाल २॥

२—मात स्यो तेरी लाडिलो, सब इंदि लडयो।
दो दीया रयणकुंडलें, प्रभु कान्हें झुलायो ॥१६॥
दो दीइं देवको चाकरे, फुलरयण की माला।
कुंदक रयणउल्लोचक, बरसो बरमाला ॥१७॥ ढाल २॥

३—रयणनी घमघमे घुघरी, जब ठमकति चालें।
जब मोइं फो वेंहरें सुन्दरी, नाक फुदडी झालें ॥२१॥
मणिजडवें कनक हिंडोलडें, मात झूमणि चालें।
रयण टोपी मणि कण्ठलो, मानें पूतनें पालें ॥२२॥ ढाल २॥

४—इन्द्रे पोते वोहाम्यो जदमो वर्धमान नवि बिहें।
अमर सभा मांहि एक दिन बोनें, इन्दो थारें जंहेरे ॥१६॥
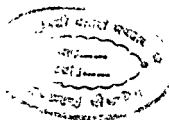
प्रारम्भ किया। खेल ही खेल में वर्द्धमान उस देव-बालक के कन्धे पर चढ़े और वह अपनी ऊँचाई बढ़ाता गया। इस पर वर्द्धमान ने मुक्का मार कर उसे परास्त कर दिया[1]। अन्त में देवता ने अपनी माया समेट कर प्रत्यक्ष रूप में वर्द्धमान के समक्ष उपस्थित होकर क्षमा मांगी और उन्हें 'महावीर' नाम दिया[2]।

(३) तप-कल्याणक उत्सव :

माता-पिता की मृत्यु होने के बाद सब प्रकार का वैवाहिक सुख भोगकर महावीर ने वरसी दान दे दीक्षा अंगीकृत की। दीक्षा अंगीकृत करने के बाद १२ वर्ष तक घोर तप किया[3]।

(४) ज्ञान कल्याणक उत्सव :

तप के प्रभाव से वैशाख शुक्ला दसमी के दिन महावीर को केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। इस अवस्था में उन्होंने तीर्थ की स्थापना कर त्रिलोक को प्रतिबोध दिया[4]।

एक देव ए वात न माने, कौतुक जोवा आवें।
अहिरूपे आमलि तरू वेटी, तिण ने कुइ नवि फावें रे ॥२०॥
विर कुमर होडि रमतो, कुंमरें आगलि राख्यो।
विरें एडी पाडी ग्रहिनें, सो सुर दुरि नाख्यो रे ॥२१॥ ढाल ३॥

१—पुनरपी बालिक थईनें निरमलो, आपें होडि हार्यो।
साथे वीर चढ्या तव वाध्यो, वीरें मुहकमें मार्यो रे ॥२२॥ ढाल ३॥

२—प्रगट थइनें प्रभुनें खामी, नाम दीहुं महावीरो।
जेहवो इन्द्रे प्रसंस्यो तेहवो, मि परख्यो तुं हीरो रे ॥२३॥ ढाल ३॥

३—मात पीता निसालें मुकें, पिण जिन ज्ञानने जांणे।
पांडे आगें इन्द्रे पूछ्यो, वीरो ग्रंथ बखाणें रे ॥२४॥
रूपें सुन्दर बहु परणावें छत्रत्रेणि सिरि ताडि।
सबलें वरते घोड़े चढीयो, कुंमर लाडि लावें रे ॥२५॥
सुख भोगवें मातपिताइं, अणसणे सदगति किधि।
वरसीदान करीनें वीरें, आपें दीख्या लिधी रे ॥२६॥
मृगसिर वदि दसमिनें दीहाडे, चरम जिनेसर नाणी।
बार वरसमां जे तप कीनो, ते सघलो विण, पाणि रे ॥२७॥ ढाल ३॥

४—मास वैशाखें प्रभु केवल, शुदि दसमीनें दाडें।
शालि तलें एकडो स्वांमी, घन घाती मल काडेरे ॥२८॥
समोसरणि बेंठा सिंहासणि, त्रिभुवन रूपें मोहे।
तिरथ थापी संसय भाजे, त्रिन भुवन पडिवोहे रे ॥२९॥ ढाल ३॥

(५) *मोक्ष कल्याणक उत्सव :*

कार्तिक की अमावस्या (दिवाली) के दिन भगवान को परम-पद प्राप्त हुआ। इसी दिन भगवान के प्रधान शिष्य गौतम गणधर को केवल-ज्ञान की प्राप्ति हुई[1]।

कला–पक्ष :

काव्य का कला-पक्ष समृद्ध है। भाषा राजस्थानी है वह सरल होते हुए भी साहित्यिक है। उसमें माधुर्य एवं प्रवाह देखिए—

(१) पंचवरणना चरणा पेंहरी, कंचूक कसीया राता।
सुत सिणगारी तेहनें आपें, रमवा कारण माती रे ।।३।। ढाल ३।।

(२) रमझम करतां चरणे नेउर, कटि कटि मेखल खलकइं ।।४।। ढाल ३।।

अलङ्कारों में उपमा–रूपक का सुन्दर प्रयोग हुआ है—

(१) आंखि इंदीवर पांखड़ी, कनक वेलडा गात ।।१२।। ढाल २।।

(२) पोयण पांनसी जीभड़ी, श्रवण कांम हिंडोलि ।।१३।। ढाल २।।

छन्द :

ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रति में तीन ढालों का उल्लेख है जिनमें से अन्तिम दो ढालों की राग भी दी है—

ढाल २ ।। मल्हार रामगिरी ।।
ढाल ३ ।। हमचडी नी देशी ।।

(११) वीर जिन चरित्र वेलि[2]

प्रस्तुत वेलि जैन-धर्म के चरम (२४ वें) तीर्थंकर भगवान महावीर के तप, ज्ञान एवं मोक्ष कल्याणक उत्सव से संबंध रखती है।

१—*कार्तिक मासनें दीवालि दिहाडें, महानंद पद लाधो।*
सकल मुनिसर चरम जिनेसर, मुक्ति जईनें सिद्धो रे ।।३०।। ढाल ३।।
लब्धिनिधान मुनि सोभागी, गोयम गणधर सीसो।
तस दिन तेहनें केवल नाण, तेसि मन निरा दीसो रे ।।३१।। ढाल ३।।

२—(क) मूल पाठ मे वेलि–नाम आया है—
दिवाली दिन साहिबें, चरण वेलि फल लीध (१७)

(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर के ग्रंथांक ८५१२ मे सुरक्षित है। यह दो पत्रों मे लिखी हुई है। प्रति का आकार १०३/४"×४१/२" है। प्रत्येक पृष्ठ में बारह पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति मे ४५ अक्षर हैं। प्रति की अवस्था अच्छी है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता मुनि श्री ज्ञान-उद्योत[1] उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में वि मान थे। ये तपागच्छीय पुण्यसागर के शिष्य ज्ञानसागर के शिष्य थे।[2] देसाई ने इनकी निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख किया है[3]—

(१) २१ प्रकारी पूजा सं० १८२३ (२) अष्टप्रकारी पूजा सं० १८२३
(३) आराधना ३२ द्वार नो रास (४) वार व्रत नी टीप (गद्य) सं० १८२६

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना काल या लिपिकाल नहीं दिया गया है केवल इतन ही लिखा है 'इति श्री वीर जिन चरित्र वेलि समाप्तायाः श्री गुरुचरण प्रसादे वाचमानं चीरंजीवी।' अन्य रचनाओं को देखते हुए कवि का रचना-काल सं० १८२३ से १८२६ रहा है। अनुमान है सं० १८२५ के आसपास यह वेलि रची गई हो।

रचना-विषय :

यह १७ छंदों (८४ पंक्तियों) की रचना है। 'वीर जिन चरित्र' शीर्षक से सूचित होता है कि इसमें भगवान महावीर के वीरत्व को प्रकट किया गया है। भगवान महावीर अतुल बलशाली और धैर्यवान थे। वे सिद्धार्थ के पुत्र थे। अट्ठा इस वर्ष उन्होंने भोग-रस में व्यतीत किये। तत्पश्चात् अगले दो वर्षों में लोकान्तिक देवों की प्रेरणा-स्तुति से सांसारिक-प्राणियों को दानादि देकर ज्ञातखण्ड वन में उन्होंने दीक्षा अंगीकृत की।[4] दीक्षाधारण करते ही उन्हें मनःपर्ययज्ञान की प्राप्ति हुई। बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्था में रहकर उन्होंने तपश्चरण किया। इस काल में उन्हें कई प्रकार के उपसर्ग एवं परीषह[5] सहन करने पड़े। बयालीस वर्ष

१—अचल अबाधित सहज सुख, ज्ञानोद्योत समृद्ध (१७)
२—जैन गुर्जर कवियो : मोहनलाल दलीचंद देसाई : भाग ३, खण्ड १ पृष्ठ ११३
३—जैन गुर्जर कवियो : मोहनलाल दलीचंद देसाई : भाग ३, खण्ड १ पृष्ठ ११३-११८
४—श्री सिद्धारथ राजसुत, अतुली बड बलवीर।
वर्ष अट्ठावीस भोग रस, विलसत दय बलधीर ॥१॥
वर्ष दोय रह्या आगला, लोकांतिक वयणेह।
देईदान प्रभु अनुसरे, सहज दिसागुण मेह रे ॥२॥
५—(क) वर्षा :—लाई ध्यान की तारी। बन में ठाढे उपसमधारी।
मेघ घटा घटी धाई। पवन की झकोर झूंके झरलाई ॥
झुकलाई पौन झकोर दिहुँदिशि। दमक दाखे दामिनी।
दादुर चातुक मोर रव थें। पीती विरही कामिनी।
छिपे सर्प बीछे रहे धीधे। जलद परिसह मनि सहैं।
अहो अहो मतिवर धन्य तुम्ह पर। अवर दूसर नहि रहै।

की अवस्था में उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई[1]। तब से निरन्तर तीस वर्ष तक वे लोकोपदेशना देते रहे। अन्त में बहत्तर वर्ष की अवस्था में इन्द्रभूति को अपना प्रथम गणधर बनाकर[2] उन्होंने मुक्ति प्राप्त की[3]।

कला–पक्ष :

काव्य की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है। यत्र-तत्र अलंकार भी आये हैं—

अनुप्रास :

(१) दमक दाखें दामिनी
(२) समता सुग संग स्वामी

रूपक :

वरी सिव-वधू दिन दिवाली।

व्यतिरेक :

निकलंक मुख चंद सदा दीपें।

(ख) शीत :– जिम शीत कालें शीत सब सो। वायु वाइ भुंसरा।
हीम पड़ल जोरें कोर कोरें, हरित वन जिम भांखरा॥
करत मून तरन तंबोल तजणी। तूंली का पथ आदरें।
तिणें समें वन गौरी शीत देखें, स्वामी असाबड दुख वरें।

(ग) ग्रीष्म :– जिम कालि दवं अति ताप तड़का। गूंग पाडैं भूप तप्तं।
सर वापी कूप निवाण न दीसा शुष्क होवे अति पच्छा।
घनसार मिश्रित सरस चंदन, समत वन जन आदरें।
तिणें समें जिनवर अमित दुष्पर, तपन तावें तप करें।
ईम सर्व काले विषम परिसह, भूमि परिसंघ सही।
हरणादिक पडि वर्जित। निकामी आरोहही॥

१—पाई ध्यान कौ लाघोयो, करो आत्मा कलपोत।
केवल ज्ञान दर्शन तणो पसर्यो अमित उदोत॥
अनोपम अमित उदोत, लोकालोक प्रकाशक ज्योत।
चव्या आसन हरिवर आवें। आठ प्रतिहार्य बनावें॥
विचरें जिन वैरागी आई। सिद्ध पाके हुई बधाई।
भरी अमरी जिन गुण गावे। मनि माणिक मोती वधावे॥

२—अनुक्रमे भगवंत आन्या। इंद्रभूति प्रमुख समनाम्ना।
दीक्षा शिष्य में जिनसी आवें। कर्मनि टिका भी भव आवें॥

३—आयु वर्ष बहोतर पावी। कोन प्रहरनो देशना दीधी।
योग रोके सर्व मुक्ति पामी। करी शिव वर दिन दिवाली॥

छन्द :

दोहा और सखी छंद का प्रयोग हुआ है। प्रति 'में राग सामेरी' लिखा है इससे सूचित होता है कि गेयता इसका प्रमुख तत्व रहा है। यही कारण है कि मात्राएं सर्वत्र घटती-बढ़ती रही हैं।

(१२) भरत वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि भरत से संबंध रखती है। भरत बारह चक्रवर्त्तियों[2] में से प्रथम चक्रवर्ती माने जाते हैं। ये भगवान ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र और बाहुबली के बड़े भाई थे।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता देवानन्दि हैं। वेलि के अन्त में कवि ने अपना नामोल्लेख किया है।[3] इससे सूचित होता है कि ये दिगम्बर-गच्छाधिपति थे। इनकी निम्न-लिखित कृतियाँ मिलती हैं[4]—

(१) लब्धि विधान उद्यापन (२) रोहिणी विधान कथा
(३) गर्भपडार चक्र (४) भरत वेलि

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि नहीं दी है। जो प्रति मिली है उसमें लिपिकाल भी नहीं है। अनुमान है यह १६वीं शती की रचना हो।

रचना-विषय :

२२ छंदों की यह रचना भरत की वैराग्य-भावना से संबंधित है। भरत चक्रवर्ती-नरेश होते हुए भी योगी के समान जीवन-व्यतीत करते थे। एक दिन दर्पण

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—
या दुरगति तणी सहेली, संसारा दीरघ वेलि।
(ख) प्रति-परिचय :—इसकी हस्तलिखित प्रति श्री दिगम्बर जैन मंदिर बड़ा तेरह पंथियों के शास्त्र भण्डार, जयपुर के गुटके नं० २२३ : वेष्ठन नं० २६३० में सुरक्षित है। गुटके का आकार ७"×५" है। गुटके की दशा जीर्ण है। वह अपूर्ण एवं सामान्य शुद्ध है।

२—बारह चक्रवर्तियों के नामः—(१) भरत (२) सगर (३) मघवा (४) सनतकुमार (५) शांतिजिन (६) कुन्थुजिन (७) अरहजिन (८) सुभूम (६) पद्मनाभि (१०) हरिषेण (११) जयसेन और (१२) ब्रह्मदत्त।

३—या गणहर देवानंदी, अरहंता खरी निकंदी।

४—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची-भाग २, पृ० ४०७।

में मुँह देखते समय उन्हें अपने बालों में एक सफेद बाल दिखाई दिया[1]। उसे देखकर वे चमक उठे। उन्हें लगा कि छली काल दौड़ता हुआ आ पहुँचा है[2]। वे विचार करने लगे 'मैं विषयवासना मे पड़ा रहा। एक घड़ी भर के लिए भी राग-मुक्त नहीं हुआ[3]। दिन-रात स्पर्शेन्द्रिय के पाप-पंक मे फंसा रहा[4]। स्पर्शेन्द्रिय से भी अधिक बलवती रसनेन्द्रिय है[5]। इसी के वश में पड़कर मछली अपने प्राणों से हाथ धो बैठती है[6]। मैं भी अब तक इसी रस (सांसारिक भोग) से लिप्त रहा। इसके नशे में मैंने काल तक को भी कुछ नहीं गिना। यह मनुष्य जन्म बड़े पुण्य-कर्मों के उदय से प्राप्त हुआ है। अतः अब भी रसना का रसवर्ती न होकर मुझे केवल ज्ञानियों के बतलाये हुए मार्ग पर चलकर अपनी आत्मा का कल्याण करना चाहिए[7]।' इस विचार के साथ ही भरत अपने पुत्र अर्ककीर्ति को राज्य देकर दीक्षा अंगीकृत कर लेते हैं। गृहस्थाश्रम में ही उनका वैराग्य इतना बढ़ा-चढ़ा था कि दीक्षा लेते ही उन्हें केवल-ज्ञान की प्राप्ति हो गई।[8]

१—इम गयो काल असेस, चितत् चितत् एक दिनो।
दीट्ठो पांडुर केस, दरपण हाथि धरंत छिनो।

२—तब चमक्यो भरहेस, विरति विसूरै बुध्यवली।
जो जुगले कविलेस, आयो काल सपटत छली॥

३—पडियो विषय असेस, राग न मूक्यो एक घड़ी।

४—मन वच काय करेसि, प्रस इंद्री पापा जड्योए।

५—सब इंद्री मैं रसणिंद्री, चेइण गुण अंतरि फंदी।
या पांचा मे बलिवंतो, या राखी रहे न अंतो।
या रैणी रसह ढंढोले, अति विषे नदीमे बोले।
याकूं गल्यो कुटक सावो, याकुं अंबिल तीखण भावै।
तप करत न याहि सुहावै, पांचो रस गिधि गिधि गावै।
या दुरगति तणी सहेली, संसारा दीरघ वेली।
खिणि खिण में अति ललिचावे, जिपइ को दुख दिखावे।

६—इम मीन पयोधर हुंतो, जल मंझि किलोल करंतो।
रसणा रस विण सो लागै, तब तालू काटो भागो॥
तवि जाइ सकै नहु मोडै, तब भीवर काढि मरोडै।
फुनि गइ थल उपरि नाखे सो त्रिस पै जाय पुकारे।
तडफेडै गिरै भोरोलै, वेदना करि अति कलमलै।
जे जे दुख दारुण देखै, ते ते रसणिंद्री लेखै।

७—इमहू रसणा रसि रातो, अति विषे तणे मदि मातो।
भै जाण्यो काज न जंतो, भव भूल्यो भमै अनंतो॥
तन गहत दुमावत आयो, बहु पुन्य नर भव पायो।
अब केवल कह्यो करौ जी, रसना रस वसि न पड़ीजे॥

८—प्राचीन जैन इतिहासः भाग १, बाबू सूरजमल जैन, पृ० ६७

कलापक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। अलंकारों में दो जगह उपमा का प्रयोग हुआ है—

(१) भाव त्यंग ग्रही वेस, जती जिम आपो अनुभवेए।
(२) पंत प्रस इंद्री लवलेस सुख, दुख छै मेरु समान।

छन्द :

सोरठा, दोहा और सखी छंद प्रयुक्त हुआ है।

उदाहरण :

सोरठा : पणउ गुरहा गणेस, सलिलित वाणी जिम लहुए।
तास पिता रिसहेस, तास तणा गुण किम कहुए॥

दोहा : पंत प्रस इंद्री लवलेस सुख, दुख है छै मेरु समान।
फुणि भरवै सुर चितवे, रसणा रसह बखाण॥

सखी : इम रसणा रसह वखाणो, मनि चितह भरह सुजाणो।
सव इंद्री मे रसणिंद्री, चेइण गुण अंतरि फंदी॥

(१३) वलभद्र वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि वलभद्र से संबंध रखती है। ये कृष्ण के बड़े भाई थे। जैन-दर्शन के अनुसार ये नौवें बलदेव[2] कहे जाते हैं।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—
'इति बलिभद्र वेलि समाप्ता'
(ख) इस वेलि की दो प्रतियां देखने में आई हैं—
(१) अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर की प्रति—यह सं० १९९६ के लिखे हुए एक गुटके में है।
(२) मुनि कांतिसागर जी की प्रति:—यह गुटकाकार प्रति है। इसका आकार ५"×५" है। पत्र ८१-८४ पर यह लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियां हैं और प्रत्येक पंक्ति में २४ अक्षर हैं।

२—वासुदेव के बड़े भाई को बलदेव कहते हैं। ये ९ माने गये हैं—
(१) अचल (२) विजय (३) भद्र (४) सुप्रभ (५) सुदर्शन (६) आनन्द (७) नन्दन (८) पद्म (९) राम (बलराम या बलभद्र)।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता सालिग[1] १६ वी शती के कवियों में से थे। इनके कई फुटकर पद भी मिलते हैं[2]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नही है। अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर के जिस गुटके मे यह लिखी हुई है उसका लेखन-काल सं० १६६६ है। अतः निश्चित रूप से इसके पूर्व ही इसकी रचना हुई होगी।

रचना-विषय :

यह २८ छन्दों की छोटी सी रचना है[3]। इसमे बलभद्र और कृष्ण की अन्तिम जीवन-झांकी दिखाई गई है। कथा-सार का विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है :—

(१) *बलभद्र और कृष्ण का द्वारिका नगरी से निकलना :*
द्वीपायन मुनि के अभिशाप से जब द्वारिका नगरी जल उठी तब बलभद्र और कृष्ण प्राण रक्षा के लिए (कौशम्बी वन की ओर) भाग निकले।

(२) *कृष्ण को प्यास लगना और बलभद्र का पानी लेने के लिये जाना :*
द्वारिका से भाग निकलने पर कृष्ण को तीव्र प्यास लगी। उनका मुख-कमल मुरझा गया। वे एक वृक्ष की छाया के नीचे सो गये। और बलभद्र पानी की तलाश में गये[4]।

(३) *कृष्ण को हरिण समझकर जराकुमार का तीर चलाना :*
भगवान नेमिनाथ की बात (जराकुमार द्वारा कृष्ण की मृत्यु होगी) सुनकर जराकुमार भी द्वारिका को छोड़कर जंगल मे चले आये। दूर से पीले वस्त्र-धारण किये हुए कृष्ण के पैर मे काला कमल-चिन्ह देखकर उन्होंने उसे हरिण समझा और तीर चला दिया जिससे कृष्ण का प्राणांत हो गया[5]।

१—समकित विण काज न सीझइ, सालिग कहइ सुधउ कीजइ (२८)
२—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रन्थ-सूची : भाग ३, पृ० १६२
३—मुनि कांतिसागरजी की प्रति मे ३२ छन्द हैं तथा अभयजैन ग्रन्थालय की प्रति मे २८।
४—द्वारिका नयरी नीकल्या, बे बंधव इक ठाम।
त्रिखा ऊपनी कृष्णनई, बंधव पाणी पाय ।।१।।
बंधव जाई लाव्युं नीर, ऊवीसम साहस धीर।
पउढ्यउ छई वृष तली छाया, कुंमलाणी कोमल काया ।।२।।
५—आहेडी जराकुंमार, खेलइ पारधि वंनह मंझारि।
कृष्ण पाइ पदमंज दीठो, आंण्योए सारज बइठो ।।३।।

(४) *वलभद्र का मोह-ग्रस्त होकर छः माह[1] तक कृष्ण की मृतात्मा को लादे-लादे फिरना :*

पानी लेकर आने पर वलभद्र को कृष्ण प्रगाढ़ निद्रा में सोये हुए दिखाई दिये। उन्हें जगाने का बहुत प्रयत्न किया पर वे नहीं जागे। तब बलभद्र उन्हें अपने कंधे पर लेकर छ माह तक जंगल में घूमते रहे[2]।

(५) *देवताओं द्वारा वलभद्र को प्रतिबोध देना :*

वलभद्र को इस प्रकार घूमते देख देवताओं ने उन्हें प्रतिबोध देने की दृष्टि से पत्थर पर कमल-पुष्प खिलाने तथा घाणी से रेत पीस कर तेल निकालने का प्रयत्न किया। इससे वलभद्र का मोह दूर हुआ और उन्होंने कृष्ण के शव का (जो ६ माह बाद क्षीण होकर दुर्गन्ध देने लग गया था) दाह-संस्कार किया[3]।

(६) *वलभद्र का दीक्षा लेना और जङ्गल में ही विचरण करना :*

इस घटना से वलभद्र को संसार से विरक्ति हो गई और उन्होंने भगवान नेमिनाथ के पास जाकर दीक्षा अङ्गीकार कर ली। दीक्षित होने के बाद वे नगर में न प्रवेश कर जङ्गल में ही घूमते रहे।

लेइ घणहर करीय परांण, खांचीनइं मुकाउं बांण।
पग पांन्ही मर्मज लागउ, करलो नइं कान्हड जागउ ॥४॥

१—वासुदेव का शरीर-संस्थान इस प्रकार का होता है कि मरने के बाद भी ६ माह तक उनका शरीर वैसा का वैसा ही रहता है उसमे से किसी प्रकार की दुर्गन्ध नही आती। एक प्रकार की निद्रालु अवस्था रहती है, जिसे घणोदधि नींद कहते हैं।

२—तब मुख ऊघाड़ी जोवइ। साद करीनइं सरलइ रोवइं।
किण गुंण रीसाणउं भाई। बंधव बंधव विललाई ॥१०॥
पगिलाणउ दीठ उधाए। किण सूर हण्यो वंन मांहे।
बांह भाल बइठो कीधउं। उपाडि कंधो लई लीधउ ॥११॥

३—मोह तणंइ वसि पडीयो। छ मासईणो परि रुलीयउ ॥१३॥
तब देव ऊपाव करावइ। सिल उपरि कमलति वावई।
ते वावइ कमल तिणि मागइं। वलिभद्र कहइ किम लागई ॥१४॥

पाथर ऊपरि पोईणी। किम उगसी गमार।
जोये मूओ जीवसी। तउ ऊगसी कुमार ॥१५॥

इम वचन सुंणी मंन जाणी। एक वेलु पीलइई घांणी।
तूं मूरख जोई नवि मासी। या वेलू किम पीलहासी ॥१६॥
वो एमू मो मडउ जो जीवइ। तो तेल बलइ लो दीवइ।
समभावत तहकी बोलइ। वलिभद्र पड्यो इम ढोलई ॥१७॥
जब विणसण लागी काया। तब छोड़ी बलभद्र माया।
मन जाणी खरो हो वीचार। तिहा कीधउ सुगरिसकार ॥१८॥

(७) *रथकार का भिक्षा देना और मृग का भावना भाना :*

एक दिन रथकार (बढई) जंगल में लकड़ी काटने के लिये आया। मुनि बलभद्र विचरण करते-करते उसके पास आये। उस जंगल मे पूर्व-जन्म के शुभ-संस्कारों के उदय के कारण एक मृग हमेशा मुनि बलभद्र के साथ-साथ रहा करता था और जब कभी वे कही जाते तो वह आगे-आगे चला करता था। रथकार ने मुनि को भिक्षा दी। वह मृग अश्रु विगलित नेत्रों से उस दृश्य को देखकर सोचने लगा—काश ! मैं भी मनुष्य होता तो इस प्रकार भिक्षा देकर कृतकृत्य होता[1]।

(८) *वृक्ष की डाल के गिरने से तीनों—बलभद्र, रथकार, मृग—का मरकर पाँचवें देवलोक में जाना :*

मृग इस प्रकार सोच ही रहा था कि अचानक जोर से आंधी चली और बढ़ई द्वारा वृक्ष की अधकटी डाल तीनों पर गिर पड़ी। जिसके आघात से *उसी समय तीनों का प्राणान्त हो गया* और वे मरकर पाचवे देवलोक में गये।

(९) *उपसंहार :*

अन्त में कवि का कथन है कि भावना की शुद्धता के कारण[2] तीनों—बलभद्र मुनि (जिन्होने दीक्षित होकर संयम की आराधना की) रथकार (जिसने मुनि बलभद्र को सुपात्र दान—भिक्षा—दिया) और मृग (जिसने केवल शुद्ध मन से भावना भायी)—को एकसा फल (पंचम देवलोक) मिला[3]।

१—एक दिवसते रथकारी। आव्यो ते वंनह मझारी।
रथकारी मुनि विहरावई। तिहा मृगलउ भावन भावइ ॥२१॥
भावन भावइ हिरणलउ। नयणे नीर वहति।
मुनि विहरावत कर करवि। जइ हुं माणस हूंत ॥२२॥
ईम जेहुं माणस हुंतो। तो जीवा जतंन करंतो।
मिलतो मुचे मणगारी। विहरावत पात्र विचारी ॥२३॥

२—ईम चितवंता ततकाल। तत्र वाँध वाजई मसराल।
अधकाठी पीडीयती डाल। त्रिहुं तणउं पहुंतउ काल ॥२४॥
बलिभद्र हिरण रथकारी। त्रिहुं एक जग संभारी।
पंचमे गया देव लोकें। तिहा विलसेइ सुख अनेक ॥२५॥

३—बलिभद्र दया प्रतिपाली। मद माया मछर टाली।
सुत्रहार सुभोस्या निरखो। विहरावत मात्र परीखी ॥२६॥
तिहां जोगइं मंन रंग भावी। तिहा मृगलइ भावंन भावी।
त्रिहूं हुवो एकत्र साथ। जिनधर्म तणी जोऊ वात ॥२७॥

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। अलङ्करण की ओर कवि का ध्यान नहीं रहा है। एकाध जगह अनुप्रास आया है-

(१) कुंमलाणो कोमल काया (२)
(२) मद माया मच्छर टालो (२६)

छन्द :

काव्य में दोहा और सखी छन्द का प्रयोग हुआ है।

उदाहरण :

दोहा :

पाथर ऊपरि पोइणी, किम उगसी गमार।
जो थे मूग्रो जोवसी, तउ उगसी कुमार ॥१५॥

सखी :

इम वचन सुणी मन जांणी। एक बेलु पीलहई घांणी।
तु पुरख जोइ नवि मासो। या वेलू किम पीलहासी ॥१६॥

(१४) चन्दनबाला वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि का संबंध चन्दबाला से है। चंदनबाला सोलह सतियों[2] में से तीसरी सती मानी जाती है। इसके पिता दधिवाहन बिहार प्रान्त की चम्पापुरी नगरी (जिसे आजकल चम्पारन कहते हैं) के राजा थे। इसकी माता धारिणी वीर महिला थी। कौशाम्बी नगरी के राजा शतानीक चंदनबाला के मौसा थे। इन्होंने राज्य लोभ में पड़कर दधिवाहन पर आक्रमण किया था। जिसके कारण चंदनबाला को अनेक कष्ट उठाने पड़े। अन्त में चन्दनबाला ने भगवान महावीर से दीक्षा अंगीकृत कर ३६ हजार साध्वियों का नेतृत्व किया।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री चन्दनबाला वेल संपूर्ण'

(ख) प्रति-परिचय :—अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर में इसकी ६ (बंडल नं० ७६; क्रमांक ३६४३-३६४८) हस्तलिखित प्रतियां हैं। हमने जो विवेचन किया है वह प्रति संख्या ३६४३ पर आधारित है। प्रति का आकार ६½"×४½" है। कुल पत्र २ हैं। प्रत्येक पृष्ठ में १३ पंक्तियां हैं और प्रत्येक पंक्ति में ४० अक्षर। प्रति की अवस्था सामान्यतः ठीक है।

२—सोलह सतियों के नाम इस प्रकार हैं—(१) ब्राह्मी (२) सुन्दरी (३) चन्दनबाला (४) राजमती (५) कौशल्या (६) मृगावती (७) सुलसा (८) सुभद्रा (९) शिवा (१०) कुन्ती (११) दमयन्ती (१२) पुष्पचूला (१३) प्रभावती (१४) पद्मावती (१५) सीता (१६) द्रौपदी।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता अजितदेव सूरि[1] पल्लिवाल गच्छीय आचार्य महेश्वर सूरि के पट्टधर थे[2]। जैन गुर्वावलियों में इनका विस्तृत परिचय नहीं मिलता है अन्य ऐतिहासिक साधनों से पता चलता है कि वि० सं० १५९१ से पूर्व ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जा चुके थे[3]। संस्कृत, प्राकृत और देश भाषा पर इनका समान अधिकार था। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं—

(१) आराधना-सं० १५९७ वीरमपुर (२) चंदनबाला वेलि
(३) चौबीस जिनावली (४) समकित शील संवाद रास सं० १६१०
(५) कल्पसूत्र दीपिका सं० १६२२ (६) पिण्डविशुद्धि दीपिका सं० १६२७
(७) उत्तराध्ययन दीपिका सं० १६२६ (८) आचारांग दीपिका सं० १६२६
(९) नेमिनाथ और आदिनाथ स्तवन (१०) नववाड स्वाध्याय

रचना-काल :

कवि ने वेलि के अन्त मे रचना-काल का उल्लेख नही किया है। पुष्पिका[4] से पता चलता है कि इसे साध्वी केसरजी पठनार्थ सं० १७८० वर्ष मिति आषाढ सुद ११ बुधवार को लिपिबद्ध किया गया था। कवि का रचना-काल उसकी कृतियों को देखते हुए सं० १५९७ से १६२६ निर्धारित किया जा सकता है। अतः इसी के आसपास इस वेलि की रचना हुई होगी।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि २६ छंदों की कृति है। इसमें चंदनबाला और भगवान महावीर के अभिग्रह[5] की कथा[6] कही गई है। कथा-सार का विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है—

१—वेलि के अन्त मे कवि ने अपना नामोल्लेख किया है—
अधिक श्रावक श्राविका, कहै श्री अजितदेव सूरि ॥

२—राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथो की खोज : मुनि कांतिसागर (अप्रकाशित)

३—राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज : मुनि कांतिसागर (अप्रकाशित)

४—इति श्री चंदनबाला वेल संपूर्ण। साध्वी केसरजी पठनार्थ सं० १७८० वर्ष मिती आसाढ़ सुद ११ दिने बुधवारे।'

५—भगवान महावीर ने अभिग्रह धारण कर रखा था कि निम्नलिखित बातें मिलने पर उसी के हाथ से आहार ग्रहण करूँगा अन्यथा नही—

(१) राजकन्या हो (२) अविवाहित हो (३) सदाचारिणी हो (४) निरपराध होने पर भी जिसके हाथो-पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हो। (५) सिर मुण्डित हो (६) शरीर पर काछ लगी हो (७) तीन दिन से भूखी हो (८) पारणे के लिए उड़द के बाकले सूप में लिये हों (९) न घर मे हो न बाहर (१०) जिसका एक पैर देहली के भीतर और एक पैर बाहर हो (११) दान देने के लिए अतिथि की राह देख रही हो (१२) प्रसन्न मुख-मुद्रा हो (१३) आँखों मे आँसू हों।

६—वर्तमान लेखक का 'चन्दनबाला वेलि' शीर्षक लेख : मधुमती : वर्ष १ अंक ३

(१) प्रथम चार छंदों में भगवान महावीर के तपस्वी रूप को-जिसने कठोर अभिग्रह धारण कर रखा है और जो पूरा नहीं हो पा रहा है-प्रत्यक्ष किया है।

(२) ५ से ८ छंद तक दधिवाहन और शतानीक के पारस्परिक संघर्ष की भूमिका देकर धारिणी की मृत्यु करा चंदनबाला को रथी के घर (हृदय परिवर्तन हो जाने से) पुत्रीवत् पालने की बात कही गई है।

(३) ९ से १२ छंद तक वेश्या द्वारा चंदनबाला को क्रय करने का तथा उसकी शील-प्रभावना से बंदरों द्वारा वेश्या को नोचने की कथा है।

(४) १३ से २३ छंद तक धनावह सेठ द्वारा चंदनबाला की खरीद और सेठानी मूला द्वारा उसे भोयरे में बन्द करने की घटना का वर्णन है। तत्पश्चात् महावीर के अभिग्रह की धारणा पूर्ण होने का आख्यान वर्णित है।

(५) २४ से २९ छंद तक मूला और शतानीक के प्रायश्चित के साथ-साथ महावीर की केवल ज्ञान-प्राप्ति एवं चंदनबाला की दीक्षा तथा नेतृत्व गरिमा का चित्र है।

कथा में जो मोड़ आये है वे कवि की नाटकीय प्रतिभा के द्योतक हैं। कवि का उद्देश्य चंदनबाला का शील-निरूपण करना रहा है अतः सौंदर्य की ओर उसका ध्यान कम गया है। वैसे पूरी कथा में-सौन्दर्य-वर्णन के तीन स्थल आते हैं जहाँ कवि बहुत कुछ कह सकता था पर उसकी वृत्ति उसमें रमी नहीं है[१]।

मुख्य कथा एवं प्रासंगिक कथाओं का संबंध सूत्र इस प्रकार जोड़ा गया है कि दोनों को अलग-अलग करके देखना कठिन सा है। चंदनबाला की कथा प्रधान होते हुए भी भगवान महावीर के अभिग्रह धारी स्वरूप को गौण नहीं कहा जा सकता क्योंकि कथा का आरम्भ भी वहीं से हुआ है और अन्त भी उन्हीं के अभिग्रह की पूर्णाहुति के साथ। कवि का लक्ष्य एक ओर तो महावीर के तपःपूत जीवन की झांकी दिखाना रहा है तो दूसरी ओर चंदनबाला के सतीत्व को व्यंजित करना। दोनों की 'फल-प्राप्ति' में 'प्रयत्नावस्था' आती है। महावीर का अभिग्रह (फल) इतना जटिल और अभूतपूर्व है कि उसकी पूर्ति होना सहज-सरल नहीं दिखता। महावीर आहार की गवेषणा मे निकलते है-पर लोग उन्हें विविध प्रकार के पकवान

१—धारिणी के लिये इतना ही कहता है :—
'रूप देखि मोहियो, वितवै विसे वृतंत'
चंदनबाला के लिये भी इतना ही :—
(१) 'रूप देखि अति घर्णों मोलवे वेस्या नारि'
(२) देखि रूपइ पद्मनी, तुम ल्यायाहुव किण हेत।'
और वेश्या के लिये तो कवि ने एक शब्द भी नहीं कहा है।

देते हैं क्योंकि कोई उनके अभिग्रह को नहीं जानता। इसी स्थिति में लगभग छः मास बीत जाते हैं और न 'प्राप्त्याशा' तथा 'नियताप्ति' संभाव्य बन पाती है।

चंदनबाला की 'प्रयत्नावस्था' में भी कई बाधाएँ आती है पर धीरे धीरे वे बाधाएँ दूर हो जाती हैं। ऐसे घटना-स्थल तीन हैं:—

(१) शतानीक के रथी का धारिणी और चंदनबाला को लेकर जंगल में भागना पर धारिणी के जीभ खीच कर प्राणोत्सर्ग करने से रथी के हृदय में चंदनबाला के प्रति पुत्री-भाव का उदय होना।

(२) वेश्या के द्वारा क्रय करने पर चंदनबाला के सतीत्व-भ्रष्ट होने की संभावना पर अचानक बंदरों द्वारा वेश्या को नोच कर उस संभावना को समाप्त करना।

(३) सेठानी मूला द्वारा चंदनबाला को मारने का षड्यन्त्र पर महावीर के अभिग्रह का उसी षड्यन्त्र के कारण चंदनबाला के व्यक्तित्व में समाहार होने से उसका (चंदनबाला का) जय-जयकार।

इससे स्पष्ट है कि जहाँ-जहाँ चंदनबाला के व्यक्तित्व को शंकाकुल दृष्टि से देखकर कलुषित करने का प्रयत्न किया गया वहाँ-वहाँ उसकी उज्ज्वलता और निखर गई। अन्त में दोनों (महावीर व चंदनबाला) की समन्वित 'फल-प्राप्ति' कथा-विकास की अपनी विशेषता कही जा सकती है।

काव्य में अलौकिक तत्वों का सन्निवेश किया गया है। इसके मुख्यतः दो स्थल हैं। एक तो यहाँ जहाँ वेश्या चंदनबाला को खरीद कर जबरदस्ती अपने घर ले जाना चाहती है और चंदनबाला निरुपाय होकर 'सार करज्यो माहरी, करुणासागर श्री जिनराय हो स्वामी' की पुकार करती है तब उसकी शील प्रभावना से बन्दर आकर वेश्या को बुरी तरह नोच-नोच कर लोहू-लुहान कर देते हैं[1]। दूसरा स्थल वह है जब सेठानी मूला चंदनबाला को 'मुण्डित वेश' के वेश में हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी पहनाकर भोयरे में बन्द कर अपने पीहर चली जाती है तथा सेठजी आकर उसे भोयरे से बाहर निकाल बेड़ी काटने के लिये लुहार को बुलाने चले जाते है तभी भगवान महावीर पधार जाते है और उनका अभिग्रह पूर्ण हो जाता है। इस घटना में चंदनबाला सोलह शृङ्गार धारण किये हुये एक बाला

१—सासन देवत संभली, सूरज किरण में सेण।
विकराल माहर बानरी, उरटिया बानर सेन॥
नदन माक विलूरिया, ते नासि दई मनचाल।
धावक ने कहर धुंबरी, भाग्यो मोन धर्यो तत्काल, हो स्वामी॥

दिख पड़ती है[1]। ये अलौकिक तत्व इसलिये अस्वाभाविक नहीं लगते क्योंकि इन
मूल में शीलधर्म की प्रधानता रही है। तीसरा स्थल एक और है जो अलौकिक त
नहीं कहा जा सकता पर शील-निरूपण एवं प्रभाव-बोध की दृष्टि से जिसका महत्
है। वह स्थल है धारिणी रानी का जीभ खींच कर मृत्यु से आलिंगन करना।

काव्य-निर्णय का समुचित निर्वाह कर कवि ने शील-शक्ति की अभिव्यंज
की है। दुष्ट प्रकृति के पात्र (वेश्या, मूला, शतानीक आदि) अन्त में किए हुये क
का फल भोगकर पश्चाताप की आग में जलते हैं। सद्प्रवृत्ति के पात्र (महावी
चंदनबाला आदि) कठिन परिषह सह कर अन्त में अबाध आनन्द-स्थल मुक्ति प्राप
करते हैं।

चरित्र-चित्रण :

घटनाओं के आधार पर पात्रों का चरित्र-विकास हुआ है। पुरुष पात्र ६ हैं
भगवान महावीर, शतानीक, दधिवाहन, रथी, धनावह सेठ और नाई। जिन
महावीर ही प्रमुख हैं। स्त्री पात्र ७ हैं—चंदनबाला, धारिणी, सेठानी मूला, मृगावत
वेश्या, रथी की स्त्री और दासी। जिनमें चंदनबाला प्रमुख है। मानवेतर पात्रों
बन्दरों को रक्खा जा सकता है।

चंदनबाला काव्य की नायिका है। वह राजपुत्री है। दधिवाहन उसका पित
है और धारिणी उसकी माता। दोनों के पुनीत-जीवन-प्रसङ्गों से उसने प्रेम औ
शील का पाठ पढ़ा है। उसने अपनी मां को अपने ही सामने धर्म की रक्षा के नि
जीभ खींचकर आत्मोत्सर्ग करते हुए देखा है और पिता को निरपराध प्राणियों की
रक्षा के लिये क्षमता होते हुए भी राज-पाट छोड़कर जंगल की राह लेते हुए पाय
है। यही निर्भीकता और प्राण-वत्सलता उसमें कूट-कूटकर भरी है।

चंदनबाला रूप की राधा और शक्ति की दुर्गा है। उसमें सहनशीलता और
दूरदर्शिता का बल है। रथी की स्त्री की शंकाकुल भावना उसे अपने आपको बा
के बाजार में बिकने को विवश कर देती है। वह सवा लाख दीनार में वेश्या के हाथ
बिक तो जाती है पर तुरन्त ही आचार[2] पूछती है और जब उसे आचार धार्मे

1—वेड़ी थी भीतर थयो, पाय रिम-झिम करती जोड़ी हो स्वामी।
धर्मी धरने धरई, सिरि सुरंगन वेणी।
सिणगार सोभा सुन्दरी पद्मि मग्या मुर दासेण ।।
2—मद मास, मदिरा छोड़िये, परिहरिये मोल सिगार।
साब नायर बीड़ली, चंदन कलस सिंगार ।।
हिंडोला खाटे पड़िबे, झिलमिले पुरुष मनड।
बड़ं मन माने ठाहुरर, तो कीजै महबत्र नेह ।।

अनुकूल नहीं लगता तो वह जाने से मना कर देती है। उसके चरित्र में वह शक्ति है जो लोकोत्तर शक्ति को (बन्दरों के रूप मे) अपनी सहायता के लिये तत्क्षण बुला सकती है। धनावह सेठ का आचार[1] उसके अनुकूल है। वह शरीर को बेचता नहीं आत्मा को बल देता है। इसीलिये वह (चंदनबाला) सेठ के घर सुख-पूर्वक (सेवा करते हुए) रहना स्वीकार कर लेती है।

सेठजी के प्रति चंदनबाला की पूरी श्रद्धा है। वह सचमुच उन्हें पिता के रूप में मानकर उनकी सेवा करती है पर सेठानी को यह कब स्वीकार? उसने चंदनबाला के लहराते हुए बाल कतर लिये, उसके पैरों में बेड़ियां डाल दीं और एक भौंयरे में बन्द कर दिया[2]। फिर भी उस सती के चेहरे पर किंचित् भी क्रोध नहीं, केवल शांति और धैर्य का स्निग्ध प्रकाश, कर्मों के फल का आत्मतोष। भावना इतनी उदात्त कि सेठजी के आने पर तीन दिन की भूखी होने पर भी उड़द के उबले हुए बाकले खाने को तैयार, उनको भी किसी श्रमण (अणगार) को बिना विहराये नहीं और जब महावीर उधर आकर वापिस लौटने लगे तो आँखों में विवशता के आंसू। यही वह घड़ी, यही वह व्यक्तित्व जहाँ असम्भव समझी जाने वाली परिस्थितियों का (अभिग्रह) मिलन और सती का जय-जयकार। फिर क्या था? मुण्डित मस्तक पर सांपिन की तरह लम्बे-लम्बे काले बाल लहरा उठे, बेड़ियां आभूषण बनकर मुस्करा उठी, आकाश विजय दुंदुभी से गूंज उठा। अन्त में साध्वी बनकर वह ३६ हजार साध्वियों का नेतृत्व करती हुई अमर पद की अधिकारिणी बनती है।

भगवान महावीर काव्य के आदि अन्त को जोड़कर कथा को संपूर्णता प्रदान करते हैं। उनका तपस्वी रूप ही यहाँ उद्घाटित हुआ है। वे कवि के आराध्य देव भी हैं। इसीलिये कवि ने मङ्गलाचरण न कर कौशाम्बी नगरी में उनके पदार्पण से ही काव्यारम्भ किया है[3]।

१—सुन वच्छह महां जिनमती, देव बुद्धि श्री अरिग्रन्त।
सुगुरू बुद्धि गुरु संयमी, भाखियो जे भगवन्त॥
जीव दया धर्म पालीयइ, बावीस अभख अनंत।
कंद मूल न खाइयइ, रयणी भोजन नहो एकंत॥

२—नाई नइं बोला विनइं, उतार्‌या वेणी ना बाल।
पाय मठोलइज घालिनै, बैठाई कोठा माहि।
तालो लै माड़ो जड़यउ, तिहां कोइ न जाणे सार॥

३—कौशाम्बी नगरी पधारिया, वहिरता श्री महावीर।
अभिग्रह मन माहि धरइ, सम, दम, उपसम धीर।
काव्य के अन्त में भी कवि ने महावीर की वंदना की है—
वीर जिनवर पायनमूं। मन वाछित आनन्दपूर।

भगवान महावीर की साधना कठोर साधना है। उनका अभिग्रह[1] इतना असंभव समझा जाने वाला है जिसकी पूर्ति होना दुर्लभ है। पर अंत में उनकी तपस्या की कठोरता और सच्चाई के कारण अभिग्रह पूर्ण होता है जिस पर देवगण भी प्रसन्नता प्रकट करते हैं।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोलचाल की राजस्थानी है। उसमें प्रवाह, लालित्य एवं नाद-सौन्दर्य की छटा देखी जा सकती है—

राय कुंवरी मनोहरू, लाड़ली यौवन वेस।
पाय अठील परवस पड़ी, वेणी मुंडित केस॥

छंद :

काव्य में दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है पर उसे ढाल की तरह लययुक्त बनाने के लिये मात्राएँ बढ़ाकर कुछ परिवर्तन कर दिया गया है। दो दोहों को मिलाकर एक छंद बनाया है। प्रत्येक छंद के बाद आंकड़ी के रूप में निम्नलिखित पंक्तियाँ व्यवहृत हुई हैं—

भावनडइ जाउं हो जग गरु, हुं तो लुलि लागुं पाय हो स्वामी।
मन मान्या शिव सुख मांगु हो ठाकुर ॥२॥ लागुं पाय हो स्वामी॥

(१५) रहनेमि वेलि[2]

प्रस्तुत वेलि २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के छोटे भाई रहनेमि (रथनेमि) तथा मथुरा के राजा उग्रसेन की पुत्री और नेमिनाथ की वाग्दत्ता पत्नी राजमती से संबंध रखती है।

१—राय कुंवरी मनोहरू, लाड़ली यौवन वेस।
पाय अठील परवस पड़ी, वेणी मुंडित केस॥
एक पाय देहल बारणइ, इक माहि खेम सरीर।
भूप सूणे उड़दना दाकुला, नयनेहि ढाले नीर॥
आठिम तननइ पारणे, सूरज भावे सीस।
जोग एहवउं जउं मिलै, इम चिंतवइ श्री जगदीस॥

२—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—
वेलि सिराइली श्री नेमिनाथ केरी भाए, चलण न पामीइ।
(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति दिगम्बर जैन मंदिर (कोटड़ा) बरेर सर्तो का नैनवां (बूंदी) राजस्थान के एक गुटके में सुरक्षित है। यह गुटके के दो दर्शे

कवि-परिचय :

इसके रचयिता सीहा १६वीं शती के प्रारंभ मे विद्यमान थे।[1] सीहा[2] इनका संक्षिप्त नाम है। पूरा नाम सिंघदास है।[3]

रचना-काल :

नैनवा की प्रति का लिपिकाल सं० १५८५ है पर देसाईजी ने जिस प्रति का उल्लेख किया है।[4] वह सं० १५३५ के पूर्व की है। इस आधार पर इसका रचना-काल सं० १५३५ से पूर्व का ठहरता है।

रचना-विषय :

यह १७ छंदों की छोटी सी रचना है। इसमें राजमती और रहनेमि के उस प्रसंग का वर्णन है जब नेमिकुमार पशुओं के करुण-क्रन्दन मे विरक्त होकर दीक्षित हो जाते हैं और राजमती साध्वी बनकर भगवान को वंदना करने के लिये जाती है। अचानक आंधी और वर्षा के होने मे[5] राजमती एक गुफा में अपने वस्त्र सुखाती है। संयोग से उसी गुफा मे ध्यानस्थ मुनि राजमती के नग्न सौन्दर्य को देखकर कामपीड़ित हो उससे प्रेम-याचना करते है और राजमती उद्बोधन देकर उन्हें संयम-मार्ग पर अविचल रखती है।

कवि ने इस घटना को राजुल-रहनेमि के संवाद रूप मे चित्रित किया है। यहाँ राजुल हो अधिक मुखर है। रहनेमि के प्रेम-निवेदन पर वह कहती है-मैं सरसों की तरह लघु आत्मा हूँ पर तुम तो मेरु पर्वत के समान महान आत्मा हो। अब गजारोही होकर खर पर चढ़ने का उपक्रम कर रहे हो। तुम्हें धिक्कार है।[6] आगे वह रावण, कीचक आदि पौराणिक पुरुषों के उदाहरण देकर सिद्ध करना

(१८३-१८५) मे लिखी हुई है। पुष्पिका मे लिखा है 'इति नेमिनाथ राजीमती वेलि'।

(ग) प्रकाशित—जैनयुगःपुस्तक ५:११-२२, पृ० ४३४-३५

१—जैन गुर्जर कवियो, भाग १, खण्ड १, पृ० ४६१-६२।

२—श्रमन चतुविध संघ सयल मुनि अनुदिन सीहा था नामि ॥१६॥

३—सिंघदास हीहुडं भणति वे पञ्च विषय विरत नर नारि ॥१७॥

४—जैन गुर्जर कवियोः भाग १ खण्ड १, पृ० ४६१

५—ग्रीष वंदण पावस करी, वरसि दुहिर गंभीर
भीनु कापु पावती, गुफ पोहुत शरीर॥
देखि सव गलि घर मक दहि यहोउ, जिम कमनदिए मधुशार ॥१॥

६—सिरसंबस मुहिम हुय मुनि, तुं गिरि मेर समान।
गज आरोही खरि चढि, पड़इ मम्महि अन्नाणु ॥५॥

चाहती है कि जो कामुक होते हैं उनका जीवन वृथा जाता है।[1] उसका अति
फैसला है चाहे सुमेरु पर्वत चलायमान हो जाय, अग्नि शीतल हो जाय, सू
पश्चिम में उदित होने लग जाय पर उसका शील-धर्म कभी नष्ट नहीं होगा।
उसने किसी का वरण किया है तो केवल नेमिकुमार का। इस भव में ही नह
वह तो नौ-नौ भवों से उनके साथ है।[3] ऐसी सती के आगे रहनेमि पश्चाता
करता हुआ चरणों में गिर पड़े तो आश्चर्य ही क्या ?[4]

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल साहित्यिक है। अलंकार यत्र-तत्र आये हैं—

अनुप्रास :

(१) सील सबल रखवाल, वन अति रुयडंउ।
(२) पर स्त्री पेक्खवि परान्मुहा ते विरला संसार।

उपमा :

शिरसंबल तुल्लि हुज मुनि, तु गिरि मेर समान ॥४॥

रूपक :

सुगति-रमणि मनि आणि ॥१३॥

१—समुद्र सहाई लंकु गढ़ रावण धणी निशंक।
पर स्त्री कारणि गंजीउ त्रिभुवन माहि जु वंक ॥
सतीय सीता लगि राम रमायण, जगि जाणीइ वदीत ॥८॥
रूप सइंदी पेख करि, जगति रहावी रेख।
शत बंध वसु अग्नि परजालसि स्त्रीय कारणि मनि देख ॥६॥
पर स्त्री पेक्खवि परान्मुहा ते विरला संसार।
घणा विगूता साभल्या जे राता परनारि ॥
दुवय वेवि जिम गहाण कौरव हय भीमसेन झूझारि ॥१०॥
२—कनक मेर गिरिधर चलि, अगनि कि शीतल होइ।
पश्चिम दणीयर उगमि, शील न लोपुं तोइ ॥७॥
३—नवह भवंतर हुं भमी, तुम्ह बांधव घरि नारि।
तीउ प्रतिपन्नु न पालीउं हुं पच्छिरि संसारि।
तिणि हठ संयम भार वरलि रखिवा, ससि तुम्हारि बारि ॥१२॥
४—खिन्नु खेद हुइ मुनि होइ सतीय न किमि पतीयाइ।
नुहीयडि पश्चताबीउ धाई लागु पाइ।
हुं त्रिगह नइति पाप बहु लरत, स्वमिन स्वमिन मुम्ह माइ ॥१४॥

छंद :

काव्य में दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है। पर चरण के अन्त में एक विशेष पंक्ति जोड़कर उसे संगीतमय बना दिया गया है।

उदाहरण :

दोहा :—नवह भवन्तर हु भमी, तुझ बांधव घरि नारि।
तिउ प्रतिपन्नु न पालिउं, हुँ परिहरि संसारि॥
विशेष-पंक्ति—तिणि हठ संयम भार वरलि रखिवा सखि तुम्हारि बारि।

(१६) जम्बू स्वामी वेल[1]

प्रस्तुत वेल जम्बूस्वामी से संबंध रखती है। जम्बूस्वामी पांचवे गणधर सुधर्मास्वामी के बाद भगवान महावीर के तीसरे पाट पर विराजे[2]। ये राजगृह नगरी के काश्यपगोत्रीय सेठ ऋषभदत्त के पुत्र थे। इनकी माता का नाम धारिणी था। १६ वर्ष तक गृहस्थाश्रम पालने के बाद ८ स्त्रियों और ६६ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की सम्पत्ति छोड़कर ये दीक्षित हुए। वि सं० से ४०६ वर्ष पहले ये मोक्ष पधारे[3]। इनके बाद कोई केवली उत्पन्न नहीं हुआ, अतः ये चरम केवली कहलाते हैं।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही सीहा (सिंघदास) हैं जिनका परिचय 'रहनेमि वेलि' के साथ दे दिया गया है। वेलि के अन्त में कवि ने अपना नामोल्लेख किया है[4]।

रचना-काल :

देसाईजी को इसकी जो प्रति मिली है वह सं० १५३५ की है[5]। अभयप्रभ गणि ने सं० १५३५ वैशाख शुक्ला ६ को इसे लिपिबद्ध किया था[6]। अतः निश्चित रूप से यह संवत १५३५ के पूर्व की रचना है।

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही आया है। पुष्पिका मे लिखा है 'इति श्री जम्बूस्वामी वेलि समाप्त'

(ख) प्रकाशित-जैन-युग : पुस्तक ५-अंक ११-१२, पृ० ४७३-७४

२—ऐतिहासिक नोंध : वाडीलाल मोतीलाल शाह (हिन्दी अनुवाद) पृ० ५१

३—वही, पृ० ५१-५२

४—अनुदिन चतुर्विध सयल संघ मुनि, अणु दिणु सीहा स्वामी (१८)

५—जैन गुर्जर कवियो : भाग ३ खण्ड १, पृ० ४६१

६—लख्या सं० १५३५, वै० सु० ६ अभयप्रभगणिना :

रचना–विषय :

प्रस्तुत वेलि १८ छंदों की छोटी सी रचना है। इसमें कवि ने चरम केवली जम्बूकुमार और उनकी आठ स्त्रियों-समुद्रश्री, पद्मसेना, पद्मश्री, कनकसेना, नलसेना, कनकवती, कनकश्री और जयश्री–के वार्त्तालाप को काव्यबद्ध किया है। जब जम्बूकुमार सुधर्मास्वामी से धर्मोपदेश सुनकर संसार से विरक्त होकर दीक्षा लेना चाहते हैं तब उनके माता-पिता उन्हें यह कहकर रोक देते हैं कि विवाह करने के बाद दीक्षित होना। फलस्वरूप आठ स्त्रियों के साथ जम्बूकुमार का विवाह होता है। विवाहोपरान्त जब वे दीक्षित होने के लिये अपनी स्त्रियों से विदा लेते हैं तब प्रत्येक स्त्री कोई न कोई कथा कहकर उन्हें संयम से विरत करने का उपक्रम करती है पर जम्बूकुमार प्रत्येक कथा के प्रतिवाद में कोई न कोई दूसरी कथा कहकर अपने संकल्प पर दृढ़ रहते हैं। संक्षेप में वार्त्तालाप इस प्रकार है—

(१) *समुद्रश्री–जम्बूसंवाद :*

जब जम्बूकुमार नव परिणीता स्त्रियों को छोड़कर दीक्षित होने लगते हैं तब समुद्र श्री कहती है–हे स्वामी नव विवाहित स्त्रियों को छोड़कर दीक्षा मत लीजिए अन्यथा आपको कृषक की तरह पछताना पड़ेगा[1]—

समुद्र श्री प्रिय पति भणइ, हुंउं जल तुं रत्न सारिसि,
वग करि सुगज कंगु वण, कलिया मन उन्मूलि,
गहमंडकइ सगध बिहु चूकिसि, काम लोभ सुख मूलि,
नाह न भूलि-पईं[2]।

यह सुनकर जम्बूकुमार कहते हैं—मैं कौए की तरह मूर्ख नहीं हूं जो मृत हाथी के शरीर पर मुग्ध होकर महासमुद्र में डूब गया[3]—

हस्ति कलेवर चीर नाउं, नउं हुउं वायस नारि,
विषय सबुत्त मोतहि रहिउ, महा-समुद्र मझारि,
दस दिसि फिरइ पार न पामइं, तिम न पडिसु संसारि,
नारि न भूलिवइं।

१—[illegible] की कथा : चरम केवली जम्बूस्वामी चरित्र : [illegible],
[illegible], पृ० ७२-७४

२—इस ग्रंथ में [illegible] की कथा का [illegible] नहीं हो पाया है। यह पद किस कथा से
[illegible] है यह स्पष्ट नहीं हुआ।

३—[illegible] कथा : चरम केवली जम्बूस्वामी चरित्र : पृ० ७५-७६

(२) पद्मसेना-जम्बू-संवाद :

यह सुनकर पद्मसेना कहती है—हे नाथ यदि आप हमें छोड़ देंगे तो आपको उस बन्दर की तरह पछताना पड़ेगा जो लोभ के वशीभूत होकर देव बनने की जगह मनुष्य-रूप से भी हाथ धो बैठा[१]।

पद्मसेना भणइ नाह सुणि, प्राणनाथ अवधारि,
इकु वानर इक वानरी, तर विशेषि नर-नारि।
लोभ लगइ नर वानर हुउ, तिम तउ वेउम हारि,
नाह न भूलीयई ॥

पद्मसेना की यह बात सुनकर जम्बूकुमार कहते हैं—हे स्त्री ! यह जीव उस अंगारकारक की तरह है जो बावड़ी, तालाब, समुद्रादि रूप स्वर्ग-सुखों में भी अपनी प्यास नहीं बुझा सका तो फिर जल-बिन्दु स्वरूप सांसारिक-विषयों से यह कैसे तृप्त होगा[२] ?

जंबु भणइ पदमसेना सुणि, इक नर दहई अंगार।
त्रिसितु मोसई सनदी, सुतउ सुपन मझारि,
त्रिपति नहीं तिणि पार बिंदुले जिम एउवि विषय संसारि,
नारि न भूलियई ॥

(३) पद्म श्री-जम्बू-संवाद :

यह सुनकर पद्म श्री कहती है—हे नाथ ! मनुष्य की प्रत्येक बात का परिणाम उसके विचारानुसार होता है। अतः आप प्रवृत्ति-निवृत्ति के भेद को भूलकर सुखोपभोग करें। रानी ने राजा को छोड़कर मावत से और मावत को छोड़कर चोर से प्रेम किया तो कोई उसका न रहा। शृंगाल ने अपने मुख में पड़े मांस के टुकड़े को छोड़कर मत्स्य पर निगाह डाली तो दोनों से वंचित रह गया। आप भी वही धर्म के लोभ में आकर दोनों से हाथ न धो बैठें[३] ?

पदमश्री भणई जंबु सुणि, नरिंद नारि अवधारि,
राम मेल्हि सुयणि सगो, भुयंगु मेल्हि रत चोरि,
मछ मेल्हि सीयाल धामिष जिम तिम धर्म चुकिसी सार,
नाह न भूलीयई ॥

१—वानर की कथा : वरत केवली जम्बूस्वामी चरित : पृ० ७८–७६

२—अंगारकारक की कथा : वही : पृ० ७६–७७

३—कुलवनिता और शिगाल की कथा : वही : पृ० ७७–८१

पद्मश्री की यह बात सुनकर जंबूकुमार कहते हैं—मैं विद्युन्माली की तरह रागान्ध नहीं हूँ जो विद्या की साधना के लिये निकला और पड़ गया प्रेम के पचड़े में। मैं तो मेघरथ की तरह सच्चा विद्या-साधक हूँ[1] :—

विज्जहरि मातंगधुय, परणी विज्जारेसि,
इकु विद्या साधवि गयउ, इकु रहियउ परदेसि
हउ विज्ज मालतणी परि न करि मुवसु, मुहीं गिहवास,
नारि न भूलियई ॥

(४) *कनकसेना-जम्बू-संवाद* :

यह सुनकर कनकसेना कहती है—हे नाथ ! अत्यधिक आग्रह करना बुरा है अन्यथा आपको भी शंखधमक की तरह पछताना पड़ेगा अतः मेरा कहना मानकर पहले सांसारिक भोग भोगिये फिर मुक्ति रूपी नारी का वरण कीजिये[2] :—

कनक सेना भणइ म करि, प्रिय द्रमक तखरि,
गह संख पूरित तणि वउ गम्य, तिय तउ म हारि,
विषय भोग भोगवि सुख पहिलउ, पछइ मुकति वर नारि,
नाह न भूलीयई ॥

कनक सेना की यह बात सुनकर जंबूकुमार कहते हैं—हे स्त्री ! मैं उस बन्दर की तरह नहीं हूँ जो विषय भोग रूपी शिलारस के वशीभूत होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ[3] :—

जंबु भणइ तं नारि सुणि, वानर वनहं मझारि।
तिहं प्रति मलिउं, इक आवीयउ, तिडिया बेउ तिणि वइरि
भागउ त्रिपा लावसि, खूतउ तिम न पडिसु संसारि,
नारि न भूलियई॥

(५) *नलसेना-जंबू-संवाद* :

यह सुनकर नलसेना कहती है—हे नाथ ! सब प्रकार का सुख प्राप्त करने के बाद अब आप और अधिक इच्छा न करें अन्यथा धन प्राप्त करने के लोभ में यक्ष की पूजा करते हुए सिद्धि की प्रतिस्पर्धा में बुद्धि की तरह दोनों नेत्रों से हाथ धोना पड़ेगा[4]।

१—विद्युन्माली की कथा—चरम केवली जम्बूस्वामी चरित्र : पृ० ८६–९३
२—शंखधमक की कथा—वही : पृ० ९३–९५
३—वानर की कथा—वही : पृ० ९५–९६
[illegible] और सिद्धि की कथा—वही : पृ० ९७–१००

"नलसेना भणइ नाह सुणि, सिधि बुधि खरीयस लोभ ।
धन कारणि जस्कु पूजियउ, समा समा वर लाध ।
एकइ-एक नयण जउदध, उ बीजु हुइय रिप,
नाइ न भूलीयई ।

नल सेना की यह बात सुनकर जम्बू कुमार कहते है—हे स्त्री सुन्दर जातिवंत घोड़े की तरह मुझे कोई भी उन्मार्ग पर ले जाने की ताकत नही रखता[1]—

जंबुकुमार कथा कहइ, सुंदरि सुणि धरि भाउ,
जुतीय सुंदर तुरिय इकु, महता सम पयराउ,
परम तणइ छलि चोर निकलु भय उतिम तुम्हि विलख न थाहु,
नारि न भूलीयई ।

(६) *कनकवती-जंबू-संवाद :—*

यह सुनकर कनकवती कहती है—हे नाथ ! आप उस मूर्ख मुखी-पुत्र की तरह मत कीजिये जिसने लोगों के मना करने पर भी पैसों के लोभ में आकर गधे की पूंछ नही छोड़ी। और व्यर्थ ही में उसकी लातों से अपने दांत तुड़वाये[2]—

कनकवती भणइ म करि प्रिय, जिणि तिणि कीउ गमारि ।
विलगउ रासल पूंछडइं, पडिया दंत बिचारि ।
प्रबल बाल भ्रम्ह संयहु करि करि प्रिय मन मूकि निरधार,
नाइ न भूलीयई ।

कनकवती की यह बात सुनकर जंबूकुमार कहते है-हे स्त्री मैं उस सोल्लक की तरह नही हूं जो घोड़े के समान तुम्हारे सेवकपने को निभाऊं और मरने के बाद घोड़ी के वेश्या-पुत्री होने पर उसके द्वारा अपमानित होकर भी चरणों में लोटता फिरू[3]—

जंबुकुमर कथा कहई, मोलउ कुणंबा मुद्ध ।
घोड़ो मरी वेस्या हुई, उ हुउरस रखवाल,
सहइ अपमान तसु नारि, तणा तितु तिम न करिसिहु बान,
नारि न भूलीयई ।

१—जातिवंत घरव की कथा–चरम केवली जम्बूस्वामी चरित्र : पृ० १००–१०४
२—मुखी के पुत्र की कथा–वही, पृ० १०५–१०६
३—सोल्लक की कथा–वही, पृ० १०६–१०८

(७) *कनकश्री-जम्बू-संवाद :—*

यह सुनकर कनकश्री कहती है—हे नाथ! आप मासाहस पक्षी की तरह आचरण मत करिये जो बाघ के मुख में पड़े हुए मांस के टुकड़े को लेकर 'मा-साहस मा-साहस' (साहस मत करो, साहस मत करो) कहता हुआ उड़ता है और वाणी-विरुद्ध आचरण करता है[1] :—

कनकश्री भणइ सुणिन प्रिय, इकु पंषिया विचार,
वाघा तणइ मुखि मंसु ते लेयइ, अवर कहइ ववहार,
मासाहस तणी परि म करिसि, लाजिसि तूं भरतार,
नाइ न भूलीयई।

कनकश्री की यह बात सुनकर जंबूकुमार कहते हैं-हे स्त्री! मैं तुम्हारी वाणी के मोह में नहीं पड़ूँगा क्योंकि मैं तीनों मित्रों की कथा जानता हूं मुझे मालूम है कि सोमदत्त की तरह यह संसारी जीव है, और सहमित्र की तरह शरीर है। शरीर का जीव निरन्तर सत्कार करता है पर जब कर्म राजा मरण रूपी आपत्ति लाता है तब शरीर जीव का तनिक भी साथ नहीं देता। सभी सगे-संबंधी पर्वमित्र की तरह हैं जो श्मशान तक साथ रहते हैं। सुख कारण जो धर्म है वही प्रणाम मित्र की तरह अगले जीवन में भी साथ देता है[2] :—

जंबुकुमर भणइ नारि सुणि, तिनि मत्त अवधारि,
एकु दानि न तुं पोपिइ, एकु पर्व तिथि वारि।
एक जुहार मितु जइ सरिसउ, अवल न सबल संसारि,
नारि न भूलीयई।

(८) *जयश्री-जंबू-संवाद :—*

यह सुनकर जयश्री कहती है—हे नाथ आप मुझे ब्राह्मण-पुत्री की तरह कल्पित-कथाएँ कह कहकर आश्चर्यान्वित करते हैं पर मैं बातों में नहीं आने वाली हूं[3] :—

जइसि श्री भणइ, जे डिवि कर म भणिसि वार-इवार।
ब्राह्मण धूम्र कल्पित कथा, कोई कहइ करइक वार,
नाह न भूलीयई।

१—मासाहस पक्षी की कथा : चरम केवली जम्बूस्वामी चरित्र पृ० १०८

२—तीन मित्रों की कथा : वही, पृ० १०८–१११

३—नागश्री की कथा : वही, पृ० १११–११४

जयश्री की यह बात सुनकर जम्बूकुमार कहते हैं—हे स्त्री ! मैं ललितांग कुमार की तरह विषय लुब्ध नहीं हूं जो कि तुम्हारी बातों में आ जाऊं[1]

जंबुकुमर भणइ तं नारि, सुणि तरल ललंग कुमार,
संचरई विषय लवधु, घालिउ नरक मझारि।
पंच प्रकारि, विपु विरतु विप भणे, सु हुंउं नारि,
नारि न भूलीयई।

जंबूकुमार की इस प्रकार की बातें सुनकर आठों स्त्रियां परास्त हो जाती हैं और तब जंबूकुमार सुधर्मास्वामी से दीक्षा धारण कर लेते हैं।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा अलंकृत एवं प्रवाहमयी है—

(१) कदल कमल वन मेल्हि, कनक न राचियई।
चंदनु पाय म ठेलि, अंगि विलेपिई॥

(२) रयण अमूक मेल्हि, काचि न राचीइं।
मूंकि कलिउ सहकार, कईवि क भूभियइ॥

छन्द :

यह गीत शैली मे लिखी गई है। प्रत्येक छंद के बाद टेक के रूप में, यदि वह छंद स्त्री द्वारा कहा गया है तो 'नाह न भूलीयई' की और जंबू द्वारा कहा गया है तो 'नारि न भूलीयई' की आवृत्ति हुई है।

(१७) प्रभव जंबूस्वामी वेलि[2]

प्रस्तुत वेलि प्रभव और जंबूस्वामी से संबंध रखती है। प्रभव जंबूस्वामी के शिष्य पट्टधर आचार्य थे। पहले ये चोर थे। बाद मे जंबूस्वामी से प्रतिबोध पाकर दीक्षित हुए थे।

कवि-परिचय :

वेलि के अन्त मे कवि ने अपना नामोल्लेख नही किया है। न पुष्पिका मे ही उसका संकेत मिलता है। प्रति का लिपिकाल सं० १५४८ होने से यह कहा जा सकता है कि इसका रचयिता सोलहवीं शती के पूर्वार्द्ध का कोई जैन कवि रहा हो।

१—ललिताग कुमार की कथा—चरम केवली जम्बूस्वामी चरित्र पृ० ११४-१२०।

२—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका मे लिखा है—
'इति प्रभव जंबूस्वामी वेलि समाप्ता'

रचना-काल :

वेलि में कहीं भी रचना-काल का उल्लेख नहीं किया गया है। पुष्पिका[1] सूचित होता है कि संवत १५४८ में आसोज वदि ३ मंगलवार को राघव पठ इसे लिपिबद्ध किया गया। इस आधार पर निश्चित रूप से यह सं० १५४८ के को रची कृति ज्ञात होती है।

रचना-विषय :

२७ छन्दों की इस रचना में जंबूकुमार के यहाँ चोरी करने के लिए जाने प्रभव चोर और जंबूकुमार के बीच हुए वार्तालाप का वर्णन है। प्रभव चोर दो प्रकार की-(१) अवस्वापिनी (दूसरों को निद्रित करने की) और (२) तालोद्घ टिनी (ताला खोलने की)-विद्या आती थी। अवस्वापिनी विद्या के प्रभाव उसने सबको निद्रामग्न कर दिया पर जंबूकुमार पर इसका किंचित भी प्रभाव न पड़ा। यह देखकर अपनी विद्या के बदले प्रभव ने जंबूकुमार से मुक्ति की वि सीखना चाहा। पर जंबूकुमार ने कहा मैं तो प्रातःकाल होते ही नव-परिणी आठ स्त्रियाँ तथा समस्त राज्य वैभव को छोड़कर दीक्षा अङ्गीकृत कर रहा हूँ, मु तुम्हारी इस विद्या से क्या प्रयोजन? यह सुनकर प्रभव चोर ने कहा 'हे जम्बू पहले विषय-सुख का सेवन करो! संसार को व्यर्थ मत ठुकराओ'[2]। प्रत्युत्तर जंबूकुमार बोले 'सांसारिक-सुख मधुबिंदु[3] के समान है। इसकी प्राप्ति में यह जी संसार रूपी अटवी में घूमता फिरता है! मृत्यु रूपी हाथी इसका पीछा करता है इससे बचने के लिए यह जीव मनुष्य-जन्म रूपी कुए की आयुष्य रूपी वट-वृक्ष क डाल पर आश्रय लेता है। इस डाल को कृष्ण-पक्ष एवं शुक्ल पक्ष रूपी दो चूहे निरन्तर काटते रहते है। कुए में स्थित नारकीय दुखों का अजगर तथा चार कषायों-क्रोध, मान, माया, लोभ-के साप उस जीव को निगलने के लिए लालायित रहते हैं पर यह अज्ञानी जीव सांसारिक व्यथा रूपी मधु-मक्खियों से दंशित होकर

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूरभाई मणिभाई के संग्रहालय के ग्रथाङ्क १०८३ में सुरक्षित है। यह पांच पत्रों में लिखी हुई है।

१—'इति प्रभव जंबूस्वामी वेलि ॥समाप्त॥ सं० १५४८ वर्षे आसो वदि ३ भोमे अवरा राघव पठनार्थं ॥शुभं भवतु॥

२—विषय सौख्य भोग विमला, रंगइ पंच प्रकारि।
सख भोगवि, रमणी रविरानु, महि या जनम म हारि।

३—मधु बिंदु पुरुष नी कथा : चरम केवली जंबूस्वामी चरित्र-जीवनलाल छगनलाल संघवी, पृष्ठ ५८-६१

भी मधु-बिन्दु रूप क्षणिक विषय-सुख की भ्रांति मे लीन बना रहता है। मै गुरु (सुधर्मास्वामी) का आधार पाकर, दीक्षित होकर उस दुख से मुक्त होना चाहता हूँ[1]।

यह सुनकर प्रभव ने कहा 'हे जम्बू ! अपने माता-पिता और स्त्रियों को अकेले छोड़कर दीक्षित होना कैसे संभव होगा ?'

प्रत्युत्तर मे जम्बू बोले 'अपने कर्मों से ही माता-पिता आदि का परिवार बनता है। कुबेरदत्त और कुबेरदत्ता दोनों परस्पर भाई-बहन थे[2]। पर कर्मों की गति के कारण वे आपस मे पति-पत्नी बन जाते हैं। मुद्रिका को देखकर कुबेरदत्ता विरक्त हो दीक्षित होती है और कुबेरदत्त मथुरा मे जाकर कुबेरसेना (जो उसकी माँ है) के साथ भोग भोगता हुआ पुत्र-रत्न प्राप्त करता है। कठोर तपस्या के प्रभाव से कुबेरदत्ता अवधि ज्ञान प्राप्त कर इस विचित्र स्थिति को देख मथुरा आकर अपने भाई कुबेरदत्त को प्रतिबोध देती है। बालक (भाई के पुत्र) को लक्ष्य कर वह कहती है—

१—मधह विंद सम तोलाइ, दख तणइ भंडारि।
सुख सरसिव दुख मेर समाणु, मूरख हुई विचारि ॥२॥
सारथ छाडी पुरुष कहीउ वनइ मझ्झारि।
वन मयगल पीड्यु, पडिउं कूप अपारि ॥
वडलाई विलग्यु तलि देखइ, अगियर विलय नइ वारि ॥४॥
च्यारि मूयग मविहु दिसिइं, दखइ काल विकराल।
राते नयणि वीहावता, फूंकइ विसनी झाल।
बे पूषक दाते वडवइति, करडइ तुरमी डाल ॥५॥
आविउ मयगल, रास भरि धंधोलइ, संडा मूल।
मध माखी तरू उडती घटाकावइ जिम मूल।
मधपुड तइ मूरख मुख उडइ, मातइ मुख अति धूल ॥६॥
जिम ते वन संसार तिम, पुरुष सु जीव वियाणि।
मरण मयगल सुइ जइ पडिउ, मणू अझ्झाइ कूप ठाणि।
आउखा वडवाई वलग्यु नरग अगियर जाणि ॥७॥
च्यारि कषाय तूं गम, चउपर मल्ल मानंद।
पक्षा बेऊ ते मूषका छेदइं कुकंद।
माखी मिसिइ व्याधि चटकावइं, विषया सौख्य मध विंदु ॥८॥
तिम हूं नरइसि दुख भरि, विषय लवध संसारि।
तप तप-सिउ दिक्षा लेसिउं ईतरि गुरु आधारि।
खिपी करम नइ हेला तरसि मुगति रमणि वर नारि ॥९॥

२—कुबेरदत्त की कथा : चरम केवली जंबूस्वामी चरित्र : जीवनलाल छगनलाल संघवी, पृ० ६१-६६

'हे बालक ! तू मेरा भाई है, पुत्र है, देवर है, भतीजा है, काका है औ पौत्र है।'

'तेरा पिता मेरा भाई है, पिता है, पति है, पुत्र है, दादा है और ससुर है।

'तेरी माता मेरी माता है, मेरे पिता की माता है, भौजाई है, पुत्र-वधू है सास है और सौत है¹।'

संसार की यह स्थिति धिक्कारने योग्य है। हे प्रभव ! मैं निश्चित रूप से संयम धारण करूंगा।

१—आपणां करमिइं अवतरियां, माय बाप परिवार।
जेजिसिउं करसिइ, तेति-सिउ सहसिइ, कूडुप संसार ॥११॥
मथुरा नगरी वेसधरि जायुं युगल सुचंग।
तस माता मही नइहन देखी मनि अति भंग।
पेटी माहि खेवि लिखाहिया, सारां पुरि जिह्नु संग ॥१२॥
ते बेहु तिहां परणोया, विलसई मन नइ भावि।
मूंदरडी देखी मनइ पूछइ निय घर आवि।
जाणी सोदर लुयाण पडिया, सोग तणइ संसारि ॥१३॥
कुवेरदत्ता दीक्षा लेई तप तपइ अतिहि पवित्र।
कुवेरदत्त मथुराजइ, जायु अभिनवउ पुत्र।
ज्ञान प्रभाणिइ, माहासति देखइ भाइ तणउ अखत्र ॥१४॥
तस प्रतिबोधइ कारणि, आवि मथुरा माहि।
सोदर घर अइ ऊतरी, पहिरी शीलह सनाह।
इउलु बालक तु बोलावइ, गाती मन उछाहि ॥१५॥
तमो मझ सोदर माइ सुय, देवर, प्रियतम तु भाय।
भाइ वेरभ विटडओ, भत्रा जु पुण थाइ।
बेटु मझईण उपरि सुन्दर, मुकित तणु तु जाउ ॥१६॥
पिता केह सोदरइ, पीवराउ सुविसाल।
बेटा केह दिवडउ, पोअडउ पण जाल।
पइज, नात्रे तु वोलाबिउ, देखि संसारइ जाल ॥१७॥
मुझ माता, मझ पितामह, भुआइ पण होइ।
बेटा केरो पण वहू, मुकि सभाविह होइ।
मायू मनिइ, माइ मझ सुन्दर, रीति संसार हा जाइ ॥१८॥
पिता तहारू मझ पिता, पिता-महु पण सार।
सोदर ससरू तु वहू, पुत्र मनइ भरतार।
अठार नोत्रे वम्हि त्रिणि सणीजा, धिग संसार असार ॥१९॥

जंबूकुमार की यह बात सुनकर प्रभव ने कहा 'हे जम्बू, पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए एक पुत्र को उत्पन्न कर दीक्षा धारण करो।'

इस पर जंबूकुमार बोले–हे प्रभव ! पुत्र पितृ-ऋण से मुक्त करता है यह कथन भ्रांतिमूलक है। महेश्वरदत्त के पिता मरकर पाड़ा बने और माता कुत्तिया। एक दिन पिता की मृत्यु-तिथि पर महेश्वरदत्त ने उसी पाड़े (पिता का जीव) का मांस तथा कुत्तिया ने उसकी हड्डियां खाई। इस प्रकार धर्मोपदेश दे अन्त मे जंबूकुमार ने ९९ करोड़ स्वर्ण मुद्राओं और आठ नव परिणीता स्त्रियों को छोड़कर संयम ले मुक्ति रूपी रमणी का वरण किया।

कला पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। संवादात्मक शैली मे कथा आगे बढ़ी है। कथा अन्योक्ति प्रधान है। इसी अन्योक्ति को स्पष्ट करने के लिए उपमा-रूपक आदि अलंकार आये है।

छन्द :

सीहा कृत 'रहनेमि वेलि' की भांति यहाँ भी दोहा छंद को विशेष पंक्ति मे संयुक्त कर लोक-धुन का रूप दिया गया है।

(१८) लघु बाहुबली वेलि[3]

प्रस्तुत वेलि बाहुबली से संबंध रखती है। बाहुबली जैनियों के आदि तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव के द्वितीय पुत्र तथा प्रथम चक्रवर्ती भरत के छोटे भाई थे। ये बड़े सुन्दर और बली थे। इन्हें प्रथम कामदेव कहा गया है। 'लघु' शब्द कथा की संक्षिप्तता का द्योतक है।

१—महेश्वरदत्त नी कथा:चरम केवली जंबूस्वामी चरित्र, पृ० ६६–७२

२—कणय नवाण्उ' कोडि त्यजी नव परणित आठ नारि।
प्रभवासिउ' जंबूकुमार जूतु संजम भारि।
क्षिपीय करमनइ' लीला पामी, मुगत्ति रमणि वर नारि ॥२७॥

३—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही आया है। पुष्पिका में लिखा है 'इति बाहुबलि वेलि।'
(ख) प्रति–परिचय:—इसकी दो हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं। एक खंडेलवाल दिगम्बर जैन मंदिर, उदयपुर के गुटके नं० ५० मे सुरक्षित है और दूसरी पंचायती मंदिर खजूर मसजिद, दिल्ली के गुटके नं० ३९ मे। प्रस्तुत विवेचन उदयपुर वाली प्रति के आधार पर किया गया है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता दिगम्बर जैन संत-कवि शांतिदास १६वीं शती के कवियों में से थे। ये कल्याणकीर्ति के शिष्य थे।[१] इनकी निम्नलिखित रचनायें मिलती हैं[२]—

(१) विषापहार स्तोत्र भाषा (२) अनन्तनाथ पूजा

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। उदयपुर के जिस गुटके में इसकी प्रति मिली है उसका लिपि-काल सं० १६२५ है और दिल्ली में जो प्रति मिली है उसका लिपि-काल सं० १६१६ है। इस आधार पर इसका रचना-काल निश्चित रूप से सं० १६१६ के पूर्व का होना चाहिए।

रचना-विषय :

६ छंदों की यह छोटी सी रचना भरत और बाहुबली से संबंध रखती है। कथा-सार का वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है।

(१) *मंगलाचरण :*

काव्य के प्रारंभ में जिनेश्वर भगवान और गुरू की वंदना करते हुए वस्तु का निर्देश किया गया है।[३]

(२) *भरत का दिग्विजय के लिए निकलना :*

ऋषभदेव (आदिनाथ) भरत को संपूर्ण राज्य सौंपकर तथा बाहुबली को पोदनपुर का अधिकारी बना दीक्षा धारण कर लेते हैं। भरत दिग्विजय के लिये निकलते हैं। साठ हजार वर्षों के बाद जब वे वापिस लौटते हैं तब बाहुबली द्वारा अधीनता स्वीकार न करने के कारण उनका चक्र नगर के बाहर ही रह जाता है। भरत बाहुबली के पास दूत भेजते हैं, पर बाहुबली अधीन होने से इंकार कर देते हैं।[४]

१—श्री कल्याण कीरति सोम मूरति, चरण सेवक इम भणि।
शांतिदास स्वामी बाहुबलि, सरण राखु मम तम्ह तणि ॥६॥

२—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची : संपादक—कस्तूरचंद कासलीवाल : भाग २, पृ० ५२ व ३०७।

३—श्री जिनवर वाणी रे मन धरी, प्रणुमरि सहि गुर राय जी।
श्री बाहुबलि तणा गुण गाइ सु, सुर सेवित जसु पाय जी ॥

४—आदीजिन दीक्षा रे, भरत ने आप्यु रे राज जी।
बाहूबलिनि रे पोयणपुरी, अवर ना कीधा रे काज जी ॥

(३) *भरत बाहुबली युद्ध :*

इस पर दोनों भाइयों की सेनाओं के बीच रण-भेरी बज उठती है। इस सामूहिक रक्त-पात को देखकर दोनों ओर के मंत्री इस व्यापक युद्ध को रोककर दोनों भाइयों के बीच द्वन्द्व युद्ध कराने में सफल होते हैं। द्वन्द्व युद्ध में बाहुबली विजयी होते हैं।[1]

(४) *बाहुबली का दीक्षित होकर उग्र तप करना :*

बाहु-युद्ध मे बाहुबली भरत को जमीन पर न पटककर कंधे पर उठा लेते है पर भरत उन्हें मारने के लिए चक्र चलाते है। इस दृश्य को देखकर बाहुबली को संसार मे वैराग्य हो जाता है[2] और वे दीक्षा-धारण कर उग्र तप करते है[3]। उनके आस-पास वृक्ष व लतायें उग आती हैं, सर्प बिल बना लेते हैं, फिर भी वे अविचल बने रहते हैं। ग्रीष्म ऋतु की भयंकरता, दावाग्नि और तीव्र पिपासा,[4] वर्षा ऋतु की जल प्रचुरता और मेघ

काज कीधा दान दीधा भरत राजा चालीया।
षट खंड साधी लछि लाभी चाल संगि रहलिया ॥
साठि सहस वली वरष पूगा पछि निजपुर आवीया।
पोलि थु' नही चक्र चालि पछि दूत पठावीया ॥
बाहूबलि दूति रे वीनव्या, भरतनी मानु रे आण जी।
मद भरिउ मनमथ मर कलु, काव हूं भरतनी आण जी ॥
अयाण जाण तु आणु मानु आदी जिनवर तेह तणी।
तातिं आप्पु देश माहरू भरत सेव्यु'स्या भणी ॥

१—भरतेसर भंग पामीया, जयवंत हवा रे काम जी।

२—काम राजा कोप चडीउ भरतराय हीउ लीउ।
तुरत आणी हृदय जाणी पछि कोमल बोलीउ ॥
मुझ भाई बेरू मान मोडिउ अघट काज मिं का कीयु।
वैराग माही मछर छाडी राज मुकी तप लीयु ॥

३—*मान सहित वर तप करि, लीधु प्रतिमा रे योग जी।*
आकासि ए निवासडु परहरी, अंगना योग जी।

४—परहरीय भोग सुयोग धारी निदाधि दिनकर दमि।
लूं तणीय ज्वाला अंगि लागि अनि आताप वली खमि ॥
दिसि विदिसि दावानल जलिनि धूम व्योमि विस्तरि।
तृषा व्यापि तनु तापि एणी परि वर तप करि ॥

गर्जना,[1] शीत ऋतु की प्राणलेवा ठंडक[2] उनके ध्यान में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालती।

(५) भरत का वंदना करने के लिये आना :

अन्त में भरत तपस्वी मुनि बाहुबली की वंदना करने के लिये आते हैं और समस्त राग-भावों से मुक्त होकर बाहुबली सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं[3]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। वह ओज गुण सम्पन्न एवं प्रवाहमयी है। यथा :

(१) काज कीधा दान दीधा भरत राजा चालीया।

(२) नीर खल खल वहि वन सल विष धरा अंगि रहि।

(३) टबंक टबका अंग टब्रूकि भन्नूकि गिरि वन थरू।

आन्तरिक तुक के प्रयोग से भाषा में विशेष माधुर्य आ गया है—

(१) माननी मोहन अति सोहन सदानन्द सुख मिलु।

(२) तृषा व्यापि तनु तापि एणी विरिवर तप करि।

(३) पाछली रयणी वार भीजि इंदु विदु अमी भरि।

१—सर सालि रे वन दोहेलुं भिड, करी वरसि रे मेहुली।
वर तरु कंदरि मंडीया वेलें, वीधु रे देह जी॥
देहि वीधु मेह जम द्रम वीजली ते वन दहि।
नीर खल खल वहि वन खल विष धरा अंगि रहि॥

२—हेमंति हेमकण पडि, कोमल कापि रे शरीर जी।
रोमांचित्र कर तनू, हवा सीतल लागि शरीर जी॥
समीर लागि दाढि वाजिदंत दठा खड हुडि।
ता वडित खंकि दहनि दमि कर्म साथि इम भपि॥
दंस मसक डीलि नडि, पंखी करि प्रहार जी।
आसंगि मातंग मृगला, ऊरग तणा अंगिभार जी॥
अंग भार कुमार वेरि कष्ट बहु विध ऊपजि।
उपसर्ग वारि अथ विडारि राग रोस न नीपजि॥

३—भरतेस्वर आवीया नाम्युं, निज वर शीस जी।
स्तवन करी इम जंपए, हूं किंकर तु ईस जी॥
ईश तुमनि छांडि रांज मभनि आपीउ।
इम कहीइ मंदिर गया सुन्दर ज्ञान भुवने व्यापीउ।

छंद :

अधिकांश रूप मे दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है पर संगीत की दृष्टि से उसमे जगह जगह मात्राएँ घटा-बढ़ा दी गई हैं। पंचायती मंदिर दिल्ली की प्रति मे त्रोटक छंद लिखा हुआ मिलता है।

(१६) स्थूलिभद्र मोहन वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि भगवान महावीर की मृत्यु के २१५ वर्ष बाद ८ वें पाट पर विराजने वाले स्थूलिभद्र से संबंध रखती है। स्थूलिभद्र कल्पक की वंश परम्परा मे होने वाले नवमे नंद राजा के मंत्री शकडाल के पुत्र थे। ये कोश्या वेश्या के प्रीति पात्र थे। बारह वर्ष तक उसके साथ सुख-भोग किया था। पिता की मृत्यु से विरक्त होकर इन्होने, संभूति विजय से दीक्षा ग्रहण कर 'दुष्कर दुष्करकारी' तप किया और कोश्या को आत्म-कल्याण की ओर लगाया।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही जयवंत सूरी है जिनका परिचय 'नेमि राजुल बार मास वेल प्रबंध' के साथ दिया गया है। इस वेलि के अंत मे भी कवि ने अपना नामोल्लेख किया है[2]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त मे रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है[3]। उसके अनुसार सं० १६४२ मे मार्ग शीर्ष शुक्ला दशमी गुरुवार को यह रची गई।

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही आया है। पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री थूलिभद *मोहरण वेलि समाप्तः।'*

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर के ग्रंथाक ३७१६ मे सुरक्षित है। प्रति का आकार १०$\frac{1}{2}$"×४$\frac{1}{2}$" है। यह ६ पत्रो में लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ मे १२ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पक्ति मे ४४ अक्षर हैं। प्रति की अवस्था अच्छी है। पुष्पिका से पता चलता है कि इसकी प्रतिलिपि श्री धर्मरत्न सूरि द्वारा संवत १६४८ आषाढ वदी ४ गुरुवार को देकपुर मे की गई। यथा—'इति श्री थूलिभद मोहरण वेलि समाप्त : सं० १६४४ वर्षे आषाढ़ वदी ४ गुरू लपितं। आगमगछे पूज्य श्री धर्मरत्न सूरि प्रभोाग स्व वाचानाय देकपुर मध्ये लखितं'

२—श्री तवगछ सोहाकरा, श्री विनयमंडन गुरू राय।
जयवंत सूरि सीस तास कइ, गायु थूलिभद पाय ॥२१३॥
थंभरग पास प्रसाद तिइं, थंभन पुरिमु त्रिशाल।
श्री थूलिभद मुनि गाईउ, गुरग सौभाग रसाल ॥२१४॥

३—मागशिर सुदि दशमी गुरो, संवत सोल त्रिताल।
जयवंत थूलिभद गावतइं, दिन दिन मगल माल ॥२१५॥

गर्जना,[1] शीत ऋतु की प्राणलेवा ठंडक[2] उनके ध्यान में किसी प्रकार की बाधा नहीं डालती।

(५) *भरत का वंदना करने के लिये आना :*

अन्त में भरत तपस्वी मुनि बाहुबली को वंदना करने के लिये आते हैं और समस्त राग-भावों से मुक्त होकर बाहुबली सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं[3]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। वह ओज गुण सम्पन्न एवं प्रवाहमयी है। यथा :

(१) काज कीधा दान दीधा भरत राजा चालीया।

(२) नीर खल खल वहि वन खल विप धरा अंगि रहि।

(३) टवंक टवका अंग टबूकि भबूकि गिरि वन चरू।

आन्तरिक तुक के प्रयोग से भाषा में विशेष माधुर्य आ गया है—

(१) मानतो मोहन अति सोहन सदानन्द सुख मिलु।

(२) तृपा व्यापि तनु तापि एणी विरिवर तप करि।

(३) पाछली रयणी वार भीजि इंदु विंदु अमी भरि।

१—सर सालि रे वन दोहेलुं भिड, करी वरसि रे मेहुली।
वर तरु कंदरि मंडीया वेलें, वीधु रे देह जी॥
देहि वीधु मेह जम इम वीजली ते वन दहि।
नीर खल खल वहि वन खल विप धरा अंगि रहि॥

२—हेमंति हेमकण पडि, कोमल कापि रे शरीर जी।
रोमांचित कर तनू, हवा सीतल लागि शरीर जी॥
समीर लागि डाढि वाजिदंत दटा खड हडि।
ता वहित संकि दहनि इंमि वर्म साथि इन भपि॥
दंम ममक झोलि नडि, पंखी करि प्रहार जी।
आभंपि मातंग मृगना, ऊरग तस्या अंगिमार जी॥
अंग भार कुमार वेरि कप्ट बहु किय ऊरजि।
उपसर्ग वारि अर विसारि राग रोम न नीरजि॥

३—भरतेस्वर आवीया नाम्युं, निज वर सीस जी।
स्तवन करी इम वंदए, हुं किंकर तु ईस जी॥
ईस तुमनि हारि राज मन्दनि आवीउ।
इम कहीह भरिर गया सुन्दर ज्ञान तुरने व्यापीउ।

छंद :

अधिकांश रूप मे दोहा छंद प्रयुक्त हुआ है पर संगीत की दृष्टि से उसमे जगह जगह मात्राएं घटा-बढ़ा दी गई है। पंचायती मदिर दिल्ली की प्रति में त्रोटक छंद लिखा हुआ मिलता है।

(१६) स्थूलिभद्र मोहन वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि भगवान महावीर की मृत्यु के २१५ वर्ष बाद ८ वे पाट पर विराजने वाले स्थूलिभद्र से संबंध रखती है। स्थूलिभद्र कल्पक की वंश परम्परा मे होने वाले नवमे नंद राजा के मत्री शकडाल के पुत्र थे। ये कोश्या वेश्या के प्रीति पात्र थे। बारह वर्ष तक उसके साथ सुख-भोग किया था। पिता की मृत्यु से विरक्त होकर इन्होने, संभूति विजय से दीक्षा ग्रहण कर 'दुष्कर दुष्करकारी' तप किया और कोश्या को आत्म-कल्याण की ओर लगाया।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही जयवंत सूरी हैं जिनका परिचय 'नेमि राजुल बार मास वेल प्रबंध' के साथ दिया गया है। इस वेलि के अंत मे भी कवि ने अपना नामोल्लेख किया है[2]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है[3]। उसके अनुसार सं० १६४२ मे मार्ग शीर्ष शुक्ला दशमी गुरुवार को यह रची गई।

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नही आया है। पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री थूलिभद मोहण वेलि समाप्तः।'

(ख) *प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर के ग्रंथांक* ३७१६ मे सुरक्षित है। प्रति का आकार १०½"×४½" है। यह ६ पत्रो मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में १२ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पक्ति मे ४४ अक्षर हैं। प्रति की अवस्था अच्छी है। पुष्पिका से पता चलता है कि इसकी प्रतिलिपि श्री धर्म-रत्न सूरि द्वारा संवत १६४८ आषाढ बदी ४ गुरुवार को देकपुर में की गई। यथा—'इति श्री थूलिभद मोहण वेलि समाप्त : सं० १६४४ वर्षे आषाढ़ बदी ४ गुरू लपितं। आगमगछे पूज्य श्री धर्मरत्न सूरि प्रभोत्र स्व वाचानाय देकपुर मध्ये लखितं'

२—श्री तवगछ सोहाकरा, श्री बिनयमंडन गुरु राय।
जयवंत सूरि सीस तास कइ, गायु थूलिभद पाय ॥२१३॥
थंभण पास प्रसाद तिइं, थंभन पुरिसु विशाल।
श्री थूलिभद मुनि गाईउ, गुण सौभाग रसाल ॥२१४॥

३—मागशिर सुदि दशमी गुरौ, संवत सोल बिताल।
जयवंत थूलिभद गावतइं, दिन दिन मगल माल ॥२१५॥

रचना-विषय :

यह २१५ छंदों[1] की रचना स्थूलिभद्र और कोश्या के प्रेम-पूर्ण जीवन से संबंधित है। इसकी कथा-वस्तु वही है जो वीर विजय कृत 'स्थूलिभद्रनी शीयल वेल' के कथा-सार की है।

कवि ने कथा-विकास में स्वतन्त्रता से अधिक काम लिया है। यही कारण है कि प्रेम-प्रसंग को अधिक विस्तार देने के लिए लोकोत्तर कल्पनाएँ करनी पड़ीं। कथा-संयोजन में निम्नलिखित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है।

(१) नायक पर रूप-गुण श्रवण या स्वप्न-दर्शन के आधार पर नायिका का मुग्ध होना।

(२) नायिका का अप्सरा होना।

(३) मुग्ध होने पर नायिका का विलाप करना और सखियों के साथ बगीचे में खेलने जाना।

(४) चम्पक वृक्ष या अशोक वृक्ष के नीचे खेलना।

(५) वसन्त आने पर नायक का भी बाग में आकर वंशी बजाना।

(६) वंशी की आवाज सुनकर नायिका का मूर्च्छित होना और सखियों का मूर्च्छा हटाने के लिये प्रयत्न करना।

(७) सखियों द्वारा नायक के पास प्रेम-संदेश ले जाना।

(८) प्रेम संदेश सुनकर नायक का प्रेम-विह्वल होना।

(९) नायक-नायिका का मिलना और बारह वर्ष तक विलास करना।

(१०) पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर अचानक नायक का विरक्त होना और संयम-मार्ग पर बढ़ना।

(११) संयमी नायक का मिलना और धर्मोपदेश सुनकर नायिका का विरक्त होना।

(१२) लौकिक प्रेम का आध्यात्मिक प्रेम में पर्यवसान होना।

काव्य का प्रारम्भ सरस्वती की वन्दना से हुआ है[2]। तत्पश्चात् वस्तु-निर्देश के रूप में कथा के नायक स्थूलिभद्र के चरित्र की एक प्रमुख विशेषता के रूप में नाद

१—प्रति में प्रतिलिपिकार की भूल से छंद सं० ३१५ लिख दी गई है।

२—पुस्तावीणा करि ग्रही, नाद महोदधि लीन।
माभारती यदू भारती, मनोहर सिम्रासीण ॥१॥

महिमा का वर्णन किया गया है[1]। उदयन और वासवदत्ता के आदर्श पर ही स्थूलिभद्र और कोश्या का प्रेम विकसित होता है।

चरित्र-चित्रण :

स्थूलिभद्र और कोश्या काव्य के प्रमुख-पात्र हैं। स्थूलिभद्र रूप में कामदेव को लज्जित करने वाला है। उसका मुख पूर्ण-शारद-शशि की तरह विकासमान है और दांत हैं 'कुन्द कलिका हीरक रदन।' वह 'सौभाग्य कला गुण सदन' है इसीलिए–
तिहि वनिता वृन्दउ यावइ, प्यासी अनिमिख नयनि भालइ।

स्थूलिभद्र के प्रति स्त्रियों के प्रेम–निर्वाह में रूप गुण श्रवण[2] और स्वप्न-दर्शन[3] पद्धतियों को अपनाया गया है। कोश्या को अप्सरा के रूप में कल्पना की गई है और *स्थूलिभद्र के गुणों की कीर्तिपताका सुरलोक तक फैलाई गई है।* कोश्या सखियों के साथ हृदय में मिलन की उत्कट अभिलाषा लिये उपवन में खेलने के व्याज से आती है और यहां भी जब पक्षियों के कंठ से स्थूलिभद्र की गुणावली सुनती है तो वह मदनोन्मत्त हो उठती है। प्रेम की विभिन्न मानसिक स्थितियां उसके हृदय को कचोटती हैं—

१—योगी भोगी प्रिय सदा, नाद ब्रह्म उदार।
सदानंद मय सोजयु, सब रस पारावार ॥२॥
अनुभ नादानुभव सय, त्रिभुवनि मउरन चंग।
सुर मुव सागर मग्नहृद, मुक्तनाद तरंगि ॥३॥
जिन देशन धुनि निसुणतइं, पायुरोरि प्रबोध।
वास वीणा तान वसि, विष्णु भयु मनोध ॥४॥
पंग पिछोरा जीउ मनि, स्त्री बालक मृग नाग।
देखइं मोहे नाद के, अतिकु अधिक सोहाग ॥६॥
दुख वाहइ विसारणा, दुख का भी मारोत।
सोखी पोखी नेह परि, नाद कुं सकल सरूप ॥७॥
वासवदत्ता मन हरयू, उदयन वीणा नादि।
थूलिभद्र स्युं मोही रहि, कोशा नाद सवादि ॥८॥

२—कुसुम कली विरसनो, सखि मुखि विरचइ हास।
थूलिभद्र मुख देख करि, पावति बहुत उल्लास ॥१४॥
मन पंकज होत विकासा, देखि देखि थूलिभद्र भासा।
मोही छोरि नवइ नहु पासा, केई जानति युग सम मासा।
विरहाकुल छोरि नीसासा, तजी कोशा केम विलासा।
गावइ थूलिभद्र के गुण रासा ॥१५॥

३—सुन्दर मुरति सुपन महिं, देखत वनिता केइ।
जपती थूलिभद्र थूलिभद्र, विरहाकुल विनोद ॥१६॥

'एक मन लागु पेम रस, दूजा मान संताप।
बात न कुछ कहि निइंजसी, भीतरी भयु प्रलाप॥'

उसे लगता है प्रेम का अनन्त समुद्र उसके आगे लहरा रहा है जिसे उ
भुजाबल से पार करना है—

'भुज बलि उदधि उलंघना, उठ्याणा गिरि भार।'

यहाँ तक बिना प्रत्यक्ष-दर्शन के स्थूलिभद्र के प्रति कोश्या का जो प्रेम है
वह रूपासक्ति मात्र है। वसन्त के आने पर कोश्या फिर सभी सखियों के साथ
खेलने के लिये मधुवन में जाती है और यहीं देखती है स्थूलिभद्र की दिव्य रूपाभा—

'रूप सुन्दर कमल नयन सुविशाल,
पूरण शारद चंद समान, केतक गौर रसाल।'

इस रूपाभा को देखते ही उसकी विभिन्न मनः स्थितियाँ बनती हैं[1]।

स्थूलिभद्र बीन बजाकर पंचम तान छेड़ता है तो कोश्या मूर्च्छित हो धरणी
पर गिर पड़ती है। मूर्च्छा दूर होते ही वह अपनी प्रेम की चोट को स्पष्ट-अस्पष्ट
स्वरों में व्यक्त करती है[2]। सखि जब इस व्यथा का कारण पूछती है तो उसका
सीधा उत्तर है—

मन का दुख सुख कहन कुं-इकहि न जु आधार।
हृदय तलाव रु दुख भर्‌यु, तूं कुहइ बिन धार॥५३॥
इकतिइं सब जग वेदना, इक तिहूं बिछुरन पीरि।
तोइ समान न होत सखी, गोपद सागर नीर॥६४॥

१—मानइ मङ्घिउ तपति पक्, निमृत करूं परिरंभ।
अंत न करतइं कलपना, रोरि लह्यु निधि कुंभ॥४४॥
दुख सुख दो सम वधतहइं, देखत पीउ मुख योति।
जीऊ मिलने कुं डगमगइ, दूजां आनन्द होत॥४५॥
थगित भइ मुख देखतइं, साथति हइ कछु योग।
चित्रित पुतरी हो रही, अनमिख करती विलोक॥४६॥
छिनु छोरत भावइ नहीं, सुन्दर बदन सरोज।
ध्याम न छोपइ दरस की, डूबि रही नेह होजि॥५०॥
२—कुछ बोलिउ भावइ नहीं, छिनु महि पावती रोस।
चितकुं लागी चटपटी, कहिइंन लहति संतोस॥५६॥
तनकुं लागी मासुरि, सगवग बोलति मून।
व्याकुल छाती हो रही, छोरति नीसास अनून॥५७॥

यहाँ तक कोश्या का जो प्रेम-पक्ष है वह एकांगी है। स्थूलिभद्र के कोश्या के प्रति क्या विचार है इसकी स्फुरणा अब तक नहीं हुई। लेकिन मधुवन की क्रीड़ा के बाद कवि ने स्थूलिभद्र के प्रेमिल व्यक्तित्व का चित्रण कर भारतीय संस्कृति की उभयपक्षीय प्रेमधारा का उज्ज्वल पक्ष प्रदर्शित किया है।

स्थूलिभद्र कोश्या के रूप पर मोहित है। उसने मधुवन मे क्रीड़ा करती हुई उस सुन्दरी को देखा है जिसके लिये कवि ने कहा है—

'वेणी फणि अनुकारा, पूरण चंदमुखी मृग नयना।
पीन्नोन्मत कुच भारा, गोर भुजा ग्रामोदरि सुभगा।'

फिर क्यों न 'स्थूलिभद्र के मनि पेम समायु'। वह तो स्वयं स्वीकार करता है-
'मेरइ मनि उसकु ग्राइ वस्यु, पेम बचन अवाज'

दोनों-नायक-नायिका-एक दूसरे के विरह मे आकुल-व्याकुल है। उभय पक्षीय प्रेम-स्फुरणा का दायित्व सखियों द्वारा उठाया गया है। सखियाँ ही स्थूलिभद्र को कोश्या की प्रेम भावना निवेदन करती है और सखियाँ ही कोश्या को स्थूलिभद्र के प्रेम से परिचित कराती हैं—

'जिनुके कारनिउं तपइ, उसकि मनि तोही ध्यान'
क्योंकि उनका विश्वास है—'इक पल मरति न कोई।'

जिस लौकिक धरातल पर कवि ने प्रेम का विकास कराया है उसकी पूर्णाहुति दोनों-नायक-नायिका-के साक्षात् मिलन मे हुई है[1]। मिलन के बाद प्रेम की अनन्यता कोश्या के इन स्वरों मे फूट पड़ती है—

'तोरे गुनि हूं लीनी विकाती, जनम मरण तूं हो संघाती'

और उसका निवेदनः—

कोशि कहइ पीउ पेमउ, जु मोहि धरि करू वास।
जलनिधि सथियुं हरि रहे, हर हिमगिरि उल्लासि ॥१७॥

स्वीकार कर लिया जाता है—

'थूलिभदि कोशा बचन यु मान्यूं, बार बरस उस मंदिरि ठान्यू ॥
सुरपति की परि करति विलासा, दिनि दिनि पेम अखण्ड उल्लासा ॥१७२॥

१—तब हृदयज से थी सब आली। नव नव मिस करि खेलनि चालि ॥
वही दो अनिमिख नयनि निभालइं। चंद चकोरा प्रीति संभालइ ॥१५६॥
लज्जा सकुचित पुलकिता, नाना करती भीन।
प्रिय परिरंभी शशिमुखि, वेप धुमतो प्रसीन ॥१६२॥
तब मदनानल धग धग्यू, प्रगम्यु तनि अति ताप।
अधर सुधारस पीवतिइं, अविकु होवति व्याप ॥१६३॥

यहाँ तक प्रेम का जो स्वरूप प्रकट हुआ है वह इहलौकिक है। प्रेम भा
का उभार नायिका की ओर से कराकर कवि ने भारतीय संस्कृति की रक्षा की
इसके पूर्व भारतीय प्रेम-पद्धति में सूफीधर्म का प्रभाव-नायक की ओर से
प्रयत्न-घुलमिल गया था। जायसी आदि कवियों ने हिन्दू कथानकों को यही
दिया था। वहाँ नायिका के अद्भुत सौंदर्य-श्री पर नायक की तड़पन और
देखने को मिलती है, यहाँ नायक के रूप-वैभव पर नायिका की आसक्ति
तद्जनित पीड़ा। अलौकिक संकेत और आध्यात्मिक तत्व दोनों के लिये रह रहे

इहलौकिक प्रेम का पारलौकिक प्रेम में पर्यवसान कराना जैन कवियों
मुख्य उद्देश्य रहा है। प्रस्तुत वेलि में भी जहाँ सांसारिक प्रेम अपनी चरम सी
पर पहुँच कर अन्त पाता है वहीं से आध्यात्मिक प्रेम का प्रारम्भ होता है। क
न होगा कि कवि की वृत्ति सांसारिक प्रेम के चित्रण में जितनी अधिक रमी है उ
आध्यात्मिक प्रेम के निरूपण में नहीं। प्रारम्भ की कथा में जहाँ गज-गति
मन्थरता है वहाँ अन्त की कथा में स्पूतनिक की तेजी। स्थूलिभद्र यकायक प्रेम
आवरण को उतारकर निर्वेद की लहरियों में डूबने-तैरने लगता है[१]। पिता
मृत्यु का इङ्गित मात्र निर्वेद-भावना के विकास के लिये पर्याप्त नहीं है। स्थूलि
के संयम-धारण की बात सुनते ही कोश्या की भावधारा परिवर्तित हो जाती
उसके सारे शरीर में जैसे विष व्याप्त हो जाता है- 'विष भरि भई सब गा
और वह—

> तोरति मोतिन लर्यवर, बोरति कवरी तार।
> तनि दवलग्गु विछुरतिइ, जग महि भयु अंधियार ॥१७८॥

सावन, भाद्र, आश्विन और कार्तिक मास की विरह-व्यथा का चित्रण
कवि ने कोश्या के लौकिक प्रेम को आध्यात्मिक रूप देने का प्रयत्न किया है।
कोश्या को लगता है—

> 'इसा प्यारा जीउ नहीं जिसा प्यारा तूं ही।
> तेरे ताई जीउ गमूं, मत विछुरन दें मूं ही ॥१८५॥
> तेरेइ तनि विधिना सकल गुन, रासि कीया मन हार।
> हम बावर जन बसि करन, मग बंधनि पुं जार ॥१८६॥

१—टाड कु निधन सुनत दुख पायु, मन माहिइ थायु विराग उपायु ॥
धिग संसार असार विचारिइ, हानि सुं निधन न रहु माइ वारिइ ॥१७०॥
सब कुं प्यारा धन अवतारा, पडर का कोइ न नहर विचारा।
कबहीं नहिं जंजा जीव मुनि धारइ, यूं यूं पावइ त्यूं त्यूं अधाइ ॥१७१॥
परमारथइ कारजि माया, चिदानन्द मे थी एक चित लाया।
यइ सुख साधक संयम अंगु, हुइ थी मनुकि विनय सिरि अंगु ॥१७२॥

स्थूलिभद्र के बिना कोश्या को नीद नही आती, बैठना अच्छा नही लगता, बार बार उसको स्मृतियां याद आती है। नेत्रों को उसका देखना अच्छा लगता है, कानों को उसकी बात प्रिय लगती है, मन को उसका चातुर्य रुचता है और शरीर को उसका शरीर—

'नयन कु भावति तोहि दरस, श्रवन कु तेरी बात।
मन कु तेरो चतुरिमा, तनकु भावत गात' ॥२०१॥

कितनी तादात्म्य भावना है? जीव और ब्रह्म का इससे अधिक रिश्ता क्या हो सकता है? सारा संसार ही उसे प्रियतममय लगता है—

'सब जग तुझमय हो रह्या, तोही सु बांध्या प्रान' ॥१९०॥

यही वह अवस्था है जहाँ लौकिक प्रेम विश्व प्रेम या ब्रह्म-रति मे परिणित हो जाता है।

शृङ्गार रस के संयोग-वियोग दोनों पक्ष काव्य मे उद्घाटित हुए है। अन्त मे शान्त रस की स्निग्ध धारा अपनी विराट् गोद मे शृङ्गार को आत्मरति और ब्रह्म-रति से प्रच्छन्न कर देती है।

प्रकृति-चित्रण :

काव्य मे जिस प्रेम का चित्रण किया है उसमे प्रकृति उद्दीपन के रूप मे आई है। कवि प्रकृति की गोद मे ही प्रेम-क्रीड़ा का कौतुक देखता है। नायक-नायिका के सौन्दर्य-वर्णन मे प्रकृति के विविध उपादान ही अलङ्कार बनकर आये हैं। प्रेम के संयोग-पक्ष मे वसन्त-वर्णन[1] और वियोग-पक्ष मे सावन[2], भाद्रपद[3],

---

१—माधव ऋतु तब आयु लाल। मलय समीरण वायु लाल॥
मलय मंथर कुसुमित किंशुक माला।
नीके परिमल केतक चंपक, मउरे सकल रसाला ॥३९॥
मधुवन कुं खेलन चले, थूलिभद्र गुन गेह।
लालभेय सोभागनिधि, मनमथ आयु देहि ॥४०॥

२—सावन मास जब आयु, विरमइ बरषा कु वजायु।
मयुरस सिर छाउआयु, वग बनिता आनंद सु पायु ॥१८३॥
नीड़ पंछज अनुसरइं, अंधियार सिनिघेन घोर गगरजति।
दामिनि झबरकइं, अधीर होवति विरहनी जन॥
तरल तायर बरिरवतिइं, करति कु कु कु कोकिला कुन।
मदन मावति हरिरवतइं, समद मिट करषिक जय कुं॥
बहुत डरावति योमा, धरणि धरनी हरित वेर्मनि।
नील निचोल विराजीमा, कदम्ब कुसुम उल्लास धावति ॥१८४॥

३—दुभर भादु राती, इत उत मेघ घटा हइ घाती।
जल थल एक कराती, तरल तरंगिणि पूर बहाती॥

आश्विन[1] तथा कार्तिक[2] मास के विविध दृश्य उपस्थित किये गये हैं।

कला-पक्ष :

काव्य का कलापक्ष समृद्ध है। भाषा अलंकृत है। जगह जगह साद
अलंकारों की सृष्टि की गई है। 'चंद कंत मनि चंद मयूखि' 'पूर्ण शारद
वदन' आदि रूपक लोक प्रचलित रूढ़-रूपक हैं। प्रेम में ठगी कोस्या
'चित्रित पुत्तरी हो रही' उपमान का प्रयोग साभिप्राय है। प्रेमोदय के
उदयु दिनराउ' में मानव और प्रकृति का तादात्म्य भाव है। कोश्या के
देखकर लगता है कि वह 'मदन तनया' है। उसके रूप के आगे नर-नार्
सौन्दर्य तृणवत है—

'नरनारि तृण मनि मानइ, निज रूप कला परिमाणइ' ।।१६।।

दो स्थानों पर विरोधाभास भी आया है। कोश्या स्थूलिभद्र के ने
हौज में डूबी हुई है फिर भी उसकी दर्शन-प्यास शान्त नहीं होती—

'प्यास न छीपइ दरस की, डूबि रही नेह-हौजि' ।।५०।।

विरह में चन्द्रमा को देखकर वह सोचती है कि उसने (चन्द्रमा) संसार
उजाला फैला दिया है पर उसके हृदय में अब तक अंधियारा है—

'चंद ऊयारा जगि किया, मेरइ मनिहुर अंधियार' ।।१३३।।

खद्योत निसि विलसंति, विरह व्याकुल विरहिणी का।
घन गर्जि जीउ निकसंति ।।
कीगार करति शिखंडि मंडल, मंडति तंडव नाच।
जय घोष घोषति मदन कु जगि, सारंग पीउ पीउ वाच ।।१८८।।

१—भरवन निशि अजूआरी, रोवति कामनी कंत चितारी।
विरह विसम त्रिनीधारी, डारति चोरी चीर पु कारी।
भोग भूषण सब तिजे, असु जल अस्नान कीनु।
विरह पावकि तनुपजी, तरिका मंडल विमल प्रगट्यु ।।
मेघमाला जर्जरी, खंजरीट मेजति हंस उन्मद।
गयु केकी मदगरी, नयु आशु प्रष्टु अम्बर ।।
कलुन्न काहा पीउ मनि धरयुं, बहुत प्यार दिखाई पहिलिइं।
अब ही मेद जीउ कस्यु, विसूरि विसूरि तन छीन पायु ।।

२—काती दिनि तनि पीरी, छोरी प्रीतमइं अधपीरी।
परइं न संदेसा वीरी, अकलावइ दुखि होवति पीरी ।।
पर्यंत्यु शालि मंजरी, बिनु परति उर्ध्व मुंझति रोवति।
समति सुन मन बावरी ।।

प्रेम के विषय में कवि ने जगह जगह सुन्दर भावाभिव्यक्ति की है। प्रेम कभी छिपाये छिपता नहीं वह तो कस्तूरी की गंध की तरह सर्वव्यापी है—

'बहुत छपावत पेम हुर, मो तइ छप्युउ न जाइ।
अंबरतिइ मृगु नाभिकु, परिमल वयु उलपाइ' ॥६१॥

प्रेम-व्यापार मे मान, अनुनय विनय, विरह और संदेश की ही प्रधानता है—

'बिनु बिनु रोसि अबोलणा, अनुनय दूत प्रचार।
वलि बलि पूछति संदेसरा, पेम का यही व्यापार' ॥८८॥

संयोग और वियोग की अवस्थाओं को स्पष्ट करने के लिये कवि ने प्रचलित उपमानों का सहारा लिया है। संयोग के लिये—'सागर कुं हरिसुत करति, कमला मेला संग' कहा है तो वियोग के लिये—'करति युंदाई कर्त्तरी, हृदय युं पावति साल'। स्थूलिभद्र को जगह जगह चंद्रमा कहा है। संयोगिनियो के लिये वह सुधा बरसाता है तो वियोगिनियों के लिए आग—

निशिचंद शालिइं थूलिभद वादु। देख्यूं संसि कु पउगादु ॥१२५॥
वरिषिति सुधा संयोगीआं, नीको शशिहर योति।
बिछुरे कुं पावक परति, धरी आ युग यु होति ॥१२६॥

कोश्या को जब यह समाचार मिलता है कि स्थूलिभद्र संसार से विरक्त होकर संयम मार्ग के पथिक बन गये हैं तब उसकी जो अवस्था होती है उसका निम्न पंक्तियों में चित्र खड़ा हो जाता है—

'तोरति मोतिन लर्यवर, बोरति कवरी तार।
तनि दवलग्गु बिछुरतिइं, जग महि भयु अंधियार॥'

संसार उसे अच्छा नहीं लगता। उसकी आंखो के आगे स्थूलिभद्र की छवि ही नाचती फिरती है। आकाश का चांद उसे धरती पर विष वृष्टि करता हुआ नजर आता है और स्थूलिभद्र का मुख-चंद्र पीयूष-वृष्टि। एक को देखकर उसका हृदय हाथ मलता है तो दूसरे को देखकर संतुष्ट होता है—

'गगन इंदु महि अंक विष, तुझ मुख चंद पीउष।
वह देखइं जीउ कर मलति, इस देखत संतोष' ॥१६५॥

स्थूलिभद्र 'तस्कर की भांत' चले गये फिर वह किसे संदेशा भेजे—

'किसपइं पठउं संदेसरा, किसे कह्युं मन वात।
रो रो त्फूं रहूँ रहसिहुँ, यु तस्कर की भांत ॥१६७॥

काव्य मे जगह-जगह सूक्तियों का भी प्रयोग हुआ है—

(१) रि जननी जाया बिरल के, जे भानइ पर पीरि।
(२) बिछुरन कुं मेलन जिसा, दूजा अउर न पुन्न।

एकाध जगह मुहावरे भी आये हैं—

(१) निसि वितई तारा गनत, रो रो सब दिन याम।
(२) वह देखइ जीउ कर मलति, इस देखत संतोष।

छन्द :

कवि ने दोहा, सोरठा तथा चौपाई का प्रयोग किया है। मात्राएं सर्व घटती-बढ़ती रही हैं। प्रति में निम्नलिखित रागिनियों का उल्लेख है—

(१) राग सामेरी
(२) राग गुड़ी
(३) केदार गुड़ी

(२०) स्थूलिभद्रनी शीयल वेल[1]

प्रस्तुत वेल भी स्थूलिभद्र और कोश्या से संबंधित है। शीयल शब्द शील-धर्म का व्यंजक है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही वीरविजय हैं जिनका परिचय 'शुभ वेलि' के साथ दिया

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—

'ललित वचन पद पद्धति रचणुं शियलनी वेल'

(ख) प्रति-परिचयः—हमें इस वेल की दो हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं।

(१) लाखन कोटड़ी अजमेर की प्रतिः-बंध नं० ११ में सुरक्षित है। यह ५ पत्रों में लिखी हुई है। पुष्पिका से पता चलता है कि इसे सं० १८७१ में पं० ऋषभविजय ने पाल्हणपुर में लिपिबद्ध किया। यथा-'इति श्री वैराग्य दीपक मदनजीपकानेक दुःखमति नोदमन भाव जल रे निरमल इति केलिः सीयल वेलि थूलभद्रस्य परिपूर्णाः सर्वगाथा १८१। ढाल सं० २४१। सर्व ढाल १८। सं० १८७१ रा मिते ज्येष्ठ सितेतर द्वितीया दम्मता लिपि। श्री पाल्हणपुर पत्र नं ॥ लिखतं पं० ऋषभविजयेन स्वाध्यायार्थ विरचयाव धीरस्तु ॥शुभंभवतु॥'

(२) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रतिः—ग्रंथांक १२१७८ में सुरक्षित है। यह ७ पत्रों में लिखी हुई है। ७ वां पत्र खाली है। केवल ६ पंक्तियाँ उसके एक ओर लिखी हुई हैं। प्रति का आकार ११"X४½" है। प्रत्येक पृष्ठ में १८ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ३५ अक्षर हैं।

गया है। वेलि के अन्त में कवि ने अपनी गुरु परम्परा का उल्लेख किया है[1]।

रचना-काल :

इस वेल की रचना राजनगर (अहमदाबाद) मे संवत १८६२ मे पौष शुक्ला १२ गुरुवार को हुई। वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है[2]।

रचना-विषय :

१८ ढालों के २०१ पद्यों में कवि ने स्थूलिभद्र की जीवन-कथा को गाया है। प्रत्येक ढाल का कथा-सार इस प्रकार है:—

(१) *मंगलाचरण :—*

प्रारम्भ के सात दोहों मे मङ्गलाचरण, कवि-विनय तथा सज्जन-दुर्जन-प्रशंसा वर्णित है।

(२) *प्रस्तावना :—*

पहली ढाल के ६ पद्यों में कथा प्रारम्भ करते हुए प्रमुख-पात्रों का परिचय कराया गया है। पाटलीपुत्र मे नंद नाम का राजा राज्य करता है। उसके शकडाल नाम का मन्त्री है जो बड़ा ज्ञानी और दूरदर्शी है। मन्त्री की स्त्री का नाम कमला है। उसके दो पुत्र और सात पुत्रियाँ हैं। बड़े पुत्र का नाम स्थूलिभद्र है जो कोश्या नाम की वेश्या मे अनुरक्त है और छोटे पुत्र का नाम श्रीयक है जो राजा का प्रीतिपात्र है।

पुष्पिका से पता चलता है कि इसे सं० १६४० मे पंवारविजय ने वाणसमानगर मे लिपिबद्ध किया। यथा—'इति श्री थुलीभद्रनी सीयल वेल संपूर्ण ॥ सं० १६४० वर्षे मागसर सुद छठ दिने। लपिकृते पंवाविजय वाणसमानगरे।'

(ग) प्रकाशित : शा मणिलाल गोकलदास भट्टीनीपोल, अहमदाबाद

१—गायो गौतम गोत्र मुंणिद रस वैराग्य घणो आयो रे।
मुनिवर तारक मा जे चंद, थूणीयो लाछलदे जायो रे ॥१॥
चोराशीमी चोवीशीये एक, मुनि, स्थूलिभद्र सम थाशेरे।
तास पटंतर व्रतनी टेक, गुणीजन जिन मुख थी गाशेरे ॥२॥
तपगच्छमा केशरीयो सिंह, सिंह सूरि श्रुत जल दरिया रे।
सत्यविजय संवेग निरीह, कपूर सम उज्ज्वल भरिया रे ॥३॥
खीमाविजय वसी उपशात, सुघसविजय अंतेवासी रे।
पंडित श्री शुभविजय महत, जग जिनमत थीरता वासी रे॥४॥ ढाल १८॥

२—अढारसें बासठे सुद पोष बारस गुरुवारे ध्याई रे।
राजनगर मुनिवर निरदोप शीयल वेली प्रेमे गाई रे ॥ ढाल १८ ॥

(३) *कोश्या का रूप-वर्णन :*

दूसरी ढाल के १३ पद्यों में कोश्या का रूढ़िगत उपमानों के द्वारा रू
किया गया है। कोश्या अत्यन्त रूपवती है। उसकी मुख-सुषमा
शरद-पूर्णिमा का चांद पराजित है। नेत्र इतने चंचल और
मृग लज्जित होकर शशिमण्डल में जा बैठा है। वेणी की सुन्दर
देखकर फणिधर भूमि में जा छिपा है। हाथ-पैरों की कोमलता
कमल जल में समा गये हैं। इस सुन्दरी के साथ क्रीड़ा करते हुए स
को बारह वर्ष बीत गये हैं।

(४) *श्रीयक का स्थूलिभद्र को बुलाना :*

तीसरी ढाल के ६ पद्यों में राजा नंद के कोप का वर्णन है। ब्राह्मण
वररुचि की असत्य बात-कि मन्त्री शकडाल नंद राजा की हत्या क
षड्यन्त्र रच रहा है-पर विश्वास कर राजा नंद कुपित हो शकडाल की
करवा श्रीयक को मन्त्री-पद देने की घोषणा कर देता है। इन पर
बड़े भाई स्थूलिभद्र के होते हुए स्वयं मन्त्री-पद स्वीकार न करने की
(राजा से) कहकर स्थूलिभद्र को कोश्या वेश्या के घर से बुलाने के
चल पड़ते हैं।

(५) *कोश्या का स्थूलिभद्र को रोकने का प्रयत्न करना :*

चौथी ढाल के ८ पद्यों में कोश्या द्वारा अनन्य प्रेम-भाव प्रदर्शित कर
हुए स्थूलिभद्र को रोकने का प्रयत्न करना वर्णित है। अन्ततः स्थूलि
राजा नंद से मिलकर शीघ्र ही वापिस लौट आने का आश्वासन दे
पड़ते हैं।

(६) *स्थूलिभद्र का दीक्षित होना :*

पांचवी ढाल के १७ पद्यों में पद-लिप्सा की इस घटना से स्थूलिभद्र
संसार से विरक्त होकर संभूतिविजय से दीक्षित होना वर्णित है। दीक्षा
के बाद वे अपने गुरु से कोश्या वेश्या की चित्रशाला मे षटरस व्यंजन खा
चातुर्मास बिताने की आज्ञा लेते हैं।

(७) *कोश्या का विलाप करना :*

छठी ढाल के ७ पद्यों मे कोश्या के विलाप का वर्णन है। स्थूलिभद्र
आश्वासन देकर भी न आने पर कोश्या अत्यन्त दुखी हो उठती है। पा
ऋतु में जब बादल आकाश मे घुमड़ने लगते हैं तब उसका दुख और
'ता है। वह अपनी सखी से स्थूलिभद्र की निष्ठुरता का वर्णन कर
लगती है।

(८) *कोश्या का थूलिभद्र की प्रतीक्षा करना :*

सातवीं ढाल के २० पद्यों में कोश्या की आपाढ़मासी प्रतीक्षा का वर्णन है। जब कोश्या को स्थूलिभद्र के अभिग्रह का समाचार मिला तो वह उनकी प्रतीक्षा मे एक-एक दिन को बड़ी कठिनाई से बिता पाई। जेठ मास तो किसी तरह व्यतीत हो गया पर आषाढ़ के आते ही मदन उसके सम्पूर्ण शरीर मे व्याप्त हो गया।

(९) *स्थूलिभद्र का कोश्या के यहाँ चातुर्मास करना :*

आठवीं ढाल के ८ पद्यों मे स्थूलिभद्र के कोश्या की चित्रशाला मे हुए चातुर्मास का वर्णन है। कोश्या अपने घर उनका भाव-भरा स्वागत करती है। बार-बार विविध प्रकार से प्रणय निवेदन करती है पर स्थूलिभद्र अपने संयम पर दृढ़ रहते हैं। वे षटरस व्यंजन का उपयोग केवल संयम की आराधना के लिए ही करते है।

(१०) *कोश्या का स्थूलिभद्र से प्रेम-निवेदन करना :*

नवमी तथा ग्यारहवी ढाल के ९-९ पद्यों में कोश्या विविध प्रकार के उदाहरण और उपालंभ देकर स्थूलिभद्र को प्रेम-मार्ग की ओर लाने का प्रयत्न करती है। वह उनके समक्ष प्रेम-पूर्ण अतीत जीवन की विविध स्मृतियों को चित्रशाला सजाती है पर स्थूलिभद्र संयम-मार्ग से किंचित भी विचलित नही होते।

(११) *स्थूलिभद्र का कोश्या को धर्मोपदेश देना :*

दसवीं ढाल के ६ तथा बारहवी ढाल के १२ पद्यों में कोश्या को स्थूलिभद्र द्वारा दिया गया धर्मोपदेश वर्णित है। स्थूलिभद्र विविधि उदाहरणों द्वारा नारी संपर्क की निंदा करते हुए यौवन की क्षणभंगुरता का प्रतिपादन करते है। अब उन्होंने सासारिक मां-बाप छोड़कर नये मां-बाप बना लिये हैं। अतः संयम-सुख ही मीठा लगने लगता है।

(१२) *कोश्या द्वारा बारहमासा वर्णन :*

तेरहवीं ढाल के १७ पद्यों में कोश्या अपने प्रियतम के साथ अनन्य सम्बन्ध जोड़ती हुई बारहमासा का वर्णन करती है। यह बारहमासा आषाढ़ से प्रारम्भ होकर ज्येष्ठ में समाप्त होता है। इसमें कोश्या बारहमासा के संयोग-सुख को याद करके प्रियतम की विरक्त-भावना से व्यथित होती है।

(१३) *स्थूलिभद्र का कोश्या को आध्यात्मिक संदेश देना :*

चौदहवीं ढाल के १७ पद्यों में स्थूलिभद्र द्वारा कोश्या को दिया गया आध्यात्मिक संदेश वर्णित है। इसके अनुसार संसार में सार वस्तु शिव-नारी

के साथ संबंध स्थापित करना ही है। जो वाल संबंध सुखदायक होते हैं अन्ततः वे किंपाक फल की तरह दुखपूर्ण ही साबित होते हैं संयम-मार्ग ही सच्चा मार्ग है।

(१४) *कोश्या का शृङ्गार-परक वातावरण बनाना :*

पन्द्रहवीं ढाल के १६ पद्यों में कोश्या द्वारा बनाये गये शृङ्गारपरक वात का वर्णन है। वह मनमोहक शृङ्गार धारण कर स्थूलिभद्र को ओर आकर्षित करने का सतत प्रयत्न करती है। पर स्थूलिभद्र अन्त तक कामजयी बने रहते हैं।

(१५) *कोश्या का समकित प्राप्त करना :*

सोलहवीं ढाल के ९ पद्यों में स्थूलिभद्र के सांसारिक जन्म-मरण-चक्र उच्च-नीच गोत्र बंध विषयक उपदेशों को श्रवण कर कोश्या वेश समकित धारण करना वर्णित है।

(१६) *आचार्य द्वारा स्थूलिभद्र की प्रशंसा करना :*

सत्रहवीं ढाल के ७ पद्यों में कोश्या के शीलधर्म का निरुपण किया गया चातुर्मास समाप्त होने पर सभी साधु गुरु के पास आते हैं। गुरु स्थूलि का स्वागत 'दुष्कर दुष्करकारी' कहकर करते हैं। अतः द्वेष-भावन प्रेरित हो सिंह-कन्दरा पर चातुर्मास व्यतीत करने वाला साधु कोश्या वे के यहाँ चातुर्मास बिताने की गुरु से आज्ञा ग्रहण करता है। कोश्या क हाव-भावों से उसका संयम डिगा देती है। वह प्रेम-मग्न हो नेपाल राजा से रत्नकम्बल मांग कर लाता है ताकि उसकी प्रेयसी कोश्या ह हो उठे। पर कोश्या हर्षित होने के बदले उस रत्नकम्बल को पैर पोंछ कीचड़ की नाली में फेंक संयमभ्रष्ट साधु को संयम-शील बनाती है।

(१७) *उपसंहार :*

अठारहवीं ढाल के ७ पद्यों में कवि ने अपनी गुरु-परम्परा, वेल की रच तिथि तथा वेल के माहात्म्य का वर्णन किया है।

कवि ने कथा के मार्मिक स्थलों को पहचान कर उन्हें रसमय बनाने प्रयत्न किया है। मुख्य-कथा स्थूलिभद्र और कोश्या से सम्बन्धित है प्रासंगिक कथाएँ निम्नलिखित हैं—

(१) राजा नंद और मंत्री शकडाल की कथा
राजा नंद और श्रीयक की कथा
... नंद और वररुचि ब्राह्मण की कथा
सर्वविजय और अन्य साधुओं की कथा
(५) कोश्या और सिंह-कन्दरा पर चातुर्मास करने वाले मुनि की कथा।
ये कथाएँ मुख्य कथा को गतिशील बनाने में सहायक हुई हैं।

कथा का 'प्रारम्भ' स्थूलिभद्र के भोगी स्वरूप से होता है। वह कोश्या मे अनुरक्त है। बारह वर्षों मे उसके पास रहकर विविध भोग भोग रहा है। अचानक राज्य-व्यवस्था मे परिवर्तन आता है। मंत्री शकडाल मारा जाता है और मंत्री-पद श्रीयक को दिया जाता है पर वह कर्तव्य भावना से प्रेरित होकर स्थूलिभद्र को प्राथमिकता देना चाहता है जो उसका बड़ा भाई है। यहीं से कथा मे गति आती है और निहित उद्देश्य के लिये 'प्रयत्नारंभ' होता है। ऐसा लगता है कि स्थूलिभद्र मंत्री के कर्त्तव्यपाश में बंधकर राग-भाव से विरत हो जायगा पर वह न केवल राग-भाव से विरत होता है बल्कि विराग-भावना में इतना तल्लीन हो जाता है *कि संसार को छोड़ बैठता है और बन जाता है संयम-मार्ग का पथिक*[1]। यही मे 'प्राप्त्याशा' की स्थिति बनने लगती है पर जब स्थूलिभद्र साधु बनने के बाद भी *कोश्या की चित्रशाला मे ही चातुर्मास बिताने का अभिग्रह धारण करता है* तो थोडी शङ्का होने लगती है। अन्ततः उसके संयम की दृढ़ता के आगे कोश्या के प्रेम-व्यंजक सारे हाव-भाव व्यर्थ प्रमाणित होते है। यहां तक कि वह स्वयं भी रूप की राधिका न रहकर संयम-समकित की आराधिका बन जाती है। यही 'नियताप्ति' की स्थिति है। अपने गुरु संभूतिविजय द्वारा प्राप्त प्रशंसा में तथा संयम-शीला कोश्या वेश्या द्वारा सिंह को गुफा मे चातुर्मास (चौमासा) व्यतीत करने वाले साधु तथा कामपीड़ित सारथी को दिये गये उद्बोधन में 'फलागम' की मुस्कान छिपी है।

चरित्र-चित्रण :

कवि का ध्यान कथा-वर्णन की ओर कम चरित्र-चित्रण की ओर अधिक रहा है। स्थूलिभद्र कथा का नायक और कोश्या कथा की नायिका है। ये दोनो प्रमुख चरित्र हैं। गौण पात्रों मे श्रीयक, राजा नंद, मन्त्री शकडाल, ब्राह्मण वररुचि, संभूतिविजय, सखी, रथकार तथा अन्य साधु है। इनमे अधिकांश पात्र निष्क्रिय है। कथा की दरार को पाटने के लिये ही उनका उल्लेख हुआ है।

स्थूलिभद्र काव्य का नायक है। वह उच्च-कुलोत्पन्न मन्त्री शकडाल का ज्येष्ठ पुत्र है। जन्म से ही वह प्रेम का भूखा और रूप का रसिया है 'नित नवली क्रीड़ा करे, नित नवला भोग।' उसे राज्य की सुध-बुध नही, पारिवारिक चिन्ता नही। कब पिता की मृत्यु हुई? क्यों श्रीयक मन्त्री बनाया जा रहा है? उसका कोई सम्बन्ध नही। उसके लिये तो कोश्या ही सर्वस्व है 'मांस नखे जल माछली रे, तास तारीसो प्रीत।' एकान्तिक भोग-सुख का इससे सुन्दर उदाहरण और क्या

१—परिणाम करीनेरे अशोक बन मावे।
समतत्व विचारी रे लोच कर्यो भावे ॥६॥
रत्नकंबलनोरे तिहा मोघो कीधो।
वई राज्य सभा मे रे धर्म लाभ दीधो ॥७॥ढाल ४॥

हो सकता है ? पर अचानक श्रीयक का बुलावा, राजा नन्द की आज्ञा। स्थूलि
को कोश्या से बिछुड़ना पड़ा। कोश्या के विविध हाव-भाव उसे कर्त्तव्य की
पुकार के आगे नहीं रोक सके। वह राजा के पास चल पड़ा। वहाँ जाकर
सुना कि मंत्रीत्व की मुद्रा-प्राप्ति के लिये स्वयं पुत्र (श्रीयक) को पिता (शकडाल)
हत्या करनी पड़ी। रागी मन चोट खाकर उचट पड़ा। उसे संसार माया, प्र
षड्यंत्र, हत्या और रक्तपात से भरपूर दिखाई दिया। उसका मन एकान्त-चिन्त
लिये अशोक-वन की ओर दौड़ पड़ा और जब राजा के पास आया तो हा
रत्नकम्बल का ओघा (राजोहरण) लेकर, सिर का लोच कर केवल धर्मो
देने। यह आंधी की तरह यकायक उठने वाला परिवर्तन स्थूलिभद्र के मन-मस्ति
में छा गया। वह रागी से विरागी बन गया, भोगी से योगी बन गया। उस
कामना को कर्त्तव्य ने दबा लिया, प्रेय ने श्रेय का रूप धारण कर लिया।

भोग भोगने में स्थूलिभद्र जिस तन्मयता का हामी था अब संयम
आराधना में भी वही स्थितप्रज्ञता थी। संभूतिविजय से आज्ञा मांगी कि चातुर
कोश्या वेश्या की चित्रशाला में ही बिताया जाये। कठोर अभिग्रह। शृङ्गार
गोद में अरणगार को खेलना था, भोग के मंच पर योग का अभिनय करना
कोश्या के कटाक्ष-बाण खाली गये, प्रेम-निवेदन के झोंके व्यर्थ सिद्ध हुए।
संयम का पुजारी भोग की आग में तप तप कर कुन्दन बन गया। षटरस व्यं
उसमें काम-भावना नहीं भर सके—

'खट रस भोजन तुम घर वोहोरी, संयम अर्थ खाधुं जी रे।'

निराहार रहकर संयम पालना मुश्किल नहीं, नारी सम्पर्क से दूर रह
कामजयी होना कठिन नहीं, पर जो बारह वर्ष 'पंच विषय-सुख' में अबाव ली
रहा हो, 'रस-प्रेम हिंडोले' झूलता रहा हो, 'तरुणी तन-वेलड़ी' सींचता रहा
उसका संयमी बनकर, माल मिष्ठान्न उड़ाकर, अपनी प्रेयसी की प्रेमलीलाओं
भरी चित्रशाला में निवास कर, तथा प्रेयसी से सहज-सम्पर्क बनाये रखकर
संयम मार्ग से विचलित न होना सहज-सरल नहीं, दुष्कर-दुष्कर है। तभी
संभूतिविजय ने सिंह की गुफा के द्वार पर, सर्प-बिल पर तथा कूप-मेड़ पर कायोत्स
करते हुए चातुर्मास बिताने वाले मुनियों की जितनी प्रशंसा नहीं की उत
स्थूलिभद्र की की।

स्थूलिभद्र ने अपने चरित्र को ही उज्ज्वल नहीं बनाया बल्कि अपने पारस
व्यक्तित्व से कोश्या के पापमय लौह शरीर को छूकर भी पुण्यमय-स्वर्णमय बन
दिया। जो कोश्या उसकी प्राण-प्यारी थी वही बाद में अस्पर्श्य बन गई[1], जै

१—जिम गुण जाय कस्तूरी नो, जो दीजे होंग नो वास।
कपूर तणो गुण जेम गले, थरीमें जो लसण ने पास ॥२॥

यौवन उसका सर्वस्व था वही बाद में आकर नश्वर बन गया[1]। उसके सारे संबंध बदल गये, परिवार बदल गया, नगर बदल गया[2]। केवल मात्र एक व्यवसाय रहा, एक सम्बन्ध रहा—

'मैं ध्याननी ताली लगाई, निशान चढाया रे।
शीयल साथे कीधी सगाई, तजो भव-माया रे॥'

स्थूलिभद्र का चरित्र भोग और योग की सीमाओं में बंधा हुआ है। भोग में कोई जितना डूब सकता है उतना स्थूलिभद्र डूबा है और योग में कोई जितना चढ़ सकता है उतना स्थूलिभद्र चढ़ा है। उसके व्यक्तित्व में धीरललित और धीरोदात्त नायक का समन्वय है। संक्षेप में उसका चरित्र मानव से देव बनने के विकास के रहस्य को नापता है।

कोश्या काव्य की नायिका है। वह रूप में रम्भा है। प्रकृति के सारे उपादान उसके रूप के आगे फीके हैं[3]। बारह वर्षों तक एकरस होकर उसने

तिम माननी संगे मुनिवरा, स्थूलिभद्र कहे सुगु नार।
क्षणमात्र महिला शुं म्हाने, होये दुरगति दु:ख भंडार॥५ ढाल १०॥

१—योवनी मानो जे लटकोरे, ते तो च्यार दिवस नो चटको रे।
पछे वाचनो सीसो भटक्योरे, काई काम न आवे कटक्योरे॥२॥
चंचल नारीनां नयणा रे, दुरिजनना मीठा वयणारे।
घड़ी चार तणी चांदनी रे, पछी घोर अंधारी रयणीरे॥५ ढाल १२॥

२—माय बाप ने में परिहरिया रे, मात तात नवा में करीया रे।
तजी बाबर वेरी सगाई रे, मैं कीधा नवा दम भाई रे॥६॥
नव कोट वचे एक गाम रे, तिनु रहिए छे तोणे ठाम रे॥१२ ढाल १२॥

३—शरद पूनम नो चन्द्रमा मुख देखी हरावे।
अधर अरुण परवाल नी पण उपमा न आवे॥२॥
दंत जोत्या दाड़म तणी पुल वयने खरतां।
नासा उपम न संभवे शुक चंचुक धरतां॥३॥
लोचन थी मृग लाजीयो शशिमण्डल बैठो।
सुन्दर वेणी विनोदीने फणीधर भूमि पैठो॥४॥
पाणि चरण ने जोइने जल पंकज वसीयां।
कलश उरोजने देखी ने लवणोदधि धसीयां॥५॥
लंक कटी हट केसरी गिरिकंदर नामी।
मोहनी मन्त्र मने मड़ी विधाउे इहां वानी॥६॥
दन्त तणो चूड़ो कंर्यो हृदये मोतीनो हार।
कुंजरनी गति चालती जत्र रत्नज हार॥७॥
वेद भरणा हादीला नाखे शिर छार।
अबरा ने मवता वर दमने धिक्कार॥८ ढाल २॥

हो सकता है ? पर अचानक श्रीयक का बुलावा, राजा नन्द की आज्ञा। स्थूलि
को कोश्या से बिछुड़ना पड़ा। कोश्या के विविध हाव-भाव उसे कर्त्तव्य की क
पुकार के आगे नहीं रोक सके। वह राजा के पास चल पड़ा। वहाँ जाकर उ
सुना कि मंत्रीत्व की मुद्रा-प्राप्ति के लिये स्वयं पुत्र (श्रीयक) को पिता (शकडाल)
हत्या करनी पड़ी। रागी मन चोट खाकर उचट पड़ा। उसे संसार माया, प्र
षड्यंत्र, हत्या और रक्तपात से भरपूर दिखाई दिया। उसका मन एकान्त-चिन्तन
लिये अशोक-वन की ओर दौड़ पड़ा और जब राजा के पास आया तो हाथ
रत्नकम्बल का ओघा (राजोहरण) लेकर, सिर का लोच कर केवल धर्मोप
देने। यह आंधी की तरह यकायक उठने वाला परिवर्तन स्थूलिभद्र के मन-मस्ति
में छा गया। वह रागी से विरागी बन गया, भोगी से योगी बन गया। उस
कामना को कर्त्तव्य ने दबा लिया, प्रेय ने श्रेय का रूप धारण कर लिया।

भोग भोगने में स्थूलिभद्र जिस तन्मयता का हामी था अब संयम
आराधना में भी वही स्थितप्रज्ञता थी। संभूतिविजय से आज्ञा मांगी कि चातुर्
कोश्या वेश्या की चित्रशाला में ही बिताया जावे। कठोर अभिग्रह। शृङ्गार
गोद में अणगार को खेलना था, भोग के मंच पर योग को अभिनय करना था
कोश्या के कटाक्ष-बाण खाली गये, प्रेम-निवेदन के झोंके व्यर्थ सिद्ध हुए।
संयम का पुजारी भोग की आग में तप तप कर कुन्दन बन गया। षटरस व्यंज
उसमें काम-भावना नहीं भर सके—

'षट रस भोजन तुम पर वोहोरी, संयम अर्थ साधुजी रे।'

निराहार रहकर संयम पालना मुश्किल नहीं, नारी सम्पर्क से दूर रह
कामजयी होना कठिन नहीं, पर जो बारह वर्ष 'पंच विषय-सुख' में प्रताप ल
रहा हो, 'रस-प्रेम हिंडोले' झूलता रहा हो, 'तरुणी तन-वेलड़ी' सींचता रहा
उसका संयमी बनकर, माल मिष्ठान्न उड़ाकर, अपनी प्रेयसी की ...
भरी चित्रशाला में निवास कर, तथा प्रेयसी से सहज-सम्पर्क बनाये
संयम मार्ग में विचलित न होना सहज-सरल नहीं, दुष्कर ...
संभूतिविजय ने सिंह की गुफा के द्वार पर, सर्प-बिल पर तथा ...
करते हुए चातुर्मास बिताने वाले मुनियों की जितनी
स्थूलिभद्र की की।

स्थूलिभद्र ने अपने चरित्र को ही उज्ज्वल
व्यक्तित्व ने कोश्या के भ्रामक मोह ...
दिया। जो कोश्या उसकी प्राण-प्यारी थी

१—बिन हुए ...
... हुए ...

कोश्या प्रेम की पुलती है तो संयम की सती भी। प्रेम में जितनी करुण-कोमल है संयम में उतनी ही कठिन-कठोर। संयम की उपासिका के रूप मे वह दुनियां के सामने एक आदर्श ही प्रस्तुत नही करती बल्कि दूसरों का पथ-प्रदर्शन भी करती है। कामातुर साधु के प्रेम-निवेदन करने पर वह उसकी मांग को ही नही ठुकराती बल्कि उसके गिरते हुए चरित्र को आधार देकर थामे भी रखती है।

रस-व्यंजना :

काव्य में प्रमुख रस शृंगार है। उसके संयोग और वियोग दोनों रूप प्रकट हुए हैं। संयोग-वर्णन में कवि की वृत्ति नही रमी है, उसके लिये कथा मे अवकाश भी नही था। वियोग को *व्यंजना प्रकृति के माध्यम द्वारा की गई है। ज्यों-ज्यो* कथा-विकास की ओर बढ़ी है त्यो-त्यो लोक-रति आत्म-रति के रूप मे परिणत होती गई है। अन्त मे सबका मेल ब्रह्म-रति मे हो गया है मानो शृंगार की वेगवती नदियां अध्यात्म के प्रशान्त महासागर मे विलीन हो गई हों।

प्रकृति-चित्रण :

प्रकृति-चित्रण परम्परागत है। उसके निम्नलिखित तीन रूप मिलते है :-

(१) *आलंकारिक रूप :*

कोश्या के सौन्दर्य-वर्णन में इसका प्रयोग हुआ है। कोश्या इतनी रूपवती है कि उसके आगे सारे सुन्दरता के उपमान लज्जित-पराजित हैं। उसकी मुख-सुषमा के आगे पूनो का शारदशशि फीका है, अधरों की अरुणिमा के आगे प्रवाल व्यर्थ है, लोचनों की सुकुमारता और सरलता से पराजित होकर मृग शशिमण्डल मे जाकर बैठ गया, सुन्दर वेणी को देखकर फणीधर लज्जा से भूमि मे गड़ गया, उसके हाथो पांवों की कोमलता को देखकर कमल जल मे घुस गये, कटि के सौन्दर्य से श्रीहीन होकर सिंह *गुफा में चला गया, गति की मन्थरता और मादकता से पराजित* होकर हाथी सिर पर धूल डालकर अपने आपको धिक्कारने लगे। उरोज को देखकर कलश लवणोदधि मे समा गये।[1] कवि ने प्रेम-भाव की अनन्यता को व्यक्त करने के लिये भी भ्रमर के श्यामवर्णीय शरीर मे पीत वर्ण की स्थिति की बड़ी भावपूर्ण कल्पना की है।[2]

१—ढाल २ : छंद संख्या २ से ८

२—भमर कहे मोय देह दहे अंक, विरहे केतकी नारी तणे।
तस रक्षाये विरहे समसु, नही मरूइं दमणे ॥ १३ ॥
कहे कविता साभलता सत्र, तनुं पीली पुंठ कीस्युं कीधी।
प्रेस की चोट लगी मोय बहुली, तास ऊपर हलदी दीधी ॥१४ ढाल १५॥

(२) *उद्दीपन-रूप :*

कवि की दृष्टि प्रकृति के आलम्बन रूप पर नहीं पड़ी है। प्रकृति
श्रोर वियोग में उद्दीपक बनकर ही आई है। संयोग में जो प्रकृति
श्रोर स्थूलिभद्र के रति-रंग को अधिक सरस बनाया करती थी वही
में संताप कारी बन गई। केकी-रव उसके हृदय में हूक भरने लगा,
'पीउ' 'पीउ' कर जले पर नमक छिड़कने लगा[१]।

(३) *पावाड़ा तथा बारहमासा वर्णन :*

चातुर्मास व्यतीत करने के लिए मुनि स्थूलिभद्र के कोश्या के घर आने
प्रतीक्षा में आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष के रूप में पसवाड़ा[२] वर्णन आ
तथा कोश्या की विरह व्यथा को व्यंजित करने के लिए बारहमासा
परम्परागत वर्णन किया गया है[३]।

कला-पक्ष :

काव्य को पढ़ने से कवि की भाषा-क्षमता एवं शब्द-ज्ञान का पता च
है। भाषा में माधुर्य एवं लोच है। यथा—

नव नव छंदे छंद छपइया, उमरीश्रा रस गुण भरिया।
ठमक ठमक पग भूतल ठमके, झमके रमझम झांझरिया ॥३॥
हृदयानन्दन केतकी मंदन, कुल अमूल मलक मलके।
खलक खलक कर कंकण खलके, झलक झलक टीको झलके ॥४॥
झरमर झरमर मेहुलो वरसे, जल से भरी भरी वादलियो।
घनन घनन घनघोर अघोर, गाजे राजे विजलियो ॥५॥
डुडुक डुडुक अविवेका नेका, भेका सो रस जोर घने।
कुहुक कुहुक रसीला नोला, कोकिला सहकार वने ॥६॥ ढाल १५॥

जगह जगह अलङ्कार एवं लोक-प्रचलित सूक्तियाँ प्रयुक्त हुई हैं। अलङ्का
का प्रयोग अधिकांशतः कोश्या के रूप-चित्रण तथा वियोग-वर्णन में हुआ है—

अनुप्रास :

(१) खलक खलक कर कंकण खलके, झलक झलक टीको झलके ॥४।१५॥
(२) मागसीरे मनमथ जागे, मोहन वाण घणा वाने ॥६।१३॥

१—बपईयाने वारे रे किम पीउ पीउ करे।
पासो रे छेदी ने ऊपर लूण घरे ॥५॥
पीयु महारो हूं पीयु नी पीयु पीयु हूं करूं।
थोड़े थोड़े दुखड़े जग दाधो सखे ॥६ ढाल ६॥

२—ढाल ७ छंद संख्या ५ से २०

३—ढाल १३ छंद संख्या ४ से १५

उपमा :

(१) मांस नखे जल-माछली रे, तास तरोसी प्रीत ॥३।३॥
(२) तिम तुम सम हीरो पायोजी, लाछलदेवी नो जायोजी ॥६।४॥

रूपक :

(१) विषया उरगी डसे मुज काया गली, लाछलदे जाया विण नही कोई जागुली ॥४।६॥

(२) रस प्रेम हिंडोले हीचोरे, तरुणी तन-वेलड़ी सीचो रे ॥५।६॥

सूक्तियाँ प्रायः लोक-जीवन से संबंधित है—

(१) रस लेप विनासे देहने, निम विरह नसाडे स्नेह ने ।
(२) धान्य यथा वृष्टि थकी, तीम प्रेम वधे दृष्टि थकी ॥

नारी-सम्पर्क की निन्दा पाकशास्त्र से उदाहरण देकर की है—
जिम गुण जाय कस्तूरी नो, जो दीजे हीगनो वास ।
कर्पूर तणो गुण जेम गले, धरीजे जो लसण ने पास ॥२॥
अलछ बहुए रसोई तणो, जांवू संगे जेम द्राक्ष ।
तिम माननी संगे मुनिवरा, स्थूलिभद्र कहे सुणनार ।
क्षणमात्र महिला शुं म्हाले, होये दुरगति दुःख भंडार ॥५॥ ढाल १०॥

छन्द :

प्रारम्भ मे ७ दोहे है। आगे की कथा १८ ढालों में गाई गई है। प्रत्येक ढाल की राग इस प्रकार है—

(१) ढाल १-गोकुल मथुरां रे व्याला-ए राग
(२) ढाल २-गोकुल नी गोवालणी मही वेचवा चाली-ए राग
(३) ढाल ३-हो जशोदा ना जाया-ए देशी
(४) ढाल ४-तमे वसुदेव देवकीना जायाजी लालजी लाडकला-ए देशी
(५) ढाल ५-गोकुलनी गोपी रे चाली जल भरवा-ए देशी
(६) ढाल ६-माहेली रे वेनी ने प्याला रे तारा जले भरीया-ए देशी
(७) ढाल ७-सनेही वीरजी जयकारी रे-ए देशी
(८) ढाल ८-सांभजरे तुं सजनी मोरी रजनो क्यां रमी आवीजी रे-ए देशी
(६) ढाल ६-गोवालणी ल्यातां पाणी रे मुन्दर शामलीया-ए देशी
(१०) ढाल १०-दोयरीया रमो रमणी रस भेलीने-ए देशी
(११) ढाल ११-राजकुले रह्या राजिका पातलीआजी-ए देशी
(१२) ढाल १२-मने भालो जशोदाना छईयेरे-ए देशी
(१३) ढाल १३-आवो हरि सासरिया वाला-ए देशी

(१४) ढाल १४–आवो आवोरे जसोदाना कान गोठडी करीयेरे–ए देशी
(१५) ढाल १५–राजउच्छवनी लावणी–ए देशी
(१६) ढाल १६–वगडानो वाशीरे मोर शीद मारीयो–ए देशी
(१७) ढाल १७–कृष्ण सलुणा नाथ महारे घेर आवोने–ए देशी
(१८) ढाल १८–प्यारा शरदपुनमनी रात रंगभरे रसीए भलारे–ए देशी

(२१) स्थूलिभद्र कोश्या रसवेलि[1]

प्रस्तुत वेलि भी स्थूलिभद्र और कोश्या से सम्बन्धित है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता माणकविजय उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में विद्यमान थे[2]। ये तपागच्छीय गुलालविजय के शिष्य थे[3]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-स्थान तथा रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है[4] उसके अनुसार इसकी रचना दर्भावति (डभोई) चातुर्मास में शाह हेमा के पुत्र माधव की प्रेरणा से सं० १८६७ में हुई।

रचना-विषय :

१७ ढालों की इस रचना में स्थूलिभद्र और कोश्या के प्रेम-प्रसंग का सरस वर्णन किया गया है। यहाँ वेलि का आदि-अन्त भाग दिया जा रहा है।

आदि-भाग :

श्री पार्श्व देव ने प्रणमीये, सरस्वति नुं समरथ,
थुलिभद्र गुणना थका, आपे सरस अरथ ॥१॥
मुनि गुणमाहि हंसलो, मुनि गण शोभाकार।
शीलवंत शिरोमणि, रचुं रसवेलि श्रीकार ॥२॥

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—
सा हेमा सुत माधव वचने, रच्यउ रसी गुरि [illegible]।
(ख) जैन गुर्जर कविओ : भाग ३, खंड १, पृ० २२६ पर देसाई जी ने इसका उल्लेख किया है। हमें इसकी मूल प्रति नहीं मिल पाई है।
२—जै० गु० क० भाग ३ खण्ड १, पृ० २२८
३—श्री तपगच्छ विबुध गुलालविजय [illegible], माणिक [illegible] ॥
४—दर्भावति नगर [illegible], [illegible] चौमासु [illegible]।
[illegible] हुआ सर्व, गुरु [illegible] मास ॥१० [illegible]॥

अन्त-भाग :

पीउजी तुमारे बोलडिये-अे देशी।
हूं तो तत्व दशा थी जागी प्राणाधार पधारवतेरे,
भव भय भावट भांगी ॥ढाल १७॥

(२२) वल्कलचीर कुमार ऋषिराज वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि राजर्षि प्रसन्नचंद्र और वल्कलचीरी से सम्बन्धित है। प्रसन्नचंद्र पोतनपुर के राजा सोमचंद्र के ज्येष्ठ पुत्र थे। वल्कलचीरी प्रसन्नचंद्र के छोटे भाई थे। इनका जन्म जंगल में धारिणी रानी के गर्भ से हुआ था। जन्म से ही वल्कल वस्त्र पहनने के कारण ये वल्कलचीरी (वल्कलचीर कुमार) कहलाये।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता कनक[2] सोलहवीं शती के अन्त के कवियों में से थे। ये खरतरगच्छीय जिनमाणिक्य सूरि के शिष्य थे[3]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। देसाईजी ने कवि कृत 'मेघकुमार रास' का रचना-काल सं० १५८२ से सं० १६१२ के मध्य माना है[4]। अनुमान है इसी काल में यह वेलि भी रची गई हो।

रचना-विषय :

७५ छन्दों की इस रचना में प्रसन्नचंद्र और वल्कलचीरी का जीवन-वृत्त दिया गया है[5]। कथा-सार का वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री वल्कलचीर कुमार रिषिराज वेलि संपूर्ण समाप्त'

(ख) प्रति-परिचयः-इसकी हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूर भाई मणिभाई के संग्रह क्रमांक ११५४६ में सुरक्षित है। यह चार पत्रों में लिखी गई है।

२—कनक भणइ जेहना गुण गातां महिमा सुजस अनंत।

३—जैन गुर्जर कविओ भाग १, पृ० १३० तथा भाग ३ पृ० ६२६-३०

४—जैन गुर्जर कविओ भाग १ पृ० १३०

५—राजर्षि प्रसन्नचंद्र और वल्कलचीरी : मूल लेखक-धीरजलाल टोकरसी शाह।

(१) *राजा सोमचन्द्र का सफेद बाल देखकर संसार से विरक्त होना :*

एक दिन खेल ही खेल में रानी धारिणी ने राजा सोमचन्द्र के सिर में सफेद बाल देखकर कहा 'स्वामी दूत आया है।' राजा यह सुनकर चमत्कृत हुए और सफेद बाल देखकर सोचने लगे-धन, यौवन, मणि-माणिक-भण्डार, पंच विषय रस आदि सांसारिक भोग धिक्कारने योग्य हैं। वृद्धावस्था आ पहुँची है। अब मेरे लिए प्रसन्नचन्द्र को राज्य भार सौंप तापस व्रत अङ्गीकार करना ही श्रेयस्कर है[1]।

(२) *प्रसन्नचन्द्र को राज्य देकर राजा का रानी सहित वन में जाना :*

पुत्र को राजगद्दी सौंप राजा गर्भवती रानी धारिणी सहित वन में जाकर तपस्या करने लगे। समय होने पर बत्तीस लक्षणों से युक्त पुत्र-रत्न को जन्म देकर रानी निर्वाण को प्राप्त हुई और राजा ने वल्कलचीर पहनाकर[2] यथाविधि पुत्र का लालन-पालन किया।

(३) *प्रसन्नचन्द्र का अपने भाई को लिवाने के लिए वेश्याओं को भेजना :*

भाई के जन्म होने के समाचार सुनकर प्रसन्नचन्द्र ने जङ्गल में उन्हें बुलाने के लिए वेश्याओं को भेजा[3]। वेश्याएँ सोलह शृङ्गार कर[4] वल्कलचीरी

१—एक दिवसि गवाखिइं खेलइं पासा सारि, बेहू करइं कनूहल सीस कमल जोइ नारि।
ए अचरिज पेखीय पलीय पयंपइ बाल, ते वयण सुणीनइ मनि चमकिउ भुपाल ॥३॥
मनि चमकिउ राजा राणी पूछइ सिउंवर नारी।
पलीअ तणइ छलि दूत पहूतउ निसुणउ बात अम्हारी ॥
आगइ कोडि अनंती नरवर, राजरिद्धि भोगवतां।
पलीय पहूतइ जे नवि चेतइं ते संसारि विगूता ॥४॥
तीणइं वचनि आकंपिउ नरवर मनह मझारि,
धिग धिग ए राजतणां सुख इणि संसारि।
धिग धिग अंतेउर हय गय रथ परिवार,
धिग धिग धन यौवन मणि माणिक भंडार ॥५॥

२—वाकल चीर पिता पुठाडइ तिणि ए वक्कल चीरी ॥८॥
तसु नाम भणीजइ वक्कलचीर कुमार, ले पुण्य प्रमाणि सोहइ विण सिणगार।

३—पुरवनिता तेडी सुपरि सुणावइ तुम्हे ताय स वनि जाई।
हाव भाव सिणगार देखाडी आणउ माहरू भाई ॥

४—रायतणु आदेस लहीनइ ऊलट अतिघण आणी।
सोल सीगार करीनइ सुंदरी चाली सहीअ समाणी ॥१४॥
नवरंगी नारि मनोहर रूपि अपार, करि सोवन चूडी कंठि एकउलि हार।
सिसि दिनकर तडवडि भबूकइं भलिमलमाल, मृगनयणी ससिहर वयण
ते सवि बाल ॥१५॥

की खोज में चलीं। जङ्गल में जाने पर उन्हें वल्कलचीरी फलो की टोकरी लेकर *आता हुआ दिखाई दिया। एक दूसरे का परिचय पाकर* तापस-वेश धारी वेश्याओं ने उसे खाने को अमृत तुल्य मोदक (लड्डू) दिये जिन्हे खाकर वल्कलचीरी अत्यन्त प्रसन्न हुआ और इनके (वेश्याओं) साथ पोतनपुर के आश्रम मे चलने के लिए (मोदक खाने के लोभ से) उद्यत हो गया[1]। उसी क्षण सोमचन्द्र ऋषि को आते देख उनके शाप से भस्म होने की आशङ्का से तापस वेशधारी वेश्याएँ भयभीत हो वल्कलचीरी को अकेला छोड़कर वहाँ से भाग गई[2]।

(४) *वल्कलचीरी का एक सारथी के साथ पोतनपुर आकर वेश्या पुत्री के साथ विवाह करना :*

वल्कलचीरी एक सारथी के साथ पोतनपुर नगर मे प्रविष्ठ हो आश्रम समझ एक वेश्या के घर गया। वेश्या ने भाव-भरा स्वागत कर उनके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया पर वल्कलचीरी इस सांसारिक प्रेम-प्रसङ्ग से सर्वथा अनभिज्ञ था[3]।

(५) *प्रसन्नचन्द्र और वल्कलचीरी का परस्पर मिलना :*

वेश्याओं से वल्कलचीरी के भटकने और पिता सोमचन्द्र से अलग होने के समाचार सुनकर प्रसन्नचन्द्र को अत्यधिक चिन्ता हुई। उधर पुत्र (वल्कल-चीरी) के अभाव मे रो रोकर सोमचन्द्र भी अन्धा हो गया। प्रसन्नचन्द्र ने अपने भाई की खोज के लिए कोई उपाय उठा न रखा। अन्त मे उसी

मृगनयणी अमृतवयणी सुंदरि सवे सरीखी सोहइ।
नवर सनाद विनोद विचक्षण मानव जन मन मोहइ॥
पहिरी कनकचीर हीरा लग कटिमेखला रणकंती।
चंचल चतुर चकोर सुरंगी ते माननि मलपंती॥१६॥

१—ते तापस जाणी ने हरखिउ हीइ कुमार,
मुनि मुगध अपूरव न लहइं किसिउ विचार।
वनफल लालि आवइं मोदक अमृत समान,
रसणादिय वाहिउ तीह फल करइ वखाण॥२१॥
रसणादिम वाहिउ अति ऊमाहिउ पूछइ मननी वात।
अम्हे तुम्हारइ आश्रमि आवुं जु नवि जाणइ तात॥२२॥

२—सोमचंद आवंतु जाणी अबला दह दिसि नासइं।
मरणतणु भय कुण कुण न करइं व्याघ कुरंगी त्रासइं॥२४॥

३—मीठा मोदक आहरइ, पूरव अनुभव सार।
जीभ तणउ रस जाणतु, अवर न किसिउ विकार॥३२॥

वेश्या के घर वल्कलचीरी से प्रसन्नचन्द्र की भेंट हुई[1]। चार कन्याओं के साथ उसका (वल्कलचीरी) विवाह किया गया। और राज-भवन में रहकर उसने बारह वर्ष तक सांसारिक भोग भोगा।

(६) *वल्कलचीरी को जाति-स्मरण, एवं केवल ज्ञान की प्राप्ति होना :*

बारह वर्ष व्यतीत होने पर दोनों भाई पिता से मिलने के लिए जङ्गल में गये। पिता ने सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने का उपदेश दिया[2] जिसे सुनकर वल्कलचीरी को जाति-स्मरण ज्ञान हो गया[3]। विचारों की पवित्रता उत्तरोत्तर बढ़ती गई अन्त में संयम और समकित का बल पाकर वह केवल ज्ञान में परिणत हो गई[4]। प्रसन्नचन्द्र भी पुत्र को राज्य-भार सौंप दीक्षित हो गये।

(७) *राजा श्रेणिक का भगवान महावीर से प्रसन्नचन्द्र की गति के विषय में प्रश्न पूछना :*

प्रसन्नचन्द्र ने उग्र कायोत्सर्ग किया। एक ने इसकी प्रशंसा की। दूसरे ने उपेक्षा करते हुए कहा-'इस निर्दयी पिता ने बालक को राज्य दे दिया। मन्त्री आदि उसे मार कर राज्य हड़प लेंगे।' यह सुनकर प्रसन्नचन्द्र का ध्यान विचलित हो गया वे मन ही मन शत्रु का संहार करने में लीन हो गये। इसी समय श्रेणिक ने उन्हें प्रणाम किया और भगवान महावीर से जाकर पूछा-'जिस समय मैं मुनि प्रसन्नचन्द्र को प्रणाम कर रहा था उस समय यदि उनका प्राणान्त होता तो उनकी क्या गति होती?' भगवान ने उत्तर दिया '७ वीं नरक' (क्योंकि वे मन ही मन शत्रु-सेना को नष्ट करने में लगे हुए थे। उनके सारे हथियार समाप्त हो चुके थे। केवल सिर पर एक टोप

१—नयर विशालिणि मंदिरि, पहुतु मोह दुवारि।
सालिवउ देई बहु मिल्या, सुर नर जय जयकार ॥८३॥

२—ताम संसारनु छांडेवउ, वर वहुंमिउं संगति माडीइए।
स्यौ डगुउ मंग निरखइं न कोजइ, वच जीवनु सुपयो सदिरीनइ ॥९५॥

३—तातना वचन हीइ धरीए, तु वल्कलचीर उठी करीए।
पूरव पीठि मारवरिनिउए, वली हातना वागउ पुंजरिउं ए ॥९९॥
पातउ पुंजता मन वरउए, मन माहि उपसम रस पूरीउए।
वातो समकित मुनि मनुए, अवधारि पड देवी मातगुडए ॥१००॥

४—नीरम मउर मेर करीए, वली भावना नेहुली मनि धरीइ।
पुरव भव विन सामठए, दिन अधिक भवता वर्ग कर करइए ॥१०१॥
विधि सविनउ केवलनाण दिवाकर वल्कलचीर मुनिउए।
ओरर मनर विचारि उवउ नमइ सुरनरवृंद ॥१०२॥

बचा था जिससे वे शत्रु का अन्त करना चाहते थे'') यह सुनकर श्रेणिक, को आश्चर्य हुआ। उन्होने फिर पूछा-'यदि वे अब प्राण त्यागे तो ?' भगवान ने उत्तर दिया—'देवलोक को प्राप्त हों' (शत्रु का अन्त करने के विचार से ज्योंही सिर का टोप उतारने के लिए उन्होने अपना हाथ फेरा तो वे चौक पड़े। सिर मुंडा हुआ था। उनका क्रोध शांत हो गया वे वैर-विरोध को भूलकर मित्रता के धरातल पर उतर पड़े[२]) इस उत्तर पर श्रेणिक विचार कर ही रहे थे कि दुन्दुभी बज उठी। भगवान ने फरमाया प्रसन्नचन्द्र को केवल-ज्ञान प्राप्त हो गया है[३] (वैचारिक पवित्रता की चरम सीमा पर वे पहुँच गये थे)।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल होते हुए भी साहित्यिक है। वेश्याओं के रूप-चित्रण तथा वल्कलचीरी के शृङ्गार-वर्णन मे उपमा-रूपक-उत्प्रेक्षादि अलङ्कार प्रयुक्त हुए है—

(१) सिसि दिनकर तडवडि झबूकइं भालि भमाल।
मृग नयणी ससिहर वयणी ते सवि बाल ॥१५॥

(२) मुख जिसिउ पूनिमचन्द्र इंद अनोपम अवतरि उहे।
चंचल चंग तुरंग रंगि, कुंवर चडी सांवरिउ हेलि ॥४७॥

(३) राजा गजि गिरुअडि चडिउ, घमइंर गुहिर नीसाण।
मेघाडंबर सिरवरि, जाणे अभिनव भाण ॥४२॥

१—तुरे शमरस ध्यानइं चूकउ, दुकउ तुमारेणि।
इक वयरीना सिरि कंपावइ, इक साहीलिइ वेणि ॥
एकतणा गलकंदल त्रोडइ, मोडइ खंध पराणइं।
इम वयरी संहार करंतु, मोटउं मनह विनाण ॥६६॥
वलो रोस घरी मुनिराय करइ हयोमार,
करि तेमर कुंत कडाकडि बज्जइं सार।
इम परदल चूरी पूरी निज मन आस,
पणि कीधउ अनुक्रमि सत्तम नरय निवास ॥७०॥

२—रिपि वयरीकारणि लिइ मस्तकनु टोप, तेतलइ मुनि जागिउ यती पणइ सिउ कोप ॥७२॥
मनि जागिउ मुनिवर राजा चिंतइ, धिग ए मन व्यापार।
पुण मारेणि किस्या ते वयरी, सियां कीधा हयोयार ॥
मन निश्चिल आणो वेस प्रमाणिइं कीधउ सबर सार।
करम संहारी नरग निवरी देवलोके तेै बार ॥७३॥

३—सांभलि तुं श्रेणिक संप्रति मन व्यापार, रिपि केवल पामी पुहचइ मोखि दुआरि ॥७४॥

छन्द :

ढाल छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रति में निम्नलिखित ढालों और रा
का उल्लेख मिलता है।

(१) राग भ्रासाउरी। नंदिषेण नागो तनु ढाल ॥
(२) राग सामेरो
(३) ढाल धवलनउ
(४) ढाल हेलिनु
(५) ढाल वीवाहलानु
(६) ढाल पहिलो

(२३) गुणसागर पृथ्वी वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि पृथ्वीचंद्र से सम्बन्ध रखती है! पृथ्वीचन्द्र सुविनीता के राज
हरिसिंह के पुत्र थे। इनकी माता का नाम पद्मावती था[2]। गुणसागर अन्तर्कथ
का नायक है। उसी के वृत्त को सुनकर पृथ्वीचन्द्र विरक्त हुए थे[3]।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता गुणसागर[4] १८ वीं शती के आरम्भ में विद्यमान थे।

१—(क) मूल पाठ में वेलि—नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—
'इति श्री गुणसागर पृथ्वी वेलि'
(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर,
अहमदाबाद के कस्तूरभाई मणिभाई के संग्रह में सुरक्षित है। इस प्रति के अन्त
में 'नमिउण स्तोत्र' लिखा हुआ है।

२—सिरि नेमि जिणेसर नमिय सुरेसर वार।
मुनि गायु सगुरुम्रा सील रयण भंडार ॥
नयरी सुविनीता राजा सिरि हरिसइ।
राणी पउमावइ सती सोहावइ ॥
बीज कुरे बीह दिसा दिणयर दीपंतु। पृथ्वीचन्द्रकुमार।
जायु जगि जयवन्त विशेषिइ, वइरागी उद्धार ॥

३—इस कथा के लिए देखिये—पं० सत्यराजगणि विरचित पृथ्वीचंद्र चरितम् (संस्कृत) का
एकादशोभवः। यशोविजय जैन ग्रंथमाला, भावनगर द्वारा प्रकाशित वि० सं० १६६६।

४—वेलि के अन्त में कवि ने अपना नामोल्लेख किया है—
गुरुआ गुणसायर पृथ्वीचन्द्रकुमार।
भवीयण प्रतिबोइ दिनि दिनिकरइ विहार ॥

रचना-काल :

वेलि में कहीं भी रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। जो हस्त-लिखित प्रति प्राप्त हुई है वह अठारहवीं शती की है। गुणसागर कृत 'चंदनवाला चौपाई' का उल्लेख देसाईजी ने किया है जिसका रचना-काल सं० १७२४ है[1]। अनुमान है इसी के आसपास यह वेलि भी रची गई हो।

रचना-विषय :

४६ छन्दों की इस रचना मे पृथ्वीचन्द्र और गुणसागर का चरित्र वर्णित है। पृथ्वीचन्द्र जन्म से ही सांसारिक राग-रङ्ग से उदासीन थे। फिर भी माता-पिता के आग्रह से उन्होंने आठ कन्याओं के साथ विवाह किया। उनके राज्य-काल मे एक दिन सुधन नाम का सार्थवाह आया[2]। उसने पृथ्वीचंद्र को एक अभूतपूर्व घटना सुनाते हुए कहा 'गजपुर (हस्तिनापुर) में रत्नसंचय नामक एक राजा राज्य करता था। उसके सुमङ्गला नाम को रानी थी। उसकी कुक्षि से गुणसागर नामक एक पुत्र का जन्म हुआ। गुणसागर अत्यन्त रूपवान और कला-मर्मज्ञ था[3]। वह जन्म से ही विरक्त था पर माता-पिता के अनुरोध से उसने आठ कन्याओं के साथ विवाह किया। एक दिन वह नगर विहार के लिए निकला तो एक साधु को देखकर उसे अपने पूर्व जन्म के साधु जीवन की स्मृतियाँ याद हो आईं। वह घर आकर संयम श्री का वरण करने को उद्यत हो गया[4]। भावना-शुद्धि के कारण

मझ शरण सदा ते गुरुमा ज्ञान भण्डार।
जय पाय सेय सेवंता लभइ भवनु पार॥
गुरि पार लहीनइ पहुता मुगतिइं भगतिइं, ते साधु।
माणस भवतरू तणुं अमूलिक माज अम्हिकल लाधुं॥
उकजे हवइं जगि सारनुं ताहरू अप्पा माज।
प्रणमुं पृथ्वीचन्द्र मुनीश्वर, गुणसागर रिषिराज॥४६॥

१—जैन गुर्जर कवियो : भाग २, पृ० २२८।

२—राज करंता आवीउरे सारथवाह सुजाण।
नामिइं सुधन सोहामणउरे, भेट करइ बहुदाण॥१७॥
राय पूछइ देसाउरीरे, एक हुय अपूरव वात।
कर जोडीनइ वीनवइरे सुणि निहुयण विख्यात॥१८॥

३—वर गजपुर नयर सोहामणुंजी, जिम वनिकरी कलीधामणुंजी।
तिहा सेठि रयण संचइजी, जस घरे धन सोवन उल्लसइजी॥१९॥
तस रमणी मनो सुमङ्गलाजो, सहिजाणइ धर्म्म तणी कलाजी।
गुणसागर सुत जइ, हेवे वणइजो सवि धर्म्म कला आणइ मणइजो॥२०॥

४—जोबन वय पहुतु जेतलइजी, आठ कन्या जोई तेतलइंजी।
तव ठाठ करइ वीवाहलडयो वेवाहो घरि नेपति भलउम्गांई॥२१॥

अन्त में उसे केवल ज्ञान की प्राप्ति हो गई। उसके माता-पिता और आठ स्त्रियाँ भी केवल-ज्ञान की अधिकारिणी बनीं। इस घटना को सुनकर पृथ्वीचन्द्र के विचारों की पवित्रता उत्तरोत्तर बढ़ती गई। वे ध्यान-मग्न हो गये और उन्हें भी केवल-ज्ञान की प्राप्ति हो गई[1]। पृथ्वीचन्द्र के माता-पिता तथा उनकी आठ स्त्रियों भी केवल ज्ञान को प्राप्त हुईं।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। अलङ्करण की ओर कवि का ध्यान नहीं रहा है। एक जगह पृथ्वीचन्द्र को बुद्धि का महासमुद्र कहा है—

> वान पणइ वहु बुद्धि महोदधि, धर्म्म तणइ रस रातु।
> साल सुधारस माहिउ झीलइ, होवत वय दीपंतु॥

छन्द :

काव्य में दोहा और सरसी छन्द का प्रयोग हुआ है। मात्राएँ प्रायः घटती बढ़ती रही हैं। प्रति में निम्नलिखित ढालों और रागों का उल्लेख मिलता है।

(१) ढाल-जूई०
आंचली-कुंअरजी कांई नसने हुरे, कांई नसनेहू राय कुंअरजी।
(२) ढाल-अवंती सुकुमाल गीत नो
(३) ढाल-अम०।

इण अवसरि नयरि कुंअर भमइजी, देखा रिपिराजं मनमइजो।
तम दरशिनि परभव साभरिउजी, वइराग रङ्ग हुई मइफिरिउजी॥२२॥
घरि आवी मात पिता नमइजी, संसार थकी मन उपसमइजो।
कर जोड़ी नइ तव वीनवइजी, परणावनु संयम श्री द्यइजी॥२३॥

१—जोउराय मिथासणि पृथिवीचन्द्रकुमार।
माभलइ मनोपम चरित्र करीयममार॥
यमदने ववणु पडइ, राय वेरइ कानि।
तिम तिम कुल भरि राजा चढिउ ध्यानि॥
नुरे, ध्यानि चढिउ राजा मनि चितइ।
घणूरे वइराणि, मोहनणी दलमहि पल्मी॥
मापिउ निवपुर माग, धन ते जणणी धन ते रमणी धन रम तात।
मठ कोडि मक येम उलमइ, एह सुणतां वात॥४१॥
इणिइं अवसरि पामि पामइ केवल नाण।
सरगं गणि आवइं सुरवणा विमान॥
सुरवनि मोडनमइ कमा करइ सुविमाल।
तिहां बइम पृथिवीचन्द्र नरेन्द्र इपार॥

(२४) सुदर्शन स्वामिनी वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि सुदर्शन स्वामी[2] से संबंध रखती है। सुदर्शन अंगदेश की चम्पा-नगरी के सेठ वृषभदास (वृषभदत्त) के पुत्र थे। इनकी माता का नाम अर्हदासी था।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वीरचंद १६ वी शती के विद्वान थे। ये भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति के शिष्य विद्यानन्दि के शिष्य मल्लि भूषण के शिष्य भट्टारक लक्ष्मीचंद्र (सं० १५५६-८२) के शिष्य थे[3]। यद्यपि इनका सूरत गादी से संबंध था तथापि ये बागड़ प्रदेश मे खूब विचरण करते रहे। इन्होंने नवसारी के शासक अर्जुन जीवराज से बहुत सम्मान पाया था। इनकी छोटी छोटी कई कृतियां मिलती हैं। उल्लेखनीय रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

(१) वीर विलास फाग	(२) नेमिनाथ नी भ्रमर गीता
(३) नेमीश्वर विवाहलो	(४) संबोध सत्ताणु
(५) सीमंधर स्वामी गीत	(६) जम्बू स्वामी वेलि
(७) बाहु बलि की वेलि	(८) सुदर्शन स्वामिनी वेलि

रचना-काल :

वेलि की जो अपूर्ण प्रति मिली है, उसमे रचना-तिथि का उल्लेख नही है।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नही आया है।

(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मंदिर, उदयपुर के ग्रंथांक १०० मे सुरक्षित है। यह पत्र १६० से २०३ तक लिखी हुई है। प्रति अपूर्ण है।

२—सुदर्शन स्वामी के विशेष परिचय के लिए देखिये—

(क) आराधना कथा कोष : प्रथम भाग : परमानन्द, पृ० १७१–१८१

(ख) भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति : ११४–११७

३—जम्बू स्वामी वेलि मे कवि ने अपनी गुरु-परम्परा का परिचय इस प्रकार दिया है—

श्री मूलसंघे महिमा नी लो अने देवेन्द्रकीरति सूर राय।
श्री विद्यानन्दि वसुधा तिलो नरपति सेवे पाय॥
श्री मल्लिभूषण महिमा घणो नमे ग्यास दी सुल्तान।
तेह पाटे उदयो जति लक्ष्मीचंद्र जेम भाण॥
तेह गुरु चरण कमल नमी अनें वेल्लि रची छे रसाल।
श्री वीरचंद सूरि वर कहे गाता पुण्य अपार॥
जंबू कुमर केवली हुवा अमे स्वर्ग मुक्ति दातार।
जे भवियण भावें भाव से ने सरसे संसार॥

'नेमिनाथ नो भ्रमर गीता' की कवि ने संवत १६०४ में समाप्त किया था। अनुमान है इसी के आसपास १६ वीं शती के अन्त में वेलि की रचना हुई हो।

रचना-विषय :

इसमें वृषभदास (सुदर्शन के पिता) और सुदर्शन के वैराग्यमय जीवन का वर्णन किया गया है। सुदर्शन अत्यन्त रूपवान थे। महाराजा गजवाहन की रानी कपिला उन पर मुग्ध हो गई। उसने सुदर्शन को राजमहल में लाने का काम अपनी दासी को सौंपा। दासी एक रात को श्मशान में ध्यानस्थ तपस्वी सुदर्शन को उठाकर रानी के महल में ले आई। सुदर्शन को पाकर रानी मदनोन्मत्त हो उठी। उसने अनेक कुचेष्टाओं द्वारा सुदर्शन का ब्रह्मचर्य व्रत खंडित करना चाहा पर सुदर्शन टस से मस नहीं हुए। अन्त में बदला लेने की भावना से रानी ने एक षड्यन्त्र रचा। उसने अपने शरीर को नोच-नोच कर रक्तरंजित कर दिया और चिल्लाना शुरु किया—'अरे दौड़ो, बचाओ, पापी के हाथों से'। इससे सुदर्शन बंदी बना लिये गये और महाराजा ने उन्हें प्राणदण्ड दिया। जल्लाद ने उनकी गर्दन पर तलवार का वार किया पर धर्म-प्रभावना से वह व्यर्थ गया। देवताओं ने पुष्प-वृष्टि कर तपस्वी सुदर्शन की पूजा की। महाराजा ने अपने अपराधों की क्षमा मांगी। अन्त में सुदर्शन इस संसार से विरक्त होगये। उन्होंने संयम धारण कर कठोर तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए मुक्ति प्राप्त की।

वेलि का आदि अन्त भाग (जो प्राप्य है) इस प्रकार है—

आदि-भाग :

दूहो—

वीर जिनेश्वर मननें धरी अपे दूजो गौतम प्रणमी पाय।
सुदर्शन गुण गायसूं गाता सुख बहु थाय ॥१॥
कामदेव जगे जाणीए अनें तू जग जय जयकार।
मन वांछित फल पांमीए तू भव जलनिधि तार ॥२॥

चाल—

जंबूदीप भरत क्षेत्र जाणीए रे अनोपम अंगदेश बखाणए।
तेह मध्ये नगर सोहे अति सुन्दर रे चंपापुर नगर छे मनोहर ॥३॥

त्रोटक—

मनोहर सुन्दर सारू जाणो इन्द्रपुरी समान।
आ वासुपूज्य जिन जन्मज कहीए तेह थकी अधिक बखाण ॥
कूप सरोवर दीसे वारु वाडी वन आराम।
आ सेवंत्री अति सुन्दर सारी मोगरो मालती नाम ॥

चंदन चंपक चित्तज मोहे सोहे नागर वेल।
आसाहेकार कदली जंबू जंबीरा कोकिल करे गेल ॥
गढ़ को सोसे ध्वजा तां लेहे के सजल खातिका सार।
आ जिन मंदिर महोत्सव बहु होवे मंगल जय जयकार ॥

अन्त-भाग :

दूहा—

वेगें वैराग्य चितवे अने वृषभदास गुणवंत।
लक्ष चोराशी जोनि माहां पाप कर्या अनंत ॥१॥
चारित्र आपो निरमल अने जे मटले भवनो बंध।
दिगम्बर दीक्षा धरी कीजे मन नोरोध ॥२॥

चाल—

वृषभदास मुनि चारित्र पाले रे त्रण्ण काल ना जोग ने संभाले।
समकित लेई सुदरसन घेर आवेरे, सुख समुद्र झीले उहत्रठ नहीं भावरे ॥

त्रोटक—

एक दिवसे सुदरसन जावे पूजा करवा जिन्न।
आ कपिला ए ते जातां दीठो मोह धसो तव मन्न ॥
काम देखीने वि.................. विकल तावे नार।
गीत गान विहने..................नहीं गमे नग मेवलो सणगार ॥
अन्न उदक ते लेवे नही समरे मदन कुमार।
आ व्यग्र चित्त देखीनें बोले दासी पूछे विचार ॥
क्रोध धरीनें कपिला बोले लाव्य तुरंति भरतार।
आ ते सांभली ने चाली दूती पोहोती सुदरसन वासु ॥

(२५) मल्लिदासनी वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि संघपति मल्लिदास से सम्बन्ध रखती है। मल्लिदास १७ वीं शती में विद्यमान थे। इनका सम्बन्ध हूवड वंश से था[2]।

१—(क) मूल पाठ में वेलि—नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—
'इति संघपति श्री मल्लिदासनी वेल समाप्त'
(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति शास्त्र भंडार, ऋषभदेव के ग्रंथांक ६२० में सुरक्षित है।

२—हूंवड वंश विभूषण, पुण्ण कुल कज एह।
मल्लिदास पुण्ये प्रवर, गुण रत्नाकर जेह ॥

'नेमिनाथ नो भ्रमर गीता' को कवि ने संवत १६०४ में समाप्त किया था। प्र
है इसी के आसपास १६ वीं शती के अन्त में वेलि की रचना हुई हो।

रचना-विषय :

इसमें वृषभदास (सुदर्शन के पिता) और सुदर्शन के वैराग्यमय जीव
वर्णन किया गया है। सुदर्शन अत्यन्त रूपवान थे। महाराजा गजवाहन की
कपिला उन पर मुग्ध हो गई। उसने सुदर्शन को राजमहल में लाने का काम
दासी को सौंपा। दासी एक रात को श्मशान में ध्यानस्थ तपस्वी सुदर्शन को उ
रानी के महल में ले आई। सुदर्शन को पाकर रानी मदनोन्मत्त हो उठी।
अनेक कुचेष्टाओं द्वारा सुदर्शन का ब्रह्मचर्य व्रत खंडित करना चाहा पर सु
टस से मस नहीं हुए। अन्त में बदला लेने की भावना से रानी ने एक प
रचा। उसने अपने शरीर को नोच-नोच कर रक्तरंजित कर दिया और चिल्
शुरु किया—'अरे दौड़ो, बचाओ, पापी के हाथों से'। इसने सुदर्शन बंदी बना
गये और महाराजा ने उन्हें प्राणदण्ड दिया। जल्लाद ने उनकी गर्दन पर तल
का वार किया पर धर्म-प्रभावना से वह व्यर्थ गया। देवताओं ने पुष्पवृष्टि
तपस्वी सुदर्शन की पूजा की। महाराजा ने अपने अपराधों की क्षमा मांगी।
में सुदर्शन इस संसार से विरक्त होगये। उन्होंने संयम धारण कर कठोर त
जीवन व्यतीत करते हुए मुक्ति प्राप्त की।

वेलि का आदि अन्त भाग (जो प्राप्य है) इस प्रकार है—

आदि-भाग :

दूहो—

वीर जिनेस्वर मननें धरी अपे दूजो गौतम प्रणमी पाय।
सुदर्शन गुण गायसूं गाता सुख बहु थाय ॥१॥
कामदेव जगे जाणीए अनें तू जग जय जयकार।
मन वांछित फल पांमीए तू भव जलनिधि तार ॥२॥

चाल—

जंबूदीप भरत क्षेत्र जाणीए रे अनोपम अंगदेश बखाणए।
तेह मध्ये नगर सोहे अति सुन्दर रे चंपापुर नगर छे मनोहर ॥३॥

त्रोटक—

मनोहर सुन्दर सारु जाणो इन्द्रपुरी समान।
श्रा वासुपूज्य जिन जन्मज कहीए तेह थकी अधिक बखाण ॥
कूप सरोवर दीसे वारु वाडी वन आराम।
आ मेवंत्री अति सुन्दर मारी मोगरो मालती नाम ॥

चंदन चंपक चित्तज मोहे सोहे नागर वेल।
आसाहेकार कदली जंबू जंबीरा कोकिल करे गेल ॥
गढ़ को सीसे ध्वजा तां लेहे के सजल खातिका सार।
आ जिन मंदिर महोत्सव बहु होवे मंगल जय जयकार ॥

अन्त-भाग :

दूहा—

वेगें वैराग्य चितवे अने वृषभदास गुणवंत।
लक्ष चोराशी जोनि माहां पाप कर्या अनंत ॥१॥
चारित्र आपो निरमल अने जे मटले भवनो बंध।
दिगम्बर दीक्षा धरी कीजे मन नोरोध ॥२॥

ढाल—

वृषभदास मुनि चारित्र पाले रे त्रण्ण काल ना जोग ने संभाले।
समकित लेई सुदरसन घेर आवेरे, सुख समुद्र झीले उहश्रठ नहीं भावरे ॥

त्रोटक—

एक दिवसे सुदरसन जावे पुजा करवा जिन्न।
आ कपिला ए'ते जातां दीठो मोह धसो तव मन्न ॥
काम देखीने चि.................... विकल ताथे नार।
गीत गान विहूने....................नहीं गमे नग मेवली सणगार ॥
अन्न उदक ते लेवे नहीं समरे मदन कुमार।
आ व्यग्र चित्त देखीनें बोले दासी पूछे विचार ॥
क्रोध धरीनें कपिला बोले लाव्य तुरंति भरतार।
आ ते साभली ने चाली दूती पोहोती सुदरसन वासु ॥

(२५) मल्लिदासनी वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि संघपति मल्लिदास से सम्बन्ध रखती है। मल्लिदास १७ वीं शती में विद्यमान थे। इनका सम्बन्ध हूंबड वंश से था[2]।

१—(क) मूल पाठ में वेलि—नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—
'इति संघपति श्री मल्लिदासनी वेल समाप्त'
(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति शास्त्र भंडार, ऋषभदेव के ग्रंथाक ६२० में सुरक्षित है।

२—हूंबड वंश विभूषण, पुषण कुल कज एह।
मल्लिदास पुण्ये प्रवर, गुण रत्नाकर जेह ॥

कवि-परिचय :

इसके रचयिता ब्रह्म जयसागर[1] १७ वीं शती के विद्वान थे। ये भट्टारक अभयनंदि के प्रशिष्य एवं भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे। वेलि के प्रारम्भ में इन्होंने अपनी गुरु-परम्परा का उल्लेख किया है। इनकी छोटी छोटी कई रचनाएँ मिलती हैं। उल्लेखनीय रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं—

(१) अनिरुद्धहरण रास (२) बाहुबलिनो विनती
(३) आदि जिन पूजा चौपई (४) मल्लिदासनो वेलि

रचना-काल :

वेलि मे रचना-तिथि का उल्लेख नही है। अन्य रचनाओं को देखने मे कवि का रचना-काल १७ वी शती निश्चित होता है।

रचना-विषय :

इसमें मल्लिदास द्वारा सम्पन्न कराये गये प्रतिष्ठा महोत्सव का वर्णन किया गया है। वेलि का आदि-अन्त-भाग इस प्रकार है—

आदि-भाग :

श्री जिनचंद्रप्रभ नमो, सारदा सुख दातार।
श्री गुरु पद पंकज नमुं, श्री रत्नकीर्ति सुरि सार॥
संघपति सोभन गुण कहुँ, मल्लिदास मनोहार।
बिंब प्रतिष्ठा वर्णवूं भविजन मन सुखकार॥
श्री मूलसंघ महिमा करूं सरसति गछ मुजेह।
बलात्कार गण सुख करूं कुंद कुंद गुण गेह॥
पद्मनंदि पट्टावलि, देवेन्द्रादि सु कीर्ति।
श्री विद्यानन्दी विसद हुवा मल्लीभूषण गुण मूर्ति॥

त्रोटक—

मोहन मूरत सुंदर श्री गुरु लक्ष्मीचंद गुणमाल।
तास पाट पट्टोदय दिनकर श्री अभयचंद्र सुविशाल॥
तेह वंश वर भूधर तरणी, अभयनंदि यतिराय।
रत्नकीर्ति तस पाटे सोभन, भूपति पूजित पाय॥
भव्य जीव कमलाकल चंद्रह, उदयो गच्छपति एह।
संघ पतिष्ठा जेह उपदेसे, धर्म कर्म शुभ तेह॥
तेह उपदेसे करे प्रतिष्ठा, सज्जन पुरे आस।
वनसाउ नयरे रंग सोहावे, संघपति श्री मल्लिदास॥

१—ब्रह्म जयसागर इस कहेए सोभागेण पोहोता ग्राम के।

दूहा—

हूंबड वंश विभूषण, पुण्य कुल कज एह ।
मल्लिदास पुण्ये प्रवर गुण रत्नाकर जेह ।।

अन्त-भाग :

राग हुं मेनी—

श्री रत्नकीर्ति सुरी वर हस्ते तिलक हवा जयकारके ।
ब्रह्म जयसागर जोणीयेए, आचारज पद सार के ।।
जल जात्रा जन देखताए श्री रत्नकीर्ति यति राय के ।
पंच माहाव्रत आपयाए, संघ सानीध्य गुरु राय के ।।
निज हस्ते कुंभ ढालयाए चारित्र आपी सा के ।
श्री जिनचंद्रना मह दायोए, वरत्यो जय जयकार के ।।
याचक जन संतोपीयाए, आपे बहु विध दान के ।
मही मंडल मल्लिदास मु ए मोहण दे चीर आय ।।
चोविस जीनवर तहन जयोए, श्री रत्नकीर्ति सुरि राय के ।
मन वांछित फल पाम ज्योए, संघपति श्री मल्लिदास ।।
ब्रह्म जयसागर इम कहेए, सोभागेण पोहोता आस के ।

(२९) सिद्धाचल सिद्ध वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि सिद्धाचल मे सम्बन्ध रखती है। सिद्धाचल जैनियों का प्रमुख तीर्थ स्थान है। यह सोराष्ट्र में पालिताणा के पास है। जैन मान्यता के अनुसार यहाँ से अनन्त सिद्ध मोक्ष गये हैं। इसके २१ तथा १०८ नाम प्रसिद्ध हैं। आदि तीर्थङ्कर भगवान ऋषभदेव ९९ बार यहाँ आये थे। अतः इसकी ९९ बार यात्राएँ की जाती हैं। उनके पौत्र तथा प्रथम गणधर पुण्डरीक ५ करोड मुनियों के साथ यहीं से मोक्ष गये थे। इसका एक नाम पुण्डरीक भी है। शत्रुंजय (कर्म रूपी शत्रुओं का नाश करने के कारण) नाम इसका बहुत प्रसिद्ध है। इसे विमलाचल भी कहा जाता है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही उत्तमविजय हैं जिनका परिचय 'नेमिश्वर स्नेह वेलि' के साथ दिया गया है। वेलि के अन्त मे कवि ने अपनी गुरु परम्परा दी है[2]।

१—जैन गुर्जर कवियो : भाग ३, खंड १ पृ० ३०२ मे देसाईजी ने इसका उल्लेख किया है। हमे इसकी पूरी प्रति नहीं मिल पाई है।

२—श्री विजैप्रभसूरि परिवार, विमल विजय गणि उवझाया रे।
तस सिस वाचक पदनाधार, श्री शुभविजय गुरुराया रे ।।१०।।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-स्थान तथा रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है[1]। उसके अनुसार सं० १८८५ कार्तिक शुक्ला १५ को पेयापुर में यह रची गई।

रचना-विषय :

१३ ढालों की इस रचना में सिद्धाचल से मोक्ष जाने वाले सिद्धों का स्मरण किया गया है।

यहाँ वेलि का आदि-अन्त भाग दिया जा रहा है।

आदि-भाग :

श्री गोडी पार्श्वनाथ नमः श्री सिद्धाद्रि नमः

दूहा—

पास नणा पदकज नमो, समरो शारद माय ।
विमलाचल गुण वरणवुं, सांभलतां सुख थाय ॥१॥
पुण्यें नरभव पामिनें, जे करें तीरथ जात्र।
तस पद तल पावन हुवें, नामें निरमल गात्र ॥२॥
अरबुद अष्टापद समेत, सहु तीरथ सुखकार ।
भुवि भामिनी तिल सारिखो, सिद्धाचल श्रीकार ॥३॥
कार्तिकी पुन्नि में प्रणमतां, पातिक दूर पुलाय ।
इति उपद्रव भय मिटे, सुख मंगल घरि थाय ॥४॥

अन्त-भाग :

ढाल १३ :

गायो इम ज्योति रूप जगदीश अलवेलो आदेसरू।
आनंद पर होवे अहनीस, जिनमत तुम्ह खेमंकरू रे ॥

श्री हितविजय तणो तस सीस, माणिक विजय गुणें गावे रे ।
तेहना शान्तिविजय धनरीस, मोहनविजय गुरु पावेरे ॥११॥
तस सुलाभ विजय गुरु खेम, गुणनिधि गुरु नो सुपसायो रे ।
वरवेला होम्या एम हेम, उत्तमविजयें गिरि गायो रे ॥१२॥

१—गायो गिरि ईसु वसो सानो नेद कहि नावी रे ।
अठार पच्यासीई कार्तिक मास, सही पुन्नि मे दिवरावी रे ॥८॥
सबु सेतरना में पुरिचार, ईह पेयापुर मांगरे रे ।
गिरि गुण गाया एहु रसाल, सुणता भणते सुख थायेरे ॥६॥

(२७) कर्मचूर व्रत कथा वेलि[1]

भारतीय धर्म-प्रणाली में व्रत-उपवासादि का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्येक व्रत के माहात्म्य मे कोई न कोई कथा कही जाती है। जैन-दर्शन की मूल पीठिका कर्म है। कर्मों का क्षय होने पर ही आत्मा मुक्त होती है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता भट्टारक सकलकीर्ति[2] १५ वी शती के अन्त के प्रकाण्ड पंडित और साहित्य सेवियों मे से थे[3]। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती आदि भाषाओं का इनका गहरा अध्ययन था। ये भट्टारक पद्मनंदि के शिष्य थे। इनकी परम्परा मे ब्रह्म जिनदास, ज्ञानभूषण, शुभचंद्र आदि साहित्यिक हुए। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ मिलती है[4]।

(१) प्रश्नोत्तर श्रावकाचार	(२) आदिपुराण
(३) पार्श्वपुराण	(४) मल्लिनाथ पुराण
(५) धन्यकुमार चरित्र	(६) यशोधर चरित्र
(७) शांतिनाथ चरित्र	(८) सुकुमाल चरित्र
(९) श्रीपाल चरित्र	(१०) भावना पंचविंशति कथा
(११) सुभाषितावलि	(१२) आराधनाप्रति बोधसार
(१३) नेमीश्वर गीत	(१४) सिद्धान्तसार
(१५) सिद्धान्तसार दीपक	(१६) मूलाचार प्रदीप
(१७) उत्तरपुराण	(१८) सुदर्शन चरित्र
(१९) चतुर्विंशति तीर्थंकर स्तोत्र	(२०) मुक्तावली गीत
(२१) पार्श्वनाथ चरित्र	(२२) प्रद्युम्न चरित्र
(२३) वर्द्धमान चरित्र	(२४) सुगन्ध दशमी कथा
(२५) गणधर वलय पूजा	(२६) पुराण संग्रह
(२७) शांतिनाथ पुराण	

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम आया है—
'कहो वरत वेलि उदयु, करमसेण कर्मचूर'

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति दिगम्बर जैन मन्दिर (पाटोदी) जयपुर के गुटके सं० ११ मे सुरक्षित है। इस गुटके में कुल २२२ पत्र हैं जिनमे से पत्र १५ मे १८ तक यह लिखी गई है। इसका पाठ एक दम अशुद्ध तथा लिपि भी विकृत है। गुटके का लेखन काल सं० १७४६ है। जयपुर के पास चंपानेरी—चाटसू मे इसे लिखा गया।

२—कीधो कुणे कुण आरंभ्यो सकलकीर्ति नाम।

३—प्रशस्ति संग्रह : सं० कस्तूरचन्द कासलीवाल : प्रस्तावना, पृ० ११—१२

४—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची : भाग २, पृ० ४२४ तथा भाग ३, पृ० ३६०—६१।

रचना-काल :

वेलि के अन्त मे रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है[१]। उसके अनु
सं० १७४६ मे इसका रचा जाना सूचित होता है। पर वेलिकार सकलकीर्ति
रचना-काल सोलहवीं शती का प्रारम्भ रहा है। अतः वेलि के अन्त में जो ति
दी गई है वह काव्य की रचना-तिथि न होकर प्रतिलिपि करने की तिथि है।
प्रति मिलि है उसके लिपिकार (सं० १७४६) से भी इस बात की पुष्टि होती
इस आधार पर यह अनुमान करना कि १६ वीं शती के प्रारम्भ मे (सकलकीर्ति
रचना-काल) ही यह रची गई हो असंगत न होगा।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि में आठ कर्मों-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनी
आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय-को चूर करने के लिए व्रत-विधान बतलाया ग
है। कौशाम्बी नगरी मे कर्मसेन ने व्रत द्वारा अपना आत्म कल्याण किया था।
इस व्रत की आराधना करता है वह चौरासी लाख जीव योनियों को पार क
अजर-अमर पद प्राप्त करता है।

यहाँ प्रस्तुत वेलि का आदि और अन्त भाग दिया जा रहा है—

आदि-भाग :

अथ वेलि लिखते

दोहा—

कर्मचूर व्रत जे कर, जिनवाणी तंतसार
नरनारि भव भंजन धरे उतर चौरासी सु पार॥
कीधो कुले कुण आरंभ्यो सकलकीर्ति नाम।
कर्मसेदय कीधो गुणी, कोसंबी वसि गाम॥
नमंगो गुरु नरगंथ ने, सारद दस गुण पुरे।
कहो वरन वेलि उदयु करमसेण कर्मचुर॥
ज्ञानावर्ण दर्स्न साता वेदनी मोह अंतराई।
अन्है जो उनै चेन होसी, कहांलु कर वरण सुहाई॥
नाम कर्म पाच भोग कुदगे आयु भेदो।
गोत्र नीच गति वीहो चाहे, अन्तराय मय भेदो॥
चितामणि सुचित अति लागो, कर्मसेण गुण गाई॥१॥
एक कर्म को वेदना, सुंबे है मर लोई।
नरनारी करि उपरे, चरण गुण संधान गंवाई॥

---

१. सं १७४६ सावण वर कीतु कर्म चूर व्रत।
वेदलो नगर मा सुदि बीज कीजे आदर॥

अन्तिम-भाग[1] :

कवित्त—

सकलकीर्ति मुनि आप सुनत मिटै संताप,
चौरासी मरि जाई फिर अज अत्र पद पाइये ।।
जनी पोथी भई अक्षर दीसैं नही,
फेर उतारी बंध छंद कवित्त वेली बनाईक गाईये ।
चंपानेरी चाटसू केते भट्टारक भये साधा,
पगू अडसठि जेहि कर्मचूर वरत कहो है वणाई ध्याइये ।

१—यह सकलकीर्ति का रचा हुआ नही प्रतीत होता है । इसमें जो सं० (१७४६ सोमवार) आया है वह बहुत बाद का है । यह लेखक प्रशस्ति है ।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है[1]। उसके अनुसार सं० १७४६ में इसका रचा जाना सूचित होता है। पर वेलिकार सकलकीर्ति का रचना-काल सोलहवीं शती का आरम्भ रहा है। अतः वेलि के अन्त में जो तिथि दी गई है वह काव्य की रचना-तिथि न होकर प्रतिलिपि करने की तिथि है। जो प्रति मिलि है उसके लिपिकार (सं० १७४६) से भी इस बात की पुष्टि होती है। इस आधार पर यह अनुमान करना कि १६ वीं शती के प्रारम्भ में (सकलकीर्ति का रचना-काल) ही यह रची गई हो असंगत न होगा।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि में आठ कर्मों-ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय-को चूर करने के लिए व्रत-विधान बतलाया गया है। कौशाम्बी नगरी में कर्मसेन ने व्रत द्वारा अपना आत्म कल्याण किया था। जो इस व्रत की आराधना करता है वह चौरासी लाख जीव योनियों को पार कर अजर-अमर पद प्राप्त करता है।

यहाँ प्रस्तुत वेलि का आदि और अन्त भाग दिया जा रहा है—

आदि-भाग :

अथ वेलि लिखते

दोहा—

कर्मचूर व्रत चे कर, जिनवाणी तंतसार
नरनारि भव भंजन धरे उतर चौरासी सु पार ॥
कीधी कुणे कुण आरंभ्यो सकलकीर्ति नाम।
कर्मसेइय कीधो गुणो, कोसंबी वसि गाम ॥
नमंगी गुरू नरगंथ ने, सारद दस गुण पुरे।
कहो वरत वेलि उदयु करमसेण कर्मचुर ॥
ज्ञानावर्ण दर्स्न साता वेदनी मोह अंतराई।
अन्है जोतनै चेत होसो, कहालु कर वरण सुहाई ॥
नाम कर्म पांच भोग कुदगे आयु भेदो।
गोत्र नीच गति वोहो चाहे, अन्तराय मय भेदो ॥
चितामणि सुचित अवि लागो, कर्मसेण गुण गाई ॥१॥
एक कर्म को वेदना, मुंजे है सब लोई।
नरनारी करि उघरे, चरण गुण संधान संजोई ॥

१—संवत १७४६ सोमवार कर कीतु कर्म चूर व्रत।
वैठगो अमर पद चुरी सौर सीधातम जाइये ॥

अन्तिम-भाग[1] :

कवित्त—

सकलकीर्ति मुनि आप सुनत मिटै संताप,
चौरासी मरि जाई फिर अज अम्र पद पाइये ।।
जनो पोथी भई अक्षर दीसै नहीं,
फेरु उतारी बंध छंद कवित्त वेली बनाईक गाईये ।
चपानेरी चादसू केते भट्टारक भये साधा,
पमू अडसठि जेहि कर्मचूर वरत कहो है वर्णाई ध्याइये ।

१—यह सकलकीर्ति का रचा हुआ नही प्रतीत होता है । इसमे जो सं० (१७४६ सोमवार) आया है वह बहुत बाद का है। यह लेखक प्रशस्ति है ।

अष्टम अध्याय

जैन वेलि साहित्य (उपदेशात्मक)

सामान्य-परिचय :

जैन वेलि साहित्य का तीसरा रूप उपदेशात्मक है। वर्ण्य-विषय की द
से इसे ८ भागों में बाट सकते हैं—

(१) गति विषयक
(२) इन्द्रिय विषयक
(३) लेश्या विषयक
(४) गुणस्थान विषयक
(५) भावना विषयक
(६) कषाय विषयक
(७) पूजा विषयक
(८) अन्य

इसका रेखा-चित्र इस प्रकार बन सकता है—

उपदेशात्मक जैन वेलि साहित्य

(१) गति
- (१) चिहुंगति वेलि
- (२) पंचगति वेलि
- (३) गर्भ वेलि
- (४) बृहद गर्भ वेलि
- (५) जीव-वेलड़ी

(२) इंद्रिय
- (६) पचेन्द्रिय वेलि

(३) लेश्या
- (७) षटलेश्या वेलि

(४) गुण स्थान
- (८) गुणस्थान वेलि

(५) भावना
- (९) बारह-भावना वेलि

(६) कषाय
- (१०) चार कषाय वेलि
- (११) क्रोध वेलि

(७) पूजा
- (१२) प्रतिमाविचार वेलि
- (१३) [illegible]
- (१४) [illegible]
- (१५) [illegible]
- (१६) [illegible]
- (१७) [illegible]
- (१८) [illegible]
- (१९) [illegible]

(८) [illegible]
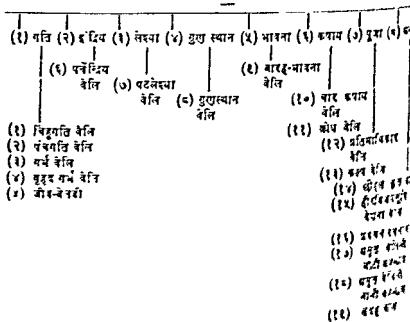
सामान्य विशेषताएँ :

उपदेशात्मक जैन-वेलि-साहित्य की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) जैन-दर्शन निवृत्ति प्रधान दर्शन है। उसने शरीर की अपेक्षा आत्मा को, इहलोक की अपेक्षा परलोक को और राग की अपेक्षा विराग को अधिक महत्व दिया है। अतः जैन कवियों ने भी जन-साधारण तक यही सन्देश पहुँचाया है। कभी नरक गति की यातनाओं का (चिहुँगति वेलि) तथा गर्भगत जीव की दारुण कठिनाइयों का (गर्भ वेलि, वृहद् गर्भ वेलि) भयङ्कर चित्र खींचकर जीव को सिद्ध गति की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा दी है, कभी इन्द्रियों की विषय लोलुपता का वर्णन कर इन्द्रिय-निग्रह और मनोयोग की बात कही है (पंचेन्द्रिय वेलि)। कभी आत्मा और कर्मों के बीच होने वाले सम्बन्धों का विश्लेषण कर जीव को उत्तरोत्तर शुभ परिणामी होने की प्रेरणा दी है (षड्लेश्या वेलि), कभी मन को मोह-माया से दूर हटकर शुभ-योग की ओर प्रवृत्त होने की चेतावनी दी है (अमृत वेलिनी सज्झाय), कभी क्रोध, मान, माया, लोभादि कषायों का परित्याग कर क्षमा, विनय, सरलता और संतोष को अपनाने का उद्‌बोधन दिया है (चार कषाय वेलि, क्रोध वेलि) तो कभी बारह भावना भाने की ओर संकेत कर मनुष्य जन्म की दुर्लभता, संसार की नश्वरता और जीव दया-प्रतिपालना का महत्व समझाया है (बारह भावना वेलि)। कभी जिन-प्रतिमा की पूजा एवं ग्यारह प्रतिमाओं की आराधना कर हृदय को पवित्र बनाने का उपदेश दिया है (प्रतिमाधिकार वेलि, ग्यारह प्रतिमा वेलि, कल्प वेल) तो कभी तत्व ज्ञान संबंधी सूत्र कंठस्थ हो सकें इस दृष्टि से गणितानुरूप शैली में 'संग्रह-वेल' का गुंफन किया गया है जो न पद्य है न गद्य। वह एक विशेष प्रकार की तालिका सूची है जिसमें गुणस्थान, गति, इन्द्रिय, काया, कषाय, ज्ञान, लेश्या, सम्यक्त्व, समकित आदि के भेदोपभेद संगृहीत हैं।

(२) इन उपदेशों में धार्मिक सहिष्णुता का स्वर मुखरित है। बीच-बीच में विषय विवेचन की पुष्टि के लिए जो अन्तर्कथाएँ आई हैं उनमें जैन कथाओं के साथ-साथ पौराणिक कथाएँ भी हैं।

(३) इन कवियों का स्वर संत कवियों की तरह विद्रोहात्मक भी है। स्थल-स्थल पर बाह्य क्रिया-काण्डों—तीर्थ व्रतादि—का विरोध कर आन्तरिक शुद्धता और मन की पवित्रता पर बल दिया गया है।

(४) प्रारम्भ में प्रायः जिन चौबीस और सरस्वती का मङ्गलाचरण कर वस्तु का निर्देश किया गया है। अन्त में गुरु का सादर स्मरण है। जहाँ यह परम्परा नहीं अपनाई गई है वहाँ सन्तों की तरह 'मन काहे को भूलि रहे विषया बन भारी' (छीहल कृत वेलि) या 'चेतन ज्ञान अजुआलीजे' (अमृत वेलिनी सज्झाय) से रचना का आरम्भ किया गया है।

(५) भाषा बोल चाल की सरल राजस्थानी है। कहीं-कहीं गुजराती प्रभाव लक्षित होता है। इसका कारण जैन मुनियों का जगह-जगह विहार करना रहा है। भाषा में नाद-सौन्दर्य की छटा है। यत्र-तत्र अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है। सामान्यतः रचना के मध्य जो दोहे आये हैं उनमें रूपकों की सुन्दर सृष्टि हुई है (जैसे-बारह भावना वेलि में)। रूपक लोक-जीवन से चुने गये हैं। स्थल-स्थल पर पारिभाषिक शब्द—निगोद, शरण, कषाय, पुद्गल, सिद्ध, सूक्ष्म, बादर आदि—व्यवहृत हुए हैं। दुर्बोधता कहीं नहीं पाई है।

(६) छन्दों में सरसी, सार (ललितपद), हरिपद, दोहा, सखी तथा ढाल की प्रधानता है। ढालों का जहाँ प्रयोग हुआ है वहाँ उनकी रागों का निर्देश सोदाहरण कर दिया गया है। मङ्गलाचरण दोहों में किया गया है। ढालों के बीच-बीच भी दोहे आये हैं।

उपलब्ध प्रमुख वेलियों का परिचय यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) चिहुंगति वेलि[१]

प्रस्तुत वेलि चार गतियों—नरक गति, तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति—से संबंध रखती है। जैन दर्शन के अनुसार गति नाम कर्म के उदय से प्राप्त होने वाली पर्याय गति कहलाती है[२]।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता कवि वच्छ या वाछो[३] सोलहवीं शती के प्रारम्भ में विद्यमान थे। ये वडतपागच्छ ज्ञानसागर सूरि के शिष्य-श्रावक थे[४]। देसाई जी ने इनकी निम्नलिखित तीन कृतियों का उल्लेख किया है[५] —

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—
चिहुंगति नी ए वेलि वीचारी, जे पालइ जिन आण (१३५)
(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर के बंडल (गुटका) २२५ में सुरक्षित है।

२—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह: सं० भैरोंदान सेठिया, प्रथम भाग, पृ० ६६

३—तेहना चरण कमल नइं पासई, हुं वांछुं गुण ठाम ॥

४—जैन गुर्जर कविओ, भाग ३ खण्ड १, पृ० ४६७

५—वही : पृ० ४९७-५००

(१) मृगांक लेखा चरित्र-सं० १५२३
(२) जीव भव स्थिति सिद्धान्त सार-प्रवचनसार-रास-सं० १५२३
(३) चिहुँगति वेलि (नरग वेदना नी वेलि[1])

रचना-काल :

वेलि के अन्त मे रचना-काल का उल्लेख नहीं किया गया है। नाहटाजी ने अपने निजी गुटके के आधार पर इसे सं० १५२० के आसपास रचिता माना है[2]।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि १३५ छंदों की रचना है[3]। इसमें कवि ने चार गतियों—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव—का वर्णन कर संसार के प्राणियों को यह संदेश दिया है कि चौरासी लाख जीव-योनियों में भ्रमण करने के बाद यह मनुष्य-भव मिला है अत. जिन भगवान के पथ पर चलकर आत्मा का कल्याण करना चाहिये[4]। संक्षेप में चारों गतियों का वर्णन इस प्रकार है—

(१) *नरक-गति-वर्णन :*

प्रारंभ के ५५ छंदों में विस्तारपूर्वक नरक-गति का वर्णन किया गया है। जो जीव कषायों—क्रोध-मान-माया-लोभ-मे पड़कर कठोर कर्म करते हैं उन्हें नरक में जाना पड़ता है। नरक के जीवों को तीन प्रकार की यातनाएँ सहन करनी पड़ती है[5] —

(१) परमाधामी देवों द्वारा दी जाने वाली यातनाएँ
(२) क्षेत्रकृत-अर्थात् नरक की भूमि के कारण होने वाली यातनाएं
(३) नारकी जीवों द्वारा परस्पर होने वाली यातनाएँ

१—देसाईजी ने इसका नाम नगरवेदना वेलि लिखा है। यह उनके असावधानी से हुए लेखन या मुद्रण-दोष का परिणाम है। वास्तव में 'नगर' के स्थान पर 'नरग' शब्द ही संगत प्रतीत होता है। रचना का नाम 'चिहुँगति वेलि' ही सही है। चार गतियों म नरक भी एक गति है और प्रस्तुत वेलि मे नरक के दुःखो का वर्णन विस्तारपूर्वक किया गया है। अतः वर्ण 'न' को मुख्यता देकर संभवतः प्रति लेखक ने 'नरग वेदना वेलि' संज्ञा दे दी है।

२—*कल्पना : वर्ष ७ अंक ४, अप्रैल, १९५६*

३—देसाईजी को जो प्रति मिली है उसमें छंद सं० १४२ है (जैन गुर्जर कवियो, भाग ३ खण्ड १, पृ० ५००)

४—लख चउरासी योनि भमंता, माणस नउं भव लाधउ।
एक मना जिणवाणि विचारी, काज आपणउं साधउं ॥४॥

५—सूत्र कृतांग सूत्र: पांचवा अध्ययन।

परमाधामी देव असुरकुमार देवों की एक जाति है[१]। ये तीसरे नरक तक ही जाते हैं। अतः आगे की चार नरकों में दो ही प्रकार की वेदनाएं होती हैं। वेदनाओं की तीव्रता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। सातवीं नरक में सबसे अधिक वेदना होती है। आलोच्य कवि ने नरक में होने वाली तीनों प्रकार की वेदनाओं का वर्णन किया है।

परमाधामी देवों द्वारा दी जाने वाली यातनाओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि ये देव कोल्हू में पीस-पीस कर रस निकालते हैं[२], कपाल पर करवत चलाते हैं, काठ की तरह छेदन करते हैं[३]। जो जीव रात्रि भोजन करते हैं उनके मुख में चींटियां भरकर होठ सी देते हैं[४], जो पर नारी के साथ व्यभिचार करते हैं उनका जलती हुई पुत्तलियों के साथ आलिंगन कराया जाता है[५], जो श्रवणेन्द्रिय के वशीभूत होकर सुहावने गीत और मोहक रागों में सुध-बुध खो बैठते है उनके कानों में कथीर भरा जाता है[६], चक्षुओं से जो रूप का पान करते है उनकी आंखों में गरम पानी डाला जाता है[७]। घ्राणेन्द्रिय से जो अगर, कपूर, कस्तूरी आदि की मीठी गंध लेते हैं उनके नथुनों में तांबा भरा जाता है[८]। जिनकी जिह्वा रसनोलुप होती है उनके शत-शत टुकड़े कर दिये जाते हैं[९]।

१—ये पंद्रह प्रकार के होते हैं। दूसरों को दुःखी देखकर प्रसन्न होना, आपस में लड़ाना-भिड़ाना और लड़ाई देखकर आनन्द अनुभव करना इनका स्वभाव होता है। ये नारकी जीवों को पंद्रह प्रकार की यातनाएं देते हैं:—(१) अम्ब (२) अम्बरीष (३) श्याम (४) सबल (५) रुद्र (६) महारौद्र (७) काल (८) महाकाल (९) असिपत्र (१०) धनुष (११) कुंभ (१२) वालुक (१३) वैतरणी (१४) खर स्वर और (१५) महाघोष

२—पील्हीं पील्ही ने रस काढइ, कुंण कहीतै जाणंइ ॥१५॥

३—उभड पाली दुर्मुख भाली, करवत दीइं कपालि।
काठतणीं परिछेदी पाडइ, करइ जूं जूंई फालि ॥१८॥

४—राती भोजन करीउ संभारी, कीडीए मुख भरीइं।
सीवी होठ मनइ मुख बूरिउ, गलित उदर करीयई ॥३२॥

५—पर नारी ना पाप करि मानइ, मनइं पूतली पासइं।
आलिंगन आणी देवडावइ, हंसउं करंति जाणइ ॥३३॥

६—गीत राग सुहावइ सुनतइ, कानइ भरइ कथीर ॥३४॥

७—नयण निहाली ना हरखीयो, घंदइं तातूं नीर ॥३४॥

८—अगर कपूर मनइ कस्तूरी, मीठा लीधा गंध।
नाका ना रसना के पासइ, भालउ घाली बंध ॥३५॥

९—खाटा खारा करींड चारी। शूरण खाटा साक।
तोरी जीभ करी शत खंडइ, तिहनां रहू विपाक ॥३६॥

नरक की भूमि के स्वभाव से जो वेदनाएँ होती हैं उन्हे क्षेत्र वेदना[1] कहते हैं। पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे नरक में ताप की वेदना होती है। पांचवे नरक के ऊपरी भाग मे भी ताप-वेदना होती है पर पांचवे के निचले भाग में तथा छठे सातवे नरक मे शीत-वेदना होती है। अन्य सभी प्रकार की वेदनाएँ सभी नरकों मे होती हैं।

कवि क्षेत्र-वेदना का वर्णन करता हुआ कहता है कि नारकी जीवों को अनन्त क्षुधा और अनन्त तृषा होती है पर उनके लिये आहार अंगारे की तरह उष्ण होता है, वह दुर्गन्धपूर्ण एवं खारा होता है[2]। उन्हें महाज्वर और अनन्त रोगों की पीड़ा होती है जिसके कारण वे सदा संतप्त रहते है[3]।

चौथे और पाँचवे नरक के जीव आपस मे एक दूसरे को कष्ट देते है। सम्यग्दृष्टि जीव नरक मे नहीं जाता। यदि सम्यक्त्व होने से पूर्व किसी ने नरकायु का बंध कर लिया हो तो वह पहले नरक मे उत्पन्न होता है, किन्तु वेदना भोगते भोगते सम्यक्त्व उत्पन्न वाले सम्यग्दृष्टि जीव सभी नरकों मे हो सकते हैं। जो नारकी सम्यग्दृष्टि होते हैं वे दुखों को पूर्वार्जित कर्मों का फल समझ कर समभाव से उन्हें सहन करते है और दूसरे जीवों को किसी प्रकार का दुःख नहीं देते है पर मिथ्यादृष्टि जीव परस्परजनित वेदना से पूर्णतः पीड़ित होते है। कवि परस्परजनित वेदना का वर्णन करते हुए कहता है कि मिथ्यादृष्टि नारकी जीव कुत्तों की तरह एक दूसरे पर आघात-प्रत्याघात करते हैं[4]। हाथों में भाला, मुद्गर, कटार आदि हथियार लेकर एक दूसरे पर प्रहार करते है[5]। कुंथुवे का रूप बनाकर दूसरे के शरीर के आर-पार निकल कर अत्यन्त पारस्परिक दुःखों का सामना करते हैं[6]।

१—आगमो में इनके दस भेद बताये गये हैं। यथा—(१) अनन्तक्षुधा (२) अनन्त तृषा (३) अनन्तशीत (४) अनन्त ताप (५) अनन्त महाज्वर (६) अनन्त खुजली (७) अनन्त रोग (८) अनन्त आश्रय (९) अनन्त शोक (१०) अनन्त भय।

२—भूख अनंती, तिरस अनंती, आहार जिसो अंगार।
अति दुर्गंम अनइ वलि खारउ, कर्कश कठीन अपार ॥२६॥

३—सीतक सूल अनइं ज्वर पीड़ा, रोग घणउं उपजावइ।
अति आराजि करंता दुखइं, तउ परपाक न आवई ॥२७॥

४—देखी दवानं घनेरउ उलइ, कोप नणइं वलि वान।
तणी पर इंधमइ घूंघूंता, मार करइं विकराल ॥४८॥

५—वयर संभालइ वली विशेषई, करई नवा हथियार।
काती मीणणी बीण कटारी, भाला मोगर मार ॥४९॥

फरसी पटा घणां दंडा युध, जुध करइ भूंभार।
वन वउर बीजा नइं पुंहचइ, राज नही आधार ॥५०॥

६—निराधार ने नरक वसंता, करी कूंथूआ रूप।
बीजा ना तन माही पइसइ, दाख्या दुःख अपार ॥५१॥

(२) *तिर्यंच-गति वर्णन :*

५६ से लेकर १०१ छन्दों तक तिर्यंच गति का वर्णन किया गया है। जो अशुभ कर्म करते हैं वे तिर्यंच गति में पैदा होते हैं[1]। इसी प्रसङ्ग में पांच स्थावर कायों-पृथ्वीकाय, अपकाय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पति काय-का वर्णन भी कवि ने कर दिया है। पृथ्वीकाय का वर्णन करते हुए उसने माटी, खड़ी, नमक, सीसा, हीरा, पन्ना, मूंगा, माणक, लाल, सोना, चांदी आदि के उल्लेख के साथ सात लाख योनियों का[2], अपकाय का वर्णन करते हुए खारे-मीठे पानी, नदी, समुद्र, तीर्थ, कुण्ड आदि के उल्लेख के साथ सात लाख योनियों का[3], वायुकाय का वर्णन करते हुए धमनी, व्यंजन, ताली, वायु, आदि का उल्लेख करते हुए सात लाख योनियों का[4], साधारण वनस्पति (एकै देहइ जीव अनंता) का वर्णन करते हुए आदा, सुरण, गाजर, मूला, कांदा, हल्दी, आंवला आदि के उल्लेख के साथ चौदह लाख योनियों का[5], और प्रत्येक वनस्पति (एक जीव जइ एक सरीरइ) का वर्णन करते हुए आम, जामुन, आक, धतूरा, खेजड़ा, पलास, अशोक, साल, तमाल, राईण, पीपल, पान, चम्पा, करणी, बबूल, महूड़ा आदि के उल्लेख के साथ दस लाख योनियों का[6], निर्देश किया है। ये पांच काय एकेन्द्रिय जीव कहलाते हैं। इसके बाद त्रसकाय की जातियों का वर्णन किया गया है। द्वीन्द्रिय में (स्पर्शन और रसना) सीप, शंख, अलसीया, लट आदि जीवों के उल्लेख के साथ दो लाख योनियों का[7], त्रीन्द्रिय (स्पर्शन, रसना और नासिका) में कीड़ी, मकोड़ा, खटमल, घनेरया, कुंथुवा, आदि जीवों के उल्लेख के साथ दो लाख जीव योनियों का[8], चतुरिन्द्रिय (स्पर्शन-रसना, नासिका और चक्षु) में मक्खी, डांस, मच्छर, भ्रमर, पतङ्गा आदि जीवों के उल्लेख के साथ दो लाख योनियों का[9], तिर्यंच पंचेन्द्रिय (स्पर्शन, रसना, नासिका, चक्षु, श्रोत्र) में मगर, मच्छ, कच्छप, हाथी, घोड़ा, गाय, भैंस, ऊंट, बकरी, गधा, सिंह, मृग, सुग्रर, गीदड़, गरुड़, चिड़ियां, तोता, काग, सारस, हंस, मोर, लावा, तीतर, कोयल, चकोर नाग-नागिन, नकुल आदि

१—छंद संख्या ६८ से ७३
२—छंद सं० ७४ से ७६
३—छंद सं० ७७ से ७८
४—छंद सं० ७९ से ८०
५—छंद संख्या ८१ से ८५
६—छंद संख्या ८६ से ८८
७—छंद संख्या ९० से ९१
८—छंद संख्या ९२, ९३, ९४
९—छंद संख्या ९५, ९६

जीवों के उल्लेख के साथ चार लाख जीव-योनियों का[1] निर्देश किया गया है।

(३) *मनुष्य-गति-वर्णन :*

तत्पश्चात कवि ने मनुष्य गति का वर्णन करते हुए लिखा है कि कर्मों के फल से मनुष्य भव भी दुखमय हो उठता है। कोई कोढ़ी है तो कोई दरिद्री, कोई रोगी है तो कोई मूर्ख, कोई म्लेच्छ है तो कोई अंत्यज, कोई मोची है तो कोई शक्तिहीन। धर्महीन होकर कोई प्यास से संतप्त है तो कोई भूख से व्याकुल। कोई जीविका निर्वाह के लिए चोर-कर्म करता है तो कोई अपने आप में संतोष न धारण कर विलाप करता है[2]। इस प्रकार चौदह लाख योनियों में भटकता हुआ मनुष्य आते समय हर्षित होता है और जाते समय शोकमग्न[3]।

(४) *देव-गति-वर्णन :*

देवगति का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि जो जीव शुभ कर्मों का अर्जन कर पुण्य संचय करते है वे देवगति मे जाते हैं। देवगति का जीव पाप-कर्म करने पर तिर्यंच गति मे और पुण्य-कर्म करने पर मनुष्य-योनि मे जन्म लेता है। वह नरक गति या देवगति में नहीं जाता।

जो जीव देवलोक में विलास-वैभव में ही लीन रहता है, देवियों के पीछे ही मुग्ध हो दौड़ता फिरता है[4], जिन धर्म की आराधना न कर भोग को ही सर्वोपरि मानता है, न सामायिक करता है न पौषध[5]। वह पशु-योनि मे जन्म लेकर अनन्त दुःखों को भोगता है। और जो धर्म ध्यान मे लीन

१—छंद संख्या ६७ से १०१

२—छंद संख्या १०२ से १०७

३—आवे हरप करइं अधिकेरउ, गये घणेरो शोक।
हास कलोल करी भव पूर्‌या, जांणई नहीं जिनधर्म।
आरति रौद्र महोदधि झीलइ, बांधइ बहुला कर्म ॥१०६॥

४—वेलइ झीलइ नाटिक निरखई, मइर नहीं उपजोग।
दुख सबे मेलदा वीसारी, विलसइ अमरी भोग ॥११४॥
परनी देवी देखी झूरइ, सुख नहीं सन्तोष।
महीया माहइ दामक भारइ, होयइइ सदा संतोष ॥११५॥

५—जिन प्रासाद न कीधां पूरा, नवि दीधा बहु दांन।
पोसह सामायक नवि पाल्या, जपउं न कीधउं ध्यान ॥१२१॥
इंद्रीनाय अधिक न कीधां, मूषा न करंदा जोप।
कहीइं देवलोक देखि मइं, जिरइं पड़ियो विजोग ॥१२७॥

रहता है यह मनुष्य जन्म पाकर धर्माराधना द्वारा अपनी आत्मा का कल्याण करता है, आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है।

अन्त में कवि संसार को उद्बोधन देता हुआ कहता है कि राज ऋद्धि, विद्या बुद्धि, नारी-भोग, सांसारिक-सुख, मान-सम्मान आदि से मुक्ति नहीं है[1]। अतः जीव-मात्र को क्रोध-मान-माया-मद छोड़कर मन में वैराग्य धारण करना चाहिये। अपने अन्तर्लोचन को खोलकर माया-ममता से मुक्त होकर जिनेश्वर भगवान की उपासना करनी चाहिये। यही कल्याण का निश्चित मार्ग है[2]।

कला-पक्ष :

कवि का ध्यान कला पक्ष की ओर नहीं गया है। उसका उद्देश्य चारों गतियों का स्वरूप समझाने का रहा है। भाषा बोल-चाल की सरल राजस्थानी है। यत्र-तत्र अनुप्रास का प्रयोग हुआ है।

(१) ममता माया सु मन बांधउ, कर्‌या कषाय कलोल (३)
(२) वैतरणी नइ वाहि प्रवाहि, करे कतूहल क्रीड़ा (१०)

अर्थालंकारों में उपमा-रूपक के एक दो प्रयोग हैं:—

उपमा :

(१) आहार जिसो अंगार (२६)
(२) अउठ कोडि शूलइ शू वीधइ, उन्हां वज्र समान (५५)

रूपक :

(१) आरति रौद्र महोदधि झीलइ (१०६)
(२) तेहनां चरण कमल नइ पासइ (१३५)

१—राज रिधि भंडार भली परि, विद्या धर ना वास।
नारी भोग भली परि कीधां एहज अजी अभ्यास ॥१२६॥
मत्र संसार तणा सुख दीठा, बहुला लाधां मांन।
ज्ञानवंत ने वचने आजे, तजी न उपज्यां कांन ॥१३०॥
धांन मान उ भूपिउ भाई, बहुला कर्म करेसि।
धर्म विहूणां तेह नै इन थी, मुगति कहां थी होसिइ ॥१३१॥
२—क्रोध मान माया मद छोड़ी, माड़ो मन वयराग।
अंतर ना लोचन उघडीया, मूंकी ममता राग ॥१३२॥
त्रिणकाल जिन पूजा कीजइ, सुगुरू वहीजइ आण।
मवीयण श्री जिनधर्म करंतां, पामीस्यइ कल्याण ॥१३४॥

छन्द :

काव्य में सरसी[1] और सार (ललितपद[2]) छन्द का प्रयोग हुआ है। अधिक संख्या सरसी की है।

उदाहरण :

सरसी :

खेलइ भीलइ नाटिक निरखई,
अवर नहीं उपजोग।
दुख सवे मेलया वीसारी,
विलसइ अमरी भोग॥

सार या ललितपद :

कर्म कठोर करंता होसी,
नरग तणी गति नाई।
परमांधामी क्षेत्र वेदना,
किमि महिवामइ लाई॥

(२) पचगति वेलि[3]

प्रस्तुत वेलि पाँच गतियों से सम्बन्ध रखती है। गति नाम कर्म के उदय से चार गतियाँ (नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव) होती हैं। सिद्ध गति, गति नाम

१—प्रत्येक चरण मे २७ मात्राएँ, १६, ११ पर यति। अन्त मे ऽ।

२—प्रत्येक चरण मे २८ मात्राएँ, १६, १२ पर यति। अन्त में ऽऽ।

३—(क) *मूल पाठ में वेलि नाम आया है—*

'नमस्कार करि सरस्वती, वरणौं वेलि भंत'

(ख) इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती है। हमे जो प्रतियाँ मिली हैं उनका *विवरण इस प्रकार है—*

(१) दिगम्बर जैन मंदिर लूणकरजी पाड्या, जयपुर की प्रतिः गुटका नं० ३४ वेष्टन नं० ३१८। आकार ६"×६"। लेखन काल सं० १७६७।

(२) *वही: गुटका नं० ६४, वेष्टन नं० ३२८। आकार ६"×५"। लेखन-काल* सं० १७४७ फागुन सुद ६।

(३) दिगम्बर जैन मदिर बधीचंद जी जयपुर की प्रतिः गुटका नं० २६, वेष्टन नं० ६७२, आकार ५"×५"। लेखन-काल सं० १७५४।

मधुपुर मे सूरदमल ने इसकी प्रतिलिपि की थी। अंत मे इसका नाम 'पद्गति' वेलि भी दिया है।

कर्म के उदय से नहीं होती। क्योंकि सिद्धों के कर्मों का सर्वथा अभाव है। यहाँ गति शब्द का अर्थ जहाँ जीव जाते हैं ऐसे क्षेत्र विशेष मे है[1]। कुछ प्रतियों में इस वेलि का नाम चतुर्गति वेलि[2] भी मिलता है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता हर्षकीर्ति[3] १७ वीं शती के उत्तरार्द्ध में विद्यमान थे। ये दिगम्बर मतानुयायी थे। इसका संकेत वेलि में मिलता है[4]। उनकी निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं[5]—

(१) धातु पाठ (२) योग चिन्तामणि

(३) पंचगति वेलि (चतुर्गति वेलि)–संवत् १६८३

---

(४) वही: गुटका नं० ५१, वेष्टन नं० १०१७। आकार ६½"×६"। लेखन-काल कार्तिक वदि ७ सं० १८२३।

(५) वही: गुटका नं० १६०, वेष्टन नं० १२७७। आकार ९"×५"। लेखन-काल १७३८ कार्तिक वदि १३।

(६) दिगम्बर जैन मंदिर ठोलियों के ग्रंथ: जयपुर की प्रति : गुटका नं० १११। आकार ९"×६" लेखन-काल १७७६ मगसर सुदी ३।

(७) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति : क्रमांक ४६१४। प्रति में इसका नाम "पंचगती वेलि" दिया है।

(८) अभयजैन ग्रंथालय: बीकानेर की प्रति।

(९) वर्तमान लेखक द्वारा इसका परिचय प्रस्तुत किया गया है : साहित्य सन्देश: भाग २१ अंक ११, मई, १९६०, पृ० ४६०-६१।

१—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह: सं० भैरोदान सेठिया: प्रथम भाग, पृ० २५७।

२—चतुर्गति वेलि नाम से निम्नलिखित प्रतियाँ मिलती हैं—

(१) दि० जै० मं० लूणकरणजी पाण्ड्या, जयपुर, की प्रति : गुटका नं० २, वेष्टन नं० २२२। आकार ९"×७"। रचनाकाल १६८३। लेखन-काल १७८४।

(२) वही: गुटका नं० १८, वेष्टन नं० ३०८, आकार ८"×६"। लिपि [illegible]। रचनाकाल १६८३।

(३) दि० जै० मं० बधीचंदजी जयपुर : गुटका नं० ४३, वेष्टन नं० १००८। आकार ८½"×८"। लेखन-काल १७८२

(४) वही: गुटका नं० १४८, वे० नं० १२६०। आकार ७½"×६"। लेखन-काल सं० १७९९ ज्येष्ठ वदी ११।

३—बरनेक संबोधन काजै, कवि हरखकीर्ति सुण गाजै।

४—जिन मत दिगम्बर भारै, मद मोह मनोबल मारै।

५—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची : कस्तूरचन्द-कासलीवाल। द्वितीय भाग, तथा तृतीय भाग। इस ग्रंथ सूची के चतुर्थ भाग में पृ० ३०६ पर

(४) छहलेश्या कवित्त
(५) भजन व पद संग्रह
(६) नेमिनाथ राजुल गीत
(७) नेमीश्वर गीत
(८) बीस तीर्थङ्कर जखड़ी
(९) मोरड़ा

इसी नाम के एक हर्षकीर्ति सूरि और हो गये है[1]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है[2]। उसके अनुसार इसकी रचना सं० १६८३ सावन मास की नवमी को की गई।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ६ भागों में गुम्फित छोटी सी रचना है। प्रारम्भ में ऋषभदेव, वर्धमान तथा सरस्वती की वन्दना कर वस्तु का निर्देश किया गया है[3]। तत्पश्चात् निगोद तथा पाँच गतियों का वर्णन है। वर्णन-सार इस प्रकार है—

(१) *निगोद-वर्णन :*

मिथ्या, मोह, प्रमाद, मद, इन्द्रिय-विषय और कषाय (क्रोध-मान-माया-लोभ) में लिप्त रहकर असंयमित जीवन व्यापन करने वाला जीव निगोद[4] मे जाता है[5]। निगोद के जीव अनन्त काल तक दुःख भोगते रहते हैं। एक अन्तःमुहूर्त में अनन्त जन्म-मरण करते है। वे एक ही शरीर को आश्रित बनाकर अनन्त संख्या मे रहते है। एक साथ आहार ग्रहण करते हैं, और एक ही साथ स्वासोच्छ्वास लेते हैं[6]।

डॉ० कासलीवाल ने हर्षकीर्ति की एक अन्य रचना 'षटलेश्या वेलि' का भी उल्लेख किया है। पर वास्तव में यह कवि की नवीन रचना नही है। यह कृति चतुर्गति वेलि (आलोच्य वेलि) ही है। इसकी हस्तलिखित प्रति आमेर शास्त्र भंडार जयपुर, के गुटका नं० ३० वेष्टन सं० १५४१ मे सुरक्षित है। यह पत्र ११४ से ११६ पर लिखी हुई है। इस रचना के प्रारंभ मे भूल से 'षटलेश्या वेलि' लिख दिया गया है। अंत में सही नाम 'चतुर्गति वेलि' ही लिखा है।

१—इनका संबंध नागपुर के तपागच्छ से था तथा चंद्रकीर्ति इनके गुरु थे।

२—*सुभ संवत सोल तियासे, नवमी दिन सावण मासे।*

३—रिषभ जिनेसर आदि करि, वर्द्धमान जिन अन्त।
नमस्कार करि सरस्वती, वरणै वेलि भंत ॥१॥

४—अनन्त जीवों के पिण्डभूत एक शरीर को निगोद कहते हैं।

५—मिथ्या मोह प्रमाद मद, इन्द्री विषय कषाय।
जोग असंयम सु'मरे, जीव निगोदह जाय ॥२॥

६—अंगुलहि असंख्या भागो, ग्रहि देह सु सूक्ष्म लागो।
सासह्रि महसा दसमीसा, सब तीनि और छत्रीसा।

(२) *नरक-गति-वर्णन :*

निर्दयी, कृष्णलेश्या का परिणाम वाला (क्रूर और कठोर), रौद्र ध्यान का धरने वाला तथा महारंभी जीव नरक में जाता है[1] । नरक में अनेक प्रकार की वेदनाएँ सहन करनी पड़ती हैं। कोई मुद्गर लेकर शरीर का छेदन करता है, कोई फरसा लेकर शरीर को फाड़ता है, कोई करवत लेकर सिर पर तीक्ष्ण प्रयोग करता है, कोई शूलों की सेज पर सुलाता है, कोई तप्त लोह-पिंड को मुख में डालता है, कोई जलजलती पुत्तलिका से जीव का आलिंगन करवाता है । इस प्रकार सागरोपम[2] स्थिति की वेदना नारकी जीव सहन करता रहता है[3] ।

(३) *तिर्यंच-गति-वर्णन :*

हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और आर्त्त ध्यान में लीन रहने वाला जीव तिर्यंच गति में जाता है[4] । तिर्यंच गति में जीव दिन-रात भोजन के लिए तरसता रहता है, गंदला पानी पीकर प्यास बुझाता है । मांस-मदिरा के बिना उसकी जीवन-स्थिति नहीं । अहर्निश विषय-वासना में मस्त रहता है, उसे आयु की क्षीणता का तनिक भी ख्याल नहीं रहता । जल, थल और नभ में नाना प्रकार

इक अंत मुहूरत माहे, करे जामन मरण अथाहे ।
इक अङ्क असंख्या मानो, तसु आइ रह्यो तहा थानो ।
उपरा परि जीव अनन्ता, मिलि होइ रह्या दलवन्ता ।
इक साथि अनंत अहारो, एक साथि उसास विहारो ।
इक साथि सवे तन छंडे, एक साथि सवे फिर मंडे ।

१—पाहण लीक समान रस, किसन लेस मति छाय ।
रौद्र ध्यान बहु आरंभी, सु उपजे नरकहि जाय ।

२—दस कोड़ा कोड़ी पल्योपम (पल्य अर्थात् कूप की उपमा से गिना जाने वाला काल) को सागरोपम कहते हैं ।

३—इक मोगर ले तनु छांडे, इक ले फरसि तन फाड़े ।
इक दे करवत सिर तीखा, इक बोल कहे अति फीका ।
इक सूल ने सेज सुवाणे, इक तिल तिल काटि रुवाणे ।
इक सीसक वंश गाले, तसु पावे दोष दिखाले ।
ते पुरव भव मद पीयो, अब भुंजिस करणो कीयो ।
इक लोह पिंड करि ताता, मुख दीजे मास जु खाता ।
परनारी लंपट काया, झलझलती पुतलि लाया ।

४—हिंसा अनृत स्तेय रत, संयम सील न भाव ।
आरति माया मे मरें, सु निहचे तिरजंच पाव ।

के—तोता, सारस, मोर चक्रवाक, वृषभ, कुंजर, मृग, सिंह, भेड़िया, बन्दर, बकरी, मछली आदि-शरीर धारण कर वह परिभ्रमण करता रहता है[1]।

(४) मनुष्य-गति-वर्णन :

अल्पारंभी, अल्प परिग्रही, धर्म-प्रेमी और दानी जीव मनुष्य-गति मे जाता है[2]। उच्च गति वाला जीव सदैव गुरुदेव की सत्संगति मे रहता है, संसार को नश्वर समझकर मनको वीतरागी भावनाओं में लीन रखता है, दूसरों का उपकार करता है और पर-पीड़ा को दूर करना अपना कर्त्तव्य समझता है[3]। नीच गति वाला जीव जिन्दगी भर दुख-दैन्य की ज्वाला से जलता रहता है, सिर पर गठरी लादकर नंगे पांवों मजदूरी के लिए भटकता फिरता है फिर भी उसे न खाने को रोटी मिलती है न पहनने को लंगोटी। मिलती है केवल कुलक्षणी स्त्री की ताड़ना[4]।

१—सो निहचै तिरजंच थाए, निसि भोजन जो तरसाए।
जल जोर अगालित पीवै, मद मास बिना नही जीवै।
मव खाई जिको दिठि आवै, व्रत नेम न मान सुहावै।
निसि रहै विषै मदमातो, नवि जाण्यो आउष जातो।
सो तिरजंच योनि रूड़ंतो, दुख पाये पाप गुलतो।
कब हूं सुक सारस मोरो, कबहुं चक्रवाक चकोरो।
कबहूं वृष कुंजर वाजी,, कबहूं मृग सिंघ विराजी।
कबहूं वक बानर महिषो, कबहूं अज मीन न लेखो।
इम जल थल नभचर जातो, रवि तिरजंच नाना भातो।
तिस भूख त्रिषा बध भओ, लदि भार चल्यो धरि कंधो।

२—अलपारंभ परिग्रही, धर्म रवत मन आम।
दिन प्रति पूजा दान दे, मानुस गति तसु वास।

३—तसु मानुष की गति वासो, गुरुदेव विषै निति दासो।
जग की थिति जाणि विनासी, मन रहै है साजि उदासी।
पर काज करै उपगारी, पर पीड़ हरै दुख टारी।
उत्तम कुल जाति सु पावै, धरि नारनु उत्तम आवै।
सुख संपति मंगल चारो, हय गय रथ भरय भंडारो।

४—गति नीच लहै कुल नीचो, धरि दालिद जीवत मीचो।
निति उठि कुनारि सतावै, परदेसै भीख मंगावै।
सिर भार वहै पग नागो, दिवि जाय मजूरी लागो।
भरि पेट लहै नहि रोटी, तनु ढाकण नहीं लगोटी।
मरणो दुत पावण भूंजै, दुख मुख नवो नवि गुंजइ।

(५) *देव गति-वर्णन :*

जो जीव जप-तप-पूजा करता है, संयम-समकित की आराधना करता शुद्ध ध्यान और शुक्ल लेश्या की भावना भाता है वह देव गति में जा है[1]। देव गति में मन के सारे पाप धुल जाते हैं। शरीर मल-मूत्र-मांस विकारों से रहित होकर सुन्दर, शुद्ध और पवित्र बन जाता है[2]। अप्सरा आ आकर विविध प्रकार से प्रेमालाप करती हैं। कभी गाती हैं, क नाचती हैं[3]।

(६) *मोक्ष-गति-वर्णन :*

जो जीव पुण्य और पाप को बेड़ियां तोड़ देता है वह मोक्ष गति अधिकारी होता है[4]। जो संत चारों गतियों के स्वरूप को समझकर गु के पास से ज्ञान प्राप्त करता है, मद-मोह और काम-भावना का दम करता है, त्रस स्थावर आदि जीवों को देखकर चलता है, विषयाश्रव इंद्रियों को हटा लेता है, तपस्या के द्वारा शरीर को सुखा कर कषा विहीन कर देता है और परमात्मा में लीन हो जाता है वही निरंज कहलाता है। उसे न जन्म का भय होता न मृत्यु का[5]।

१—तप जप पुजा जो करै, समकित संयम वीर।
सुद्ध ध्यान लेस्या भली, सुरगति पावै धीर।

२—सो सुरगति पावै धोरी, समता सर झीलै नीरो।
मनके सब पातिक धोवै, मुनि रूप समान के सोवै।
वपु सूरति सुन्दर सारो, मल मूत न मांस विकारो।
सहजां सुक भूषण माला, ज्रुति भोजन अमुत माला।

३—अपछर मिलि आय सुहावा, निस तरही हाव विहावा।
पिय संग रमै रंग राती, गज गामनि दामनि जाती।
इक सेहुरो सोसि दरणावै, इक रंग भरि रस गावै।
तंत ताल कंसाल झमकै, पग घुघर घोर ठमकै।
नव नाट्य महारस नाचै, तनु देखि मनमथ माचै।

४—इह विघ चौगति वरणवी, पुण्य पाप परमाणि।
तिनकै विनसै सासती, मोक्ष महागति जाणि।

५—गति जाणि महा गुणवंता, गुरु ग्यान लहै कोई संता।
निज रूप दिगंबर धारै, मद मोह मनोभव मारै।
विवि तेरहै चरित धारी, इक ग्रास निसार महारी।
दिट्ठि दिजनु जुगंतर चालै, त्रस थावर जंतु निहालै।
विषयाश्रव इंद्री गोपै, निज भाव चिदानंद जोवै।

कला–पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। उसमें प्रवाह एवं माधुर्य है। अलंकारों में अनुप्रास, उपमा, रूपक के एकाध प्रयोग हुए हैं—

अनुप्रास :

(१) मिथ्या मोह प्रमाद मद
(२) मद मोह मनोभव मारे
(३) सिव साधक सो सब ज्ञाता

उपमा

गाहण लीक समान रस

रूपक :

गज गामनि दामनि जातो

छन्द :

काव्य में दोहा एवं सखी छंद का प्रयोग हुआ है।

(३) गर्भ वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि गर्भवती स्त्री की मनःस्थिति, उनकी पीड़ा एवं गर्भगत जीव की विभिन्न स्थितियों से सम्बन्ध रखती है[2]।

तप क्षीण कषाय विहीनो, परमातम अंतर लीनो।
सिव साधक सो सब ज्ञाता, जसु नाम निरंजन ख्याता।
दुकर्मदहक सिद्ध अनंता, मिल जोति रहा गुणवंता।
जिहि जनम जरा नहि दीसे, सुख काल अनंत गमीसे।

१—(क) मूल पाठ में वेलि–नाम आया है—गुरु पसाय बीनव,
गर्भ वेलि बिस्तार ॥१॥

(ख) प्रति–परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति बड़ा उपासरा : यतनसिंह भंडार, बीकानेर के गुटका नं० २६ में सुरक्षित है। गुटके का आकार ८½"×८¼" है। २७६ पत्रों में से यह पत्र संख्या १०६ से १०९ में लिखी हुई है। पत्र १०७ के दूसरे पृष्ठ के किनारे ५२ से ६१ छन्द तक एक कागज चिपका हुआ है। प्रत्येक पृष्ठ में २१ पंक्तियां है और प्रत्येक पंक्ति में २४ अक्षर है।

२—श्री तंदुल वयालिय पइण्णं : श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता लावण्यसमय[1] १६ वीं शती के मध्य होने वाले समर्थ कवियों में से थे। इनके पिता का नाम श्रीधर तथा माता का नाम जमकलदेवी था। इनका जन्म सं० १५२१ में हुआ था। सं० १५२६ में इन्होंने तपागच्छाधिपति लक्ष्मीसागर सूरि से दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होने पर ये लघुराज (जन्म-नाम) से लावण्यसमय कहलाये। इनके विद्यागुरु समयरत्न थे। सं० १५५५ में इन्हें पंडित पद मिला। सं० १५८९ तक ये जीवित थे[2]। १६ वर्ष की अवस्था में ही ये कविता करने लग गये थे। इनके छोटे-मोटे कई ग्रन्थ मिलते हैं। प्रमुख कृतियाँ इस प्रकार हैं[3] —

(१) सिद्धान्त चौपाई सं० १५४३ (२) स्थूलिभद्र एकवीसो १५५३
(३) गौतम पृच्छा चउपई सं० १५५४ चैत्र सुद ११ गुरु
(४) नव पल्लव पार्श्वनाथ स्तवन संवत् १५५८
(५) आलोयण विनति सं० १५६२ (६) नेमनाथ हमचडी सं० १५६२
(७) सेरीसा पार्श्वनाथ स्तवन संवत् १५६२
(८) वैराग्य-विनति-सं० १५६२ (९) रावण मंदोदरी संवाद सं० १५६२
(१०) सुरप्रिय केवलीरास सं० १५६७ (११) विमल प्रबंध रास सं० १५६८
(१२) कर संवाद सं० १५७५ (१३) अंतरीक पार्श्व जिन छंद सं० १५८५
(१४) खिम ऋषि रास सं० १५८५ (१५) आदिनाथ भास सं० १५८७
(१६) बलिभद्र रास सं० १५८९ (१७) यशोभद्र सूरि रास-सं० १५८९
(१८) देवराज वच्छराज चौपाई (१९) सुमति साधु सूरि विवाहलो
(२०) रंग रत्नाकर नेमिनाथ प्रबंध (२१) दृढ़ प्रहारी सज्झाय
(२२) पार्श्व जिन स्तवन प्रभाती (२३) चतुर्विंशति जिन स्तवन
(२४) गौरी सांवली गीत विवाह

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। पुष्पिका से सूचित होता है कि सं० १६५६ में आषाढ़ वदि १४ को देवगिरि में सा जगसी सुत दामाजी ने इसे लिपिबद्ध किया। यथा—'इति श्री गर्भवेलि समाप्तः संवत १६५६ वर्षे आषाढ़ वदि १४ श्री देवगिरी मा सां जगसी सुत दामाजी ना लखित आतम अर्थे।' कवि की अन्य रचनाओं को देखने से सं० १५५३ से सं०

१—मुनि लावण्य समइ भणइ, सुणी सीमंधर स्वामी ॥३४॥
मुनि लावण्य समइ भणइ, कहूं जि कर जोडि ॥११४॥

२—जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० ६८–६९

३—जै० गु० क० भाग १, पृ० ६९-८८ तथा भाग ३, पृ० ५०५–५१४

१५८६ तक उसका रचना-काल ठहरता है। अनुमान है इसी बीच यह रची गई हो।

रचना-विषय :

११४ छंदों की इस रचना में जननी (माँ) का माहात्म्य बतलाते हुए गर्भवती के रूप मे उसकी विभिन्न पीड़ाओं का वर्णन कर जीव को माँ के इस ऋण से उऋण होने का उपदेश दिया गया है। वर्णन-सार को निम्नलिखित शीर्षकों में बाँटा जा सकता है—

(१) *माँ का माहात्म्य :*

माँ जन्मदात्री है। उसने अनन्त पीड़ा सहकर जीव को जन्म दिया है[1]। कवि को इस बात का दुख है कि वह माँ की सेवा नहीं कर सका[2]। माता गंगा के समान पवित्र है। अड़सठ तीर्थों से भी उसकी गरिमा बढ़कर है। पिता पुष्कर तुल्य और गुरु केदार तीर्थ के सदृश है[3]।

(२) *ऋतुमती एवं ऋतुस्नाता का रूप :*

ऋतुमती के रूप में स्त्री को प्रारंभ के तीन दिन बुरी दशा मे व्यतीत करने पड़ते हैं[4]। उसे देव-गुरू के दर्शन दुर्लभ हो जाते हैं। घर के काम-काज से उसे अलग होना पड़ता है। कोई उसकी संगति नहीं करना चाहता।

१—माता पीडो करीमि जिहनी तेहवी कोम केम कहवाय।
शत जीह्वा शत वरसे कहता, पुरी तुहि न कहवाय ॥७॥

२—सुणि सीमधर सामीया, तुतु त्रिभुवन नाथ।
हूं अपराधी मावीउ, अवल अनाथ ॥३॥
मात पिता गुरु देव नी, करइं अवज्ञा जेय।
काल अणंतु तेरजइ, धर्म न जानइ भेय ॥४॥
स्वामी वयणन बोलूं खोटा, लागा मोटा पाप।
भारे गुनही भगति न कीधा, किम छूटो में माप ॥८॥

३—माता गंगा समानो माणो, पिता पुष्कर पासइ।
गुरू केदार समाणु तीरथ, ज्ञानी लोक इम भास ॥१०॥
अठसठ तीरथ थी अधीकेरां, वली जिमेपिइं जाणइ।
स्तुति करी पट दरिसन, तीरथ माता अधीक वखाणइ ॥११॥
तीरथ मा जगि विख्याता, वारोवारि वखानो।
तेहनइ पीडि करी मि केडो, पापी मोर प्राणी ॥१२॥

४—रगत वहइ सिर हुइ न कलाप, आप्रा सु र न थापइ।
देव गुरू ना दरिसन दुहिला, वाणी धर्म न भापइ ॥१४॥

ऋतुस्नाता के रूप में उसका यौवन निखर उठता है। वह प्रिय से मिलक अपने जीवन को पूर्णता (मातृत्व) प्रदान करती है।

(३) *गर्भगत जीव का विकास :*

गर्भगत जीव का उत्तरोत्तर विकास होता है। प्रारंभ के सात दिनों में व जल-बुद्-बुद् के समान होता है। प्रथम मास में मांस-खण्ड का रूप धारण क एक कर्ष कम एक पल[1] का हो जाता है। द्वितीय मास में मांस-पिण्ड बनक घन और समचतुरस्र हो जाता है। तृतीय मास में वह माता को दोह उत्पन्न करता है। चतुर्थ मास में वह चारों ओर चलने लगता है। पंच मास में उसके पाँच अंकुर (दो हाथ, दो पैर और एक सिर) निकलते हैं षष्ठ मास में पित्त और रक्त पुष्ट होता है। सप्तम मास में उसके नौ सं नसें, पांच सौ पेशियाँ और आठ करोड़ रोमकूप उत्पन्न होते हैं[2]। (अष्टम मास में गर्भ पूर्ण हो जाता है)।

(४) *गर्भवती की अवस्था :*

जीव के गर्भ में आने पर गर्भवती की अवस्था बड़ी विचित्र होती है। उसका जी मचलाने लगता है। कड़ी भूख लगती है पर खाने की इच्छा नहीं होती। आंखों में नींद नहीं आती। कंपकंपी छूटकर सिर-दर्द होने

फूटे अंग कलइ पग पीडो, हींडी न सके गाडी।
मस्तके भार अपार जनावइ, पेटे पहिली वाढी ॥१५॥
पुढइ धावल धरणी बिछाही, आभडि छेटि भंडार।
खंडणि पीसणि रांधणि रूडु, न करि घर व्यापार ॥१६॥
जेहनी संगति कोइ न लागइ, लागइ अचवाय।
मिइं आवंता पहिलू माता, कीधु एवडु काय ॥१७॥

१—पाच गुंजा का एक मासा होता है। १६ मासा का एक कर्ष और चार कर्ष का एक पल होता है— श्री तंदुल वयालीय पइण्णं।

२—सात दीवस जल बुद बुद सरीषु, तिहां अवतारिउ प्राणी।
मास दिवसे मांस मइ कहाणु, पल पुणा परमाणु ॥२१॥
बीजइ पेसी मानि विचारु, त्रीजइ तें अधिकेरु।
चुथइ मासि चिहु पखि चालिउ, कीधु नवु नवेरु ॥२२॥
मास पाच मइ पाच अंकूरा, पूरा पेन्तु एम।
पित धरइ छुद मम वाडइ, प्राणी पूरु एम ॥२३॥
मास सातमइ नवसि नाड़ी, नवसि नस बधाइ।
पंच सया पेसी समकालि, अटकोडि रोमराइ ॥२४॥

लगता है[1]। गर्भवती के अति खारा (खट्टा) खाने से गर्भगत जीव के नेत्र नष्ट हो जाते हैं, अति ठंडा खाने में वायु बढ़ती है और अति गर्म खाने से निर्बलता आ जाती है[2]। जीव के गर्भ में आने पर प्रथम मास यों ही (अनजाने में) बीत जाता है। द्वितीय मास में गर्भ की जानकारी होती है। तृतीय मास में पयोधर पीन होने लगते हैं। चतुर्थ मास में लज्जा, संकोच एवं चिन्ता होने लगती है। पंचम तथा षष्ठ मास में नाभि की नाली में रसादि ग्रहण कर जीव पुष्ट होता है। सप्तम मास में जापे के लिए गर्भवती पीहर बुला ली जाती है। अष्टम मास में वह बिना सहारे उठने-बैठने में कठिनाई अनुभव करती है। नवम् मास में उसके पयोधर दूध से भर जाते हैं। दशम् मास के लगने पर वह एक-एक दिन गिनने लगती है[3]। प्रसव के समय उसकी पीड़ा अत्यन्त बढ़ जाती है। वह अपने कर्मों को दोष देती है। माता, पिता, पति सबको पापी कहकर अपने पाप कर्म का प्रायश्चित करती है[4]।

१—उदर थकी गरभि गति माडी, पहिलु पगथी दाढी ।
कीधा चाला अति ऊचाला, अति भूख लगाडी ॥२७॥
अन्न उदक पिण इछा टाली, आरत बहुत बणाई ।
कीधी कलउ रथ ऊबाई, नयणे नींद गमाई ॥२८॥

२—अति खारो गर्भ नयण नासइ, अति सीतल हुइ वाय ।
अति उन्हउं जिमतां बल जाइ, भोग रोग घण थाइ ॥३५॥

३—पहिलु मास गयु आलाइइ, बीजइ गर्भ जनाइइ ।
त्रीजइ मासि पयोधर पीणा, चउथे चिंता लाजइ ॥६८॥
उतपति गर्भ तणी नहीं लाजइ, नर पंचन उदर उघाडइ ।
छानी छानी मार्ता पानइ, नरहि उदर ऊघाडइ ॥६९॥
मास पाचमइ पंचन सरीखु, छट्ठइ कीधु न्याही ।
नाभि तणी नालि पंखइ, वीकूसी नीधु माही ॥७०॥
मास सातमइ मन्नुर माडी, पर पगु धरि फेरइ ।
भगत तणी भरतार विछाही, तिहरि पाछि नेडइ ॥७१॥
मासि आठमइ उदर दादर, धरा आफलइ भरार ।
ऊठी बइसी न सकइ माडी, थंभ बिना न सनार ॥७२॥
नुमइ मासे पयोधर पीहुला, जिम जिम दूधइ भरइ ।
दहि निशि चपला पादल पाय, ऊंचा मन्नु उतारइ ॥७३॥
दसमइ मासि आइ दीए गणती, पडती एक हुक हाणी ।
गर्भ तणा दुख अति बहुइ भरिता, रमु हवो करि साजो ॥७४॥

४—आगइ पाप कमाया तु, हइ फीडउं सिर बारि ।
पर भवि पाप किया नि कीधो, इहि गर्भ देईरि ॥८०॥

(५) *माँ के ऋण से उऋण होने का उपाय :*

इतने भयंकर कष्ट सहकर मां जिस पुत्र को जन्म देती है उसके लालन पालन अध्ययन-विवाहादि में भी वह उतने ही कष्ट उठाती है[1]। पर पु बड़ा होकर मां के उपकारों को भूल उससे अलग हो अधोगति में जात है[2]। कवि अन्त में इस स्थिति मे दुखी होकर अपने आराध्य देव सीमंध स्वामी से केवल मां के उपकारों मे उऋण होने का उपाय पूछता है जे पांच प्रकार का है[3]—

(१) योग मार्ग अंगीकृत कर शरीर को निर्मल रखना।
(२) माता-पिता को सिद्ध-क्षेत्र-शत्रुंजय की यात्रा करवाना।
(३) माता-पिता की पूजा (सेवा) करना।
(४) माता-पिता के वचनों पर अटूट विश्वास रखना।
(५) जिन प्रासाद बनाकर जिन प्रतिमा की प्रतिष्ठा करवाना।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। भाषा मे भावों को वहन करने की पूरी क्षमता है। अलंकारों की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। दो जगह उपमा का प्रयोग अनायास हो गया है—

माय बाप ते मोटां पापी, जे जनमी हूं बेटी।
वली पापणी हू गाढी, कंत ए कातइ लेटी ॥८१॥
पापी कंत सवारथ पापी, जे दुख मेरु समान।
सुख हूयुं ते सरसव सरीखुं, घरी तुं ज प्रधान ॥८२॥

१—जिणि मलमूत्र अनेक ऊसारिया, हीयडइ आणी हेज।
पुत्र तणा सुख कारणि कीधी, माता अलगी सेज ॥१०१॥
आपणि सेज जो सूई सुख हाणी, पुत्र पुटाडइ ने पइ।
भीली उरी वेदना वेठइ। ऊंघेरइ बहु लेवि ॥१०२॥

२—पोढो पुत्र पढिउ परणाविउ, मलयु थयु प्रधिकारी।
खम्मा दोहिला दुख भरि मेहल्या, मात तात वीसारी ॥१०४॥
ते रणीउ ऊरण नवि थाइ, मरी अधो गति जाइ।
उत्तम भगति भली कारइ, कुलदे कोत तार तारइ ॥१०५॥

३—मात पिता नइ छूटवा, पीछा पंच उपाइ।
योगा मारग आदरी, राखइ निर्मल काय ॥१०८॥
सिद्ध क्षेत्र सेत्रुंजयणीं, गढ गीरुउ गिरिनारि।
जात्र करावइ जुगती, तु छुटइ संसार ॥१०९॥
मात पीता पय पूजी करि, दयि प्रदक्षण दिवि।
मात वचनि छूटे सही, मनि म माणु भ्रांति ॥११०॥

(१) माता गंगा समानी वाणी, पिता पुस्कर पासइ
    गुरु केदार समाणु तीरथ, वानी लोक इम भास ॥१०॥

(२) मात दीवम जल वुद वुद सरीरु, तिहां अवतरिउ प्राणी ॥२१॥

छंद :

काव्य में दोहा एवं हरिपद[1] छंद का प्रयोग हुआ है। अधिक संख्या हरिपद की है। प्रति में प्रारंभ में लिखा है 'राग आसाउरी ॥ढाल वेलुनु ॥'

उदाहरण :

दोहा :

ज्ञान दिवाकर देवतु, मेवइं सुरनर इंद ।
पाय प्रणमी प्रभु वीनउ, जयवंतो जगिनंद ॥१॥

हरिपद :

स्वामी वयण न बोलु खोटां, लागां मोटां पाप ।
भरि गुनहो भगति न कीधी, किम छूटी मे आप ॥८॥

(८) वृहद् गर्भ वेलि[2]

प्रस्तुत वेलि का वर्ण्य-विषय वही है जो लावण्य समय कृत गर्भ वेलि' का है। 'वृहद्' शब्द कृति की दीर्घता को व्यक्त करता है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता रत्नाकर गणि सत्रहवीं शती के उत्तरार्द्ध के कवि थे। वेलि

जिन प्रतिमा प्रासाद जिन, वरज्ञावंइ आमारि ।
मात पीउ नामि करि, छूटे पंच प्रकारि ॥१११॥

१—विषम चरण में १६ तथा समचरण में ११ मात्राएं। अन्त म ऽ।

२—(क) मूल पाठ में वेलि-नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—'इति-वृहद् गर्भ वेलि सम्पूर्ण।'

(ख) प्रति-परिचय:-इसकी हस्तलिखित प्रति ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट बड़ोदा के ग्रंथांक १६१६० में सुरक्षित है। पुष्पिका से सूचित होता है कि इसे सं० १६६७ में पोष शुक्ला ८ को पं० न.रायण ने लिपिबद्ध किया। यथा: 'इति वृहद् गर्भ वेलि संपूर्ण ॥ संवत् १६६७ वर्षे पोष मासे शुक्ल पक्षे ८ स्या लिखो ॥ लिखतं च ॥ दुर्दांडी रत्नमध्य नारायण ॥ कल्याणमस्तु लेखक पाठकयोः ॥ शुभं भूयात् ॥ श्री रस्तु ॥ स्वर्ग वाचनार्थं ॥'

के अन्त में इन्होंने अपने को माइदान का शिष्य लिखा है[1]। रत्नाकर सूरि नाम के एक और कवि सोलहवीं शती के प्रारंभ में हो गये हैं[2]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है उसके अनुसार इसकी रचना सं० १६८० में वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को की गई थी[3]।

रचना-विषय :

१३ ढालों[4] के १०६ छंदों की इस रचना में गर्भगत जीव का विकासक्रम तथा जन्म होने पर १०० वर्ष तक की दस अवस्थाएँ[5] वर्णित हैं। गर्भगत जीव का विकास-क्रम 'श्री तंदुल वयालीस पइण्णं' पर आधारित है[6]। जिसका विवेचन हम लावण्य समय कृत 'गर्भ वेलि' में पहले कर चुके हैं। अतः यहाँ उसकी पुनरावृत्ति न करते हुए केवल जीव की दस अवस्थाओं का ही वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

५ वीं ढाल में जीव की प्रारंभ की दस वर्ष की अवस्था (बाला) का वर्णन किया गया है। इस अवस्था में माता पुत्र को पालने में झुलाती है। उसे दूध पिलाती है। मल-मूत्र से उसकी सफाई करती है। उसके अस्वस्थ होने पर स्वयं पथ्य रखती है और यथा संभव पुत्र की मनोकामना को पूर्ण करने का प्रयत्न करती है[7]।

१—रत्नाकर गणिवर तणु', गच्छ निर्मल रेसु, कलियुग माहि प्रधान ॥१४॥
 बुधि निधान सगुण भला, उपगारी रे माइदान सुजाण।
 तासु शिष्य शिक्षा कहइ, करि साचो रे, जिन धुम मोक्ष निधान ॥१५। ढाल १३॥

२—जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० ४१ तथा भाग ३, पृ० ४५४-५५।

३—संवत सोल असीसमइ, वैशाखह रेसु सुदि पुनिम सुभ वार ॥१४। ढाल १३॥

४—प्रति में १३ ढालो का उल्लेख मिलता है। आरम्भ के ८ छन्द विशेष ढाल में ही लिखे गये हैं। पर उसे लिपिकार ने ढाल गिना नहीं है।

५—दस अवस्थाएँ निम्नलिखित हैं—
 (१) बाला (२) क्रीड़ा (३) मन्दा (४) बला (५) प्रज्ञा (६) हायनी (७) प्रपंचा (८) प्राग्भारा (९) मुन्मुखी (१०) शायिनी। प्रत्येक अवस्था दस-दस वर्ष की होती है।
 —श्री तंदुल वयालीस पइण्णं : गाथा ३१।

६—प्रारम्भ की चार ढालों में इसका वर्णन है।

७—पालणि तव बालक रोवइ', जुणि रे धाई माया।
 आवइ सुतनि हुलरावइ, काहे रे तूं रोवई जाया ॥१॥
 माता तन खीर पीवावइ, मोहीरे कंठ लगावइ।
 छइ नाम उनाल लरावइ, बइठीरे लीद करावइ ॥३॥

छठी ढाल में ११ से बीस वर्ष की अवस्था (क्रीड़ा) का वर्णन किया गया है। इस अवस्था मे पुत्र को ज्ञानार्जन के लिए पाठशाला भेजा जाता है। कुलीन कन्या के साथ उसका विवाह किया जाता है और माता पुत्र और पुत्र-वधू को करोड़ों वर्ष जीने का आशीर्वाद देती है[1]।

७ वी ढाल मे २१ से ३० वर्ष की अवस्था (मन्दा) का वर्णन किया गया है। इस अवस्था मे यौवन का उभार जीव को प्रेमान्ध बना देता है। पशु-पक्षियों के जीवन से भी उसका जीवन हेय हो जाता है। जिस माता के गर्भ मे दस मास तक वह अधोमुखी होकर पड़ा रहा उसका साथ भी छोड़ देता है[2]।

८ वी ढाल मे ३१ से ४० वर्ष की अवस्था (बला) का वर्णन किया गया है। इसी ढाल मे ४१ से ५० वर्ष की अवस्था (प्रज्ञा) का भी वर्णन है। इस अवस्था मे जीव धन के पीछे दौड़ता है। धन-संग्रह के लिए वह छल-कपट करता है, असत्य वचन बोलता है, कम तोलता-मापता है। वस्तुओं मे मिलावट करता है। चोर-कृत्य करता है और अज्ञान-वश अपने लम्बे परिवार पर सगर्व विशेष ममता-भाव रखता है[3]।

रोवई निमि नीद न आवइ, मुतइरे मात जगवाइं।
माता तिणि भांन बिसोवइ, मूकइरे पुत्र पुढावइं ॥४॥
बालक तनि व्याधि उपनि, पथ्य रे माता जीवइं।
मुत मोहे अधिकी राती, छतहरे नुखाप जिमती ॥५॥

१—बार बरस उपरि जब हुवउ, विनय निपुण गुणसार।
सोल बरस विवहार कुसल, पछि हुवो मुआ सिंगार ॥३॥
अति मइमंत मत जोबन भर्यो, आगरा अङ्ग उदार।
मात पिता जाणी कुलवन्ती, परणाइ सुखकार ॥४॥
वहु लागी सासु के चलणे, सासु देइ असीस।
न्थ पुत सुहाग सवै, सुत जिवो कोटि वरिस ॥५॥

२—अब बनिता संगि प्रेम लपटा तूं, वा दिन बिसरि गयो।
चोबा चंदन और अरगजा, सूंघत मगन भयो ॥३॥
ए रुकि रुकि चहु दिशि तूं निरखत, और न कोउ वन्यां।
विषयारसि भूल्यो मृग तृष्णा, जन्म बेजात गन्यो ॥४॥
एरे मइथे तिनि दस तुहि बीने, एकन काज सर्यो।
तिहि दस मास वस्यो उधइ मुखि, कुलिबा संगि हर्यो रे ॥५॥

३—कपट अधर्म झूठ मुखि बोलति, बस्तुमइ वस्तु संचारइ।
मापत तोलत गनत भूलावइ, खोटी वस्तु सचारइ ॥३॥
इक चोरी करि गाठि विदारइ, इक पामी देइ मारइ।
अइसे पाप करी धन संचइ, दुख महि कौन उगारइं ॥४॥

९ वीं ढाल में ५१ से ६० (हायनी) तथा ६१ से ७० (प्रपंचा) वर्ष की अवस्था का वर्णन किया गया है। इस अवस्था में आंखों का प्रकाश क्षीण हो जाता है। धार्मिक कृत्य न करने की भावना मन को चिन्तातुर बना देती है। शरीर कमजोर हो जाता है। बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। घर में किसी प्रकार का मान सम्मान नहीं रहता[1]।

१० वीं ढाल में ७१ से ८० वर्ष की अवस्था (प्राग्भारा) का वर्णन किया गया है। इस अवस्था में जीव को नींद नहीं आती। कानों से सुनाई नहीं देता। नाक से पानी झरता है। दांत गिर जाते हैं। शरीर के सारे अंग शिथिल हो जाते हैं। उसे किसी प्रकार की सुध-बुध नहीं रहती। वह स्त्री और पुत्र का अप्रिय बन जाता है। फिर भी उसे घर का मुख अच्छा लगता है[2]।

११ वीं ढाल में ८१ से ९० वर्ष की अवस्था (मुन्मुखी) का वर्णन किया गया है। इस अवस्था में जरा और रोग शरीर को ग्रस लेते हैं। दिन-रात खांसी चलती है, कफ गिरता है। परिवार के लोग घृणा करते हैं[3]।

ए घर ए धन सुत वनिता सब, करत हइ मेरा मेरा।
समझु नाहि मुढ अज्ञानी, आउ घटत नही तेरा ॥८॥

१—वरस पचास पछी जियरा, चितातुर मित होइ रे।
दृष्टि तिमिर व्यापइ तवइ, पछितावइ चित कोइ रे ॥३॥
माया ममता लपटि रह्यो, धर्म न किमइं कराइरे।
क्रोध प्रमाद अधिक बध्यो, देह निबल नित थोइ रे ॥४॥
माठि पछी सुधि मति नाठी, घर जन कोइ न पूछइ रे।
काम काज करता रहइ, तउ पणि कोइ न इछइरे ॥५॥

२—आठमुं रे दसकुं आइयो, गति मति हीनुं सब थाइ।
आखिनरे नींद न आवइ, सुरति श्रवनि न समइ ॥२॥
उल्हरि रे धन जिम वरसतां, नाक झरन झरलाइ।
दसन परे आउ रहित थइ, रसन मति हहल लाइ ॥३॥
धरणी रे कामिन आवइ, सिक्षा सुत न सुहाइ।
अब तु मरे घर माहे रहो, पंचम मइं न समाइं ॥४॥
देही रे सिथल बंधन थया, लाज रहित अङ्ग होइ।
विदारे ठपि व्यापइ घणी, वांछ घर मुख सोइ ॥५॥

३—बहु आरम्भ करी घर करयाए, पणि रहित सकल तिहा थापुहुए।
यव वड सीखवइं छोकराए, कहइ हाटि पधारो डोकराए ॥२॥
मा- ठा भला दीकराए, घणा फूल फूले सुंघइ भस्याए।
माता ... नामं मावइ घणीए, पिता हाट धडा थूंकी भरयाए ॥३॥
हाटि ...
देखता मूं...

१२ वीं ढाल में ६१ से १०० वर्ष की अवस्था (शामिनी) का वर्णन किया गया है। इस अवस्था में सारी इंद्रियाँ अशक्त हो जाती हैं। जीव खाट पर पड़ा रहता है। कुटुम्ब के लोग 'अब भी नहीं मरा,' 'अब भी नहीं मरा' चिल्लाते रहते हैं[1]।

१३ वीं ढाल में कवि सांसारिक प्राणियों को उपदेश देता हुआ कहता है कि यह संसार स्वार्थी है। माता, पिता, भाई, स्त्री आदि के संबंध क्षणिक हैं। सब मेरा-मेरा कहते हैं पर कोई किसी का नहीं है। सारा धन यहीं का यहीं पड़ा रहने वाला है। मरते समय स्वअर्जित पाप-पुण्य ही साथ देते हैं। जीव निगोद, नरक, तिर्यंच, देव आदि की अनन्त योनियों में भटकता हुआ मनुष्य-जन्म में आया है। यहाँ पर भी यदि शतायु होकर जीवन को यों ही नष्ट कर दिया तो फिर दुःखों का अन्त कैसे होगा? अतः मानव-जीवन को सफल बनाने के लिए अरिहंत देव, निर्ग्रन्थ गुरु और दया धर्म की सतत आराधना करते रहना चाहिये[2]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। अलङ्कारों में उपमा का विशेष प्रयोग हुआ है। यथा—

१—सूता खाट पड्यो रहइरे, तेउ पढ्ढइ जाणि।
मान सहु तन बीसरी रे, पसु सम तासु बखाणि ॥१॥
जरा थिग रूप विईवणहार, कुटंब कहइ।
अजहूँ ना मरइरे, मरिस्यइ सगला लारि ॥२॥
किहू टेढो पगडी धरतुरे, किइ गति चपल वेस।
जिम्ह मगि पृथवी चंपतुरे, आगणि हुवउ विदेस ॥७॥
इन्द्री सर्व विकल थयारे, सर्व गयु तन तेज।
तउही मन महि चिंतइइ, व्यापइ अति गृह हेज ॥८॥

२—ए संसार स्वउ अछइ, सुणि प्राणीरे। स्वारथ ढवी लोक ॥
सुगुण सुणि प्राणीरे, मात पिता बंधव बहू। सगपण हइ सव फोक।
मेरा मेरा क्या करइ, तेरा नाहित कोइ।
कोई सगि न आवइ, कुटंब सहोदर लोइ ॥२॥
बहु प्रपंच धन मेलीउ, गब्यो रह्यो घर माहि।
पाप पुण्य जेउइ कमासु, अंति चल्यो संगि तोहि ॥३॥
ए सिख्या सतगुरु तणी, राखो अविहइ उरङ्गि।
अरिहंत देव परम दया, सेवो सगुरु महंत ॥१२॥
पाछि तू पछिताइसी, ताते वहि लुवेति।
सार संजम व्रत पालिइ, आतमा सुख कइहेति ॥१३॥

(१) नट जिम स्वांग घणा कीया जी, नव नव रूप विरूप रे।
(२) करत गुमान म्हारे वीरे, जोवन-धन ए दुम्रुर की छाया।
(३) नट के मर्कट जाल पसारइ, प्रदर्ग माया पागि परे।

छन्द :

ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रति में प्रत्येक ढाल की राग का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

(१) ढाल १ राग सोरठी
(२) ढाल २ राग जइतसरी
(३) ढाल ४ राग सोरठी
(४) ढाल ५ राग गोडी
(५) ढाल ६ राग गुजरी
(६) ढाल ७ राग सारिग
(७) ढाल ८ राग मल्हार
(८) ढाल १० राग पंचम
(९) ढाल ११ मावनानी
(१०) ढाल १३ भमरानी

(५) जीव-वेलड़ी[1]

प्रस्तुत वेलि जीव की निगोद[2] अवस्था से लेकर मुक्त-अवस्था तक की विकास गाथा से सम्बन्ध रखती है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता देवीदास[3] नामक कोई जैन कवि हैं। देवीदास नाम के तीन जैन कवि हो गये हैं। पहले द्विज देवीदास जिनका काव्य-काल देसाईजी ने संवत १६११ माना है[4]। दूसरे देवीदास नंदनगणि[5] और तीसरे पं० देवीदास जिन्होंने संवत १८२४ में 'प्रवचनसार भाषा' की रचना की[6]। अनुमान है पं० देवीदास ही इसके रचनाकार रहे हों।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—
'इति जीव वेलड़ी संपूर्ण'
(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति जयपुर के विजयराम पाड्या शास्त्र भंडार मंदिर के गुटका नं० ७२ में सुरक्षित है। यह गुटके के पत्र नं० २१ में लिखी हुई है।

२—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रहः सं० भैरोदान सेठिया, भाग २,पृ० १६

३—देवीदास कहत रे भाई, करम फंद निनवारो ॥२१॥

४—जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहासः पृ० ६०६

५—राज० के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूचीःभाग ३, पृ० १२२,तथा २७२

६—वहीः भाग २, पृ० १८४

रचना-काल :

वेलि के ग्रन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं हुआ है। 'प्रवचन सार भाषा' का रचना-काल सं० १८२४ होने से अनुमान है इसी के आसपास यह वेलि भी रची गई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेल २१ छन्दों की रचना है। इसमें जीव की विभिन्न योनियों का वेलड़ी के साथ रूपक बांधा गया है। प्रारम्भ मे चेतन जीव को संसार की असारता का बोध कराते हुए उसके नरक-निगोद स्थित अनन्त दुखों का वर्णन किया गया है[1]। इन दुखों को भोगने के बाद ही वह एकेन्द्रिय धारी जीव विभिन्न पर्यायों मे परि-भ्रमण करता हुआ पंचेन्द्रिय धारी मनुष्य बनता है[2]।

मनुष्य-जन्म ग्रहण करने मात्र से ही उसकी आत्मा का कल्याण नहीं हो जाता। जब तक जीव सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे ग्रन्थ को पहिचान नहीं कर लेता तब तक वह संसार के चक्रों मे ही फंसा रहता है। आत्म मुक्ति के लिए अपने आपको पहिचानना पहली शर्त है[3]। आत्मतत्व और पुद्गल के अन्तर को समझ लेने पर ही अलख, अमूर्त परब्रह्म हृदय मंदिर में प्रतिष्ठित होना है[4]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोल चाल की राजस्थानी है। वह कहीं भी दुर्बोध नहीं हो पाई है।

१—सतगुर कहत सुनो रे भाई, यो संसार असारा।
तामे भ्रमत भ्रमत यह चेतन, लह्यिो आर न पारा ॥१॥
नरक निगोद काल बहु बीते, कठिन देह त्रस हूवो।
तामें जीव राम इक स्वांस मे, जनम अठारा मूवो ॥२॥

२—क्रम क्रम एक एक इंद्रिन सो, बठन वार सों मेला ॥४॥
प्रथमो काय आदि बेइंद्रि, आदि घरी बहु काया।
विकल त्रय सुख दुख बहु भुगते, फिरि पस पंखी मे आया ॥५॥

३—देव धरम गुरु ग्रंथ सत्य नूं साचो पंथ न पायो।
बिन सम्यक्त्व जीव तू भटको, नाहि ठिकाने आयो ॥१२॥
जब अरिहन्त देव पहिचानो, निज गुरु ग्रंथ समूजो।
जब तिनके परसाद आप हूं हिये उपादे सूजो ॥१३॥
जो जिय जिनवर के जू दरब गुण, अरु परजाय न जानो।
जो जिन आपस रूप आपनों, नहीं आपु पहिचानो ॥१४॥

४—आतमतत्व अवर पुद्गल जब, जुदो जुदो कर लेखें।
आप सरूप आपनें दिल में, अलख अमूरत देखें ॥१६॥

(१) नट जिम स्वांग घणा कीयाजी, नव नव रूप विरूप रे।
(२) करत गुमान कहा रे वोरे, जोवन-धन ए दुपहर की छाया।
(३) नइ के मर्कट जाल पसारइ, अइसें माया पासि परे।

छन्द :

ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रति में प्रत्येक ढाल को राग का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

(१) ढाल १ राग सोरठी
(२) ढाल २ राग जइतसरी
(३) ढाल ४ राग सोरठी
(४) ढाल ५ राग गोडी
(५) ढाल ६ राग गुजरी
(६) ढाल ७ राग सारिंग
(७) ढाल ८ राग मल्हार
(८) ढाल १० राग पंचम
(९) ढाल ११ मावनानी
(१०) ढाल १३ भमरानी

(५) जीव-वेलड़ी[1]

प्रस्तुत वेलि जीव की निगोद[2] अवस्था से लेकर मुक्त-अवस्था तक की विकास गाथा से सम्बन्ध रखती है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता देवीदास[3] नामक कोई जैन कवि हैं। देवीदास नाम के तीन जैन कवि हो गये हैं। पहले द्विज देवीदास जिनका काव्य-काल देसाईजी ने संवत १६११ माना है[4]। दूसरे देवीदास नंदनगणि[5] और तीसरे पं० देवीदास जिन्होंने संवत १८२४ में 'प्रवचनसार भाषा' की रचना की[6]। अनुमान है पं० देवीदास ही इसके रचनाकार रहे हों।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—
'इति जीव वेलड़ी संपूर्ण'
(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति जयपुर के विजयराम पाड्या शास्त्र भंडार मंदिर के गुटका नं० ७२ में सुरक्षित है। यह गुटके के पत्र नं० २१ में लिखी हुई है।
२—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह: सं० भैरोंदान सेठिया, भाग २, पृ० १६
३—देवीदास कहत रे भाई, करम फंद निरवारो ॥२१॥
४—जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास: पृ० ६०६
५—राज० के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची: भाग ३, पृ० १२३ तथा २७२
६—वही: भाग २, पृ० १८४

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं हुआ है। 'प्रवचन सार भाषा' का रचना-काल सं० १८२४ होने से अनुमान है इसी के आसपास यह वेलि भी रची गई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेल २१ छन्दों की रचना है। इसमे जीव की विभिन्न योनियों का वेलड़ी के साथ रूपक बांधा गया है। प्रारम्भ में चेतन जीव को संसार की असारता का बोध कराते हुए उसके नरक-निगोद स्थित अनन्त दुखों का वर्णन किया गया है[1]। इन दुखों को भोगने के बाद ही वह एकेन्द्रिय धारी जीव विभिन्न पर्यायों मे परिभ्रमण करता हुआ पंचेन्द्रिय धारी मनुष्य बनता है[2]।

मनुष्य-जन्म ग्रहण करने मात्र से ही उसकी आत्मा का कल्याण नही हो जाता। जब तक जीव सच्चे देव, सच्चे गुरू और सच्चे ग्रन्थ की पहिचान नही कर लेता तब तक वह संसार के चक्रों मे ही फंसा रहता है। आत्म मुक्ति के लिए अपने आपको पहिचानना पहली शर्त है[3]। आत्मतत्व और पुद्गल के अन्तर को समझ लेने पर ही अलख, अमूर्त्त परब्रह्म हृदय मंदिर मे प्रतिष्ठित होना है[4]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोल चाल की राजस्थानी है। वह कही भी दुर्बोध नही हो पाई है।

१—सतगुर कहत सुनो रे भाई, यो संसार असारा।
तामे भ्रमत भ्रमत यह चेतन, लहियो भ्रार न पारा ॥१॥
नरक निगोद काल बहु बीते, कठिन देह त्रस हूवो।
तामे जीव राम इक स्वांस मे, जनम अठारा मूवो ॥२॥

२—क्रम क्रम एक एक इंद्रिन सो, बढन वार सो मेला ॥४॥
प्रथमी कार्य आदि बेइंद्रि, आदि धरी बहु काया।
विकल त्रय सुख दुख बहु भुगते, करि पस पंखी मे आया ॥५॥

३—देव धरम गुरू ग्रंथ सत्य तूं साचो पंथ न पायो।
बिन सम्यक्त्व जीव तू भटको, नाहि ठिकाने आयो ॥१२॥
जब अरिहन्त देव पहिचानो, निज गुरू ग्रंथ समूजो।
जब तिनके परसाद आप हूं हिये उपादे सूजो ॥१३॥
जो जिय जिनवर के जू दरब गुण, अरू परजाय न जानो।
जो जिन आपस रूप आपनों, नही आपु पहिचानो ॥१४॥

४—आतमतत्व अवर पुद्गल जब, जुदो जुदो कर लेखें।
आप सरूप आपनें दिल मे, अलख अमूरत देखें ॥१६॥

(१) नट जिम स्वांग घणा कीयाजो, नव नव रूप विरूप रे।
(२) करत गुमान कहारे बोरे, जीवन-धन ए दुपहर की छाया।
(३) नइ के मर्कट जाल पसारइ, अइसे माया पासि परे।

छन्द :

ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रति में प्रत्येक ढाल की राग का उल्ले[illegible] प्रकार मिलता है—

(१) ढाल १ राग सोरठी
(२) ढाल २ राग जइतसरी
(३) ढाल ४ राग सोरठी
(४) ढाल ५ राग गोडी
(५) ढाल ६ राग गुजरी
(६) ढाल ७ राग सारिंग
(७) ढाल ८ राग मल्हार
(८) ढाल १० राग पंचम
(९) ढाल ११ भावनानी
(१०) ढाल १३ भमरानी

(५) जीव-वेलड़ी[1]

प्रस्तुत वेलि जीव की निगोद[2] अवस्था से लेकर मुक्त-अवस्था तक की वि[illegible] गाथा से सम्बन्ध रखती है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता देवीदास[3] नामक कोई जैन कवि हैं। देवीदास नाम के [illegible] जैन कवि हो गये हैं। पहले द्विज देवीदास जिनका काव्य-काल देसाईजी ने सं[illegible] १६११ माना है[4]। दूसरे देवीदास नंदनगणि[5] और तीसरे पं० देवीदास जिन्हों[illegible] संवत १८२४ में 'प्रवचनसार भाषा' की रचना की[6]। अनुमान है पं० देवीदास [illegible] इसके रचनाकार रहे हों।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—
'इति जीव वेलड़ी संपूर्ण'
(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति जयपुर के [illegible] [illegible] भंडार मंदिर के गुटका नं० ७२ में सुरक्षित है। यह गुटके के पत्र सं० [illegible] लिखी हुई है।

२—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह: सं० भैरोदान सेठिया, भाग २,पृ० १६

३—देवीदास कहत रे भाई, करम फंद निवारो ॥२१॥

४—जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास: पृ० ६०६

५—राज० के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची:भाग ३, पृ० १२२ तथा १४२

६—वही: भाग २, पृ० १८४

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं हुआ है। 'प्रवचन सार भाषा' का रचना-काल सं० १८२४ होने से अनुमान है इसी के आसपास यह वेलि भी रची गई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेल २१ छन्दों की रचना है। इसमे जीव को विभिन्न योनियों का वेलड़ी के साथ रूपक बांधा गया है। प्रारम्भ मे चेतन जीव को संसार की असारता का बोध कराते हुए उसके नरक-निगोद स्थित अनन्त दुखों का वर्णन किया गया है[1]। इन दुखों को भोगने के बाद ही वह एकेन्द्रिय धारी जीव विभिन्न पर्यायो मे परिभ्रमण करता हुआ पंचेन्द्रिय धारी मनुष्य बनता है[2]।

मनुष्य-जन्म ग्रहण करने मात्र से ही उसकी आत्मा का कल्याण नहीं हो जाता। जब तक जीव सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे ग्रन्थ की पहिचान नही कर लेता तब तक वह संसार के चक्रों मे ही फंसा रहता है। आत्म मुक्ति के लिए अपने आपको पहिचानना पहली शर्त है[3]। आत्मतत्व और पुद्गल के अन्तर को समझ लेने पर ही अलख, अमूर्त्त परब्रह्म हृदय मदिर में प्रतिष्ठित होना है[4]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोल चाल की राजस्थानी है। वह कहीं भी दुर्बोध नही हो पाई है।

१—सतगुर कहत सुनो रे भाई, यो संसार असारा।
तामें भ्रमत भ्रमत यह चेतन, लहियो पार न पारा ॥१॥
नरक निगोद काल बहु बीते, कठिन देह अम हूवो।
तामे जीव राम इक स्वांस मे, जनम अठारा मूवो ॥२॥

२—क्रम क्रम एक एक इंद्रिन सो, बठन वार सो मेला ॥४॥
प्रथमी कार्य आदि बेइंद्रि, आदि धरी बहु काया।
विकल त्रय सुख दुख बहु भुगते, फरि पस पंखी मे आदा ॥५॥

३—देव धरम गुरू ग्रंथ सरद नूं साचो पंथ न पायो।
बिन सम्यक्त्व जीव तू भटको, नाहि ठिकाने आयो ॥१२॥
जब अरिहन्त देव पहिचानो, निज गुरू पंथ समूजो।
जब तिनके परसाद आप हूं हिये उपादे सूजो ॥१३॥
जो जिय जिनवर के जू दरव गुण, अरू परजाय न जानो।
जो जिन आरस रूप आवनो, नही आतु पहिचानो ॥१४॥

४—आतमतत्व अवर पुद्गल जब, जुदो जुदो कर लेखें।
आप सरूप आवनें दिन में, अलख अमूरत देखें ॥१६॥

(१) नट जिम स्वांग घणा कीयाजो, नव नव रूप विरूप रे।
(२) करत गुमान कहा रे वौरे, जोवन-धन ए दुपहुर की छाया।
(३) नइ के मर्कट जाल पसारइ, अइसे माया पासि परे।

छन्द :

ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रति में प्रत्येक ढाल की राग का उल्लेख इ प्रकार मिलता है—

(१) ढाल १ राग सोरठी — (२) ढाल २ राग जइतसरी
(३) ढाल ४ राग सोरठी — (४) ढाल ५ राग गोड़ी
(५) ढाल ६ राग गुजरी — (६) ढाल ७ राग सारिंग
(७) ढाल ८ राग मल्हार — (८) ढाल १० राग पंचम
(९) ढाल ११ भावनानो — (१०) ढाल १३ भमरानी

(५) जीव-वेलड़ी[1]

प्रस्तुत वेलि जीव की निगोद[2] अवस्था से लेकर मुक्त-अवस्था तक की विकास गाथा से सम्बन्ध रखती है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता देवीदास[3] नामक कोई जैन कवि हैं। देवीदास नाम के तीन जैन कवि हो गये हैं। पहले द्विज देवीदास जिनका काव्य-काल देसाईजी ने संवत १६११ माना है[4]। दूसरे देवीदास नंदनगणि[5] और तीसरे पं० देवीदास जिन्होंने संवत १८२४ में 'प्रवचनसार भाषा' की रचना की[6]। अनुमान है पं० देवीदास ही इसके रचनाकार रहे हों।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—
'इति जीव वेलड़ी संपूर्ण'
(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति जयपुर के दिगंबर [illegible] भंडार मंदिर के गुटका नं० ७२ में सुरक्षित है। यह गुटके के पत्र नं० [illegible] लिखी हुई है।
२—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह: सं० भैरोदान सेठिया, भाग २, पृ० ११
३—देवीदास कहत रे भाई, करम फंद निरवारो ॥२१॥
४—जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास: पृ० ६०६
५—राज० के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची: भाग ३, पृ० १२२ तथा [illegible]
६—वही: भाग २, पृ० १८४

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं हुआ है। 'प्रवचन सार भाषा' का रचना-काल सं० १८२४ होने से अनुमान है इसी के आसपास यह वेलि भी रची गई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेल २१ छन्दों की रचना है। इसमें जीव की विभिन्न योनियों का बेलड़ी के साथ रूपक बांधा गया है। प्रारम्भ में चेतन जीव को संसार की असारता का बोध कराते हुए उसके नरक-निगोद स्थित अनन्त दुखों का वर्णन किया गया है[1]। इन दुखों को भोगने के बाद ही वह एकेन्द्रिय धारी जीव विभिन्न पर्यायों में परिभ्रमण करता हुआ पंचेन्द्रिय धारी मनुष्य बनता है[2]।

मनुष्य-जन्म ग्रहण करने मात्र से ही उसकी आत्मा का कल्याण नहीं हो जाता। जब तक जीव सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे ग्रन्थ की पहिचान नही कर लेता तब तक वह संसार के चक्रों में ही फंसा रहता है। आत्म मुक्ति के लिए अपने आपको पहिचानना पहली शर्त है[3]। आत्मतत्व और पुद्गल के अन्तर को समझ लेने पर ही अलख, अमूर्त्त परब्रह्म हृदय मंदिर मे प्रतिष्ठित होता है[4]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोल चाल की राजस्थानी है। वह कहीं भी दुर्बोध नही हो पाई है।

१—सतगुर कहत सुनो रे भाई, यो संसार असारा।
तामे भ्रमत भ्रमत यह चेतन, लहियो पार न पारा ॥१॥
नरक निगोद काल बहु बीते, कठिन देह त्रस हूवो।
तामें जीव राम इक स्वांस मे, जनम अठारा मूवो ॥२॥

२—क्रम क्रम एक एक इंद्रिन सो, बढन धार सो मेला ॥४॥
प्रथमी काय आदि बेइंद्रि, आदि धरी बहु काया।
विकल त्रय सुख दुख बहु भुगते, करि पस पंखी में आया ॥५॥

३—देव धरम गुरु ग्रंथ सत्य तूं साचो पंथ न पायो।
बिन सम्यक्त्व जीव तू भटको, नाहि ठिकाने आयो ॥१२॥
जब अरिहन्त देव पहिचानो, निज गुरु ग्रंथ समूजो।
जब तिनके परसाद आप हूं हिये उपादे मूजो ॥१३॥
जो जिय जिनवर के जू दरव गुण, अरु परजाय न जानो।
जो जिन आपस रूप आपनों, नहीं आपु पहिचानों ॥१४॥

४—आतमतत्व अवर पुद्गल जब, जुदो जुदो कर लेखें।
आप सरूप आपनें दिल में, अलख अमूरत देखें ॥१६॥

छन्द :

काव्य में सार[1] छन्द का प्रयोग हुआ है।

(६) पंचेन्द्रिय वेलि[2]

प्रस्तुत वेलि पाच इन्द्रियों (स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय और श्रोत्रेन्द्रिय) से सम्बन्ध रखती है। आत्मा सर्व वस्तुओं का ज्ञान करने तथा भोग करने रूप ऐश्वर्य मे सम्पन्न होने के कारण इंद्र कहलाती है। आत्मा के चिन्ह

१—प्रत्येक चरण में २८ मात्राएं, १६-१२ पर यति, अंत मेंऽऽ

२—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम आया है—

'करि वेल सरस गुण गाया, चित चतुर मनुष्य समझाया'।

(ख) इसकी कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। हमे जो प्रतियां मिली है उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) दिगम्बर जैन मंदिर बधीचंदजी, जयपुर की प्रति : गुटका नं० २५, वेष्टन नं० ६७१। आकार ६"×५"।

(२) वही : गुटका नं० २७, वेष्टन नं० ६७३, आकार ११"×६"। रचना काल १५८५ का० सु० १३।

(३) वही : गुटका नं० १६०, वेष्टन नं० १२७७, आकार ६"×५"। लेखन काल १७३८ कार्तिक वदी १३।

(४) वही : गुटका नं० १६२, वेष्टन नं० १२७६, आकार ८"×३½"।

(५) श्री दि० जैन मंदिर ठोलियों के पंथ, जयपुर की प्रति : गुटका नं० ११०, आकार ६"×५"।

(६) दि० जैन मन्दिर लूणकरणजी पांड्या, जयपुर की प्रति : गुटका नं० ६२, वेष्टन नं० ३३७, आकार ६"×६"। लेखन काल सं० १७२१। इस प्रति के आदि तथा अन्त मे 'इति गुणवेलि लिख्यते' लिखा है। इस कारण कासलीवालजी ने इसका नाम 'गुणवेलि' दिया है (राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रन्थ सूची भाग २, पृ० ६८) पर इसका पाठ वही है जो पंचेन्द्री वेलि का है।

(७) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर की प्रति : ग्रंथांक १२५७५, आकार ५"×४½"। लेखन काल १६ वीं शती।

(८) वही : ग्रंथांक ३६४०। आकार १०"×४½"। रचना काल १५५०। लेखन काल १७ वीं शती।

(६) अभय जैन ग्रन्थागार बीकानेर, भट्टारक भंडार अजमेर तथा मुनि कांतिसागरजी के पास भी इसकी प्रतियां हैं।

को इन्द्रिय कहते है[१]। ये इन्द्रियाँ अंगोपांग और निर्माण नाम कर्म के उदय से प्राप्त होती हैं[२]। इनके काम-गुणों[३] के वशीभूत होकर मन सांसारिक भोगों में उलझ जाता है। मन पर काबू पाना ही जीवन की सार्थकता है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही ठकुरसी हैं जिनका परिचय 'नेमिश्वर की वेलि' के साथ दिया गया है। वेलि के अन्त में कवि ने अपना परिचय दिया है[४]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख किया गया है[५]। उसके अनुसार यह सं० १५५०[६] कार्तिक सुद १३ को रची गई।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ६ भागों में गुंफित छोटी सी रचना है[क]। इसमें पाँच इन्द्रियों—स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, और श्रोत्रेन्द्रिय—का विवेचन क्रमशः हाथी, मछली, भ्रमर, पतंग और कुरंग के उदाहरण देकर किया गया है। वर्णनानुसार इस प्रकार है—

(१) *स्पर्शनेन्द्रिय-वर्णन :*

स्पर्शनेन्द्रिय की प्रबलता का प्रतीक है हाथी। स्वच्छन्दता-पूर्वक जंगल में विचरण करने वाला हाथी इसके वशीभूत होकर अनन्त दुखों को सहन

(क) वर्तमान लेखक ने इसका परिचय प्रस्तुत किया है : साहित्य संदेश भाग २१ अंक ६, मार्च १९६०, पृ० ४०५–६।

१—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, प्रथम भाग, पृ० ४१८।

२—वही : पृ० ४१८।

३—शब्द (श्रोत्रेन्द्रिय) रूप (चक्षुरिन्द्रिय) गन्ध (घ्राणेन्द्रिय) रस (रसनेन्द्रिय) और स्पर्श (स्पर्शनेन्द्रिय) इंद्रियों के कामगुण कहे जाते हैं क्योंकि ये काम अर्थात् अभिलाषा उत्पन्न करने वाले गुण हैं।

४—कवि गेल्ह सुतनु गुण पासु, जग प्रकट ठकुरसी नामु।

५—संवत पनरै से पचासे, तेरसि सुद कातिक मासे।

६—कुछ प्रतियों में 'संवत पनरै से पिचासे' पाठान्तर भी मिलता है। इस आधार पर इसका रचना काल सं० १५८५ ठहरता है।

करता है[१]। कीचक, रावण आदि को भी इसी कारण प्राणों से हाथ धोना पड़ा[२]।

(२) *रसनेन्द्रिय-वर्णन :*

रसनेन्द्रिय की प्रबलता का प्रतीक है मच्छ। संसार रूपी सरिता में जन्म लेकर मनुष्य रूपी मच्छ क्रीड़ा कर रहा था पर काल रूपी मछुए ने रस का प्रलोभन देकर उसे जाल में फँसा लिया[३]। गहरे पानी में डूबा हुआ मच्छ रसना के वशीभूत होकर प्राणों से हाथ धो बैठा[४]। रसना-रस के कारण ही मनुष्य, पिता, भ्राता और गुरू के साथ छल-कपट करता है। सत्य को छिपाकर निशदिन झूठ बोलता है, घरबार छोड़कर विदेशों में भटकता फिरता है, न कुल देखता है न जाति[५]। जो व्यक्ति जिह्वा को वश में कर लेता है उसी का जन्म संसार में सफल है[६]।

(३) *घ्राणेन्द्रिय-वर्णन :*

घ्राणेन्द्रिय की प्रबलता का प्रतीक है भ्रमर। गंध-लोभी भ्रमर कमल के संपुट में इतना मदमस्त हो जाता है कि सूर्यास्त की भी उसे चिन्ता नहीं रहती[७]। वह रात भर रस-पान करने के बाद प्रातः होने पर कमल के

१—वन तरुवर फल खातु फिर, पय पीवतो सुछंद।
परमण इंद्री प्रेरियो बहु दुख सहइ गयंद ॥१॥
बहु दुख सहे गयंदो, तसु होइ गई मति मंदो।
कागद के कुंजर काजे, पड़ि खाडे सक्यौ न भाजे।
बंध्यौ पगि संकुल घाले, सो कियौ मसकै चाले।
परमण प्रेरइ दुख पायौ, निति अंकुस घावा घायौ।

२—परसण रस कीचक हर्‌यां, गहि भीम सिला तल चूर्‌यो।
परसण रस रावण नामे, मार्‌यो लंके सुर रामइ।

३—केल करंतो जनन जल, गाल्यो लोभ दिखालि।
मीन मुनिय संसार सरि, काढ्यो धीवर काळि।

४—मन्न नीर गहीर पईठो, दिठि जाइ नहीं जहां दीठो।
इह रसण्ड रसको घाल्यो घलि आइ सहइ दुख साल्यो।

५—इह रसना रस के ताई, नर मुसै बाप गुरु भाई।
घर छोड़इ वाखाई वाटा, निति करइ कपट धण घाटां।
मुख झूठ साच नहि बोलै, घर छंडि दिसावर डोलै।
कुल ऊंच नीच नहीं लेखइ, मूरख माही मनि मेखै।

६—जिहि इहुर विषय वसिकीयौ, तिहि मुनिय जनम फल लीयौ।

७—भ्रमर पइठो कमळ दिनि, घ्राण गंधि रस रंङ।
रैण पड्या सो संकुच्यो, भंमर मरयो न मुंड।

विकसित होते ही मुक्त हो जाने की कल्पना करता है पर शीघ्र ही हाथी द्वारा कमल उखाड़ दिया जाता है और बेचारे भ्रमर का प्राणान्त हो जाता है[१]।

(४) चक्षुरिन्द्रिय-वर्णन .

चक्षुरिन्द्रिय की प्रबलता का प्रतीक है पतंग। पतंगा दिये की लौ पर मुग्ध होकर उसके चारों ओर मंडराता है और अन्त मे अपनी बलि दे देता है। पुरुष भी स्त्री के रूप सौंदर्य पर आकर्षित होकर उसी प्रकार अपना सर्वनाश कर बैठता है[२]। दृष्टि (रूप) के कारण ही मनुष्य चोरी करता है, पर स्त्री की ओर ताकता है और अनेक पाप-कर्म करता है। इंद्र गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर ही अभिशप्त हुआ[3]। जो अपने नेत्रों को वश मे कर लेता है वह सहज सुख की प्राप्ति करता है[४]।

(५) श्रोत्रेन्द्रिय-वर्णन .

श्रोत्रेन्द्रिय की प्रबलता का प्रतीक है हिरण। पवन और मन की गति से जगल मे दौड़ने वाला हिरण नाद (शब्द) पर मुग्ध होकर व्याध के बाण का शिकार बनता है[५]। नाद के कारण ही सर्प बिल से बाहर निकल कर दुखी होता है और मनुष्य योगी बनकर घर से निकल पड़ता है[६]।

१—मन चिंते रयणि सवायौ, रस लेस्या आज अघायौ।
जब ऊगैलो रवि विमलो, सरवर विकसइ लो कमलो।
नीसरस्यौ तब इह छोड़े, रस लेस्यौं आइन होडे।
चितव तेहो गज आयो, दिनकर उगवा न पायो।
जल पैठौ सरवर पीयो, नीसरत कमल खड़ लीयौ।
गहि सुंडि पाव तलि चंप्यो, अलि मार्यौ पर हरि कंप्यो।

२—नेह अखण्डल तेज तनु, वाती वचन सुरंग।
रूप जोति पर तिय दिवे, पड़ेति पुरुष पतग।

३—दिठि देखि करे नर चोरी, दिठि देखि तके पर गोरी।
दिठि देखि करे नर पापो, दिठि दीठां वधइ संतापो।
दिठि देखि अहल्या इंदो, तनु निकल गई मति मंदो।

४—लोयण दोस को नाही, मन प्रेरे देखण जाही।
जे नयण हुवै वसि राखे, सो हरख परम सुख चाखे।

५—वेग पवन मन सारिसौ, वनवासै लय भीतु।
बंधक बाण मार्यौ हिरण, कांनि सुणाती गीतु।

६—इहद नाद सुंणतो सापो, विलि छोड़ि नीसर्यौ आपो।
पापी घड़ि घालि खिलायो, फिरि फिरि दिन दुख दिखायौ।
जे संति नाद नर लागे, जोगी हुई भिख्या मागे।

(६) *पंचेन्द्रिय मनुष्य की विवशता :*

हाथी, मछली, भ्रमर, पतंग और मृग के प्रतीक द्वारा पंचेन्द्रियों के क्रमिक कामगुणों की विवेचना करने के बाद कवि कहता है कि उपर्युक्त प्राणी तो एक-एक विषय में विलुब्ध होकर भी इतना कष्ट उठाते हैं फिर उस मनुष्य का क्या कहना जो पाचों इन्द्रियों के पांचों काम-गुणों का वशवर्ती है[1] ? यह सोच कर मनुष्य को अपने मन का निरोध करना चाहिए क्योंकि इन्द्रियों का प्रेरक मन ही है। इन्द्रियां तो अपने आप में निर्दोष हैं[2]।

कला-पक्ष

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। इसमें प्रवाह, लय एवं माधुर्य है। यथा

दिठि देखि करे नर चोरो, दिठि देखि तकै पर गोरो।
दिठि देखि अहल्या इंदो, तनु निकल गई मति मंदो।
दिठि देखि तिलोत्तम भूल्यो, तप तप्यौ विधाता डूल्यो।

यत्र-तत्र अलंकार भी आये हैं—

अनुप्रास :

(१) कागज के कुंजर काजे
(२) पड़इति पुरुष-पतंगो
(३) सत सुकृत सलिल समोयो

सांगरूपक :

केल करंतो जनम जल, गाल्यो लोभ दिखालि।
मीन मुनिप संसार सरि, काढ्यौ धीवर कालि।

परम्परित रूपक :

रूप जोति पर तिय दिखै, पड़ैति पुरुष पतंग।

छन्द :

दोहा एवं सखी छंद का प्रयोग हुआ है।

बाहुडे नहि ते समझाया, फिरि जाहि घणा घरि आया।
इह नाद तणो रस ऐसो, जग माहि सही विष जैसो।
इह नादि के भरि भलिया, ते नर प्रिय वेग न मिलीया।
१—अलि, गज, मीन, पतग, मृग, एकै के दुख दीद्ध।
जाइत भो-भो दुख सहै, जिहि वसि पंच न कोइ।
२—चदम चाहै रूप जु दीठो, रसना भख भाखै सु मीठो।
तिनि रहाले घ्राण सुगंधो, स परसण कोमल बंधो।
निति श्रवण गीत रस हेरै, मन पापी पंचों प्रेरै।
मन प्रेरयो करै किसो, इन्द्रियां हि किसा को दोसो।

(७) पटलेश्या वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि छः लेश्याओं[2]—कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या-से सम्बन्ध रखती है। जिसमे कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध हो उसे लेश्या कहते है। द्रव्य और भाव के भेद से लेश्या दो प्रकार की है। द्रव्य लेश्या पुद्गल रूप है। द्रव्य लेश्या से संयोग के होने वाला आत्मा का परिणाम विशेष भाव लेश्या है। भाव लेश्या के दो भेद हैं—विशुद्ध भाव लेश्या और अविशुद्ध भाव लेश्या। प्रथम तीन (कृष्ण, नील, कापोत) अविशुद्ध भाव लेश्या है और अन्तिम तीन (तेजो, पद्म, शुक्ल) विशुद्ध भाव लेश्या हैं।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता साह लोहट[3] अठारहवी शती के पूर्वार्द्ध के कवियों मे से थे। ये बूंदी के रहने वाले थे और तत्कालीन महारावल भावसिंह (जो शत्रुसाल के ज्येष्ठ पुत्र थे) से सम्भवतः सम्बन्धित या प्रभावित थे, इसीलिए प्रस्तुत रचना के

१— (क) मूलपाठ मे वेलि नाम आया है—
'पटल्हेस्या वेली करी, परमारथ के काज।' इसे पुष्पिका मे चौपाई भी कहा है 'इति पटल्हेस्या की चौपाई संपूर्ण'।

(ख) प्रति परिचय:—इसकी दो प्रतियाँ मिलती हैं—

(१) दिगम्बर जैन मन्दिर विजयराम पाड्या, जयपुर की प्रति : वे. सं ८०, आकार ८½"×४¾"।

(२) श्री आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भंडार, जयपुर की प्रति : गुटका नं० ६०। आकार १०¾"×५"। यह अपूर्ण प्रति है। इसमे प्रथम लेश्या का वर्णन नही है। संबंधित पत्र फट गया है। अन्य लेश्याओं का वर्णन पत्र २२ से २८ तक लिखा गया है। प्रत्येक पृ० मे २५ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति मे २८ अक्षर हैं। हमने अपना विवेचन इसी प्रति के आधार पर प्रस्तुत किया है।

२—विस्तृत परिचय के लिए देखिये : उत्तराध्ययन सूत्र का ३४वां अध्ययन तथा पन्नवणा का १७वा पद

३—*कवि ने अपना नामोल्लेख जगह-जगह इस प्रकार किया है—*

(१) कछू ग्यान हीये धरि लीजे। लोहट भव्य सूद्रत कीजे ॥३४ ढाल १॥

(२) लोहट ल्या लेस्या गाई। मति तीजा भावु भाई ॥२४ ढाल २॥

(३) लोहठ सुरपति सुर गाई। ल्हेस्या फल भाव सुनाई ॥४५ ढाल ५॥

(४) मति सारू मति उपजै। लोहोठ भाषै सोई ॥४० ढाल ६॥

अन्त में उनका सादर उल्लेख किया है[1]। इनके पिता का नाम धर्मा था[2]। ये बड़े प्रिय, विद्वान और लोक-हितैषी थे। इनकी जैन धर्म में विशेष आस्था थी। ये अपने समय के प्रमुख श्रावक थे। इनकी निम्नलिखित रचनाओं का पता चलता है—

(१) अठारह नाते की ढाल (चौढाल्या)
(२) द्वादशानुप्रेक्षा
(३) पार्श्वनाथ की गुण माला
(४) पार्श्वनाथ जयमाला
(५) पार्श्व जिन पूजा
(६) पूजाष्टक
(७) षट्लेश्या वेलि[3]

रचना-काल :

विनय ज्ञान भण्डार की प्रति के अन्त में कवि ने रचना-तिथि का उल्लेख किया है। उसके अनुसार इसकी रचना सं० १७३५ में सावन शुक्ला तेरस सोमवार को बूंदी में हुई थी[4]। पर डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने विजयराम पाड्या, जयपुर की प्रति के आधार पर इसका रचना-काल सं० १७३० आसोज सुदी ६ माना है[5]।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ६ ढालों के २१७ छन्दों की रचना है[6]। इसमें कवि ने प्रत्येक लेश्या का स्वरूप, लक्षण और प्रभाव बतलाते हुए शुक्ल लेश्या की ओर प्रवृत्त होने

१—महा धाम भावु नहीं। बूंदी गढ़ थिर थान।
सकल प्रजा सुख भोगवै। मारे बंछत काम ॥८२॥

२—तिहां माहा लोहांठ बसै। धरमा सुत सिरताज।
षट लेस्या वेली करी। परमारथ के काज ॥८३ ढा ६॥

३—डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची के चतुर्थ भाग में पृ० ७७५ पर हर्षकीर्ति कृत 'षट्लेश्या वेलि' का उल्लेख किया है पर वह गलत है। प्रति को देखने से पता चलता है कि यह हर्षकीर्ति की नवीन रचना न होकर 'चतुर्गति वेलि' ही है जिसे लिपिकार ने भूल से प्रारंभ में षट्लेश्या वेलि लिख दिया है।

४—संवत् सतरासै पैंतीसै, उजियारै [illegible]।
सावन मास बहुत राग में, तेरसि सोम [illegible] ॥८१ ढा ६॥

५—राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची, भाग ४, पृ० ३६६।

६—कवि ने रचना के अन्त में छन्द-संख्या की सूचना इस प्रकार दी है—
ढा. छह का सब मली। सुनि सुगुन संजोग।
[illegible] ॥८४ ढा ६॥ पर [illegible]
ठीक नहीं है। प्रति के अनुसार [illegible] और [illegible] मिलाकर कुल छन्द [illegible]
[illegible] दूसरी प्रति में बहुत से छन्दों की संख्या २०० बतलाता है। [illegible]
इन छन्दों की संख्या का क्रम इस प्रकार मिलता है—

उपदेशना दी है। लेश्याओं के गूढ़ दार्शनिक विवेचन को एक सामान्य सांगरूपक रा समझाया गया है। संक्षेप में छहों लेश्याओं का स्वरूप इस प्रकार है—

(१) *कृष्ण लेश्या :*

काजल के समान काले वर्ण के कृष्ण लेश्या के पुद्गलो के सम्बन्ध से आत्मा मे ऐसा परिणाम होता है कि जिससे व्यक्ति पांच आश्रवों में प्रवृत्ति करने वाला, आत्मा का गोपन न करने वाला, तीव्र भावो से आरम्भादि करने वाला, बिना विचारे काम करने वाला, निर्दयी, क्रूर और अजितेन्द्रिय बन जाता है। उसे ऐहिक और पारलौकिक बुरे परिणामों मे किंचित भी डर नही रहता। इस लेश्या के परिणाम वाला व्यक्ति किसी फलदार वृक्ष के फलों को खाने के लिए उस वृक्ष को ही जड़ मे काट कर गिरा देता है।

(२) *नील लेश्या :*

अशोक वृक्ष के समान नीले रङ्ग के नील लेश्या के पुद्गलो का संयोग होने पर आत्मा में ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है जिसमे व्यक्ति ईर्षालु, कदाग्रही, तपस्या न करने वाला, मायावी, अज्ञानी, निर्लज्ज, गृद्धि रखने वाला, द्वेष करने वाला, प्रमादी, रस लोलुपी और क्षुद्र विचारों वाला बन जाता है। इस लेश्या के परिणामों वाला व्यक्ति किसी फलदार वृक्ष के फलों को खाने के लिए उस वृक्ष की बड़ी बड़ी डालियों को गिरा देता है।

(३) *कापोत लेश्या :*

कोयल के पांख और कबूतर की गर्दन के समान रक्त-कृष्ण रङ्ग के कापोत लेश्या के पुद्गलों का संयोग होने पर आत्मा मे ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है जिससे व्यक्ति वक्र वचन बोलने वाला, वक्र आचरण करने वाला, मायावी, अपने दोषों को छिपाने वाला, छलपूर्ण व्यवहार करने वाला, मिथ्यादृष्टि और दूसरों की उन्नति को सहन न करने वाला बन जाता है। इस लेश्या के परिणाम वाला व्यक्ति किसी फलदार वृक्ष के फलों को खाने के लिए उस वृक्ष की बड़ी बड़ी डालियों को न काट कर छोटी-छोटी डालियाँ ही काटता है।

(४) *तेजो लेश्या :*

तोते की चोंच के समान रक्त वर्ण के तेजो लेश्या के पुद्गलों का संयोग होने पर आत्मा मे ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है जिससे व्यक्ति नम्र वृत्ति वाला,

---

प्रथम ढाल ३८, द्वितीय ढाल २४, तृतीय ढाल १५, चतुर्थ ढाल ५० (प्रति में १३,१४ १५,१६ वीं संख्या दुबारा लग जाने से कुल छंद ४६ ही लिखे हैं), पंचम ढाल और षष्ठ ढाल ४८ कुल योग २१७।

चपलता रहित, माया रहित, कुतूहल आदि न करने वाला, परम विन और भक्ति करने वाला, इन्द्रियों का दमन करने वाला, स्वाध्यायादि में र रहने वाला, उपधानादि तप करने वाला, धर्म में प्रेम रखने वाला, पाप डरने वाला और सब प्राणियों का हित चाहने वाला बन जाता है। इ लेश्या के परिणाम वाला व्यक्ति किसी फलदार वृक्ष के फलों को खाने के लिए उस वृक्ष को किसी प्रकार का नुकसान न पहुँचाकर केवल फलों के गुच्छे ही तोड़ता है।

(५) *पद्म लेश्या :*

हल्दी के समान पीले रङ्ग के पद्म लेश्या के पुद्गलों के सम्बन्ध से आत्मा में ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है जिससे व्यक्ति अल्प क्रोध वाला, अल्प मान वाला, अल्प माया वाला, अल्प लोभ वाला, शान्त चित्त वाला, अपनी आत्मा का दमन करने वाला, स्वाध्यायादि करने वाला उपधानादि तप करने वाला, परिमित बोलने वाला, उपशान्त और जितेन्द्रिय बन जाता है। इस लेश्या के परिणाम वाला व्यक्ति किसी फलदार वृक्ष के फलों को खाने के लिए उस वृक्ष को किसी प्रकार की हानि न पहुँचा कर केवल पके हुए फल ही नीचे गिरा देता है।

(६) *शुक्ल लेश्या :*

शङ्ख के समान श्वेत रङ्ग के शुक्ल लेश्या के पुद्गलों के सम्बन्ध से आत्मा में ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है जिससे व्यक्ति आर्त ध्यान और रौद्रध्यान को छोड़कर धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान ध्याने लगता है। वह प्रशान्त चित्त, संयमी, आत्मा का दमन करने वाला, अल्प रागी और सौम्य बन जाता है। इस लेश्या के परिणाम वाला व्यक्ति किसी फलदार वृक्ष के फलों को खाने के लिए उस वृक्ष के किसी भी अङ्ग को बिना नुकसान पहुँचाये केवल जमीन पर गिरे हुए फलों को ही खा लेने में आनन्द का अनुभव करता है।

इन छह लेश्याओं में कृष्ण, नील और कापोत पाप का कारण होने से अधर्म लेश्या है। इनसे जीव दुर्गति में उत्पन्न होता है। अन्तिम तीन तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या धर्म लेश्या हैं। इनसे जीव सुगति में उत्पन्न होता है। जिस लेश्या को लिए हुए जीव चवता है उसी लेश्या को लेकर परभव में उत्पन्न होता है।

कवि ने अन्तिम ढाल में सभी जीवों को आत्मवत् समझने की धर्मोपदेशना दी है—

> लेस्या सुकल निरमलो, जनका हरदा माहि।
> पाका फल भूँ का पड्या, बीन बीन ने खाई ॥२॥

ढाल बेली की :-

झुंमका मांथै फल तोरै। ग्रांबा की डाली मोरै॥
तन मांझि धर्‌यो ग्रन ग्रावै। बन कारन कुं न सतावै॥३॥
चढ़ता तर पलव तूटै। लखिबा सही धाम छूटै॥
करम उही बांधै मुठ। सो ग्यान ज पावै भूठो॥४॥
मनै ग्रंद्री सबन राखै। दुरि फल क्युं ही लाखैं।
या झुंटी माया जाल। मति ड़ांकै ग्राल पताल॥५॥
उनकी लखि ग्रांत बिच्यार। नजि ग्रातम कुं निसतार॥
कोई सुं वैर न कीजै। सब ग्राप समानं गनीजै॥६॥
सब ही भी मेरा भाई। सब ही मो देही पाई॥
मोकुं कोई ग्राइ सतावै। तबि मेरा जीव दुख पावै॥७॥
ते ग्राप समांन जांनु। ते धरम दय्या मनि ग्रांनुं।
ऐसो जीव धारि बबेकी। सब प्रांनीनी जानों ऐकी॥८ ढाल ६॥

जिसमे प्राणिमात्र के प्रति इस समभाव की वृद्धि होती है वह ग्रमर पद को प्त होता है, जहां ग्रानन्द ही ग्रानन्द है—

नह दोष ग्रठारा होई। जिन देव कहावै सोई॥
क्रम काट ग्राठनि रासे। पट पावै सिव पद बासी॥३०॥
पोंहोंचै ग्रजरामरि थांन। हुं बड़ सिध संमान॥
तिहां मात न तात न काये। मद मंछर मोह न माइ॥३१॥
नहीं भ्रात न जात न गातो। नही सो तिन हाड न मांसो॥
नही वेद ग्रसेदन बेद। नही बेदना छेदन भेद॥३२॥
नही काल न कांम न काय्या। नही बाल न बर धन छाया।
नही रोग बिजोग न भेद। नही सोग न जिग निजे॥३३॥
नहीं सीत न धूप न छाया। नही मेघ न बूंद न बाय्या॥
नही गाज न बीज न नीर। नही गरमी सीत सरीरो॥३४॥
नही स्याही सुपेद न लाल। नहीं नील न पील ह गाल।
नही रूप न रेख न भेष। जबतो ग्रलेख ग्रलेख॥३५॥
सुख साता बोध ग्रनंतो। चेतना चारी महंतो॥
नही पुंनि न पाय न सेव। नही जाप न थाप न देव॥३६॥
नहो ग्रावन जावन कोई। नराकार निरंजन होई॥
मुमी गरभध जिसो ग्राकार। लखीए सो बारुंबार॥३७ ढाल ६॥

ला-पक्ष :

कवि का ध्यान कला पक्ष की ग्रोर नही गया है। उसका उद्देश्य छहों लेश्याग्रों का स्वरूप समझाने का रहा है। भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी

चपलता रहित, माया रहित,
और भक्ति करने वाला, इन्द्रिय
रहने वाला, उपधानादि तप क
करने वाला और सब प्राणियों
लेश्या के परिणाम वाला व्यक्ति
लिए उस वृक्ष को किसी प्रकार क
ही तोड़ता है।

(५) *पद्म लेश्या :*

हल्दी के समान पीले रङ्ग के पद्म
ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है
वाला, अल्प माया वाला, अल्प
आत्मा का दमन करने वाला,
करने वाला, परिमित बोलने व
है। इस लेश्या के परिणाम वा
खाने के लिए उस वृक्ष को किस
हुए फल ही नीचे गिरा देता है।

(६) *शुक्ल लेश्या :*

शङ्ख के समान श्वेत रङ्ग के शुक्ल
ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है कि
छोड़कर धर्मध्यान और शुक्ल
संयमी, आत्मा का दमन करने व
इस लेश्या के परिणाम वाला व्य
लिए उस वृक्ष के किसी भी भा
पर गिरे हुए फलों को ही खा ले

इन छह लेश्याओं में कृष्ण, नील
लेश्या है। इनसे जीव दुर्गति में उत्पन्न
शुक्ल लेश्या धर्म लेश्या है। इनमें जीव
लिए हुए जीव मरता है उसी लेश्या को

कवि ने अन्तिम दाम
दो है—

म्हैस्या मुकर
दाबा -

(९) बीस तीर्थंकर जयमाला
(१०) तीस चौवीसी स्तुति
(११) दर्शन स्तोत्र

रचना-काल :

वेलि के अन्त मे रचना-तिथि का उल्लेख नही किया गया है। गुटके का लेखन-काल सं० १६१६ है। इस आधार पर इससे पूर्व इसका रचा जाना निश्चित होता है। कवि ने सं० १५९० मे वैशाख वदी १३ सोमवार को भट्टारक विनयचंद की स्वोपज्ञ चूनड़ी टीका की प्रतिलिपि अपने ज्ञानावरणी कर्म के क्षयार्थ की थी।[1] इससे सोलहवीं शती मे कवि की विद्यमानता सूचित होती है।

रचना-विषय :

२८ छंदों की इस रचना में चौदह गुणस्थानों[2]—(१) मिथ्या दृष्टि गुणस्थान (२) सास्वादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (३) सम्यक मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान (४) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (५) देशविरति गुणस्थान (६) प्रमत्त संयत गुणस्थान (७) अप्रमत्त संयत गुणस्थान (८) नियट्टि (निवृत्ति) बादर गुणस्थान (९) अनियट्टि बादर सम्पराय गुणस्थान (१०) सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान (११) उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान (१२) क्षीणकषाय छद्मस्थ वीतराग गुणस्थान (१३) सयोगी केवली गुणस्थान (१४) अयोगी केवली गुणस्थान—का तत्व-बोध एवं स्वरूप समझाया गया है।

इन चौदह गुणस्थानों मे उत्तरोत्तर विकास की अधिकता है। पहले तीन गुण स्थानों मे दर्शन और चारित्र का विकास नहीं होता क्योंकि उनमे दर्शन मोह और चारित्र मोह की अधिकता है। चौथे गुणस्थान से लेकर आगे के गुणस्थानों मे प्रतिबन्धक संस्कार मन्द हो जाते है, इसलिए इन गुणस्थानों में शक्तियों का विकास आरम्भ हो जाता है। चौथा गुणस्थान परमात्मभाव या ईश्वरत्व के दर्शन का द्वार है। वहाँ पहुँचने पर जीव अन्तरात्मा हो जाता है। यहाँ पर भी अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय रहने से जीव किसी प्रकार का त्याग या नियम नहीं कर सकता। पांचवे गुणस्थान मे अप्रत्याख्यानावरण का क्षयोपशम होने से जीव की चारित्र शक्ति कुछ कुछ प्रकट होती है और वह व्रत नियमादि अंगीकृत करता है। इसी को देशविरत चारित्र कहते है। छठे गुणस्थान मे प्रत्याख्यानावरण कषाय भी मंद हो जाता है अतः जीव त्यागी बन जाता है। पर संज्वलन कषाय बना रहता है। इससे कभी कभी क्रोध आदि आ जाते हैं पर चारित्र का विकास इनमे दबता नही। जीव

१—ब्रह्म श्री जीवधर तैनेदं चूनडि का टिप्पणं लिखितं आत्म पठनार्थं सं० १५९० वैशाख वदि १३ सोमे।

२—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह: पंचम भाग, पृ० ६३-६८।

है। यत्र-तत्र अनुप्रास का प्रयोग हुआ है। भाषा में एक प्रकार का प्रवाह और रवा है। आम्र वृक्ष और छह पुरुषों के रूपक द्वारा कवि ने लेश्याओं के स्वरूप को साधारण के लिए बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है।

छन्द :

काव्य में दोहा और सखी छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रतिलिपिकार ने इ क्रमशः 'दोहरा' और 'ढाल' लिखा है। मात्राएँ प्रायः घटती-बढ़ती रही हैं।

(८) गुणठाणा वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि १४ गुणस्थान से सम्बन्ध रखती है। 'गुणठाणा' (गुणस्थान का अर्थ है गुणों का स्थान। संवर और निर्जरा के द्वारा कर्मों का बोझ जैसे जै हल्का होता जाता है, जीव के परिणाम अधिकाधिक शुद्ध होते जाते हैं। आत्म उत्तरोत्तर विकसित होने लगती है। आत्म-गुणों के इसी विकासक्रम को गुणस्था कहते हैं[2]।

कवि परिचय :

इसके रचयिता ब्रह्म जीवंधर १६ वी शती में विद्यमान थे। ये माथुर संघ के विद्यागण के प्रख्यात भट्टारक यशःकीर्ति के शिष्य थे[3]। इनका संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी पर समान अधिकार था। इनकी निम्नलिखित रचनाओं का पता चलता है—

(१) गुणठाणा वेलि (२) खटोला रास
(३) झुंबुक गीत (४) श्रुत जयमाला
(५) नेमि चरित रास (मनोहर रास) (६) सती गीत
(७) चतुर्विंशति जिन स्तवन (८) ज्ञान विराग विनती

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—
गुणठाण वेलि विलास जुता मुख पावु सब्बए
(ख) प्रति-परिचयः— इसकी हस्तलिखित प्रति दि० जैन मंदिर (खण्डेलवाल) उदयपुर (राजस्थान) के गुटका नं० ५० मे सुरक्षित है। प्रति मे कुल २६७ पत्र हैं जिनमे से ४ से ६ पत्र पर यह लिखी हुई है। पुष्पिका मे लिखा है 'ब्रह्म श्री धनाख्येन पठनार्थं लिखितं मिदं'।

२—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रहः द्वितीय भाग पृ० २०६

३—विद्या गणधर उदय भूधर, नित्य प्रकटन भास्कर।
भट्टारक यशकीरति सेवक, भणिय ब्रह्म जीवंधर (२८)

(६) बीस तीर्थंकर जयमाला (१०) तीस चौबीसी स्तुति
(११) दर्शन स्तोत्र

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। गुटके का लेखन-काल सं० १६१६ है। इस आधार पर इससे पूर्व इसका रचा जाना निश्चित होता है। कवि ने सं० १५६० में वैशाख वदी १३ सोमवार को भट्टारक विनयचंद की स्वोपज्ञ चूनडी टीका की प्रतिलिपि अपने ज्ञानावरणी कर्म के क्षयार्थ की थी।[1] इससे सोलहवीं शती में कवि की विद्यमानता सूचित होती है।

रचना-विषय :

२८ छंदों की इस रचना में चौदह गुणस्थानों[2]—(१) मिथ्या दृष्टि गुणस्थान (२) सासादन सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (३) सम्यक मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान (४) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान (५) देशविरति गुणस्थान (६) प्रमत्त संयत गुणस्थान (७) अप्रमत्त संयत गुणस्थान (८) नियट्टि (निवृत्ति) बादर गुणस्थान (९) अनियट्टि बादर सम्पराय गुणस्थान (१०) सूक्ष्म सम्पराय गुणस्थान (११) उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान (१२) क्षीणकषाय छद्मस्थ वीतराग गुणस्थान (१३) सयोगी केवली गुणस्थान (१४) अयोगी केवली गुणस्थान—का तत्व-बोध एवं स्वरूप समझाया गया है।

इन चौदह गुणस्थानों में उत्तरोत्तर विकास की अधिकता है। पहले तीन गुण स्थानों में दर्शन और चारित्र का विकास नहीं होता क्योंकि उनमें दर्शन मोह और चारित्र मोह की अधिकता है। चौथे गुणस्थान से लेकर आगे के गुणस्थानों में प्रतिबन्धक संस्कार मन्द हो जाते है, इसलिए इन गुणस्थानों में शक्तियों का विकास आरम्भ हो जाता है। चौथा गुणस्थान परमात्मभाव या ईश्वरत्व के दर्शन का द्वार है। वहां पहुँचने पर जीव अन्तरात्मा हो जाता है। यहाँ पर भी अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय रहने से जीव किसी प्रकार का त्याग या नियम नहीं कर सकता। पांचवें गुणस्थान में अप्रत्याख्यानावरण का क्षयोपशम होने से जीव की चारित्र शक्ति कुछ कुछ प्रकट होती है और वह व्रत नियमादि अंगीकृत करता है। इसी को देशविरत चारित्र कहते है। छठे गुणस्थान में प्रत्याख्यानावरण कषाय भी मंद हो जाता है अतः जीव त्यागी बन जाता है। पर संज्वलन कषाय बना रहता है। इससे कभी कभी क्रोध आदि आ जाते है पर चारित्र का विकास इनसे दबता नहीं। जीव

१—ब्रह्म श्री जीवंधर तैनेदं चूनडि का टिप्पणं लिखितं आत्म पठनार्थं सं० १५६० वैशाख वदि १३ सोमे।

२—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह: पंचम भाग, पृ० ६३–६८।

इस संज्वलन कषाय को ज्यों ज्यों दबाता जाता है त्यों त्यों वह सातवें गुणस्थान से बढ़ता हुआ बारहवें गुणस्थान तक पहुँच जाता है। दर्शन और चारित्र-दोनों शक्तियां उस समय पूर्ण विकसित हो जाती हैं। इसके बाद जीव तेरहवें गुणस्थान में पहुँचता है। यहाँ चारों घाती कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाने से जीव को केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। फिर भी मन, वचन और काया रूप तीन योगों का सम्बन्ध रहने के कारण आत्मा को स्थिरता पूर्ण नहीं होने पाती। चौदहवें गुण स्थान में वह पूर्ण हो जाती है। इसके बाद शीघ्र ही शरीर छूट जाता है और आत्मा अपने स्वभाव में लीन हो जाती है। इसी को मोक्ष कहते हैं। आत्मा की शक्तियों का पूर्ण विकसित होना ही मोक्ष है।

शैली को आकर्षक बनाने के लिए ऋषभ-भरत के कथोपकथन को माध्यम के रूप में अपनाया गया है। जिनेश्वर भगवान ऋषभदेव के कैलाश भूधर (अष्टापद पर्वत) समवसरण में सुर-असुर, भूचर-खेचर तथा अन्य मुनियों के साथ अयोध्या नरेश भरत भी सपरिवार उपस्थित होते हैं। अष्ट प्रकार की पूजा करने के बाद वे भगवान से चौदह गुणस्थानों का स्वरूप पूछते हैं और भगवान ऋषभदेव उन्हें यह सब समझाते हैं। तत्पश्चात् परम उल्लास के साथ भगवान को वन्दन कर भरत सपरिवार अयोध्यापुरी लौटते हैं।

वेलि का आदि-अन्त भाग इस प्रकार है[1]—

आदि-भाग :

श्री पार्श्वनाथाय नमः

पंच परम गुरु पाए नमी, नमी वली गणहर विदजी।
गुणठाणा गुण गाय सुधरी मनि परमानंद जी॥
आणंद कंद जिणंद भाख्या भेद भावु भव्वए।
गुणठाण वेलि विलास जुत्ता मुक्ख पावु सव्वए॥
कैलाश भूधर आदि जिनवर एक दिन समोसर्‌या।
सुर असुर भूचर खचर मुनिवर, तिणेय करी तिहां परवर्‌या॥१॥
भरत नरेस आवीया भावीया सहू परिवारे जो।
ऋषभेसर पाय वंदीया पूजीया अठ पयारे जी॥
अष्ट प्रकारीय करीय पूजा भरत राजा पूछए।
गुणठाण चौद विचार सारा भणि जिनमुणि वछए॥
मिथ्यात नामि गुणह ठामि वसिय काल अनंतु ए।
मिथ्यात पंच नित्य पूर्‌या भमिए चिहुँ गति जंतुए॥२॥

१—हमें यह अंश डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल, जयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। उदयपुर आकर खण्डेलवाल मंदिर में हमने इस प्रति की बहुत खोजा पर वह मिल नहीं पाई।

अन्तिम भाग :

गोत्र ऊंच वेदनी साता हंता जिनवर भानजी।
पर्याप्तिक निरे ग्रादेय तीर्थंकर करि हानि जी॥
हानि करि जिन तीर्थंकर वर प्रकृति ते वलो तेरमो।
एकु मु ग्रडताल सघली उत्तर पयडी इम गमी॥
ग्रजर ग्रमर पद सिद्धि पामी, हुग्रा मुगते ना रांजीया।
ग्रष्ट गुरा परि पुष्टि, तुष्टा नित्य सोख्यइं रंजोया॥२७॥
चौदि गुरा ठाणा सुण्या जे, भण्या श्री जिनराइ जी।
सुर नर विद्याधर समा, पूजोय वंदोय पायजो॥
पाय पूजी मनहर जी भरत राजा संचरया।
ग्रयोध्यापुरी राज करवा सयल सज्जन परवर्या॥
विद्यागण वर उदय भूधर नित्य प्रकटन भास्कर।
भट्टारक यशकीरति सेवक भणिय ब्रह्म जोवंधर॥

(६) बारह भावना वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि का सम्बन्ध बारह भावनाग्रों[2] से है। जैन दर्शन मे 'भावना' शब्द का एक विशेष ग्रर्थ है। संवेग, वैराग्य एवं भावशुद्धि के लिए ग्रात्मा एवं

१—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम ग्राया है—
'भावना सरस सुर वेलड़ी, रोपि तूं हृदय ग्राराम रे'
(ख) इस वेलि की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। हमें जो प्रतियाँ मिली हैं उनका *विवरण इस प्रकार है*—
(१) ग्रभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर की प्रतिः—ग्रंथाक नं० ८५८६। ग्राकार १०½"×४½"। रचना संवत् १७०३। लेखन काल १६६६ श्रावण वीद ६ बुधवार। ग्रन्तिम पत्र श्री ग्रगरचन्द नाहटा ने लिखकर प्रति को पूरा किया।
(२) वही : ग्रंथांक नं० ८५८७। ग्राकार ६½"×४½"। लेखन काल १७६६ श्रावण वदी १३ सोमवार। लेखन-स्थान राजनगर। ग्रादि का पत्र नाहटाजी ने लिखकर प्रति पूर्ण की।
(३) वही : ग्रंथाक ८५८८। लेखन काल १७६२। लिपि लेखक महिम सागर।
(४) वही : ग्रंथांक ८५८६। यह प्रति ग्रपूर्ण है।
(५) वर्द्धमान ज्ञान मन्दिर, उदयपुर : देखिये—राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथो की खोज : भाग ३ः पृ० १६२। सं० उदयसिंह भटनागर।
(ग) वर्तमान लेखक द्वारा इसका परिचय प्रस्तुत किया गया है : शोध पत्रिका : वर्षः १२, ग्रंक १ (सितम्बर, १६६०), पृ० ३६–५२।

२—बारह भावनाग्रों के नाम इस प्रकार हैं-(१) ग्रनित्य भावना (२) ग्रशरण भावना (३)

इस संज्वलन कषाय को ज्यों ज्यों दबाता जाता है त्यों त्यों वह सातवें गुणस्थान से बढ़ता हुआ बारहवें गुणस्थान तक पहुँच जाता है। दर्शन और चारित्र-दोनों शक्तियाँ उस समय पूर्ण विकसित हो जाती हैं। इसके बाद जीव तेरहवें गुणस्थान में पहुँचता है। यहाँ चारों घाती कर्मों का सर्वथा क्षय हो जाने से जीव को केवल ज्ञान और केवल दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। फिर भी मन, वचन और काया इन तीन योगों का सम्बन्ध रहने के कारण आत्मा की स्थिरता पूर्ण नहीं होने पाती। चौदहवें गुण स्थान में वह पूर्ण हो जाती है। इसके बाद शीघ्र ही शरीर छूट जाता है और आत्मा अपने स्वभाव में लीन हो जाती है। इसी को मोक्ष कहते हैं। आत्मा की शक्तियों का पूर्ण विकसित होना ही मोक्ष है।

शैली को सार्थक बनाने के लिए ऋषभ-भरत के कथोपकथन को माध्यम के रूप में अपनाया गया है। जिनेश्वर भगवान ऋषभदेव के कैलाश भूधर (अष्टापद पर्वत) समवसरण में सुर-असुर, भूचर-खेचर तथा अन्य मुनियों के साथ अयोध्या नरेश भरत भी सपरिवार उपस्थित होते हैं। अष्ट प्रकार की पूजा करने के बाद वे भगवान से चौदह गुणस्थानों का स्वरूप पूछते हैं और भगवान ऋषभदेव उन्हें यह सब समझाते हैं। तत्पश्चात् परम उल्लास के साथ भगवान को वन्दन कर भरत सपरिवार अयोध्यापुरी लौटते हैं।

बेलि का आदि-अन्त भाग इस प्रकार है[1]—

आदि-भाग :

श्री पार्श्वनाथाय नमः
पंच परम गुरु पाए नमी, नमी वली गणहर विंदजी।
गुणठाणा गुण गाय सुधरी मनि परमानंद जी॥
आणंद कंद जिणंद भाख्या भेद भावु भव्वए।
गुणठाण वेलि विलास जुता सुख पावु सव्वए॥
कैलाश भूधर आदि जिनवर एक दिन समोसर्या।
सुर असुर भूचर खचर मुनिवर, त्रिरोय करी तिहां परवर्या॥१॥
भरत नरेस आवीया भावीया सहू परिवारे जो।
ऋषभेसर पाय वंदीया पूजीया अठं पयारे जी॥
अष्ट प्रकारीय करीय पूजा भरत राजा पूछए।
गुणठाण चौद विचार सारा भणि जिनमुणि वद्दए॥
मिथ्यात नामि गुणह ठामि वसिय काल अनंतू ए।
मिथ्यात पंच निरय पूरया भमिए चिहूं गति जंतूए॥२॥

१—हमें यह अंश डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल, जयपुर के सौजन्य से प्राप्त हुआ है। उदयपुर जाकर खण्डेलवाल मंदिर में हमने इस प्रति को बहुत खोजा पर वह मिल नहीं पाई।

अन्तिम भाग :

गोत्र ऊंच वेदनी साता हंता जिनवर भानजो।
पर्याप्तिक निरे आदेय तीर्थंकर करि हानि जी॥
हानि करि जिन तीर्थंकर वर प्रकृति ते वली तेरमो।
एकु सु अडताल सघली उत्तर पयडी इम गमी॥
अजर अमर पद सिद्धि पामी, हुआ मुगते ना रांजीया।
अष्ट गुण परि पुष्टि, तुष्टा नित्य सोख्यइं रंजीया॥२७॥
चौदि गुण ठाणा गुण्या जे, भण्या श्री जिनराइ जी।
सुर नर विद्याधर समा, पूजीय वंदीय पायजो॥
पाय पूजी मनहर जी भरत राजा संचरया।
अयोध्यापुरी राज करवा सयल सज्जन परवर्‌या॥
विद्यागण वर उदय भूधर नित्य प्रकटन भास्कर।
भट्टारक यशकीरति सेवक भणिय ब्रह्म जीवंधर॥

(६) बारह भावना वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि का सम्बन्ध बारह भावनाओं[2] से है। जैन दर्शन में 'भावना' शब्द का एक विशेष अर्थ है। संवेग, वैराग्य एवं भावशुद्धि के लिए आत्मा एवं

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है–
'भावना सरस सुर वेलड़ी, रोपि तूं हृदय आराम रे'
(ख) इस वेलि की कई हस्तलिखित प्रतियाँ मिलती हैं। हमें जो प्रतियाँ मिली हैं उनका विवरण इस प्रकार है—
(१) अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर की प्रतिः—ग्रंथांक नं० ८५८६। आकार १०½"×४½"। रचना संवत् १७०३। लेखन काल १६६६ श्रावण वीद ६ बुधवार। अन्तिम पत्र श्री अगरचन्द नाहटा ने लिखकर प्रति को पूरा किया।
(२) वही : ग्रंथांक नं० ८५८७। आकार ९½"×४½"। लेखन काल १७६९ श्रावण वदी १३ सोमवार। लेखन-स्थान राजनगर। आदि का पत्र नाहटाजी ने लिखकर प्रति पूर्ण की।
(३) वही : ग्रंथांक ८५८८। लेखन काल १७६२। लिपि लेखक महिम सागर।
(४) वही : ग्रंथांक ८५८९। यह प्रति अपूर्ण है।
(५) वर्द्धमान ज्ञान मन्दिर, उदयपुर : देखिये—राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज : भाग ३ : पृ० १६२। सं० उदयसिंह भटनागर।
(ग) वर्तमान लेखक द्वारा इसका परिचय प्रस्तुत किया गया है : शोध पत्रिका : वर्ष. १२, अंक १ (सितम्बर, १९६०), पृ० ३९–५२।

२—बारह भावनाओं के नाम इस प्रकार हैं-(१) अनित्य भावना (२) अशरण भावना (३)

जड़ तथा चेतन पदार्थों के संयोग-वियोग पर गहरे उतर कर विचार कर भावना है[1]। भावना का आचार से घनिष्ट सम्बन्ध है। जो जैसी भावना भाता उसी के अनुरूप उसका जीवन बनता है[2]। इन भावनाओं पर लिखा जाने वा साहित्य 'वेलि', 'संधि', 'सज्झाय' संज्ञक रचनाओं के नाम से प्रचुर मात्रा मिलता है[3]।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता जयसोम १८वीं शती के प्रारम्भ के कवियों में से थे। तपागच्छीय जससोम के शिष्य थे[4]। देसाईजी ने इनकी निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है[5]।

(१) गुणस्थानक स्वाध्याय
(२) ६ कर्मग्रंथों का बालावबोध (गद्य) सं० १७१६

इसी नाम के एक और कवि हो गये हैं जो खरतरगच्छीय प्रमोद माणिक्य गणि के शिष्य थे[6]। वे आलोच्य कवि के थोड़े पूर्व हुए थे।

संसार भावना (४) एकत्व भावना (५) अन्यत्व भावना (६) अशुचि भावना (७) आश्रव भावना (८) संवर भावना (९) निर्जरा भावना (१०) लोक भावना (११) बोधिदुर्लभ भावना और (१२) धर्म भावना।

१—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह : चौथा भाग, पृ० ३५५।

२—(क) यादृशी भावनायस्य सिद्धिर्भवति तादृशी

(ख) जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरति देखी तिन तैसी

३—(क) बार भावनानुं साहित्य : हीरालाल कापड़िया : जैन सत्यप्रकाश : वर्ष १३, अंक ४, पृ० १०१–१११

(ख) बार भावनानुं साहित्य विषे कंइक विशेष : मुनि श्री रमणिक विजयजी : जैन सत्य प्रकाश, वर्ष १३, अंक ६, पृ० १६३–१६६।

(ग) बारह भावना सम्बन्धी विशाल साहित्य : श्री अगर चन्द नाहटा : जैन सत्य प्रकाश वर्ष १३, अंक १२, पृ० २८०–८४।

४—श्री जससोम विबुध वैरागी, जस जस जिहुयण चावउ।
नाम सीस कहइं भावन भगता, घर घर होइ वधावउ रे ॥ढाल १३॥

५—जैन गुर्जर कविओ : भाग २, पृ० १२६–२८

६—वही : भाग १, पृ० ४१३

रचना-काल :

कवि ने शब्दांक शैली[1] में वेलि के अन्त में रचना-तिथि तथा रचना-स्थान का उल्लेख किया है[2]। उसके अनुसार इसकी रचना संवत् १७०३ में शुक्ल पक्ष की तेरस मंगलवार को जैसलमेर में हुई थी।

रचना विषय :

प्रस्तुत वेलि १३ ढालों की रचना है। इसमे कवि ने संसार के प्राणियों के हित के लिए जिनेश्वर भगवान की वन्दना कर सद्गुरु की प्रेरणा से बारह भावनाओं का स्वरूप समझाया है[3]।

(१) *अनित्य भावना :*

इस भावना के अनुसार संसार अनित्य है। जो कुछ हमें दिखाई देता है सब परिवर्तनशील एवं नश्वर है। शाश्वत सत्ता केवल आत्मा की है। आत्मेतर सारे पदार्थ क्षण भंगुर है। संसार तृण पर पड़े ओस बूंद की तरह क्षणिक एवं इंद्र धनुष की तरह अस्थिर है[4]। सांसारिक सम्बन्ध बिजली की तरह थोड़े समय के लिए चमक कर विलीन हो जाते है[5]। यौवन की मस्ती, दौलत का उन्माद, परिवार का गर्व, सब समुद्र में उठने वाली तरंगों की तरह अपनी विलास-लीला दिखा कर नष्ट हो जाते है[6]। सुख सम्पत्ति संध्या के राग विलास की तरह है[7]। चक्रवर्ती सनतकुमार[8], कीरतीधर राय[9] करकण्डु[10] आदि भी इस संसार मे न रहे। (ढाल १: छन्द ६)

१—नागरी प्रचारणी पत्रिका : ४६।२ : श्री अगरचन्द नाहटा

२—भोजन नभ गुण वरस सुचि, सित तेरस कुंजवार।
भगत हेतु भावना भणी, जैसलमेर मझार ॥५-ढाल १३॥

३—पास जिणेसर पय नमी, सद्गुरु नइ आधार।
भवीयण जण नर हित भणी, भणस्युं भावना बार ॥१॥

४—डाभ अणी जेहवो जल बिंदुउ जी, इंद्रधनुष अनुहार ॥१॥

५—चंचल चपला नी परिचितवइरे, कृत्रिम सविहूं संग ॥२॥

६—धन संपद पणि इमंकारिमीरे, जेहवा जलधि कल्लोल ॥४॥

७—इण संसारइं ए सुख संपदारे, जिम संध्या राग विलास ॥५॥

८—उपदेशमाला– भाषान्तरः प्रकाशक-जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, सं० १९६१, ५८।

९—शीलोपदेशमाला : प्रकाशक—जैन विद्याशाला अहमदाबाद, पृ० १८

१०—भरतेश्वर बाहुबलि वृत्ति–भाषान्तरः प्र० मगनलाल हठीसंग, अहमदाबाद, सं० १९६५, १०९।

(२) *अशरण भावना :*

मनुष्य अपनी रक्षा के लिए शरीर को समर्थ एवं बलवान बनाता है। माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र आदि स्वजनों एवं अन्य परिजनों का लम्बा चौड़ा परिवार बसाता है, पर जब जीव के अशुभ परिणाम उदित होते हैं तब कोई भी साथ नहीं देता। मनुष्य अशरण एवं अनाथ है, अगर वह सनाथ बन सकता है तो केवल मात्र धर्म के प्रभाव में। कर्म और काल जब व्यक्ति पर हमला करते हैं तो वह बकरे की तरह मे-मे करता हुआ उनके पास में आबद्ध हो जाता है[1]। चक्रवर्ती सुभूम तक को सातवीं नरक में जाकर घोर यातना सहन करनी पड़ी[2]। महाबलिष्ठ सुदर्शन चक्रधारी कृष्ण भी जलती हुई द्वारिका को न बचा सके[3]। अनाथी मुनि ने अशरण भावना का भावन कर राजा श्रेणिक को उद्बोधन दिया था[4]। बिना इस भावना का चिन्तन किये आत्मा मुक्त नहीं हो सकती। (ढाल २ : छन्द ६)

(३) *संसार भावना :*

यह संसार एक रङ्गमंच या नाटक है और जीव अभिनेता जो कर्म से प्रेरित होकर नाना प्रकार के वेश परिवर्तित करता हुआ भाँति भाँति के अभिनय करता है। कभी नरक गति में जाकर वहाँ के असह्य दुःखों को सहन करता है, कभी तिर्यंच गति की विभिन्न–बेइंद्रि, ओइंद्रि चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय–योनियों में भटकता फिरता है। कीट पतंग से लेकर सर्प, बकरी, हाथी आदि विविध शरीर धारण करता है। कभी देवगति में विविध सुखों का भोक्ता होकर भी शोक, भय, ईर्ष्या आदि मनोभावों से आतङ्कित होता है। कभी मनुष्य गति में जन्म लेकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-चण्डाल तक के रूप भरता है[5]। चौरासी लाख जीव योनियों में भटकता हुआ यह जीव बादर-सूक्ष्म पर्यायों में, तथा स्थावर–त्रस की स्थितियों में परिक्रमा लगाता रहता है। इस प्रकार संसार भावना का चिन्तन करने से आत्मा मोह ग्रसित नहीं होती। (ढाल ३ : छन्द ८)

१—मे मे करता रे अज परइ, कर्म ग्रह्यो जिउं जाय रे।
तिहा आडो को नवि थाय रे, दुख नवि इ विहचायरे ॥२॥

२—उपदेशमाला-भाषान्तर : प्र० जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, पृ० २१४

३—शीलोपदेशमाला : प्र० जैन विद्याशाला अहमदाबाद, पृ० १८।

४—उपदेश प्रासाद : प्र० जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, पृ० ३–४२।

५—कबही भूजल जलणा, त्रिन तरुमां भम्योरे। कबही नगर निगोद।
बि ति चउरिंदी माहे केईक दिन वस्योरे, कबही देव विनोद ॥३॥
कोड पतंगी हरि मातंग पशु भजइरे, कबही सरप सिआल।
ब्राह्मण खत्री वैश्य वणिग कहावतोरे, होवइ सुद्र चंडाल ॥४॥

(४) *एकत्व भावना :*

यह आत्मा अकेली उत्पन्न होती है और अकेली शरीर छोड़कर चली जाती है। अकेली ही कर्मों का संचय करती है और अकेली ही उसका आस्वादन। स्वजन मित्र आदि कोई भी साथ नहीं देता। छः खंड के स्वामी, नवनिधि के सन्निधाता, चौदह भुवनों के अधिपति और चौसठ हजार रानियों के नाथ चक्रवर्ती भी अकेले ही चले गये। महान पराक्रमी नीति धुरन्धर दशानन भी किसी को साथ नहीं ले जा सके। नमिराजर्षि ने इस एकत्व भावना को समझ लिया था[1]! रानियों के हाथों में जब एक-एक चूड़ी ही रह गई तो सारा शोरगुल शान्त हो गया[2]। (ढाल ४ : छन्द ७)

(५) *अन्यत्व भावना :*

शरीर और आत्मा भिन्न है। शरीर नश्वर है, आत्मा शाश्वत है। शरीर पौद्गलिक है, आत्मा ज्ञान रूप है। शरीर मूर्त्त है आत्मा अमूर्त्त है। शरीर इन्द्रियों का विषय है, आत्मा इन्द्रियातीत है। शरीर सादि है आत्मा अनादि है। आत्मा कभी रोगी नहीं होती। वह ज्योतिस्वरूप है. सांसारिक सम्बन्धी वृक्ष पर आश्रय लेने वाले पक्षियों की तरह या राह में मिलने वाले पथिकों की तरह हैं[3]। इस जीव रूपी राजा को मोहाभिभूत मन रूपी मन्त्री ने इन्द्रिय रूपी कलाल की प्रमाद रूपी मदिरा पिलाकर मतवाला बना रखा है[4]। कर्म रूपी जंजीरों मे वह जकड़ा हुआ है। यही कारण है कि उसे सब ओर अपना ही अपना नजर आता है जब कि यथार्थ में उसका कोई अपना नहीं है। भरत-बाहु बलि[5], मृगापुत्र[6], मरुदेवी[7], गोतम गणधर[8] आदि ने अन्यत्व भावना का भावन किया था। (ढाल५ : छन्द ८)

१—उपदेश प्रासादः प्र० जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर-२

२—नित कलहो बहु मेलइ देखिउ, बिहु पणि खटपट थायोरे।
वलयानी परि विहरिस एकलो, इम बूझ्यो नमिरायोरे ॥७॥

३—पंथ सिरइं पंथी मिल्यारे, कीजइ किणस्युं प्रेम।
राति वसइ प्रह उठि चलइरे, नेह निवाहइ केम ॥३॥
जिम मेलइ तीरथ मिलेरे, जण जिण जणारी चाह।
के तो टोके फायदोरे, ले ले निय घर जाहि ॥४॥

४—मोह वसू मन मंत्रवी, इंद्रीय मिल्या कलाल।
प्रमाद मदिरा पाइ करि, बांध्यो जीव भूपाल ॥१॥

५—भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति-भाषान्तरःप्र० मगनलाल हठीसंग, अहमदाबाद

६—उपदेश प्रासाद प्र० जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर

७—उपदेशमाला भाषान्तरः प्र० जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर

८—उपदेश प्रासादः १-८

(६) *अशुचि भावना :*

यह शरीर रज और वीर्य जैसे घृणित पदार्थों के संयोग से बना है। माता के गर्भ में अशुचि पदार्थों के आहार के द्वारा इसकी वृद्धि हुई है। उत्तम स्वादिष्ट और रस भरे पदार्थ भी शरीर में जाकर मल पर्याय में परिणत हो जाते हैं। आंख, नाक, कान, मुँह आदि नव द्वारों से नित्य मल झरता रहता है।[1] यह शरीर जिसे हम रूप का आगार, यौवन का धनी और संसार का तेज समझते हैं चर्म-पटल से आच्छादित हड्डियों का पिंजर मात्र है। इसमें रूप की जगह घृणात्मक पदार्थ भरे हैं, रस की जगह रुधिर भरा है। चक्रवर्ती सुभूम[2] तथा मल्लिनाथ[3] और उसके छमित्रों (राजा प्रतिबुद्ध, चंद्रछाय, रुक्मी, शंख, अदीनशत्रु और जितशत्रु) ने इस भावना को भाया था (ढाल ६: छंद ७)

(७) *आश्रव भावना :*

मन, वचन, काया के शुभाशुभ योग द्वारा जीव जो शुभाशुभ कर्म ग्रहण करते हैं उसे आश्रव कहते हैं। यह शरीर झील की तरह है। इसमें इंद्रिय रूपी मछलियां तैरती रहती हैं और आश्रव रूपी नालों द्वारा अविराम गति से पाप रूपी पानी आता रहता है।[4] ब्रह्मदत्त[5] जैसा चक्रवर्ती राजा भी महा आश्रवी बनकर नरक के दारुण दुःखों को भोगता रहा। (ढाल ७: छंद १)

(८) *संवर भावना :*

जिन क्रियाओं से कर्मों का आना रुक जाता है वह संवर है।[6] कर्मों के रुक जाने से आत्मा निर्विघ्न मुक्ति की ओर बढ़ती रहती है। संवर भावना भाने पर व्यक्ति के सुख दुख, मान-अपमान, लाभ-अलाभ एकरस हो जाते हैं।

१—देखी दुरगंध दूर थी, तुं मुह मचकोडइ मागइ रे।
नवि जाणइरे, तिण पुद्गल निज तनु मयुं ए ॥२॥
नगर खार परि नित बहइ, कफ मल मूत्र भंडारो रे।
तिम द्वार रे, नव द्वादस नर नारि ना ए ॥३॥
मांस रुधिर मेदा रस, अस्थि मांसा नर बींनइ रे।
स्युं देखइ रे, रूप देखि देखि भारगुं रे ॥४॥

२—उपदेशमाला : भाषान्तर, पृ० २१८

३—ज्ञाता सूत्र : ८वां अध्याय

४—मन वचन इंद्रिय थकी, विषय कषाय प्रकार।
पाप कचरो आवी भरयुं, आश्रव बहु पर नाल ॥१॥

५—उपदेश प्रासाद : प्र० जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर

६—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह: भाग ४, पृ० ३०४

गजसुकुमाल,[1] मेतारज,[2] सकोशल मुनि[3] और भगवान महावीर[4] ने अनेक प्रकार के कठोर उपसर्गों को सहन कर संवर भावना[5] का चिन्तन किया था। (ढाल ८ : छंद ७)

(६) *निर्जरा भावना* :

संवर भावना द्वारा जीव नवीन कर्मों को रोकने वाली क्रियाओं का चिन्तन करता है परन्तु जो कर्म आत्मा के साथ लगे हुए हैं उन्हें कैसे नष्ट किया जाय, यह चिन्तन निर्जरा भावना द्वारा किया जाता है। जैसे अग्नि सोने के मैल को जला कर उसे निर्मल बना देती है इसी प्रकार यह तप रूप अग्नि आत्मा के कर्म मल को नष्ट करके उसके शुद्ध स्वरूप को प्रकट कर देती है[6]। मेघकुमार[7] ने इस भावना का चिन्तन किया था (ढाल ९ : छंद ७)।

(१०) *लोकभावना* :

लोक के संस्थान का विचार करना लोकभावना है। यह लोक किसी द्वारा निर्मित नहीं है न कोई इसका रक्षक और संहारक है। लोक का प्रमाण चौदह राजू[8] है। इसके बीच में मेरु पर्वत है। लोक के तीन विभाग है— ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्य लोक। ऊर्ध्वलोक में प्रायः देवता रहते है। मध्यलोक मे प्रायः तिर्यंच और मनुष्य रहते है और अधोलोक मे प्रायः नारकी

१—भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति-भाषान्तर: १५६

२—वही : ७८

३—ऋषिमंडल वृत्ति-भाषान्तर: प्र० जैन विद्याशाला, अहमदाबाद

४—त्रिषष्ठि शलाका पुरुष चरित्र-भाषान्तरः प्र० जैन धर्म प्रसारक सभा, भावनगर, १०वां पर्व।

५—शुभ मानस करी, ध्यान अमृत रस रीन।
नवदल श्री नवकारपद, करि कमलासन कोळ॥
पातक पंक पखालि नइ, करि संवरनी पाळि।
परम हंस पदवी भजै, छोड़ी सकल जंजाली॥

६—मन दारु तन नालिकरि, ध्यानानल सिलगावी।
कर्म-कटक भेदण भणी, गोला ज्ञान चलावि॥
मोहराय मारी करी, ऊंचो चढि मकलोइ।
त्रिभुवन मंदिर मोडणी, जिन परमानंद होइ॥

७—ज्ञाता सूत्र : पहला अध्याय

८—देवता एक निमेष (आंख की पलक गिरने म जितना समय लगता है, उसे निमेष कहते है) में एक लाख योजन जाता है यदि वह छः मास तक लगातार इसी गति से चलता रहे तो एक राजू होता है।

जीव रहते हैं। लोक के अग्रभाग में सिद्ध पुरुष रहते हैं। लोक का विस्तार मूल में सात राजू है फिर घटते घटते मध्य में एक राजू है और पुनः बढ़ते बढ़ते ब्रह्मलोक में पाँच राजू का विस्तार है। और ऊपर जाकर क्रमशः घटते घटते एक राजू का विस्तार रह गया है। लोक का घन सात राजू है। जामा पहनकर और पैर फैलाकर कोई पुरुष खड़ा हो, दोनों हाथ कमर पर रखे हों, उस पुरुष से लोक की उपमा दी गई है[1]। लोक में पृथ्वी घनोदधि घनवायु और अनुवायु, तनुवायु पर स्थिर है। यह तनुवायु आकाश पर स्थित है। लोक के चारों ओर अनन्त आकाश है। लोक के नीचे से ज्यों ज्यों ऊपर आते हैं त्यों त्यों सुख बढ़ता जाता है। ऊपर से नीचे की ओर अधिकाधिक दुःख है। ऊर्ध्वलोक में सर्वार्थसिद्ध के ऊपर सिद्ध शिला है। आत्मा का स्वभाव ऊपर की ओर जाना है परन्तु कर्म से भारी होने के कारण वह नीचे जाती है। शिवराजऋषि[2] ने इस प्रकार की लोक भावना का चिन्तन किया था। (ढाल १० : छन्द ११)

(११) *बोधि दुर्लभ भावना :*

बोधि का अर्थ है ज्ञान। मनुष्य-जन्म पाकर भी आत्मा मिथ्यात्व और माया में फंसकर पथभ्रष्ट हो जाती है। बोधत्व प्राप्त करने का अवसर मनुष्य-जन्म में ही मिलता है। यही कारण है कि देवता तक इसे प्राप्त करने के लिए लालायित रहते हैं। इसलिए इस जन्म में आर्य देश, उत्तम कुल, पूर्ण पाँचों इन्द्रियाँ आदि पाकर बोधि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। मनुष्य-जन्म अनेक पुण्यों का फल है जो बार बार नहीं मिलता। फिर मनुष्य-जन्म मिलने पर भी अनेक बाधक तत्व उपस्थित होकर धर्म से विरत करते है। शरीर रोगग्रस्त हो जाता है, बुढ़ापे में इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और अन्त में काल आकर सर पर मंडराने लगता है। अतः समय पर सम्भल कर व्यक्ति को धर्माराधना करनी चाहिये। इस प्रकार का चिन्तन भगवान ऋषभदेव के ९८ पुत्रों ने[3] किया था। (ढाल ११ : छन्द ८)

(१२) *धर्म भावना :*

वस्तु का स्वभाव धर्म है। क्षमा आदि दस भेद रूप धर्म है, जीवों की रक्षा करना, दान देना, तपस्या करना, संयम पालना सभी धर्म के ही पर्याय हैं।

१—मर्द पुरुष आकार पग पिहुला धरी, कर दोऊ कटि राखीइए।
इण आकारह लोक, पुद्गल पुरिउ, जिम काजलनी कूंपलीए ॥२॥

२ सूत्र : ५-वां अध्याय।

३ बाहुबलि वृत्ति-भावान्तर

अहिंसा, संयम और तप उत्कृष्ट मांगलिक धर्म के आगे देवता भी सिर झुकाते हैं। धर्म ही अनाथों का नाथ और अशरण का शरण है, संसाररूपी समुद्र के संतरण के लिए यही एक मात्र जहाज है। गौतम[1], अर्जुनमाली[2] राजा परदेशी[3] आदि इसी भावना के चिन्तक बनकर मुक्त बने थे। (ढाल १२ : छंद ७)

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल होते हुए भी साहित्यिक है। उसमें प्रवाह, माधुर्य एवं नाद-सौन्दर्य देखा जा सकता है—

(१) 'पल पल छीजइ आउखूं, अंजलि जल ज्यों एह'

(२) 'भव सागर बहु दुख जल, जामण मरण तरङ्ग।
ममता तंतु तिणइ ग्रसो, चेतन चतुर मतङ्ग।'

अलङ्कारों की ओर कवि का ध्यान नहीं रहा है। पर प्रत्येक भावना के स्वरूप बोध के बाद एक एक उपमा-रूपक की सृष्टि की गई है। यथा—

उपमा :

(१) डाभ अणी जेहवो जल, बिंदुउओ, इन्द्रधनुष अनुहार।
(२) इण संसारइं ए सुख सम्पदा रे, जिम सन्ध्या राग विलास।
(३) किहां लगें धूंआ धवलहर रहइरे, जल पंपोटा जोय।
(४) छेहइ छोड़ि चल्या ते एकला, हारया ज्युं जुआरि रे।
(५) देव बल नो देखि दह दिसि पुलइ, जिम पंखी तरु वासो रे।

रूपक :

कवि की रूपक सृष्टि बड़ी सटीक एवं सुन्दर है। जहाँ तक बन पड़ा है उसने साग रूपक ही बाँधे हैं। यथा—

(१) मोह वसू मन मंत्रवी, इन्द्रिय मिल्या कलाल।
प्रमाद मदिरा पाइ करि, बाध्यो जीव भूपाल।

(२) निर्मल पय सहजइं मुगति, नाण विनाण रसाल।
ज्युं बगनी परि पंक जल, चुगइ चतुर मराल॥

(३) भावना सरस सुर वेलड़ी, रोपि तूं हृदय-आराम रे।
सुकृत तरु लहीय बहु परसती, सफल फलिस्यइ अभिराम रे।

१—उत्तराध्ययन सूत्र : २३ वा अध्याय

२—अनन्तगडदसाग सूत्र

३—शीलोपदेशमाला: प्र० जैन विद्यामाला, अहमदाबाद, ३९६

छन्द :

काव्य में ढाल छन्द का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक ढाल की राग इस प्रकार है—

(१) ढाल भावननी। टेक: सहज संवेगी सुन्दरग्रातमा रे।
(२) ढाल राग। रामगिरि। रांम भणइ हरि ऊठीइ एहनी देशी।
(३) ढाल राग मारुणी। टेक–चेतन चेनिइरे। लहो मानव अवतार।
(४) ढालः पूतन कीजइ हो साधवि सासडी एहनी देशी।
(५) ढाल केदारो गोडी। कपूर होइ अती उजलू रे। ए देसी।
(६) ढाल राग सिंघू उ। चत्र अनइं संभूत ए गज पर वीहरंत। ए देशी।
(७) ढाल राग धोरणी। गली ग्रा वलद तणी परइं रे जैन बहइ वरत मर। ए देशी।
(८) ढाल उलोनीःस्विण लाखीणोरे जाइ। ए देशी।
तथाःअवनो नलवारु वमइं जो कूडलहार अतार। ए देसी।
(९) ढाल राग केदारो गोडी–
उगरसेन घर वेटडी मन भमरा रे। लाल मन भमरा रे। ए देशी।
(१०) ढाल राग गोडी। प्ररथवी पांणी तेउ रेखाउं वनसपति। ए देशी।
(११) ढाल खंभाइति। मोरी मात जी रे। अनुमति मोरी मात जी रे। ए देशी।
(१२) ढाल डुंगरीयानो देशी। भावना माहालती चुसीए।
अथवा–सवांमी सीमंधर वीनती। ए देशी।
(१३) ढाल–राग धन्यासी।

(१०) चार कपाय वेलि[१]

प्रस्तुत वेलि चार कपाय[२] (कोध, मान, माया, लोभ) से सम्बन्धित है। इन्हें क्षमा, विनय, सुविचार और सन्तोप के द्वारा जीता जाता है।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। प्रति के आरंभ में लिखा है— 'चार कपाय वेलि'

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर के ग्रथांक ८६२६ में सुरक्षित है। प्रति का आकार १०३" ४३" है। यह तीन पत्रों में लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियां और प्रत्येक पंक्ति में ४४ अक्षर हैं। प्रति अपूर्ण है। चौथे कपाय (लोभ) का वर्णन अधूरा है।

(ग) वर्तमान लेखक ने इसका परिचय प्रस्तुत किया है : साहित्य संदेश भाग २२ अंक ४: अक्टूबर, १९६०, पृ० १८६

२—जो शुद्ध स्वरूप वाली आत्मा को कलुषित अर्थात् कर्म-मल से मलीन करते हैं, वे कषाय कहलाते हैं।

कवि परिचय :

इसके रचयिता विद्याकीर्ति १७ वीं शती के कवियों में से थे। ये खरतर-गच्छीय पुण्यतिलक के शिष्य थे जिनका उल्लेख प्रत्येक कषाय वर्णन के अन्त में किया गया है[1]। देसाई जी ने इनकी निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है[2]।

(१) नरवर्म चरित्र-सं० १६६६ (२) धर्म बुद्धि मन्त्री चोपाई-स० १६७२
(३) सुभद्रा सती चोपाई

रचना काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। हस्तलिखित प्रति अपूर्ण मिलि है अतः निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता। अन्य कृतियों को देखते हुए इनका काव्य-काल सं० १६६६ से सं० १६७२ ठहरता है। अनुमान है सं० १६७० के आसपास यह वेलि रची गई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ५६ छंदों की अपूर्ण रचना है। प्रारम्भ में चोवीस तीर्थंकर और सरस्वती की वन्दना करते हुए वस्तु का संकेत किया गया है[3]। तत्पश्चात् प्रथम ढाल में क्रोध, द्वितीय में मान, तृतीय में माया और चतुर्थ में लोभ का वर्णन है।

(१) *क्रोध कषाय का वर्णन :*

छंद संख्या १ से १० में कवि ने कुरगड़ोक[4], बारहवे चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त[5], कुलवालुक मुनि[6], श्रेणिक पुत्र कोणिक[7], आदि के दृष्टान्त देकर क्रोध के

१—क्रोध:—पुण्यतिलक गुरु सानिधइ, विद्याकीरति सुखकार रे ॥१८॥
मान:— पुण्यतिलक सुप्रसाद थी सुन्दर, विद्याकीरति सुखदाई रे ॥३७॥
माया:—पुण्य तिलक सीसइ मुदा, विद्याकीरती भाणदा रे ॥४६॥
लोभ:—अपूर्ण प्रति। संभव है इसी तरह की पंक्ति रही हो।
२—जैन गुर्जर कविओ : भाग ३, खण्ड १, पृ० ६५६-५८।
३—जिन चउवीस नमी करी, वली विनेवइ पाय।
संतेसर मेरु सदा, मागइ सीत विलाय ॥१॥
क्रोधादिक च्यारे तणा, पारसु हुं परिबंध।
भाषम माहइ बहु कला, सुणउ भविक ए संधि ॥३॥
४—भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति: भाषान्तर, पृ० १०५
५—उपदेश प्रासाद- २०३१
६—शीलोपदेशमाला: ११८
७—उपदेशमाला भाषान्तर, २०७

बुरे परिणामों की ओर संकेत किया है[१]। छंद संख्या ११ से १८ में मेतार मुनि[२], गजसुकुमाल[३], कुरगडु मुनि[४], सुकोशल मुनि[५], अवन्ति सुकुमाल आदि के दृष्टान्त देकर क्षमा (उपशम) द्वारा क्रोध को जीतने का उपदे दिया है[७]।

(२) *मान कषाय का वर्णन :*

छन्द संख्या १९ से २४ में मान के बुरे परिणामों[८] और विनय के सुपरिणाम की विवेचना करते हुए कवि ने रावण[९], मरिचि[१०], बाहुबली[११], सन चक्रवती[१२], हरिकेशी चाडाल[१३], दशार्णभद्र राजा[१४], चमरेन्द्र-शकेन्द्र[१५] श्रेणिक[१६], थावच्चा पुत्र[१७], नन्दिषेण[१८], आदि के दृष्टान्त दिये हैं। मान के लिए 'विनय' की व्यवस्था दी है[१९]।

(३) *माया कषाय का वर्णन :*

छन्द संख्या २५ से ४९ में कवि ने माया के भयंकर परिणामों और दुखों[२०]

१—क्रोध म करिज्यो कोई प्राणीयारे। क्रोधइ दुरगति थायरे।
तप जप जे करइ, दुकरू रे, क्रोधइ महूयइ जाय रे ॥४॥

२—भरतेश्वर बाहुबली वृत्तिः ६६-७४

३—वही : १५६

४—वही : २२८

५—ऋषभ मण्डल वृत्ति-भाषान्तर

६—भरतेश्वर बाहुबली वृत्तिः १५६

७—इम दिष्टंत अनेक छइरे, कहिता नावइ पार रे।
सम्भलि नइ भवीयण सदारे, ग्रहउ क्षमा रस सार रे ॥१५॥

८—मान म करि मोरा जीवड़ा, सुन्दर नमता सिव सुख थापइ रे ॥१६॥

९—योगशास्त्र भाषान्तर : प्र० शा भीमजी माणेक, १६२

१०—उपदेश प्रासाद : २२-३२१

११—भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति-भाषान्तर

१२—उपदेश प्रासाद : २१-३०४

१३—उपदेश माला-भाषान्तर : १०४

१४—*भरतेश्वर बाहुबली वृत्तिः भाषान्तर : १२६-१२८*

१५—भगवती सूत्रः शतक ३

१६—उपदेश प्रासाद : २५-३५४

१७—ज्ञाता सूत्र : ५ वां अध्याय

१८—उपदेश प्रासाद

१९—विनय प्रविश जिन भाषीयउ सुन्दर, जेहथी लाभइ ग्यानो रे ॥

२०—माया दुखकारिणी गिण्यउ, माया अणरथ मूलि रे।
माया मगनई वरजवी, माया नावइ सूलि रे ॥३५॥

की पुष्टि के लिए मल्लिनाथ[1] (जो पूर्वभव में महाबलो नाम के साधु थे और कपट पूर्वक तपस्या करने से स्त्री बने) ब्राह्मी-सुन्दरी[2] (जो पूर्वभव में पीठ महापीठ नाम के साधु थे और माया के कारण स्त्री बने), आषाढ़-भूति मुनि[3], आदि के दृष्टान्त दिये है। इसके उपशमन के लिए सुविचार (शुभ ध्यान) की व्यवस्था दी है[4]।

(४) *लोभ कषाय का वर्णन :*

छन्द संख्या ५० से ५६ मे लोभ के बुरे परिणामों की पुष्टि के लिए सेठ-सागर[5], चक्रवर्ती सुभूम, भरत, मम्मण सेठ[6], कपिल ब्राह्मण[7] आदि के उदाहरण दिये गये है, अपूर्ण प्रति होने के कारण उपशमन की व्यवस्था का संकेत नहीं मिलता पर यह निश्चित रूप मे कहा जा सकता है कि कवि ने संतोष का ही वर्णन किया होगा।

कला पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। यथावसर अपने मत की पुष्टि के लिए कवि ने अन्तर्कथाओं का उल्लेख किया है। अलंकारो का प्रयोग प्राय नही हुआ है। अभिमानी व्यक्ति को एक जगह सूखे काठ की उपमा दी है—

मूकइ काष्ट समउ कह्यउ, सुन्दर मान सहित नर जाणो रे ।।३३।।

छन्द :

ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रति में तीसरी ढाल के लिए 'मल्हार राग' और चौथी ढाल के लिए 'सिंधु राग' का उल्लेख किया गया है।

(११) क्रोध वेलि[8]

प्रस्तुत वेलि भी कषाय-वर्णन मे संबंधित है। क्रोध प्रथम कषाय माना गया है इसी कारण इसे क्रोध वेलि नाम दिया गया है।

दुरगति जाता सारथी, बोलण सिल सम जाणो रे
जे नर एहनइ चालवई, ते लहिस्यइ दुख खाणो रे ।।३६।।

१—ज्ञाता सूत्र : ८ वा अध्याय
२—भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति-भाषान्तर
३—उपदेश प्रासाद : १६–२४३
४—माया भवियण परिहरउ, धरउ सदा शुभ ध्यानो रे ।।३७।।
५—उपदेश प्रासाद: १७–२४४
६—गौतम कुलक वृत्ति
७—उत्तराध्ययन सूत्र : ८वा अध्याय
८—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम आया है—
कहउं वेलि कोहातणी ज्यों पाऊं भव पार (१)

कवि-परिचय :

इसके रचयिता मल्लिदास १६वीं शती के कवियों में से थे। ये पं० माल्हा के पुत्र थे। वेलि में ५ जगह इसका उल्लेख हुआ है[1]। ये दिगम्बर मतानुयायी थे। इनका निवास स्थान जयपुर के पास चम्पावती–चाटसू रहा है। इन्हीं के आस पास इसी नाम के एक और कवि हो गये हैं जो विजयगच्छीय आचार्य पद्मसागर सूरि के शिष्य देवराज के शिष्य थे[2]।

रचना-काल :

वेलि में रचना-काल का उल्लेख किया गया है[3]। उसके अनुसार यह सं० ८८ में वैशाख की चौथ रविवार को रची गई। यह ८८ किस शती का है ? इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं है। प्रति १६वीं शती की है अतः यह संवत १५८८ ही होना चाहिये।

रचना-विषय :

३५ छंदों की इस रचना मे विद्याकीर्ति कृत'चार कषाय वेलि' की भांति क्रोध, मान, माया और लोभ का वर्णन किया गया है। क्रोध का वर्णन करते हुए कहा गया है कि क्रोध करने मे धर्म का नाश होता है, कुकर्मों का बंध होता है, धन सम्पत्ति नष्ट होती है, आत्मा मलीन बनती है और अन्त में मर कर नरक गति में जाना पड़ता है[4]।

(ख) प्रति-परिचयः–इसकी हस्तलिखित प्रति जैन साहित्य सदन, चांदनी चौक दिल्ली में सुरक्षित है। इसकी प्रतिलिपि हमे श्री परमानंद जैन के सौजन्य मे प्राप्त हुई है।

१—(१) कोवैं अप्पाणु विणासइ, माल्हा तणु मल्लिदासु भासइ (७)
(२) मल्लिदासु कहइ सुद भाई, माणुति जय सिवपुर जाई (१६)
(३) माल्हा तनु मीलपदेसी, प्रति कोई बहु दुखु देसी (२४)
(४) माल्हातनु मल्लिदास नाखउ, भवि यह मनि सुक्ख उपायउ (२६)
(५) इह जम्म तणो फल लीजे, मल्लिदास दोसु नहु कीजे (३५)

२—राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोजः मुनि कांतिसागर (अप्रकाशित)

३—अठ्यासे आदित वारे, संवच्छरि किउ विचारे।
वैशाख चौथ वदि सारउ, मन वंछित फल दातारउ (३०)

४—कोवेसा पणासइ धम्मु, अवर विविहु करय कुकम्मु ॥३॥
चितइ निसि चिंति सवाई, नींद न आवइ सुखदाई।
कोवैं गुण सबल विजाही, पिउ माय न संगि रहा हीं ॥४॥
कोवैं जमु नासय दूरें, लिहि अंगु रोग सब चूरें।
कोवैं वीसासु विजाये, उभो छंडहि निय भाये ॥५॥
कोवैं संपय लहु छंडय, हुय दालिदु सरीरहु दंडय।
पुणु नरय गमणु सो पावइ, जिउ पुणु पुणु फिरि संतावइ ॥६॥
कोवैं अप्पाणु विणासइ, माल्हातणु मल्लिदासु भासइ।
को कहै घणे अंजालु, यह रोसु अकालह कालु ॥७॥

मान के बुरे परिणामों[1] का संकेत कर मार्दव से उसे जीतने का उपदेश दिया गया है[2]।

माया को सांपिन बताया गया है। उससे शील, तप, संयम सबका नाश होता है[3]। इसे सरलता के द्वारा अपने वश में करना चाहिए[4]। लोभ सब पापों का मूल है। रावण, कीचक आदि को इसी कारण प्राणों से हाथ धोना पड़ा। संसारी प्राणियों को कभी लोभ नहीं करना चाहिए[5]। अन्त में सम्यग्दर्शन[6] का महत्व बतलाते हुए[7] कहा गया है कि जिस प्रकार एक (१) के बिना शून्य (०) का कोई महत्व (सार) नहीं उसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना सब व्यर्थ है[8]।

१—माणें मूवउ खरु होइ, मोपे मुहि हिडय सोई।
पुणु नीच गोत लहु पावइ, तसु दंसणु कहुवि न भावइ ॥११॥
ते नामु कोइ नहु जंपइ, भूख भयह थरहरि कंपइ।
माणें नर जे मुनि पेखें, चहुंगति दुख अधिका देखें ॥१२॥
माणें चडि नर वर सारा, मइ भमिया लद्द न पारा।
माणें नरु जो मणु चालइ, सो नरय गमणु सुमि हीलइ ॥१३॥
माणें जिण दिक्खा छंडय, जोगी हुय घरि घरि हिंडय।
माणें पिय पाप न सेवइ, एकाकी निसि दिणु खेवइ ॥१४॥

२—माणु जि छंडहि भवियजण, ते पावहि सुह ठाणु।
मुक्ति तिया तहु आदरं, पुणु पावहि निव्वाणु ॥८॥
निव्वाण सौख्य नरू पावइ, सो मुक्ति तिया मन भावइ।
मद्दउ से ससारह तारइ, चउगइ बहु दुक्ख निवारइ ॥६॥

३—माया तव सील विणासो, माया दुइ कम्मह पासो।
माया दुहु भसइं बीउ, फेरय चहुगति महि जीउ ॥१८॥

४—माया सपिणि ते डस्या, त्याह की लेहु मलीह!
जिह हियडए सरल पणो, ते जाणहु नर सीह ॥१६॥

५—लोभु न कीजइ भवियजण, लोभहि लोभ पसाहु।
पग तोडवि णर मह गयो, देखेहु घण के गाहु ॥२४॥
देखहु धन गाहु न कीजइ, जिणवर धम्मु हियइ धरिज्जइ।
लांहे लगि पोहणु बूडे, पंडितु किम लोहें छूटे ॥२५॥

६—तत्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् अर्थात् वस्तु के यथार्थ स्वरूप पर श्रद्धान अर्थात् विश्वास रखना या वास्तविक स्वरूप को जानने का प्रयत्न करना सम्यग्दर्शन है।

७—दंसणु जम संजय बीउ, चहुगति तें काढे जीऊ ॥३१॥
दंसणु विणु तपु नहु सोहइ, दंसणु नरु देवइ मोहइ ॥३२॥
दंसणु विणु वय फलुजाई, दंसणु पहु देहु जिणाई ॥३३॥
दंसणु वय भूषह मूलो, मिथ्याती नर सिरि सूलो ॥३४॥

८—सम्यक् दंसण बाहिरउ निपफलु हुय वय सब भाय।
जिम एका विणु सून्निमउ सयलत्तु होइ असारु ॥३१॥

कला पक्ष :

काव्य की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है। अलंकार की ओर कवि का ध्यान नहीं रहा है।

छंद :

प्रति में धत्ता छंद का उल्लेख मिलता है पर वास्तव में यहाँ दोहा, और सखी छंद का ही प्रयोग हुआ है।

(१२) प्रतिमाधिकार वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि का सम्बन्ध प्रतिमा-पूजन से है। १६ वीं शती में एक धार्मिक क्रान्ति हुई[2]। इसके सूत्रधार थे लोंकाशाह। इन्होंने मूर्तिपूजा का निषेध किया[3]। वेलिकार ने इस रचना में आगमों के आधार पर प्रतिमाधिकार की चर्चा की है। जैन दर्शन में प्रतिमा का प्रयोग एक विशेष अर्थ में भी किया जाता है। इसे प्राकृत में पडिमा कहते हैं जिसका अर्थ है अभिग्रह विशेष या प्रतिज्ञा। आध्यात्मिक समुच्चता को प्राप्त करने वाला साधक इनकी आराधना करता है। साधु और श्रावक दोनों ही इन प्रतिमाओं की उपासना करते हैं। साधु की प्रतिमाएँ बारह हैं जब कि श्रावक की ग्यारह[4]।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—'इति श्री प्रतिमाधिकार वेलि समाप्त'

(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के गुटका नं० ११२४ में सुरक्षित है। गुटके का आकार ६"×४½" है। प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में ३० अक्षर हैं। यह गुटके के पत्र ६१–६२ पर लिखी हुई है।

२—जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास : देसाई, पृ० ५०६–५१२

३—श्री लोंकाशाह मत समर्थन : रतनलाल डोसी : सैलाना

४—श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं पर लिखी गई एक 'इग्यार प्रतिमा वेल' भी मिलती है। इस वेल की हस्तलिखित प्रति श्री आमेर शास्त्र भंडार, जयपुर के गुटका नम्बर १५, वेष्टन सं० २५३ में सुरक्षित है। यह पत्र सं० २४ से २७ पर लिपिबद्ध है। गुटके का आकार ९"×७" है। प्रत्येक पृष्ठ में १५ पंक्तियाँ और प्रत्येक पंक्ति में १४ अक्षर हैं। १२ छन्दों की इस छोटी सी रचना में श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं (दर्शन प्रतिमा, व्रत प्रतिमा, सामायिक प्रतिमा, पोषध प्रतिमा, नियम प्रतिमा, ब्रह्मचर्य प्रतिमा, सचित्त त्याग प्रतिमा, आरम्भ त्याग प्रतिमा, प्रेष्यारम्भ त्याग प्रतिमा, उद्दिष्ट भक्त त्याग प्रतिमा और श्रमणभूत प्रतिमा) का वर्णन है। अन्तिम छन्द से पता चलता है कि इस वेलि की रचना पंडित गोविन्द ने ब्रह्म धर्मरुचि के लिए की थी—

कवि-परिचय :

इसके रचयिता कोई पण्डित सामन्त है[1]।

रचना-काल :

वेलि की रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है उसका लेखन काल सं० १६५५ है। अन्तःसाक्ष्य के आधार पर कवि का समय १७ वीं शती का पूर्वार्द्ध ठहरता है। अनुमान है इसी बीच इसकी रचना हुई हो।

रचना-विषय :

यह १८ छन्दों की छोटी सी रचना है। इसमें कवि ने मूर्तिपूजा का समर्थन किया है। उसके अनुसार अभयकुमार, चमरेन्द्र, जंघाचारण-विद्याचारण, आनन्द, भरत आदि ने जिन प्रतिमा का वन्दन-पूजन किया था। ठाणांग, ज्ञाता धर्मकथांग, उपासकदसांग, रायपसेणी, जीवाभिगम, उववाई, जम्बूद्वीपपन्नति, भगवती सूत्र आदि आगमों में प्रतिमाधिकार चला है। यहाँ वेलि का आदि-अन्त भाग दिया जा रहा है।

आदि-भाग :

सरस्वती सामणि मनिधरि, वंदि जिन चोवीस।
स पडिया गुण वर्णउ, आणी भाग जगीस ॥१॥
हिव आणी भाव जगीस, जिन वंदउ हूँ निसदिस।
जिन पूजि समकित आवइ, जिन पूजिइ शिव गति पावइ ॥२॥
जिन पडिमा कीधी सार, धन्य धन्य अभयकुमार।
प्रतिबोधिउ आद्रकुमार, इम सूत्रि कहिउ विचार ॥३॥

अन्त-भाग :

किम वखाणि ते नरा, कुमति पड्या छइ जेह।
जिण प्रतिमा वंदइ जिके, ते पामइ भव छेह ॥१६॥
भवछेह सहिते पांमइ, जे जिणवर ने सिर नामइ।
सूधी मति हिव नि हासइ, सब केरा अमङ्गल टालइ ॥१७॥
जिन वचने जु चित दीजइ, तु सुगति तणा फल लीजइ।
इम पण्डित सामत बोलइ, जिन मान्या कोइ नवि तोलइ ॥१८॥

॥ इति श्री प्रतिमाधिकार वेलि समाप्तः ॥

पहिली प्रतिमा हऊ करी थालि, अवर सकल दल सार।
जो पहिली नही हऊ करी थालि, पंच चोविसेम संसार॥
पंडित गोविंद प्रचुर महोद्धि। उपदेसी वेल सार।
धर्म रचि बह्म हित भणी पोथी। भणसि ने भव पार ॥१२॥
॥ इति आगार प्रतिमा वेल समाप्त ॥

1—जिन वचने जु चित दीजइ, तु सुगति तणा फल लीजइ।
इम पंडित सामत बोलइ, जिन मान्या कोइ नवि तोलइ ॥१८॥

(१३) कल्प वेल[1]

प्रस्तुत वेलि का सम्बन्ध जिन पूजा मे है। यहाँ कल्प शब्द का अर्थ विधि-विधान मे है।

कवि-परिचय :

हमें जो हस्तलिखित प्रति मिली है उसम कहीं भी कवि के नाम का उल्लेख नहीं है। वर्ण्य-विषय को देखते हुए कहा जा सकता है कि इसका रचयिता कोई मूर्ति पूजक जैन कवि रहा है।

रचना-काल :

काव्य में कहीं भी रचना-तिथि या लिपिकाल का उल्लेख नहीं है। जो हस्तलिखित प्रति मिली है उसमें इस वेल के पूर्व देवीदास कृत स्तोत्र लिखा है जिसके अन्त में पुष्पिका दी है यथा—'इति पदं लिपतं। मुनि नायक विजे श्रावक सिवदान मन्नजी अर्थे सम्वत् १९२३ कार्तिक शुक्ल पक्ष द्वितीया रात्रौ'। इस आधार पर संवत १९२३ के पूर्व इसका रचा जाना निश्चित होता है।

रचना-विषय :

५ ढालों की इस छोटी सी अपूर्ण रचना में अष्टप्रकारी पूजा[2] में से केवल पाँच पूजाओं का वर्णन किया गया है। उनके नाम है-जल पूजा[3], चन्दन पूजा[4],

---

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—
　　स्वामी श्री मुख पूरवा, कल्प वेल नो सार।

(ख) प्रति-परिचयः-इसकी हस्तलिखित प्रति राजस्थानी शोध संस्थान, चौपासनी (जोधपुर) के ग्रंथांक ८४ मे सुरक्षित है। प्रति का आकार ५३/४"×४३/४" है। यह ६ पत्रों मे लिखी हुई है। प्रत्येक पृष्ठ में १० पंक्तियाँ हैं और प्रत्येक पंक्ति में १२-१४ अक्षर हैं। प्रति अपूर्ण है। 'अथ: अक्षत पूजा ढं अक्षत ॥' लिखकर छोड़ दिया गया है।

२—पूजा भवि जननी करो, अष्टभेद सुविचार।

३—गंगा मागध क्षीर निधि, उज्जवल मिश्रित सार।
　　कुंभ भरया निज सुचि जले, करो जिन स्नात्र अनुसार ॥२॥

४—कुंकुम चन्दन केसर सो, जो पूजे जिन अंग।
　　मोह ताप मिट जाय तसु, सुख दुःख समता अंग ॥१॥
　　बावना चन्दन कुंकुमा, मृगमद ने घनसार।
　　जिन तनु को तनु टले, मोह भ्रमाद विकार ॥२॥

पुष्प-पूजा[1], धूप-पूजा[2] एवं दीप-पूजा[3]। अनुमान है आगे की तीन ढालों में अक्षत, नैवेद्य और फल पूजा का वर्णन किया गया हो।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है। अलंकरण की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है।

छन्द :

दोहा एवं ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है।

(१४) छीहल कृत वेलि[4]

प्रस्तुत वेलि में मन को सांसारिक विषयों का त्यागकर प्रभु भक्ति की ओर उन्मुख होने का उपदेश दिया गया है।

१—निर्मल चेतन भाव नित, विकसित कुसुम नवीन।
श्री जिनवर तनु परसते, भवि जन होत प्रवीन ॥१॥
सत पत्री वर मोगरो, चम्पक जाय गुलाब।
केतकी दमणो बोलसिरी, पूजे जिन भर छाब ॥२॥

२—उरध गति सुचि सुरभी, कृष्णागर वर धूप।
वाम पंग जिनवर तणो, करत हरत भवकूप ॥१॥
कृष्णागर मृगमदत हर, अंबर तुरक लोबान।
मेल सुगंध घनसार घन, करो सुगंध धूप दान ॥२॥

३—अवरण मे जिन मंदिरे, दीपक ज्योत उल्लास।
करता मिथ्या तम मिटे, प्रगटे ग्यान प्रकाश ॥१॥
मणिमय रजत हिरण्य ना, पात्र करी घृत पूर।
बरती सूत्रमुं भली करो, जिनगुण गीत ॥२॥
दीप तणी शुभ ज्योति द्योति जिन मुख चंद।
निरखि हरखी भवि जिन जिम लहो पूर्णानन्द ॥३॥

४—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आता है। पुष्पिका में लिखा है—'इति वेलि समाप्त'
(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति शास्त्र भंडार मंदिर बोरा, जयपुर के गुटका नं० ८१ मे सुरक्षित है। राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ सूची : चतुर्थ भाग के पृ० ११७ मे छीहल के पद—
'रे मन काहे को भूलि रह्यो, विषया बन मांहि'
का भी उल्लेख हुआ है, वह प्रस्तुत वेलि की प्रथम पंक्ति ही है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता छीहल[1] १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध में विद्यमान थे[2]। देसाईजी ने इनको जैनेतर कवि बतलाया है[3] इसका कारण यह रहा है कि उन्हें (देसाईजी को) जो प्रति मिली थी उसका जैन धर्म से कोई संबंध नहीं था। वास्तव में ये जैन विद्वान् और प्रसिद्ध कवि थे। इनकी निम्नलिखित रचनाएँ मिलती हैं–

(१) पंच सहेली सं० १५७५ (२) आत्म प्रतिबोध जयमाल
(३) उदर गीत (४) पंथी गीत[4]
(५) बावनी या छीहल बावनी सं० १५८४

रचना-काल :

वेलि के अन्त में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। अन्य रचनाओं को देखने से इनका रचना-काल सं० १५७५ से सं० १५८४ तक ठहरता है। अनुमान है इसी के आसपास यह रची गई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ८ पदों की रचना है। इसमें मन को उपदेश देते हुए कहा गया है कि हे मन तू भ्रमवश विषय वासना के वन में क्यों भटक रहा है? सारे सांसारिक विषय मृग जल की तरह हैं जिनसे कभी तृप्ति नहीं होती। घर, शरीर, सम्पत्ति, पुत्र जो नश्वर हैं उन्हें स्थिर जानकर तूने अब तक जिनेश्वर भगवान की सेवा

१—छीहल कहै सुणौं मनभौरे सील सोवाणी करिये।
वितरत ब्रह्म ब्रह्म के ताइ, भवसागर कूं तिरिये ॥

२—राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया, पृ० १८६

३—जै० गु० क० भाग ३ (जैनेतर कवियो), पृ० २१२६

४—इसे वेलि गीत भी कहा है। इसकी हस्तलिखित प्रति श्री आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर के गुटका नं० ५४ वे० सं० २६२ में सुरक्षित है। यह पत्र सं० २४६-४७ पर लिपि बद्ध है। इसमें एक विशेष प्रकार के रूपक द्वारा सांसारिक प्राणी को उद्बोधना दी गई है। जीव रूपी पथिक अज्ञान रूपी अटवी में भ्रमण करता हुआ राह भूल गया है। कालरूपी हाथी उसका पीछा कर रहा है वह अपनी प्राण रक्षा के लिये एक वृक्ष की डाल से लटक गया है जिसके नीचे गहन कूप है जिसमें नाना प्रकार के विषयवासना रूपी विषैले जीव जन्तु मुंह खोले पड़े हैं और जिसके ऊपर मधु से लबालब भरा छत्ता है। दिन और रात रूपी दो चूहे इस वृक्ष की जड़ को कुतरने में लगे हैं और यह जीव रूपी पथिक मधु बिन्दु का स्वाद लेने में ही लगा हुआ है। पद पद पर खतरा है, पता नहीं कब गिर पड़े। इस गीत के अन्तिम दो पद इस प्रकार हैं—
मधु बिंदु तणउ संसारु। दुख वरणंत लहउं न पारु।
मोउ आण कुपथिगु मेमानउं, अग्यान घणउ उवानु ॥

नही की । तू सचमुच मूर्ख और अज्ञानी है[1] । अनंत योनियों में भ्रमण करने के बाद यह मनुष्य जीवन मिला है जो देवों को भी दुर्लभ है, इसे व्यर्थ न गंवा। जिनेश्वर की सेवा के बिना सारा संसार स्वप्नवत् है[2] । मरते समय केवल धर्म ही साथ आयेगा अतः जब तक शरीर में प्राण है तब तक कुछ पुण्य कर ले। जीव-दया रूपी उत्तम धर्म को दृढ़तापूर्वक ग्रहण कर, अरिहंत का ध्यान करते हुए संयम-भावना को धारणकर, और हमेशा परोपकार मे लगा रह[3] । जिनवर के नाम-

---

अम्यान घणत उद्यानु, दीसइ जम भयानक कुंजरु ।
दीरघ सर कन आव प्रगटिय, मक्षिका व्याधि निरन्तरु ।।
चउ नाग चारि कषाय कहियहि, नरय अजगरु दिप्पए ।
दुयं कृष्न उभाल कहिय उ दर आव खणि खणि कप्पए ।।५।।

ससार क उय हुअ्यो हार । नर चेत हुअरे गवार ।।
मोह निद्रा ग्रहि जे सूता । ते प्राणी अंत विगूता ।।
प्राणी विगूता निसिहि वासर, परम ब्रह्म न ध्याइयउ ।
मिथ्याहि मारगु भूलि वहिउ, वृथा जनमु गवाइयउ ।।
दउं भणइ छीहलु सुण हिरे मन भ्रम भूलिउ काइ फिरइ ।
सेवहु गु जिणवरु भगति प्रानी भव समुद्रु लीलइ तरइं ।।६।।
।। इति वेलि गीत ।।

१—मन काहे कूं भूलि रहे विषया वन भारी ।
इह ममता मे भूलि रहे मनि कुंण तुहारी ।।
मति कुंण तुहारी देखि विचारी अंति अधिक दुख पावो ।
त्रिण इक मृग तिसना जल देखत वाहुडि न प्यास बुझावो ।।
अह सरीर संपति सुत बंधौ एतै थिरि किरि जाण्या ।
श्री जिन की सेव न कीधी रे मन मूरख अयाणा ।।

२—बहु जूणी मे भ्रमता माणस जन्मजु पायो ।
है देवन कूं दुर्लभ सो कृत वादि गवायो ।।
कृत वादि गवायो मुढ सुढाले काहे वाप पखाले ।।
काग उडावाणें कारिणी कर थे च्यंतामणि कांय राले ।।
जिनवर सेव बिना सब झूठा ज्यो सुपना की माया ।
अवृथा जन्म खोय माणस को बहु जूंणी भ्रमि आया ।।

३—उत्तिम धर्म्म है जीव दया सो दिढु करि गहिये ।
अरहंत ध्यान धरि ज्यो सत संयम स्यो रहिये ।।
रहिये संजम स्यो पर धन पर रमणी पर निंदा परहरिये ।
पर उपगार सार है प्राणी बहुत जतन स्यों रहिये ।।
जब लग हंस अछित काया मे, कुछ सुकृत उपावो भाइ ।
अंति कालि तुहि मरती वेला, हो हो धर्म्म सहाइ ।।

स्मरण से कलियुग के सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। अतः पवित्रात्मा से परब्रह्म का चिन्तन कर[1]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है। अलंकारों के मोह में कवि नहीं पड़ा है। कहीं-कहीं लोक प्रचलित रूपक और दृष्टान्त प्रयुक्त हुए हैं। यथा—

रूपक :

(१) मन काहे कूं भुलि रहे विषया वन भारी ।।१।।
(२) चितवत प्रह्म ब्रह्म के ताइ भवसागर कूं तिरिये ।।७।।

दृष्टान्त :

(१) खिण इक मृग तिसना जल देखत बाहुडि न प्यास बुझावो ।
(२) काग उडावाणे कारिणी कर थे च्यंतामणि कांय राले ।।

छन्द :

काव्य मे प्रयुक्त छंद कुंडलिया है। मात्राएँ सर्वत्र घटती बढ़ती रही हैं। दोहे का अंतिम चरण रोले के प्रथम चरण में आवृत्त हुआ है।

(१५) हीरविजय सूरि देशना वेलि[2]

प्रस्तुत वेलि वेलिकार सकलचंद्र उपाध्याय के गुरु तपागच्छीय आचार्य हीरविजय सूरि[3] की देशना से सम्बन्ध रखती है[4]।

१—कलि ब्रह्म कोट विणासे, जिनवर नाम जु लीया ।
जे घर निर्मल नाही का तप तीर्थ कीया ।।
का तप तीर्थ कीया जे पर द्रोह न छाडै ।
लंपट इंद्री सग मियातो जन्म मापणो भाडै ।।
छीहल कहै सुणो मनबोरे सोच सियाणी करिये ।
चितवत प्रम्ह ब्रह्म के ठाइ, भवसागर कूं तिरिये ।।

२—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—'गुरु देशना सुरवेलि,
पावति मननि गेलि, तस घरि रद्धि वृद्धि गहगही ।।११३।।

(ख) प्रति-परिचय:—इसकी हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद के नगर सेठ कस्तूरभाई मणिभाई संग्रह के ग्रंथांक १०३८ में सुरक्षित है। यह ५ पत्रों में लिखी हुई है। पुष्पिका में लिखा है 'इति सुरवेलि रास सम्पूर्ण'।

३—सूरीश्वर अने सम्राट : विद्याविजय जी।

४—श्री हीर विजय गुरु अमृत देशना सुरवेली जिहि रोवइ ।।२८।।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही सकलचन्द्र उपाध्याय हैं जिनका परिचय 'वर्द्धमान जिन वेलि' के साथ दिया गया है। वेलि के अन्त में कवि ने अपनी गुरु परम्परा (विजयदान, हीरविजय, विजयसेन) का उल्लेख किया है[1]।

रचना-काल :

वेलि के अन्त मे रचना-तिथि का उल्लेख नही किया गया है। काव्य के अन्त मे हीरविजय सूरि के पट्टधर शिष्य विजयसेन सूरि का स्मरण किया गया है। हीरविजय सूरि का स्वर्गवास सं० १६५२ में भादवा सुदि ११ को हुआ था[2]। इसके बाद ही विजयसेन सूरि पाट पर विराजे थे। इससे निश्चित होता है कि इस वेलि की रचना सं० १६५२ अर्थात् हीरविजय सूरि की मृत्यु के बाद ही किसी समय हुई होगी।

रचना-विषय :

यह ११३ छन्दों[3] की रचना है। इसमे प्रारम्भ के २८ छन्दों मे चौबीस तीर्थकरों-(१) ऋषभदेव[4] (२) अजितनाथ[5] (३) संभवनाथ[6] (४) अभिनन्दन[7]

१—श्री विजयदान सूरीस, तस बहु गुण निधि सीस श्री हीरविजय ॥१०८॥
नाथी कूंरा आया जा युग विख्यात, श्री गुरु तपगछ राजीइजी ॥१०९॥
श्री विजयसेन सूरिंद, उपसन सुरतरु कद, श्री गुरु पाटि विरजयुजी ॥११०॥
सकलचन्द उपभाय, निसि दिन तस गुण गाइ,
तस प्रणमतां सहि गुरु संघस्यूंजो ॥११२॥

२—*जैन गुर्जर कवियो भाग १, पृ० २४२।*

३—श्री० मोहनलाल दलीचन्द देसाई जी ने जिस प्रति का उल्लेख किया है उसमे ११५ छंद बतलाये हैं—जैन गुर्जर कवियो, तृतीय भाग, खण्ड १, पृ० ७७३।

४—देव देव ब्रह्मो सिवो, ऋषभो वेद पुराणि।
भागवतिइं पुण सोभज्यउ, प्रणमूं मुनि तसवाणि ॥१॥

५—प्रणमूं अजित जिणेसरो, जिणि हणीउ संग्रामि।
मोह मल्ल जिमे रावणो, हणिओ लखमणि।

६—जस भवमां संभव नहि, तस संभव जिन ध्यानि।
सब सुख संभव संभवि, तस सुणतां गुण कानि ॥३॥

७—नंदन वन धन परि रति करो, श्री अभिनन्द स्वामी।
सो संवर नृप नन्दनु, आनन्द जो जस नामि ॥४॥

(१८) अरहनाथ[1] (१९) मल्लिनाथ[2] (२०) मुनिसुव्रत[3] (२१) नमिनाथ[4] (२२) अरिष्ट नेमि[5] (नेमिनाथ) (२३) पार्श्वनाथ[6] (२४) महावीर स्वामी[7] (वर्द्धमान)-की स्तुति की गई है। हीरविजयसूरि ने पाटण, गुजरात, अहमदाबाद आदि स्थानों में घूमकर[8] भव्य जीवों को निर्जरा, अभयदान, धर्म-प्रभावना, पौषध, सामायिक, प्रतिक्रमण, जीव दया आदि[9] का स्वरूप समझाते हुए जीवन में

१—अरिहरि करिमि उपशमइ, तुज नामइ अर नासोरे।
जे निसि दिन भवि तुम्ह राखई, तस तूं शिवपद सायोरे ॥ १९ ॥

२—मदन विगामरण मालइ, मल्लि जिन मोह भालोरे।
तुं खट नरपति मदन दिनासन, तेहने जिन वाहलोरे ॥ २० ॥

३—मुनिसुव्रत जिन विसमु, हरिगमी हरि नमीउरे।
सो जसमनि मुनि वीसमउ, तस मनि उपशम रस मीठूरे ॥ २१ ॥

४—नमी नमी प्राणंदीया, नमि जिनजी सव लेगारे।
तुज वाणी अमृत पीनु, तेन करिमनि सोपारे ॥ २२ ॥

५—नेमि जिणद दयालुउ, पसू भर राखण काजइरे।
जिणि राजुल धरणी पणि मूकी, मुगति तणां सुख काजिरे ॥ २३ ॥

६—सवि विष भीति उपद्रवा, नासइ श्री जिन नामइरे।
सो जिन पास नमुं रे भविका, यश कीरति गामोगामिरे ॥ २४ ॥

७—श्री वर्द्धमान वर्द्धमान इति श्रुतयु नाम।
सिद्धारथ राय बोलादेई सजन मानं, मम्क मनि अभिरामं ॥ २५ ॥

८—गंगाजल परि निर्मली, हरति सर्व कलेस।
श्री हीरविजय गुरू देसना, पसरि देसि विदेसि ॥ ३४ ॥
पत्तन प्रमुख नगर नरा, गूजरातना मावि।
अहमदाबाद तणा नरा, पामइ उपशम प्राप्ति ॥ ३५ ॥

९—धन ते नर नारी जिणि जगमां, जिन धरम उद्यम कीजइ।
धर्म प्रभावइ सब दुख छीजइ, तसफल सदगति लीजइ ॥ ५८ ॥
भविका आतम साधन कीजइ, नित निज हित दिति वीजइ।
नित जिनवाणी अमृत पीजि, द्वादश व्रत विधि भीजइ ॥५९॥
विनय विवेक पात्र वर दानइ, जीवित सफल करीजइ।
प्रभावना जिन शासनि कीजइ, दयाइं रमीजइ ॥ ६० ॥
द्वादश भावन रिदय धरीजइ, पर उपकार करीजइ।
उपशम सूं जिन ध्यान धरीजइ, कुगुरू कुसंग न कीजइ ॥ ६१ ॥
पर मिथ्या तीरथ न भमीजइ, बाल मरण नवि कीजइ।
नित खट विध आवश्यक कीजइ, धुरि नवकार जपीजई ॥६२॥

धर्म[1] का महत्व बतलाकर आत्म कल्याण करने की प्रेरणा दी थी[2]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल साहित्यिक राजस्थानी है। हीरविजय सूरि के माहात्म्य वर्णन में कई जगह उपमा रूपकादि अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। यथा–

(१) कोकिला मेघ तजु उन्माद, जिहां गुरु वाणि नां घंटा नाद (३२)

(२) तपगच्छ गगन सुधाकरुये, झरति सुधारस पाणि।
श्री हीरविजय गुरु ए, पुन्यइ करु गुण खाणि (४६)

(३) श्री हीरविजय सूरि तपगच्छ दिनकर दरशनि दुरित हरो कहइ (६४)

(४) भवि मन कमल विकासन दिनकर भविजन लोचन चंदो।
कुरा नाथी कुलनु नंदन, तउ तपगछ सुरिंदो (७५)

(५) मान सरोवर हंस कमलि रमइ, जिम कमलि रमइ जिम हंसलुये।
तिम गुरु मानस माहि सूरामूर मंत्रइं, सूरि मंत्र ध्यानइ रमइ ये (८२)

चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति में यमक का चमत्कार (छंद संख्या ३ से ११) देखने को मिलता है।

छन्द :

काव्य में ढाल छंद का प्रयोग किया गया है। प्रति में उल्लिखित रागों के नाम इस प्रकार हैं—

(१) राग मेवाड़ (२) राग सामेरी (३) राग आसाउरि (४) राग वइराडी (५) राग श्री राग (६) राग धुमाद (७) राग केदारगुडो (८) राग धन्यासी (९) ढाल केदारु (१०) राग रामगिरी (११) राग विराडी (१२) राग परजाउ (१३) राग मल्हार (१४) ढाल राग गुडी (१५) ढाल फागनो।

१—हीरविजय गुरु कहइ सुणउ भविका, धम्म विणु नवि सिव सूतो।
जिम खर माथे सींग न दीसइ, जिम वंध्या नइ पूतो ॥७८॥
कूंकर मेरु नु नवि हारइ, ससुआ सिर नहीं सींगो।
धर्म ध्यान विणु सुगति न होवइ, जिन विणु मरइ न देवो ॥७९॥

२—जे घन श्रावक श्राविका जे विधि सुणइ वखाण।
दिन दिन गुरु विधि वाणया समकित बहु मानाण ॥९३॥
समकित सुद्ध उच्चरइ श्री जिन गुरु मंत्र साखि।
प्रवचन भक्ति प्रभावना पडिकमणां पाखि पाखि ॥९४॥

(१६) प्रवचन रचना वेलि[1]

प्रस्तुत वेलि केवलज्ञान प्राप्त होने पर जिनेश्वर भगवान द्वारा दिये गये प्रवचन से सम्बन्ध रखती है।

कवि-परिचय .

इसके रचयिता जिनसमुद्र सूरि[2] खरतरगच्छ की वेगड़ शाखा के आचार्य थे। *इनका जन्म श्री श्रीमाल जातीय शाह हरराज की भार्या लखमादेवी की कुक्षि से सं०* १६७० के लगभग राजस्थान में हुआ था। इनका जन्म नाम महिमसमुद्र था जो अनेक रचनाओं में पाया जाता है। ये वेगड़गच्छ के आचार्य जिनचंद सूरि[3] के शिष्य थे। अपने गुरु के स्वर्गस्थ होने पर सं० १७१३ में पट्टधर के रूप में ये आचार्य बने। सं० १७४१ की कार्तिक सुदी १५ को वर्द्धनपुर में इनका स्वर्गवास हुआ। इन्होंने मरुभाषा (राजस्थानी) में ही डेढ़ लाख श्लोक परिमाण साहित्य की रचना की। फारसी भाषा पर भी इनका अधिकार था। फारसी भाषा में रचित इनके कई स्तवन प्राप्त हैं। जैसलमेर के रावल अमरसिंह ने इन्हें मानापटोली और उपाश्रय प्रदान किया[4]। नाहटाजी ने इनकी निम्नलिखित रचनाओं का उल्लेख किया है[5]–

(१) नेमि राजमती फाग (सं० १६६७)
(२) लोद्रवपुर यात्रा स्तवन (सं० १६६७)
(३) ज्ञान पंचमी स्त० सं० १६६८
(४) विनय छत्तीसी सं० १६६८
(५) काननपुर पार्श्व स्त० सं १६६६
(६) पार्श्व स्त० सं० १७०२
(७) हरिबल चोपाई सं० १७०६
(८) पहाड़पुर आदिनाथ स्त० सं० १७०७
(९) चैत्य परिपाटी स्त० सं० १७०८
(१०) शत्रुंजय स्त० सं० १७११
(११) आतमकरणी संवाद सं० १७११
(१२) गाजीपुर पार्श्व जिनरास सं १७१३
(१३) सत्तरभेदी पूजा सं० १७१८
(१४) शत्रुंजय स्त० गाथा सं० १७१६

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। प्रति के प्रारम्भ में लिखा है–'श्री प्रवचन रचना वेलि।'

(ख) प्रति-परिचयः–इसकी हस्तलिखित प्रति लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद के मुनि पुण्यविजय जी के संग्रह के ग्रंथांक ६३२० में सुरक्षित है। यह अपूर्ण है जो चार पत्रों में लिखी हुई है।

२—श्री *जिनसमुद्र सूरि इम कहइरे, ए हिव विधि छै जूनी रे।*

३—मध्ये गुरू नाम श्री जिनचंद सूरि, चिदानंद आनन्दमय ॥४॥

४—श्री अगरचंद नाहटा का 'राजस्थानी भाषा के दो महान कवि' शीर्षक लेख : राजस्थानी (कलकत्ता) भाग २, पृ० ४५–४८।

५—वही : पृ० ४५–४८।

(१५) शत्रुंजय रास गाथा सं० १७२३ (१६) शत्रुंजय गिरनार मंडण स्त. सं० १७२४
(१७) राद्रहपुर वीर स्त० सं० १७२५ (१८) तत्वप्रबोध नाममाला सं० १७३०
(१९) उत्तमकुमार (नवरस सागर) चौपाई संवत् १७३२
(२०) सर्वार्थ सिद्धि मणिमाला (वैराग्य शतक भाषा) सं० १७४०

(२१) बलदेव चौपई (२२) ऋषिदत्त चौपई
(२३) रुकमणि चरित्र (२४) गुणसुन्दर चौपई
(२५) इलायचीकुमार चौपई (२६) कल्पसूत्र बालावबोध
(२७) कालिकाचार्य कथा (२८) कल्पांतर वाच पत्र
(२९) राठौड़ वंशावली (३०) मनोरथमाला बावनी
(३१) ईश्वर शिक्षा गाथा ५४ (३२) सोमंधर स्तवन गाथा ५९
(३३) गजल गाथा ४२ (३४) साधु वन्दना

रचना-काल :

वेलि की जो प्रति प्राप्त हुई है वह अपूर्ण है। उसमें कहीं भी रचना तिथि का उल्लेख नहीं है। अन्य रचनाओं को देखते हुए कवि का रचना-काल सं० १६६७ से १७४० निर्धारित होता है। अनुमान है इसी बीच यह वेलि रची गई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि १६ दोहों और ३ ढालों की अपूर्ण रचना है। इसके प्रारम्भ के १६ दोहों में सिद्ध भगवान एवं वेलिकार के गुरु आचार्य जिनचंद सूरि की वंदना करते हुए[1] वस्तु का निर्देश किया गया है—

व्यवहारइ च्यारे जूआ, निश्चय एकज होइ।
तिण निश्चय व्यवहार नय[2], समजे ज्यो सहु कोइ ॥५॥

ते समजायइ सूत्रथी[3], सूत्र ते गुरु उपदेश।
गुरु पिण ते जे शुद्ध वदथ, वदवो ज्ञान विशेष ॥६॥

१—परम ज्योति परमातमा, परम पुरुष परधान।
निरंजन परम प्रभु, नमुं सिद्ध भगवान ॥१॥
अनंत ज्ञान दरसण चरण, धरण शुद्ध निरदंद।
कारण करण जगत्र में जय जय जग गुरु जिनचंद ॥२॥

२—अनन्त धर्मात्मक वस्तु के एक धर्म को जानने वाले ज्ञान को नय कहते हैं। नय के मूल दो भेद है। निश्चय और व्यवहार। जो वस्तु के असली स्वरूप को बतलाता है उसे निश्चय नय कहते हैं और जो दूसरे पदार्थों के निमित से उसे अन्य रूप बतलाता है उसे व्यवहार नय कहते है।

३—आगम को सूत्र कहते हैं।

ज्ञान तेह समकित[1] थकी, समकित साच कहाय ।
साच हुवइ उपसम[2] थकी, उपसम थी तिथी[3] ठाय ॥७॥

तिथि मारग शुभ करण[4] थी, करण तेह परिणाम ।
शुद्ध परिणामी आतमा, तेह नइं सदा प्रणाम ॥८॥

शुद्ध परिणामी आतमा, ओलखीये श्रुत[5] सङ्ग ।
श्रुत ओलखावे गुरु थकी, तिण गुरु नमु सुरंग ॥९॥

इम वट बीज थकी हुवइ, वटथी बीज अनेक ।
तिम गुरु श्रुतथी विवरण, जाणे विसु विवेक ॥

शुभ विवेक शुभ संग थी, संग बिना अंतराय ।
ते निर्विघ्न पणा थकी, ते तो दिवस सुहाय ॥१०॥

देवस सकल ब्रह्मा थकी, ब्रह्मा ते जिण जाण ।
ते ब्रह्मा मुख कमलथी, प्रकटी सरस्वति वाणि ॥११॥

ते वाणीमय सर्वजग, सहु एहना आधीन ।
एहने मूंकी थया अलग, ते कहीये वेदीन ॥१२॥

वेदीन ते मिथ्यामती, जेथी समकित दूर ।
विण समकित गुरु देव भ्रम, नवि जाणए भ्रम भूर ॥१३॥

घट पटल कुटादिक तणा, अध न जाणइ भाव ।
तिम सम्यक श्रुत दृष्टि विण, न लहइ धर्म्म सभाव ॥१४॥

धर्म्म भावनी भावना, जाणेवा शुभ रीत ।
प्रवचन रचनानि युगति, सांभलिज्यो निक प्रीत ॥१५॥

अरथ[6] थकी जिनवर कहइ, सूत्र[7] थकी गणधार ।
ते विवरण कहिसो सहु, सांभलिज्यो नरनार ॥१६॥

१—सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित पारमार्थिक जीवादि पदार्थों का श्रद्धान करना समकित है ।
—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह : भाग १, पृ० २ ।

२—द्रव्य क्षेत्र काल भाव के निमित्त से कर्मों की शक्तियों का शान्त होना उपशम कहलाता है—जैनागम तत्व दीपिका, पृ० ३१६ : प्रकाशन श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर ।

३—काल मर्यादा को स्थिति कहते हैं : जै० सि० बोल संग्रह : भाग १, पृ० २१ ।

४—आत्मा के परिणाम विशेष को करण कहते हैं ।
—जैनागम तत्व दीपिका : पृ० ७३

५—शास्त्रों को सुनने और पढ़ने से इन्द्रिय और मन के द्वारा जो ज्ञान हो वह श्रुत ज्ञान है ।

६—सूत्र शास्त्र के अर्थ रूप आगम को अर्थागम कहते हैं—जैन सिद्धान्त बोल संग्रह, प्रथम भाग : पृ० ६०

७—सूत्र रूप आगम को सूत्रागम कहते हैं—जै० सि० बोल-संग्रह, भाग १, पृ० ६०

प्रथम ढाल में भगवान महावीर के केवलज्ञान होने पर समवशरण की रचना एवं आठ प्रतिहार्य (अशोक वृक्ष, कुसुम वृष्टि, स्फटिक सिंहासन, भामण्डल, दुंदुभी, छत्र, चंवर, सहस्रपताका) तथा चौंतीस अतिशय का वर्णन किया गया है[१]। द्वितीय ढाल में भगवान के दर्शनार्थ आने वाले देवी-देवताओं का वर्णन है[२]। तृतीय ढाल में धर्मोपदेशना (प्रवचन) का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जिनधर्म दो प्रकार का है—चारित्र धर्म[३] और श्रुतधर्म[४]। चारित्र धर्म के फिर दो भेद हैं—देशविरति[५] और सर्वविरति[६]। सामायिक[७] एवं अष्ट प्रवचन माता[८] की आराधना

१—समवसरण देव रच्यांरे हा, रजत कनक मणि चंगोरे।
देव छंदोश करच्चउरे, चैत्य अशोक सुरंगोरे ॥२॥
जानु प्रमाण विवेरीयारे, फूल जलरिक पडारे ॥३॥
पिण ते पीडल है नहींरे हा, जिन अतिशय नहिं कूडोरे ॥३॥
फटिक सिंहासन माडियांरे. हो रे तिहां जिनवरजी बैठारे।
भगति वैयावच सरवारे हो, सुरवर हरखइ देठारे ॥४॥
भामंडल माड्यो वलीरे, दुंदुभी जय जय बोलइरे :
भाव जिणावइ लोकनइरे, को नहि इण जिण तोलइरे ॥५॥
तीन छत्र सिर सोभतारे, चामर चिहूं दिसि मोहइरे।
न्याय दिखावइ लोकनइरे कहो प्रभु समवड कोहइरे ॥६॥
सहसपताके शोभतोरे, इन्द्रध्वज नंचउ लहकइरे।
जिन सेवा साची करइरे, ते उंचे गुणे हकइरे ॥७॥
आठइसे प्रतिहारि जेरे, वलि अतिशय चउत्रीसेरे।
वारु स्वामि विराजीयारे, निरखंता मन हिंसइरे ॥८॥

२—सुहवर भी कोडीरे मिलि होडाहोडीरे कर जोडी जिन जिनाम्यइ सहू सामणारे।
वाजे नभ वाजारे जय जय जिन राजारे। जमु ताजा दिवाजा सहुने सोहामणारे ॥१॥

३—कर्मों के नाश करने की चेष्टा (क्रिया रूप धर्म) चारित्र धर्म है—जैन सिद्धान्त बोल संग्रह : प्रथम भाग, पृ० १५।

४—अङ्ग और उपाङ्ग रूप वाणी को श्रुतधर्म कहते हैं। वाचना, पृच्छना आदि स्वाध्याय के भेद भी इसी के अन्तर्गत आते हैं—जैन सिद्धान्त बोल संग्रह : प्रथम भाग, पृ० १५।

५—यह श्रावक धर्म होता है इसमें पापजनक क्रियाओं से सर्वथा निवृत्ति न होकर एक देश से निवृत्ति होती हैं—जै० सि० बोल संग्रह : भाग ५, पृ० ७५।

६—यह साधु धर्म होता है। इसमें तीन करण तीन योग से त्याग होता है। जैन सिद्धान्त बोल संग्रह : प्रथम भाग, पृ० १५।

७—राग द्वेष के वश न होकर समभाव में रहना अर्थात् किसी प्राणी को दुख न पहुँचाते हुए सबके साथ आत्म तुल्य व्यवहार करना एवं आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों की वृद्धि करना सामायिक है—जैन सिद्धान्त बोल संग्रह : भाग २, पृ० ६०।

८—पांच समिति (ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भंड मात्र निक्षे-

करते हुए ग्यारह अङ्ग[1] तथा बारह उपाङ्ग[2] का अध्ययन करते रहना चाहिये।

कला पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। अलङ्करण की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है।

छन्द :

दोहा एवं ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है। प्रति में राग का उल्लेख इस प्रकार मिलता है—

(१) ढाल १—राग खंभाइति घोरणि
(२) ढाल २—राग सीघूडग्रो
(३) ढाल ३—ढाल गूजरानी

(१७) अमृत वेलि नी मोटी सज्झाय[3]

प्रस्तुत वेलि का सम्बन्ध आध्यात्मिक उपदेश-भावना से है। इसमें कवि ने सासारिक प्राणियों को आत्म-चेतना जगाने की प्रेरणा दी है। यह उपदेश भव्य जीवों के लिए अमृत की तरह गुणकारी होने के कारण रचना को 'अमृत वेलि' अभिधान प्रदान किया गया है। 'सज्झाय' शब्द स्वाध्याय का सूचक है[4]।

पणा समिति और उच्चार प्रश्रवण खेल सिंघासण जल्ल परिस्थापनिका समिति) और तीन गुप्ति (मनो गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति) को प्रवचन माता कहते हैं।

१—(१) आचारांग (२) सूयगडांग (३) ठाणांग (४) समवायांग (५) विवाहपन्नत्ती (व्याख्या प्रज्ञप्ति या भगवती) (६) ज्ञाताधर्म कथा (७) उपासकदशांग (८) अंतगड-दशांग (९) अणुत्तरोववाइ (१०) प्रश्न व्याकरण (११) विपाकश्रुत।

२—(१) उववाई (२) रायपसेणी (३) जीवाभिगम (४) पन्नवणा (५) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति (६) चंद्र प्रज्ञप्ति (७) सूर्य प्रज्ञप्ति (८) निरयावलिया (९) कप्पवडंसिया (१०) पुप्फिया (११) पुप्फचूलिया (१२) वह्निदसा।

३—(क) *मूल पाठ में वेलि नाम आया है—*
श्री नयविजय गुरु शिष्यनी, सीखडी अमृत वेल रे ॥२१॥
(ख) प्रकाशित:—गुर्जर साहित्य संग्रह : यशोविजय : पृ० ४३६–३८

४—श्री अगरचंद नाहटा का 'प्राचीन भाषा-काव्यों की विविध संज्ञाएँ' शीर्षक लेख : नागरीप्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५८, अङ्क ४, पृ० ४३३।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता श्रीमद्यशोविजय[3] १८ वीं शती के पूर्वार्द्ध के कवियों में से थे। हरिभद्र सूरि के समान ये बड़े तार्किक, प्रखर विद्वान एवं महान प्रतापी साधु थे। संवत् १६८० में गुजरात के कनोडु नामक ग्राम में नारायण वणिक की भार्या सौभागदे से इनका जन्म हुआ। सं० १६८८ में तपागच्छीय नयविजय से दीक्षित होकर सं० १६९९ में राजनगर में इन्होंने अष्ट अवधान किया। काशी में एक भट्टाचार्य के सान्निध्य में न्याय, मीमांसा, दर्शन आदि का गंभीर ज्ञान प्राप्त कर इन्होंने हेमचन्द्राचार्य का विरद धारण किया। वहीं एक सन्यासी को शास्त्रार्थ में पराजित कर 'न्याय विशारद' की उपाधि प्राप्त की। सं० १७१८ में विनयप्रभ सूरि ने इन्हें उपाध्याय पद प्रदान किया। सं० १७४३ में डभोई में इनका स्वर्गवास हुआ[4]। संस्कृत[5]-प्राकृत-राजस्थानी में इनके कई ग्रन्थ मिलते हैं। देसाईजी ने इनकी निम्नलिखित कृतियों का परिचय दिया है[6]—

(१) समुद्र वहाण संवाद सं० १७०० (२) द्रव्य गुण पर्यायनो रास सं० १७११
(३) साधु वंदणा सं० १७२१ (४) प्रतिक्रमण हेतु गर्भित स्वाध्याय
(५) ११ अंगनी सज्झाय सं० १७२२ (६) मौन एकादशीना १५० कल्याणनुं स्तवन सं० १७३२।
(७) निश्चय व्यवहार विवाद श्री शान्तिजिन स्तवन सं० १७३२।
(८) समकितना षटस्थान स्वरूपनी चौपाई (अर्थ सहित) सं० १७३३।
(९) महावीर स्तवन सं० १७३३ (१०) ब्रह्म गीता सं० १७३८।
(११) जम्बूरास सं० १७३९ (१२) संयम श्रेणि विचार
(१३) इन्द्रभूति नाम (१४) अग्निभूति भास
(१५) वायुभूति गीत (१६) व्यक्त गणधर सज्झाय
(१७) सुधर्मा सज्झाय (१८) सीमंधर स्वामी स्त०
(१९) आठ दृष्टि सज्झाय (२०) दिकपट ८४ बोल
(२१) समाधि शतक (२२) समता शतक
(२३) सीमंधर स्वामी विनति रूप ३५० गाथानुं स्तवन
(२४-२६) चोवीसीत्रण (२७) वीशी
(२८) सम्यक्त्वना ६७ बोलनी स० (२९) १८ पापस्थानकनी सज्झाय
(३०) चार आहारनी सज्झाय (३१) सुगुरु पर स्वाध्याय
(३२) जस विलास (२० सज्झाय, पद, स्तवन संग्रह)
(३३) आनंदघनजीनी स्तुति रूप अष्टपदी

३—देह ते चतुर नर जाणरे, ते लहे सुजस रंगरेल रे ॥२१॥
४—कान्तिविजय ने 'सुजस वेलि' में इनका जीवन वृत्त प्रस्तुत किया है।
५—जैन गुर्जर कविओ : भाग २, पृ० २१।
६—वही : पृ० २७–४६।

(३४) पंच परमेष्ठी गीता (३५) सीमंधर स्वामीनु ४२ गाथानु स्तवन
(३६) कुगुरुनी सज्झाय (३७) ऋषभजिन स्तवन
(३८) शीतलजिन स्तवन (३९) नवपद पूजा
(४०) जिन सहस्रनाम वर्णन (४१) चडती पडतीनी सज्झाय
(४२) यतिधर्म बत्रीशी (४३) स्थापना कुलक
(४४) हरियाणी (४५) संयम श्रेणीनी सज्झाय
(४६) कुमति खंडन-दस मत स्तवन (४७) अमृत वेलिनी सज्झाय

रचना-काल

वेलि मे रचना तिथि का उल्लेख नही है। अन्य कृतियों को देखने से कवि का रचना-काल सं० १७०० मे १७३९ निर्धारित होता है। अनुमान है इसी बीच यह वेलि भी रची गई हो।

रचना-विषय :

२९ छन्दों की इस रचना मे कवि चेतना सम्पन्न प्राणी को उपदेश देता हुआ कहता है कि हे प्राणि तू अपने ही आत्मिक गुणों को पहचान। उपशम रूपी अमृत रस का पान कर। साधु सन्तों का गुण गान कर। किसी मे कटु वचन न बोल[1]। कुबुद्धि रूपी काच को छोड़कर सुबुद्धि रूपी रत्न को ग्रहण कर। चित्त मे चार शरणों[2]—अरिहन्त, सिद्ध, साधु और केवली प्ररूपित धर्म-को धारण कर। *आश्रवों को रोककर संवर की वृद्धि कर। अठारह पाप स्थानकों[3] का परित्याग* कर पुण्य संचय कर। शुभयोग एवं शुभ परिणामो द्वारा परम पद मुक्ति को प्राप्त करने को साध ले निरन्तर धर्म-पथ पर बढता चल।

कला-पक्ष :

भाषा गुजराती मिश्रित राजस्थानी है। यत्र तत्र उपमा-रूपक का प्रयोग द्रष्टव्य है—

(१) समकित रत्न रुचि जोडीए, छोड़िए कुमति मति काच रे (३)
(२) ज्ञान रुचि वेल विस्तारता, वारतां कर्मनुं जोर रे (२६)

१—उपसम अमृत रस पीजीए, कीजीए साधु-गुण-गान रे।
अधम वयणे नवि खीजीए, दीजीए सज्जन नें मान रे ॥२॥

२—श्री जैन सिद्धान्त बोल संग्रह : प्रथम भाग, पृ० ६४।

३—(१) प्राणातिपात (२) मृषावाद (३) अदत्तादान (४) मैथुन (५) परिग्रह (६) क्रोध (७) मान (८) माया (९) लोभ (१०) राग (११) द्वेष (१२) कलह (१३) अभ्याख्यान (१४) पैशुन्य (१५) परपरिवाद (१६) अरति रति (१७) मायामृषा (१८) मिथ्यादर्शन शल्य। —जैन सिद्धान्त बोल संग्रह : भाग ५, पृ० ४१२-१४।

(३) कर्म थी कल्पना उपजे, पवन थी जेम जलधि वेल रे (२५)
(४) धारता धर्मनी धारणा, मारतां मोह वड चोर रे (२६)

छंद :

काव्य में ढाल छन्द का प्रयोग हुआ है। आँकड़ी के रूप में निम्नलिखित पंक्तियाँ व्यवहृत हुई हैं—

चेतन ज्ञान अजुआलीजे, टालीजे मोह संताप रे।
चित डमडोल तुं वालीए, पालीए सहज गुण आप रे॥

(१८) अमृत वेलिनी नानी सज्झाय[1]

प्रस्तुत वेलि का सम्बन्ध भी यशोविजय के उपदेशामृत से है। मोटी 'सज्झाय' की अपेक्षा आकार में छोटी होने के कारण इसे 'नानी सज्झाय' कहा गया है।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही यशोविजय[2] हैं जिनका परिचय 'अमृत वेलिनी मोटी सज्झाय' के साथ दिया गया है।

रचना-काल :

अनुमान से रचना-काल भी वही (सं० १७०० से १७३६ के बीच) रहा होगा जो 'अमृत वेलिनी मोटी सज्झाय' का सम्भव है।

रचना-विषय :

यह १६ छन्दों की छोटी सी रचना है। इसमें कवि ने सांसारिक प्राणियों को उपदेश देते हुए कहा है कि चार कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) छोड़कर शुद्ध समकित की आराधना करने में ही आत्मा का कल्याण है। जीवन की सफलता राग-द्वेष को दूर कर मन में निर्वेदभाव धारण करने में[3], नेत्रों में विवेक का अंजन

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—
श्री नयविजय गुरू सीसनी, सीखड़ी अमृत वेल रे (१६)
(ख) प्रकाशित-गुर्जर साहित्य संग्रह : यशोविजय : भाग १, पृ० ४३४-३५

२—सांभलीजेह ए अनुसरे, ते लहे जस रंगरेल रे (१६)

३—हरख मत आणजे, तूसव्यो, दूहव्यो मत धरे खेद रे।
राग द्वेषादि सधि (संधे) रहे, मनि वहे चाह निर्वेद रे॥३॥

आजने में तथा आर्त्तध्यान छोड़कर शुक्ल ध्यान ध्याने में है[1]। विनय, आज्ञापालन, परोपकार आदि *आत्म-गुणों का सम्बल* लेकर ज्ञान, दर्शन और चारित्र की प्राप्ति में निरन्तर बढ़ते रहना ही आत्म-साधक का कर्त्तव्य है। जो साधक धर्म ग्रन्थों में मन लगाकर, अनुभव में शिक्षा लेकर सत्य पथ पर चलता है वही परम पद प्राप्त करता है[2]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल होते हुए भी साहित्यिक है। वह राजस्थानी-गुजराती मिश्रित है। यत्र तत्र उपमा-रूपकादि अलंकार आये हैं—

(१) समकित राग चित्त रंजजे, अंजजे नेत्र विवेक रे ॥५॥
(२) गारव पंक मां ममलुले, मन भले मच्छर भाव रे ॥६॥
(३) गुरु-वचन-दीप तो करि धरे, अनुसरे प्रथम निर्ग्रन्थ रे ॥१०॥
(४) पोपट जिम पड्यो पांजरे, मनि धरे सबल संताप रे।
तिम पडे मत प्रतिबंध तूं, संधि संभलजे आप रे ॥१६॥

छन्द :

काव्य में ढाल छंद का प्रयोग हुआ है। आंकडी के रूप में जो पंक्तियाँ व्यवहृत हुई हैं वे इस प्रकार है—

चेतन ज्ञान अजुआलजे, टालजे मोह संताप रे।
दुरित निज संचित गालजे, पालजे आदयूं आप रे॥

(१६) संग्रह वेलि[3]

प्रस्तुत वेलि में जैन धर्म के तात्त्विक सिद्धान्तों की तालिका प्रस्तुत की गई है। विभिन्न तत्त्वों के भेदोपभेदों की संख्या का संग्रह होने के कारण इस वेलि का नाम 'संग्रह वेलि' रखा गया है।

१—समकित राग चित्त रंजजे, अंजजे नेत्र विवेक रे।
चित्त ममकार मत लावजे, भावजे आतम एक रे ॥५॥
बाह्य क्रिया कपट तुं मत करे, परिहरे अर्तध्यान रे।
मीठडो वदने मने मेलडो, ईम किम तुं शुभ ज्ञान रे ॥७॥

२—मन रमाडे शुभ ग्रंथमा, मत भमाडे भ्रम पान रे।
अनुभव रसवती चाखजे, राखजे सुगुरुनी माया रे ॥१७॥
पाप सम सकल जग लेखवे, शीखवे लोक ने तत्त्वरे।
मार्ग वहे तो मत हारजे, धारजे तूं दृढ सत्त्व रे ॥१८॥

३—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। पुष्पिका में लिखा है—
'इति संग्रह वेलि समाप्तम्'

संग्रहकर्त्ता का परिचय :

इसके संग्रहकर्त्ता का उल्लेख वेलि में नहीं किया गया है। वेलि के अन्त में लिपिकर्त्ता का नामोल्लेख है[१]। इसके अनुसार ऋषि जीवाजी के शिष्य धनजी के शिष्य मुनि बालचंद ने पगमनगर में इसे लिखा।

रचना-काल :

इसका संग्रह कब किया गया यह संकेत वेलि में नहीं मिलता। वेलि के अन्त में लिपिकाल दिया गया है[२]। इसके अनुसार सं० १७७५ कातिक शुक्ला ११ शनिवार को यह लिपिबद्ध की गई।

रचना-विषय :

इसमें ८४ तत्त्वसिद्धान्तों के भेदोपभेदों की संख्या की एक विस्तृत परितालिका प्रस्तुत की गई है। अंतिम भाग में भाव-रथ-संग्राम रूपक तथा देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गति के जीवों का स्वभाव बतलाया गया है। जिन तत्त्वों की तालिका प्रस्तुत की गई है उनके नाम इस प्रकार हैं—

(१) मिथ्यात गुण स्थान	(२) स्वास्वादान गुणस्थान
(३) मिश्र गुणस्थान	(४) अवीर्त गुणस्थान
(५) देशविरति गुणस्थान	(६) प्रमत्त गुणस्थान
(७) अप्रमत्त गुणस्थान	(८) नियति बादर गुणस्थान
(९) अनियति बादर गुणस्थान	(१०) सूक्ष्म संपराय गुणस्थान
(११) उपसान मोहनीय गुणस्थान	(१२) क्षीण मोहनीय गुणस्थान
(१३) साजोगी गुणस्थान	(१४) अयोगी गुणस्थान
(१५) नरग गति	(१६) तिर्यंच गति
(१७) मनुष्य गति	(१८) देव गति
(१९) एकेन्द्रिय जाति	(२०) वेइन्द्रिय जाति
(२१) त्रीन्द्रिय जाति	(२२) चउरिन्द्रिय जाति
(२३) पंचेन्द्रिय जाति	(२४) स्थावर काय
(२५) त्रस काय	(२६) सत्य मन

(ख) प्रति-परिचयः—इसकी हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के ग्रंथांक १०७२६ में सुरक्षित है। यह ११ पत्रों में लिखी हुई है। प्रथम पत्र अप्राप्य है। प्रति का आकार १०"×४" है।

१—श्री पगमनगरे ऋषि श्री ५ जीवाजी तत् शिष्य श्री धन जी तत् शिष्य मुनि बालचंद
लिखतं।

२—इस सतई वेलि समाप्तम् संवत १७७५ वर्षे कातिक मास शुक्ल पक्षे ११ तिथौ शनि वासरे।

(२७) असत्य मन
(२८) मिश्रमन
(२६) व्यवहार मन
(३०) सत्यवचन
(३१) असत्य वचन
(३२) मिश्रवचन
(३३) व्यवहार वचन
(३४) उदारिक
(३५) उदारिक ना मिश्र
(३६) विक्रय
(३७) विक्रय ना मिश्र
(३८) आहारक क्षेत्र
(३६) कारमण जोग
(४०) स्त्रीवेद
(४१) पुरुषवेद
(४२) नपुंसक वेद
(४३) अनंतानुबंधी चौकड़ी
(४४) अप्रत्याख्यान चौकड़ी
(४५) प्रत्याख्यान चौकड़ी
(४६) सज्वलन चौकड़ी
(४७) सूक्ष्म लोभ
(४८) हास्यादि ६
(४९) मति अज्ञान
(५०) श्रुत अज्ञान
(५१) विभगज्ञान
(५२) मतिज्ञान
(५३) श्रुतिज्ञान
(५४) अवधि ज्ञान
(५५) मनःपर्यय ज्ञान
(५६) केवलज्ञान
(५७) सामायिक चारित्र
(५८) छेदोपस्थापनीय
(५६) परिहार विशुद्ध
(६०) सूक्ष्म सपराय
(६१) यथाख्यात
(६२) संयम
(६३) असंयम
(६४) चक्षुदर्शन
(६५) अचक्षुदर्शन
(६६) कृष्ण लेश्या
(६७) नील लेश्या
(६८) कपोत लेश्या
(६६) तेजू लेश्या
(७०) पद्म लेश्या
(७१) शुक्ल लेश्या
(७२) भव
(७३) अभव
(७४) स्वास्वादान सम्यक्त्व
(७५) उपसम सम्यक्त्व
(७६) क्षयोपसम सम्यक्त्व
(७७) वेदक समकत्री
(७८) क्षयक समकत्री
(७९) मिथ्यात्व समकित
(८०) मिश्र समकित
(८१) संज्ञा
(८२) असंज्ञा
(८३) आहारक
(८४) अनहारक

इनमें से उदाहरण के रूप में यहाँ मिथ्यात्व गुणस्थान और नरक गति की तालिका प्रस्तुत की जा रही है—

मिथ्यात गुणस्थानमाहि	सर्वविधि
(१) गति सर्व ४	४
(२) इन्द्री सर्व ५	६

(३) काय सर्व ६	१५
(४) जोग ४ (मनना ४, वचनना ४, कायना ४)	२८[1]
(५) वेद सर्व ३	३१
(६) कषाय सर्व २५	५६
(७) अज्ञान ३	५९
(८) असंजम १	६०
(९) दरसण ३ केवलवाना	६३
(१०) लेश्या सर्व ६	६९
(११) भव्य सर्व २	७१
(१२) सम्यकती मा घात १	७२
(१३) संज्ञना १ असना २	७४
(१४) आहारक अणआहार २	७६
(१५) गुण ठाणुं १ मियात	७७
(१६) जीव-समास सर्वे ३८	११५
(१७) प्रज्या सर्व ६	१२१
(१८) प्राण सर्व १०	१३१
(१९) संज्ञा सर्व ४	१३५
(२०) उपउग ६ अज्ञान ३ दर्स ३	१४१
(२१) ध्यान ८ आरतना ४ रुद्रना ४	१४९
(२२) हेतु ५५-ने २५ कषाय, १३ जोग, १२ अवीर्शी, ५ मियात्	२०४
(२३) जोनी सर्व ८४ लाख	८४००२०४
(२४) कूल कोडि सर्व १९७ ॥०२०००	२८१००२०४

नरग गति मांहि	सर्व विधि
(१) गति १ नरक ना	१
(२) जाति १ पंचिंद्र	२
(३) काया १ त्रस	३
(४) जोग ११ (४ मन का, ४ वचन का, २ उदारक, १ कार्मण)	१४
(५) वेद १ नपूंसक	१५
(६) कषाय २३ स्त्री त्री पूरषवाना	३८

---

[1] जोड़ की संख्या २७ (१५+१२) होनी चाहिये पर प्रति में २८ लिखी है और उसी क्रम से आगे की जोड़ चली है।

(७) ज्ञान ६ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान) ४४
(८) संयम १ असंयम ४५
(९) दरसन ३ केवलवाना ४८
(१०) लेस्या ३ पहिलो ५१
(११) सभ २ सर्व ५३
(१२) समकतो ७ सर्व ६०
(१३) संज्ञा १ ६१
(१४) आहारक १ अण आहारक २ ६३
(१५) गुणठाणा ४ प्रथम ६७
(१६) जीव समास १ पंचिंद्रा ६८
(१७) प्रज्या ६ सर्व ७४
(१८) प्राण १० सर्व ८४
(१९) संज्ञा ४ सर्व ८८
(२०) उपयोग ९ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन) ९७
(२१) ध्यान ९ (४ आरत, ४ रौद्र, धर्म १) १०६
(२२) हेतु ५१ (५ मिथ्यात्व, २३ कषाय, ११ योग, १२ अविरित) १५७
(२३) ४ लाख जाति जीवा जोनी ४००१५७
(२४) कुल कोडि २५ लाख २९००१५७

इसी शैली मे सभी तत्वों का परिचय दिया गया है।

अन्त-भाग :

जीव रूपाउ राजा १
समक्त रूपाउ प्रधान २
ज्ञान रूपाउ भंडारी ३
सील रूपीउ रथ ४
मन रूपीउ घोड़ा ५
धीरज रूपीओ हाथी ६
संजम रूपी सनेही ७
तपस्या रूपाया हथाया ८
काउसग्ग रूपीया नगारा ९
मन वचन रूपीया नेजा १०
कर्म रूपी शत्रु ११
छकाय रूपी प्रजा १२

(७)	ज्ञान ६ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान)	४४
(८)	संयम १ असंयम	४५
(९)	दरसन ३ केवलवाना	४८
(१०)	लेस्या ३ पहिलो	५१
(११)	सभ २ सर्व	५३
(१२)	समकतो ७ सर्व	६०
(१३)	संज्ञा १	६१
(१४)	आहारक १ अण आहारक २	६३
(१५)	गुणठाणा ४ प्रथम	६७
(१६)	जीव समास १ पंचिंद्रा	६८
(१७)	प्रज्या ६ सर्व	७४
(१८)	प्राण १० सर्व	८४
(१९)	संज्ञा ४ सर्व	८८
(२०)	उपयोग ९ (३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन)	९७
(२१)	ध्यान ९ (४ आरत, ४ रौद्र, धर्म १)	१०६
(२२)	हेतु ५१ (५ मिथ्यात्व, २३ कषाय, ११ योग, १२ अविरित)	१५७
(२३)	४ लाख जाति जीवा जोनी	४००१५७
(२४)	कूल कोडि २५ लाख	२९००१५७

इसी शैली में सभी तत्वों का परिचय दिया गया है।

अन्त-भाग :

जीव रूपाउ राजा १
समक्त रूपाउ प्रधान २
ज्ञान रूपाउ भंडारी ३
सील रूपीउ रथ ४
मन रूपीउ घोड़ा ५
धीरज रूपीओ हाथी ६
संजम रूपी सनेही ७
तपस्या . . १ ८
काउसग्ग रूपीया
मन वचन ९
र्म रूपी
छकाय

एह भाव रथ संगामि कहाय ।

चार प्रकारइ देव नामा :

हिया आव्या जांणीया तनु नर कंठ १
उदार चित २
देव गुराना भगता ३
जिण धम नो जांण ४

चार प्रकारइ मनुष्याना :

आव्या जाणावे वनित्र १
निरलोभा २
दयादान नो उपगारी ३
मुहालो सुकमाल ४

चार प्रकारइ तिर्यचनि :

आव्या जाणायात अवनित्र १
लोभिया २
घणोखावु ३
आलसी ४

चार प्रकार नारकीना :

आव्यो जाणाय पाखण्डी १
मुड़ मूरख की सेवा करइ २
कलेसायो ३
कंकर भूत ४

चतुर्थ खण्ड

(लौकिक वेलि साहित्य)

नवम अध्याय

लौकिक वेलि साहित्य

सामान्य परिचय :

सम्पूर्ण लौकिक वेलि साहित्य को हमने तीन रूपों में बांटा है—

(१) ऐतिहासिक
(१) जनश्रुतिपरक
(३) नीतिपरक

इनमें ऐतिहासिक लौकिक वेलि साहित्य को पात्र-दृष्टि से दो भागों में बांटा जा सकता है—

(क) रामदेवजी और उनके भक्त
(ख) आईमाता और उनके भक्त

इसका रेखा-चित्र इस प्रकार बन सकता है—

लौकिक वेलि साहित्य

(१) ऐतिहासिक
(२) जनश्रुतिपरक
(३) नीतिपरक

(७) रतनादे री वेल
(८) मकल वेल

(क) रामदेवजी और उनके भक्त
(ख) आईमाता और उनके भक्त

(१) रामदेवजीरी वेल
(२) रूपादेरी वेल
(३) तोलादे री वेल
(४) बाबा गुमान भारती री वेल
(५) आईमातारी वेल
(६) पीर गुमानसिंघरी वेल

(२) काव्य की कथा प्रायः ऐतिहासिक पात्रों से सम्बन्धित है। रत्नादे को कथा जन-परम्परा से चली आई प्रतीत होती है। धर्म-भावना की तीव्रता के कारण कथा में अलौकिक तत्वों एवं कथानक रूढ़ियों का समावेश हो गया है।

(३) प्रधान पात्र दैविक गुणों से सम्पन्न है। नारी चरित्र पुरुष चरित्र की अपेक्षा अधिक सशक्त, दीप्तिमान और कर्त्तव्यपरायण है। प्रधान पात्र राज-वर्ग से सम्बन्धित हैं। अन्य पात्र निम्न वर्ग के मेघवाल, कुम्हार, ढोली, भोमिया आदि है। दोनों वर्गों मे भक्ति-समर्थक और भक्ति-विरोधक पात्र मिलते हैं। नायिका सामान्यतः विवाहित और भक्तिनिष्ठ होती है। पडोसिन, सौत, सास, पति आदि उसकी भक्ति भावना मे बाधक होते है फलस्वरूप संघर्ष शुरू होता है। संघर्ष का अन्त भक्ति भावना के जय-घोष के साथ होता है। प्रतिनायक प्रायश्चित ही नहीं करते वरन् उसी भक्ति-मार्ग मे दीक्षित होकर अपना जीवन सार्थक समझते हैं। खल पात्र अभिशापित होकर दण्ड भोगते है। नायक-नायिका का जय जयकार होता है।

(४) इसका मूल स्वर एक विशेष सम्प्रदाय-आईपंथ-से सम्बन्धित है। रामदेवजी का सम्बन्ध भी इसी से रहा है। अतः इसमे या तो आईमाता और रामदेवजी के चमत्कारपूर्ण जीवन-वृत्त को गाया गया है या उनके भक्तों की चमत्कारपूर्ण घटनाओं को वेलि का विषय बनाया गया है। संभव है अन्य विषयों से सम्बन्ध रखने वाली वेलियाँ भी इस साहित्य मे प्रचलित हों पर हमे प्राप्त नही हुई हैं।

(५) 'अकल वेल' मे लोक-व्यवहार की जीवनोपयोगी नीति सम्बन्धी बातें कही गई है। पर उसकी शैली लौकिक ही है।

(६) भक्ति के अन्तराल मे एक हल्की प्रेम-कथा भी चलती रहती है जो विविध तरंगाघातों को झेलती हुई अन्त मे भक्ति के समुद्र मे समा जाती है।

(७) यह साहित्य लिखित रूप मे प्रायः नही मिलता है। भक्तों की मुख-परम्परा ने ही इसे अब तक जीवित रखा है। कुछ वेलियों के रचयिता भी इसी कारण अज्ञात रहे है।

(८) इस साहित्य के रचनाकार स्वयं उच्च कोटि के भक्त रहेहैं और अपने आराध्यदेव के समकालीन ही नहीं वरन् उनके कार्य-कलापों मे भी भाग लेते रहे हैं।

(९) गेयता इस साहित्य का प्रमुख गुण है। भजनीक लोग रात्रि को आईजी के मन्दिर (वड़ेर) के बाहर बैठकर इसे बड़ी श्रद्धा से गाते हैं। एक व्यक्ति इसे बोलता जाता है और दूसरा व्यक्ति हुँकारा देता रहता है। शेष उपस्थित भावुक लोग इसे सुनते रहते हैं। 'आईमाता' और 'पीर गुमानसिंघरी वेल' आईपंथी लोगों द्वारा प्रत्येक बीज (शनिवार) की रात्रि को गाई जाती है। आईजी के मन्दिर में वीणा बजाना धर्म विरुद्ध समझा जाता है अतः बिना वीणा के ही ये गाई जाती हैं पर अन्यान्य–रूपांदे, तोलादे रामदेवजी आदि–वेलियाँ किसी भी दिन, किसी भी वार, किसी भी स्थान पर वीणा के साथ गाई जाती हैं[1]। यदि कोई व्यक्ति रामदेवजी तथा आईमाता के नाम का रात्रि–जागरण–बीजव्रत[2] करता है तब तो और ही समां बंध जाता है।

(१०) इसकी भाषा अलङ्कारों से दूर, बिल्कुल सरल, बोलचाल की ग्रामीण राजस्थानी है।

(११) काव्य रूप की दृष्टि से इन वेलियों का स्वरूप एक विस्तृत लोक गायन सा प्रतीत होता है।

(१२) जोधपुर डिविजन के गोड़वाड़ प्रान्त में इस साहित्य का बड़ा प्रचार है।

उपलब्ध प्रमुख वेलियों का अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) रामदेवजी री वेल[3]

प्रस्तुत वेल रामदेवजी से सम्बन्ध रखती है। रामदेवजी राजस्थान के एक महान अछूतोद्धारक एवं सिद्ध पुरुष हो गये हैं। ये तुंवर वंशीय क्षत्रिय थे। इनका

१—श्री गिरवरसिंह चोयल का लेखक के नाम पत्र : दिनाङ्क १०–८–६१।

२—बीज व्रत की पूजा–विधिः–पाट के ऊपर सवा हाथ सफेद कपड़ा और सवा हाथ लाल कपड़ा। सवा पाव चावल, दाखां, बादाम, मिश्री, खारक, पिस्ता, इलायची, कपूर, अगरबत्ती, सवा सेर मिठाई, फूल, इत्र, केसर, कूं–कूं, बारह नारियल, बारह चाँदी का चांद। सवा सवा हाथ रूमाल में एक-एक नारियल को बांधना। एकम (प्रतिपदा) का जागरण करके बीज को भोग लगाना, श्रद्धानुसार भोजनादि बनाना। संत-महात्माओं को बुलाकर यथाशक्ति स्वागत करना। चांद-दर्शन करके भोजन पाना।
—बीज व्रत कथा : कुम्भा बाबा वड़ेर, बिलाड़ा, पृ० २७।

३—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है—'पीर म्हारी वेल पधारो जे'
(ख) प्रति–परिचय :–यह हस्तलिखित प्रति के रूप में नहीं मिलती है। मौखिक रूप में ही भक्तों द्वारा गाई जाती रही है। खारी (मारवाड़) के श्री गिरवरसिंह चोयल

जन्म वि० संवत् १४६१ में भादवा सुदी २ शनिवार को अजमलजी[1] की भार्या मेणादे (मैलांदे) की कुक्षि में हुआ था। ये कृष्ण के अवतार माने जाते हैं[2]। इनके जीवन के साथ कई चमत्कारपूर्ण घटनाएँ सम्बन्धित हैं[3]। सं० १५१५ में जीतेजी पोकरण (मारवाड) से पाँच कोस दूर उत्तर दिशा में इन्होंने समाधि ली थी। वहाँ प्रति वर्ष भादवा सुदि १० को बड़ा भारी मेला लगता है जिसमें गुजरात, मालवा आदि प्रान्तों के लोग दर्शनार्थ आते हैं।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता संत हरजोभाटी[4] रामदेवजी के समकालीन थे। ये जोधपुर जिले के ओसियां नामक ऐतिहासिक ग्राम से ६ मील दूर स्थित 'पंडितजी की ढाणी' के निवासी और भाटी कुल के राजपूत उगमसिंह के पुत्र थे जो स्वयं उच्चकोटि के भक्त और महात्मा रामदेवजी के शिष्य थे। चौदह वर्ष की आयु में ही हरजी पितृहीन हो गये और आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण मामा के घर जाकर बकरियाँ चराने लगे। यहीं रामदेवजी ने इन्हें साधुवेश में दर्शन दिये। इस सम्बन्ध में यह किंवदन्ती प्रचलित है।

कहते हैं कि जब हरजी अपने मामा की बकरियाँ चरा रहे थे तब जंगल में ही रामदेवजी साधु का वेष बनाकर इनके निकट आये और कहने लगे कि मुझे बकरियों का दूध पिलाओ। हरजी ने निवेदन किया कि बकरियाँ ब्याई नहीं हैं (दुधारु नहीं हैं) अतः दूध पिलाने में असमर्थ हूँ, मुझे क्षमा करें। इस पर साधु-वेषी रामदेवजी ने आग्रह किया और आज्ञा दी कि तुम कटोरा लेकर बकरियों को दुहो तो सही। हरजी ने आज्ञा का पालन किया और क्षण में देखा कि कटोरा दूध से लबालब भरा था। रामदेवजी ने अपने हाथ से कटोरा लेकर दूध पी लिया। इसके बाद रामदेवजी ने यह कहते हुए कि मैं बहुत प्यासा हूँ— पानी माँगा। हरजी ने विवशता प्रकट की कि यह थली प्रदेश है, जेठ का महीना है, पानी कहाँ मिलेगा ? इस पर रामदेवजी ने स्थान विशेष की ओर इंगित करके कहा कि वहाँ से पानी भरकर लाओ। हरजी कमण्डल लेकर चल पड़े। जाकर

ने इसे लिपिबद्ध कर वरदा : वर्ष १, अङ्क १, पृ० ४३-४५ में प्रकाशित कराया है।

१—अजमलजी पृथ्वीराज चौहान के नाना अनंगपाल के भाई रणसीजी के पुत्र थे।
—श्री रामदेव जीवन रत्नावली : वैद्य पुष्पापुरी गोस्वामी, प्रकाशक : स्वामी हरीपुरीजी, गोस्वामी मठ, बनून्दा, पृ० १।

२—श्री रामदेव जीवन रत्नावली : वैद्य पुष्पापुरी गोस्वामी : ७ से १०

३—वही : वैद्य पुष्पापुरी गोस्वामी।

४—हरि मरणे भाटी हरजी बोले, थुण गोविंद रा गाइजे (२४)

देखते है तो वह स्थान जल से परिपूर्ण है। हरजी आकर रामदेवजी के पैरों में पड़ गये और उसी दिन से उनके अनन्य शिष्य बन गये[1]।

इस चमत्कारिक घटना के बाद हरजी संसार से विरक्त से हो गये और दिन रात वीणा पर भजनादि गाने लगे। रामदेवजी के तो इतने भक्त हो गये कि उनका चिथड़ों का घोड़ा लेकर जोधपुर के निकट 'मसूरिया मगरी' नामक स्थान पर आकर उनकी ही स्तुति में लगे रहे। हरजी का प्रभाव इतना फैला कि आसपास के ही नहीं दूर दूर तक के लोग उनकी भजन-मण्डली में आकर सम्मिलित होने लगे।

किसी दुष्ट ने जाकर तत्कालीन मारवाड़ के नरेश महाराजा विजयसिंह से शिकायत की कि हरजी भाटी चिथड़ों का घोड़ा लिये लोगों में पाखण्ड फैला रहे हैं। इस पर उन्होंने तत्कालीन हाकिम हजारीमल को आज्ञा दी कि वह इस पाखण्ड को बंद करावे। और यदि सचमुच इस चिथड़े के घोड़े में कुछ चमत्कार है तो हमें आकर दिखलावें। हजारीमल ने परवाना भेजकर हरजी भाटी को बुलाया और कहा कि अगर तुम्हारे इस चिथड़े के घोड़े में कुछ चमत्कार है तो घास और जल इसके सम्मुख रख दो। अगर घोड़ा घास खा जायगा और जल पी जायगा तो महाराज साहब तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होंगे अन्यथा तुम मरवा दिये जाओगे।

इस बात को मानकर हरजी भाटी ने मंडोर के बाग में आकर अपनी धूणी लगा दी और रामदेवजी की भक्ति करने लगे। कहते हैं कि भक्ति के प्रभाव से चिथड़े का घोड़ा सारी घास खा गया और सारा जल पी गया। इस चमत्कार से महाराजा विजयसिंह बड़े प्रभावित हुए और उन्होंने 'मसूरिया' पर रामदेवजी का मंदिर बनवाकर प्रति वर्ष भादवा सुदी तीज को उनका मेला भरवाना शुरू किया। यह मेला आज तक बड़े उत्साह से लगता है।

इन प्रचलित किवदन्तियों से यह स्पष्ट है कि हरजी रामदेवजी के अनन्य उपासक थे। हरजी की वाणी में रामदेवजी के चमत्कारिक जीवन-प्रसंग ही नहीं वर्णित हैं बल्कि रामदेवजी के पदों में भी हरजीभाटी का सादर उल्लेख मिलता है। हरजी भाटी ने रामदेवजी की प्रशंसा के अतिरिक्त भी विभिन्न विषयों पर पद बनाये है। यथा—'मूलारंभ की वारता', 'आगमपुराण' 'भादवा री मेंमा', 'गऊ पुराण', 'माल री महिमा', 'रूपांदेरी वेल' आदि[2]।

१—श्री रामदेवप्रकाश और हरजीभाटी मिलापः रामसिंह पुरोहित।

२—शिवसिंह चोयल का 'संत हरजीभाटी और उनकी वाणी' शीर्षक लेखः वरदा, वर्ष १ अंक १, पृ० ३७ से ४६।

रचना-काल :

वेलि में कहीं भी रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। काव्य को पढ़ने से पता चलता है कि इसमें रामदेवजी के जन्म और बचपन में उनके द्वारा हुए भैरव राक्षस के वध का वर्णन किया गया है। रामदेवजी के उत्तरार्द्ध जीवन की घटनाओं का (समाधि आदि) वर्णन न होने से अनुमान है सं० १५१५ के पूर्व १५ वीं शती के उत्तरार्द्ध में ही इसकी रचना हुई हो।

रचना-विषय :

यह २४ छंदों की छोटी सी रचना है। इसमें रामदेवजी का जन्म एवं भैरव राक्षस का वध प्रसंग वर्णित है। भैरव राक्षस को मार देने से उनकी बड़ी ख्याति बढ़ी और हिन्दू-मुसलमान दोनों इन्हें महात्मा अथवा पीर के रूप में मानने लगे। कथा-सार का विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) *रामदेवजी का अजमलजी के यहाँ जन्म लेना :*

मारवाड़ के पश्चिम में पोकरण नामक स्थान पर रामदेवजी ने अजमलजी के यहाँ अवतार लिया[1]। इसके प्रमाण रूप में इन्होंने चूल्हे पर उफणते हुए दूध को हाथ रख कर बंद कर दिया[2] तथा आंगन में कुंकुम के पगलिये मांड दिये[3]।

(२) *रामदेवजी द्वारा भैरव राक्षस का मारा जाना :*

उस समय भैरव राक्षस ने बड़ा उत्पात मचा रखा था। अजमलजी ने रामदेवजी से उसे मारने की प्रार्थना की। रामदेवजी हाथ में दड़ी (गेंद) और गिल्या लेकर गाँव के बाहर बालीनाथजी योगेश्वर की धूणी पर गये[4] जहाँ शाम को भैरव राक्षस आया करता था। बालीनाथजी ने राक्षस के भयंकर उपद्रव का चित्र खींच कर बालक रामदेव को भयभीत कर घर भेजना चाहा पर रामदेव ने दृढ़तापूर्वक जवाब दिया—"मैं तंवर गोत्रीय

१—पीर अवतार पीछम में लिया, पोहकरण डेरा दिया आय।
घर अजमालजी रे बंटत बधावा, घर हर नोपत नुर कीजे ॥ १ ॥

२—परगट हुवा जो वारी, लागी भटी पर चाढीजे।
धरियो हाथ माट रे माथे, दूध उफाणे ढांकीजे ॥ २ ॥

३—माता मेणादेजी बिणमिया, ठाकर घर पधारीजे।
कूं कूं रा पगलिया री पारखा, इण बालक ने धारवाईजे ॥ ३ ॥

४—दुठण दड़ी एकला चल्या, मोहन गिल्यो मण लीजे।
बालीनाथजी रे पास आया, दे आसीस अमर कीजे ॥ ७ ॥

क्षत्रिय बालक हूँ। मेरा नाम रामदेव है। मेरी माता मैणादे और पिता अजमलजी हैं। मैं आप ही का शिष्य हूँ। कृपा कर मेरी रक्षा कीजिये।' इतने में हाथ मे कदली वृक्ष की डालियां उठाये, मुँह में गदा लिए, पैर से बड़ी भारी शिला चलाता हुआ भैरव राक्षस आ पहुँचा। रामदेवजी ने बालीनाथजी से आज्ञा लेकर उसका पीछा किया। राक्षस ने क्षमा माँगते हुए सात समुद्र पार कर सुदूर चले जाने की प्रतिज्ञा की और अपने आ पास गोलाकार लकीर खींच कभी भी भविष्य में वहाँ न आने की घोष की पर रामदेवजी ने उसे दुष्ट समझकर मार दिया। तभी से वहाँ प्र वर्ष उनके नाम पर मेला भरा जाने लगा[२]।

कथानक बहुत ही संक्षिप्त है। रामदेवजी का अलौकिक बाल-रूप ही य विशेष रूप से उद्घाटित हुआ है। काव्य मे तीन स्थलों पर अलौकिक तत्वों क सन्निवेश किया गया है जो रामदेवजी के जन्म-प्रसंग से संबंध रखते हैं। पह स्थल बीरमदेव (रामदेव के बड़े भाई) के झूले में बीरमदेव के साथ सोते हुए बाल के रूप मे रामदेवजी के जन्म होने का है। दूसरा स्थल बालक रामदेव द्वारा चूल पर उफणते हुए दूध को हाथ रखकर बंद कर देने का है और तीसरा स्थ आंगन में (रामदेव द्वारा) कुंकुम के पगलिये मंडने का है।

काव्य निर्णय का निर्वाह करते हुए दुष्ट राक्षस भैरव का रामदेवजी द्वार वध कराया गया है और रामदेवजी को मोतियों की माला से बधाया गया है।

चरित्र चित्रण :

प्रमुख पात्रों मे रामदेवजी, बालीनाथजी योगेश्वर और भैरव राक्षस आते हैं। गौण पात्रों में रामदेवजी के माता (मैणादे) पिता (अजमलजी) का समावेश किया जा सकता है। रामदेवजी और बालीनाथजी देव श्रेणी के पात्र हैं। भैरव राक्षस दानव कोटि मे आता है। पात्रों में किसी प्रकार का चारित्रिक विकास नहीं पाया जाता। भैरव राक्षस अवश्य मरते समय अपने अत्याचारों के लिए रामदेवजी से क्षमा याचना कर भविष्य में ऐसे कुकर्म न करने का संकल्प करता है पर रामदेवजी उसका वध करके ही सांस लेते हैं।

१—माता मैणादे, पिता अजमालजी, करणी में कंवर कहीजै।
बालीनाथ बाबा रो चेलो, मन धामो वेह बताइजै ॥ ११ ॥

२— पड़ियो दैत पड़गो धम्मे, रावन रा दल ज्यूं कीजै।
भरमो दयू भंमद रै काटै, धरणी रा नाथ नहीं जडै ॥२२॥
बाड़ कूंडियो ने दैत दाटियो, तुगरा दार भली भोरे।
कुकबुन न म्हारे देरो नरीब, माया देव मन मत चोखे ॥२३॥

रामदेवजी के लोकोत्तर वीरत्व से परिपूर्ण व्यक्तित्व के कारण काव्य में वीर एवं अद्भुत रस का समन्वय हुआ है।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोल चाल की सरल राजस्थानी है। अलंकरण की ओर कवि का ध्यान नहीं रहा है।

छन्द :

काव्य मे ताटंक[1] छंद का प्रयोग हुआ है। उसे लोक गीत का रूप देने के लिए आँकड़ी के रूप मे जो पंक्ति व्यवहृत हुई है वह इस प्रकार है—

'परभाते निज नाम मायवरा, साचा सिवरण सारीजे'

(२) रूपादे री वेल[2]

प्रस्तुत वेल रूपादे से सम्बन्धित है। रूपादे बाल्हा राजपूत की पुत्री और मारवाड़ नरेश राव मल्लिनाथ[3] जी की पत्नी थी[4]। वह बड़ी ही ईश्वर भक्त और

१—विषम चरण मे १६ तथा समचरण म १४ मात्राएँ, अन्त म मगण SSS

२—(क) मूल पाठ मे वेलि नाम नहीं आया है।

(ख) प्रति-परिचय:—यह हस्तलिखित प्रति के रूप म नहीं मिलती है। मौखिक रूप मे ही भक्तों द्वारा गाई जाती रही है। श्री शिवसिंह चोयल ने इसे लिपिबद्ध कर शोधपत्रिका : भाग ६ अङ्क २ पृ० ३७ से ४२ म प्रकाशित कराया है।

३—राव मल्लिनाथ जी सलखाजी राठौड के ज्येष्ठ पुत्र थे। इनका जन्म सं० १३५८ म हुआ था। संवत् १४३५ मे इन्होने माड़ के सुल्तान को हराया था। संवत् १४५६ मे इनका स्वर्गवास हुआ।

—मारवाड़ का इतिहास : जगदीशसिंह गहलोत, पृ० १०२।

४—कहा जाता है कि मल्लिनाथ को देवी ने साक्षात् दर्शन दिया था। तब मल्लिनाथ जी ने उससे यह वचन मांगा कि आपको मेरे घर आना होगा। देवी ने कहा कि मै तुम्हारे देश मे अवतार लूंगी। जो तुम हमे पहचान लोगे तो तुम्हारे घर आऊँगी। मल्लिनाथ ने कहा—मैं आपको किस प्रकार पहचान सकूँगा? तब देवी ने कहा—मैं करामात दिखाऊँगी। यदि उससे पहचान लेगा तो आजाऊँगी। कुछ दिनों मे देवी ने बाल्हा राजपूत के यहाँ अवतार लिया। उनकी उम्र १० वर्ष की हुई। उस अवसर पर मल्लिनाथ जी उस गाँव म जा निकले। मल्लिनाथ राजपूत के दालान म गए, वहाँ वह कन्या बैठी हुई थी। उसे देखकर राजपूतों ने कहा कि कोई चारा [illegible] घोड़ों को दे। तब उसने कहा तुम्हारा ठाकुर [illegible] सबके [illegible]

पतिव्रता महिला थी। धारू मेघवाल[1] उसके गुरु थे। रूपादे ने ही मल्लिनाथ जी को भक्ति की ओर मोड़कर सत्पथ पर लगाया।

कवि-परिचय :

इसके रचयिता वही सन्त हरजीभाटी (हरिनन्द) हैं[2] जिनका परिचय 'रामदेव जी री वेल' के साथ दिया गया है।

रचना-काल :

वेलि में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। काव्य में वर्णित प्रमुख पात्र रूपादे और मल्लिनाथ (वि० सं० १३५८-१४५६) १५ वीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे। वेलिकार सन्त हरजीभाटी रामदेव जी के समकालीन थे जिनका समय वि० सं० १४६१ से १५१५ रहा है। अनुमान है १५ वी शती के उत्तरार्द्ध में इस वेल की रचना हुई हो।

रचना-विषय :

५८ छन्दों[3] की इस रचना में राव मल्लिनाथ और उनकी रानी रूपादे का जीवन-वृत्त वर्णित है। कथा-सार का वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) *कथा का प्रारम्भ :*

महेवा के राजा मालजी (मल्लिनाथ जी) सलखाजी के वंशज हैं। उनकी रानी (रूपादे) वनरावाला (वाल्हा) की पुत्री है। धारू मेघवाल पहुँचे हुए साधु हैं। उनकी मण्डली में पैर रखते ही समस्त पाप नष्ट होकर धर्म रूप में परिणत हो जाते हैं।

दिये जायं। तब राजपूतों ने आकर कहा कि एक कन्या खलिहान में बैठी है, उससे हमने धान्य के लिए मांगा तो उसने आपके (ठाकुर) चलने पर सबके पाहुरे भर देने को कहा। यह सुनकर मल्लिनाथ जी पाहुरा लेकर गये। उसने (कन्या) सब पाहुरे भर दिये और धान्य उतना का उतना रहा। तब मल्लिनाथ जी को ज्ञात हुआ कि यह वही शक्ति है। तब मल्लिनाथ ने उसके पिता से जाकर कहा कि आप मुझे अपनी कन्या दीजिये। अन्त में बहुत हठ कर विवाह कर वे उसे अपने घर लाये।

१—ये जाति के मेघवाल और जैपाल गोत्र के थे। इनका समाधि स्थान तलवाड़ा गाव (बाड़मेर) में रावल मल्लिनाथ जी के मन्दिर के पास है।

२—हरिशरणें भाटी हरिनन्द बोले, धिन धिन वा नरां ने ॥५८॥

३—मरुभारती : वर्ष २ अङ्क २, पृ० ७१-७५ में श्री अगरचन्द नाहटा ने जो 'रूपादे वेल' प्रकाशित कराई है उसमें छन्द सं० ५६ है।

(२) *बीज शनिश्चर के दिन धारू मेघवाल के यहाँ जागरण का होना :*

• शनिश्चर के दिन बीज तिथि को धारू मेघवाल के यहाँ जागरण करने का निश्चय हुआ। विधिवत् कलश एवं पाट की स्थापना की गई। इस जागरण में उगमसी भाटी[1], हड़बू[2] और रामदेव जो आदि महात्मा पधारे जिससे सिद्धों के पंथ की स्थापना हुई।

(३) *धारू मेघवाल का रूपादे को निमन्त्रण भेजना :*

धारू मेघवाल ने इस जागरण में उपस्थित होने के लिए रूपादे के पास निमन्त्रण भेजकर यह कहलाया कि गुरु उगमसी भी इस जागरण में पधारे हैं अतः अवश्य आना। अपने पति रावल मल्लिनाथ जी के मना कर देने से रूपांदे ने–जागरण में नहीं जाने के विचार से–कहलवा दिया कि उगमसी आदि सन्त-महात्माओं को मेरा साष्टांग प्रणाम निवेदन करदें। इस पर धारू मेघवाल ने पुनः कहलाया कि संतों की भजन–मण्डली में आने में कोई दोष नहीं है। तुम निःसंकोच बिना किसी डर के चली आओ। हम सब संतजन तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

(४) *रूपांदे का जागरण में जाने के लिये तैयारी करना :*

रूपादे ने दासी से जागरण में जाने की बात कही। इधर उसे स्वप्न भी आया जिसमे वह अपना महल भूल गई और उसे दिखाई दिये छत्तीस प्रकार के बजते हुए बाजे। सोलह शृङ्गार कर, मोतियों से थाल भर रूपादे चल पड़ी। महल के द्वार–जो तालों से जड़े हुए थे–एक–एक कर खुल गये। उसके नूपुरों की आवाज से सारा शहर जाग पड़ा फिर भी वह ईश्वर पर भरोसा रखकर चुपचाप चली गई।

(५) *रूपांदे का जागरण में सम्मिलित होना :*

धारू मेघवाल के घर जाकर, बाहर जूतियाँ खोल रूपादे सन्तजनो की मण्डली में पहुँची। सबको यथाविधि वन्दना कर पांच पद्म गुरु के चरणों में समर्पित किये और आशीर्वाद प्राप्त किया।

(६) *चंद्रावली का मल्लिनाथ को शिकायत करना :*

इधर सौतिया–डाह से पीड़ित होकर रानी चन्द्रावली ने रूपादे के विरुद्ध यह कहकर मल्लिनाथ के कान भरे कि रूपांदे धारू मेघवाल के घर गई हुई है। आपके मना करने पर भी वह रात को न मालूम क्या क्या कुकृत्य

१—ये संत हरजी भाटी के पिता और महात्मा रामदेव जी के भक्त थे।

२—ये सांखला गोत्र के क्षत्रिय थे। जोधपुर के संस्थापक राव जोधाजी (वि० सं० १४७२–१५४५) की सेवा में कुछ समय रहे थे।

कर खुल पड़ते हैं[1]। दूसरा स्थल वहाँ है जहाँ मल्लिनाथ द्वारा परीक्षा लेने पर रूपादे के थाल में प्रसाद की जगह चम्पा, केवडे आदि के (भक्ति के प्रभाव से) फूल दिखाई देते हैं[2]।

कथा-संयोजन में निम्नलिखित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है—

(१) शनिवार बीज को जागरण करना और कलश की स्थापना करना।
(२) चंदन चौक में मोतियों का मण्डप रचना।
(३) जागरण में कई सिद्धों (पीरों) का सम्मिलित होना।
(४) जागरण में सम्मिलित होने के लिए नायिका को नायक का मना करना।
(५) नायिका को जागरण में जाने का स्वप्न आना।
(६) नायिका का सोलह शृंगार कर, मोतियों की थाल भर, जागरण के लिए प्रस्थान करना।
(७) द्वारपाल का रोकना।
(८) नायिका का द्वारपाल को गहनों आदि का प्रलोभन देना।
(९) महल के दरवाजों का बन्द होना और एक-एक कर तालों का टूटना।
(१०) नायिका के जाने पर सौत का नायक को शिकायत करना।
(११) शिकायत पर नायक का तत्काल विश्वास नहीं करना।
(१२) जांच करने के लिए नायक का जासूस भेजना।
(१३) जासूसों का नायिका की जूतियाँ आदि चुरा लाना।
(१४) भगवान द्वारा नायिका की रक्षा (जूतियों का मिल जाना, थाल में प्रसाद की जगह फूलों का उग आना आदि) करना।
(१५) नायक का नायिका पर प्रसन्न होकर उसी मत में दीक्षित होना।

चरित्र-चित्रण :

प्रमुख पात्रों में रूपादे और राव मल्लिनाथ के नाम लिये जा सकते हैं। गौण पात्रों में धारू मेघवाल, उगमसी भाटी, मोकल राणा, हड़बू, रामदेवजी, चंद्रावली, द्वारपाल, दूती, गुप्तचर, दासी आदि आते हैं। पात्रों की तीनों कोटियाँ हैं। सुर पात्रों में उगमसी भाटी, धारू मेघवाल, रूपांदे आदि आते हैं। असुर पात्रों में चंद्रावली रखी जा सकती है और मानव पात्रों में राव मल्लिनाथ, द्वारपाल, गुप्तचर,

---

१—एक जड़ीजे, दूजी ऊप्पड़ै (म्हारा) गुराजां रा वचन फिराणा।
खुल गया ताला जड़ गया ताला, कसा माहूं इसा खुलांणा ॥ ११-१२ ॥

२—बाग न बाड़ी, कोई चम्पो न मरवो, न कोई बाग से सेवांणा।
एक बाड़ी मण्डोवर कहीजे, जिण रा दूर रहे पयाणा ॥ ३९ ॥
सिखर फूलड़ा म्है हाथे वीणिया, जाय चम्पलें चुण लेणा।
नाई रीझ राज रे तांई, मैं सुख मायो थांने ॥ ४० ॥

करने जाया करती है। मल्लिनाथ को यकायक चंद्रावल की बात पर विश्वास नहीं हुआ पर जब दूती द्वारा इस बात की पुष्टि हो गई तो वह आग बबूला हो गया।

(७) *मल्लिनाथ का कोधित होकर रूपांदे की जूतियाँ मंगवाना :*

मल्लिनाथ क्रोध में रूपांदे के सोलह टुकड़े करने को तैयार हो गया। उसका पता लगाने के लिए उसने धारू मेघवाल के घर गुप्तचर भेजा जो होगों ने जड़ी हुई उसकी जूतियाँ चुरा ले आया।

(८) *रूपांदे का आशीर्वाद लेकर राजमहल को लौटना :*

रूपांदे को जब इस बात का पता लगा तो वह घर चलने को तैयार हुई। गुरुदेव ने उसे अखण्ड सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देते हुए कहा-'परम पिता परमात्मा हर क्षण तुम्हारी रक्षा करें' और हुआ भी वही कि उसकी जूतियाँ उसे वापस मिल गईं।

(६) *मल्लिनाथ का प्रसन्न होकर संत मत में दीक्षित होना :*

जब रूपांदे महलों में पहुँची तो मल्लिनाथ ने उसे खूब फटकारा पर रूपांदे विनम्रता पूर्वक कहती रही—मैं कब धारू मेघवाल के घर गई हूँ। मैं तो फूल लाने के निमित्त मंडोवर के बाग में गई थी और सचमुच उसकी थाली में प्रसाद की जगह (जो उसे वहाँ से मिला था) चम्पा, केवड़ा आदि विविध प्रकार के फूलों के पौधे दिखाई दिये (जो उस प्रांत में नहीं थे) इस अलौकिक प्रभावपूर्ण चमत्कार को देखकर मल्लिनाथ का क्रोध शान्त हो गया और वह रानी चन्द्रावती तथा अपने पुत्रों की सहमति से भगवा वस्त्र धारण कर राव से रावल अर्थात् साधु बन गया [1]।

कथा के लगभग सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। जो मुख्य घटना है (रूपांदे क तिरस्कार और मल्लिनाथ का दीक्षित होना) वह भी इतिहास सम्मत है। फि भी कवि ने अलौकिक तत्वों के रूप में कल्पना का पुट देकर इतिहास के अ पंजर में प्राण रस का संचार किया है। काव्य में ये अलौकिक स्थल दो आये हैं। पहला स्थल वह है जब रूपांदे सोलह शृंगार कर, मोनियों का था जागरण में जाने के लिए प्रस्थान करती है और महल के बन्द दरवाजे

१—श्री नरोत्तमदास स्वामी द्वारा संगृहीत वार्तों में रूपांदे सम्बन्धी।
रूपांदे के प्रारम्भिक जीवन पर अच्छा प्रकाश
भक्ति और श्रद्धामय जीवन का विशेष
दूसरे की पूरक है।

रूप में काव्य सुरक्षित नही है। यह मुख-परम्परा से ही अब तक जीवित रहा है। इसका रचयिता अज्ञात है।

रचना-काल :

वेलि मे कही भी रचना-तिथि का उल्लेख नही है। रचनाकार भी अज्ञात है। काव्य के चरित्र-नायक रामदेव के समकालीन (१५ वी शताब्दी) रहे है। अनुमान है इसकी रचना १५ वी शती के उत्तरार्द्ध मे ही किसी समकालीन भक्त कवि द्वारा हुई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ४० छंदों की रचना है। इसमे तोलादे और जेसल का जीवन-वृत्त वर्णित है। कथा-सार का वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षकों मे किया जा सकता है—

(१) *तोलादे का जेसल से प्रायश्चित करने का निवेदन :*

तोलांदे ने अपने पति जेसल से अनुरोध किया कि 'हे डाकू पतिदेव! अवगुण को गुण मानकर अपने द्वारा किये गये आज तक के समस्त पापो को प्रगट कर प्रायश्चित कर लो। इसी में आपका भला है'।[1]

(२) *जेसल का डाका डालने के लिये प्रस्थान करना :*

पर जेसल इस बात पर ध्यान न देकर डाका डालने के लिए प्रस्थान करने लगा। प्रस्थान करते समय उसे सामने उल्टा घड़ा लिये पनिहारिन मिली, बाईं ओर कोचरी (पक्षी विशेष) बोलने लगी। इस प्रकार अपशकुन होते देख तोलांदे ने उसे रोकना चाहा[2] पर वह नही रुका और चला गया। चलते-चलते उसे भूरी सांडनी के शकुन हुए जिस पर एक धनी सेठ बैठा था। जेसल ने सेठ को लूटने की धमकी दी[3] और सेठ विनय करता हुआ नीचे उतर पड़ा।

१—अवगुण रा गुण मान धाड़वी ओ, अवगुण रा गुण मान।
कीधोड़ा पाप परा प्रकाश, घड़ पडे काया राम जी ॥१॥

२—ऊंदे घड़े पिणिहार धाड़वी घड़े पिणिहार।
दूवारा मणोहार डावो बोली कोचरी, मत जावो जी जीयो कजियो।

३—मिलगो भूरो साड धाड़वी, मिलगो भूरो साड।
दूवारा भूरी मिलगी सांड, ऊपर बिछावत बाणियो लूटे तो (रे) जी।
थारा माल बताय बाणिया, थारा माल बताय।
नही तो मारू जान मूं सेठ (रे) जी ॥४॥

दासी आदि। अधिकांश पात्र स्थितिशील हैं। चंद्रावली और राव मल्लिनाथ के चरित्र विकसित चरित्र हैं। अन्त में जाकर उनमें परिवर्तन होता है और वे आदर्श चरित्र बन जाते हैं।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा ग्रामीण राजस्थानी है। वह भावानुकूल चढ़ती-उतरती है।

यथा—

> काळो काठळ बीज चमक्कै, खळ हळ नीर खळाणा।
> गरठ अरठ इंद्र ज्यूं गाजै, ठमकत पाव पराणा ॥३५॥
> इंद्र बरसे ने रैण अंधारी, बिना बरण क्यूं बहणा।
> मालजी नणा बाधिया मारग, घनै जाव किस विध देणा ॥३६॥
> सतरी तणी लोय दो राणी, अकरम काम कमाणा।
> महल छोड ने गया मेघा घर (म्हारो) डीठो नाजु लजाणा ॥३७॥

छन्द :

काव्य में सार छंद प्रयुक्त हुआ है। लोक काव्य होने के कारण मात्राएं प्रायः घटती बढ़ती रही हैं। टेर के रूप में निम्नलिखित पंक्तियां प्रयुक्त हुई हैं—

> रावलजी बूझे राज पदमणी, कह्यो म्हारो मांनो।
> वणा हेत सू मानो, महर मया कर मानो ॥

(३) तोलादे री वेल[1]

प्रस्तुत वेलि तोलादे से संबंध रखती है। तोलादे जाड़ेचा गोत्र के क्षत्रिय जैसल की पत्नी थी। जैसल पहले डाकू था। तोलादे के सम्पर्क में आकर वह सुधर जाता है। रामदेवजी के भक्तों में दोनों प्रमुख स्थान रखते हैं। रात्रि-जागरण के अवसर पर प्रायः इनका चरित्र गाया जाता है।

कवि-परिचय :

वेलि में कहीं भी रचयिता का उल्लेख नहीं हुआ है। हस्तलिखित प्रति के

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आता है।
(ख) प्रति-परिचय:—यह हस्तलिखित प्रति के रूप में नहीं मिलती है। भक्तों के मुंह ही भक्तों द्वारा गाई जाती रही है। [illegible] ने इसे लिपिबद्ध किया है। हमें इसकी प्रति [illegible] के सौजन्य से मिली है।

रूप में काव्य सुरक्षित नहीं है। यह मुख-परम्परा से ही अब तक जीवित रहा है। इसका रचयिता अज्ञात है।

रचना-काल :

वेलि में कहीं भी रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। रचनाकार भी अज्ञात है। काव्य के चरित्र-नायक रामदेव के समकालीन (१५ वीं शताब्दी) रहे हैं। अनुमान है इसकी रचना १५ वीं शती के उत्तरार्द्ध में ही किसी समकालीन भक्त कवि द्वारा हुई हो।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ४० छंदों की रचना है। इसमें तोलादे और जैसल का जीवन वृत्त वर्णित है। कथा-सार का वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) *तोलादे का जैसल से प्रायश्चित करने का निवेदन :*

तोलादे ने अपने पति जैसल से अनुरोध किया कि 'हे डाकू पतिदेव! अवगुण को गुण मानकर अपने द्वारा किये गये आज तक के समस्त पापों को प्रगट कर प्रायश्चित कर लो। इसी में आपका भला है'[1]।

(२) *जैसल का डाका डालने के लिये प्रस्थान करना :*

पर जैसल इस बात पर ध्यान न देकर डाका डालने के लिए प्रस्थान करने लगा। प्रस्थान करते समय उसे सामने उल्टा घड़ा लिये पनिहारिन मिली, बाईं ओर कोचरी (पक्षी विशेष) बोलने लगी। इस प्रकार अपशकुन होते देख तोलादे ने उसे रोकना चाहा[2] पर वह नहीं रुका और चला गया। चलते-चलते उसे भूरी साडनी के शकुन हुए जिस पर एक धनी सेठ बैठा था। जैसल ने सेठ को लूटने की धमकी दी[3] और सेठ विनय करता हुआ नीचे उतर पड़ा।

१—अवगुण रा गुण मान धाड़वी आं, अवगुण रा गुण मान।
कीयोड़ा पाप परा प्रकास, घड़ पड़े काया राम जी ॥१॥

२—ऊंदे घड़े पिणिहार धाड़वी घड़े पिणिहार।
डूवारा मणोहार डावी बोली कोचरी, मत जावो जी जीयो वजियो।

३—मिलगी भूरी साड धाड़वी, मिलगी भूरी साड।
डूवारा भूरी मिलगी सांड, ऊपर बिछावत वाणियो लूट ता (रे) जी।
थारा माल बताय वाणिया, थारा माल बताय।
नहीं तो मारू जान सूं सेठ (रे) जी ॥४॥

(३) *रामदेव जी का प्रकट होकर सेठ जी की रक्षा करना :*

नीचे उतर कर सेठजी ने कहा— 'हे जैसल मुझे मत मार। संसार में सभी स्वार्थ के सगे हैं। मां बाप धन कमाने के लिए पुत्रादि को विदेश भेजते हैं। मैं भी इसीलिये चल पड़ा हूँ। पर मेरी स्त्री घर बैठे कौवे उड़ा रही है। अतः उसका तो ख्याल कर'। इस पर भी जब जैसल नहीं माना तो यकायक रामदेव जी चौपड़ खेलना बंद कर रक्षार्थ आये और जैसल से बोले— 'तू मेरी ओर तो देख। क्यों हो रे पत्रों की वालदें छोड़ इस बेचारे बनिये को लूट रहा है।' जैसल ने ज्योंही रामदेवजी की ओर देखा त्योंही वह अन्धा हो गया। और क्रोधित होकर बोला-'यदि रामदेव जी मुझे मिल जांय तो अभी मौत के घाट उतार दूं।' इस पर रामदेव जी ने कहा- 'मैं तेरे पास ही खड़ा हूँ।' यह सुन जैसल का हृदय बदल गया और वह रामदेव जी के पैरों पड़ गया। रामदेव जी ने उसे क्षमा कर फिर से सूझता कर दिया और आशीर्वाद दिया कि तुझे तोलांदे मिलेगी[१]।

(४) *जैसल का तोलांदे की प्राप्ति के लिए प्रस्थान करना :*

रामदेव जी से आशीर्वाद पाकर जैसल अपने गांव की ओर रवाना हुआ। थोड़ी दूर जाकर वह अचानक घोड़े से गिर पड़ा और अचेत हो गया। होश आने पर उसने एक पनिहारिन से पानी मांगा और प्यास बुझाकर एक कुम्हार के घर गया। वहां उसने चरखा कातती हुई एक बुढ़िया से कहा कि मैं तुम्हारे घर पर अतिथि रूप में तोलांदे को लेने आया हूँ। बुढ़िया ने उसे गधवाल (गधों के बांधने का स्थान) की ओर देखने का संकेत किया। ज्योंही जैसल ने उधर देखा त्योंही तोलांदे को देखकर वह अचेत हो गया और चारपाई पर गिर पड़ा।

(५) *तोलांदे को लेकर जैसल का घर की ओर जाना :*

जैसल के होश में आने पर तोलांदे ने कहा कि—मैं तुम्हारा मर्म समझ गई हूँ। कुम्हार ने भी कहा कि-'हे तोलांदे तू जैसल के साथ चली जा। मैं तुम्हें रोकड़ रुपये और जीजाजी (जैसल) को पंचरंग मोलिया (साफा) देता हूँ।' इस पर तोलांदे ने कहा कि-'हम दोनों की क्या जोड़ी? तुम्हारे जीजा काग से भी काले हैं और मैं बाग की सुन्दर कोयल हूँ, वे सौ मन लोहे तुल्य हैं और मैं कस्तूरी-तुल्य[२]।' अन्त में जैसल तोलांदे को अपनी घोड़ी पर बिठलाकर वहां से चल पड़ा।

१—काव्य में यह प्रसंग गद्य में दिया है।

२—थां कागो रो काग बार जी, म्हां कागां रो काग।
मैं बागों री कोयली मत मेलो (रे) जी ॥ १६ ॥

(६) *जैसल का तोलांदे की परीक्षा लेना :*

मार्ग में चलते चलते तोलांदे जैसल से अपने गुणों की एवं ईश्वर की अलौकिकता की चर्चा करने लगी। इस पर जैसल ने तोलांदे से पूछा कि 'तेरा ईश्वर कहां है ?' तोलांदे ने उसे साधु बनने को तथा आत्म-कल्याण करने की बात कही जिसे सुनकर जैसल आग बबूला हो गया और याचना करने पर भी तोलांदे को कांचलो का कपड़ा तक नही दिया। घर पहुँच कर जैसल ने भोजाइयों से कहा कि-'तोलांदे तुम सब से रूप मे श्रेष्ठ है।' इस पर भोजाइयों ने फटकारा कि-'तुम दुनियां को मुंह दिखाने योग्य नही हो, तुमने दिये हुए दान को वापिस लेने के बराबर पाप किया है।' इन बातों को सुन कर तोलांदे की आंखें सजल हो गई। जैसल ने इसका कारण पूछा तो तोलांदे ने कहा कि-'चार साधु आये हैं और उन्होने भोजनोपरात मुंह धोकर कुरले किये हैं।' जैसल ने फिर ईश्वर के बारे मे पूछा और न बताने पर तोलांदे को मार डालने की धमकी दी। इतने मे समुद्र उफन पड़ा और उसके दो भाग होकर बीच मे मार्ग बन गया। जैसल ने इस दृश्य को देख कर ईश्वर की शक्ति स्वीकार की और तोलांदे से निवेदन किया कि-'मुझे इस भवसागर से बचा।' तोलांदे ने अपना वस्त्र फैला दिया जिसे पकड़ कर वह उसके पीछे-पीछे चला। उसके मुंह तक जल चढ़ आया फिर भी वह नही डूबा यहाँ तक कि उसकी जूतियाँ तक न भीगी।

(७) *जैसल का प्रायश्चित करना :*

तोलांदे ने इस अवसर पर जैसल से प्रायश्चित करने की विनती की। इस पर जैसल ने प्रायश्चित करते हुए कहा-मैने कंवारी बरातें लूटीं, मुकलावे (गौने) लूटे, बाग मे बोलते कई मोरों का निरपराध वध किया, मीठे स्वरो में कूकती कई कोयलों को मारा, जल से परिपूर्ण सरोवरों की पालें फोड़ी और बेमतलब पीपल के वृक्ष काटे। हे तोलांदे रानी! मेरे सिर पर जितने बाल है उतने कुकर्म मैने किये हैं[1]।

को है सो मण लोह बाव जो, को है सो मण लोह।
मैं किस्तूरी से तोल काटा मे (रे) जी ॥ १७ ॥

१—तोलांदे राणी ! लूटी म्हूं कंवारी जांन, मारग मुकनावा
केई लूटिया (रे) तोलांदे राणी ॥३७॥
तोलांदे राणी ! बन मे तो म्हू मारिया मोर,
बागों री मारी (रे) मैं तो कोयली तोलांदे (रे) जी ॥३८॥
तोलांदे रानी। म्हूं फोड़ी सरवरिया वाली पाल
केई तोड़ी (रे) पारस पीपली तोलांदे रानी ॥३९॥

(३) *रामदेव जी का प्रकट होकर सेठ जी की रक्षा करना :*

नीचे उतर कर सेठजी ने कहा— 'हे जैसल मुझे मत मार। संसार में सभी स्वार्थ के सगे हैं। मां बाप धन कमाने के लिए पुत्रादि को विदेश भेजते हैं। मैं भी इसीलिये चल पड़ा हूं। पर मेरी स्त्री घर बैठे कौवे उड़ा रही है। अतः उसका तो ख्याल कर'। इस पर भी जब जैसल नहीं माना तो यकायक रामदेव जी चोपड़ खेलना बंद कर रक्षार्थ आये और जैसल से बोले— 'तू मेरी ओर तो देख। क्यों हीरे पन्नों की बालदें छोड़ इस बेचारे बनिये को लूट रहा है।' जैसल ने ज्योंही रामदेवजी की ओर देखा त्योंही वह अन्धा हो गया। और क्रोधित होकर बोला-'यदि रामदेव जी मुझे मिल जाय तो अभी मौत के घाट उतार दूं।' इस पर रामदेव जी ने कहा-'मैं तेरे पास ही खड़ा हूं।' यह सुन जैसल का हृदय बदल गया और वह रामदेव जी के पैरों पड़ गया। रामदेव जी ने उसे क्षमा कर फिर से सूझता कर दिया और आशीर्वाद दिया कि तुझे तोलांदे मिलेगी[१]।

(४) *जैसल का तोलांदे की प्राप्ति के लिए प्रस्थान करना :*

रामदेव जी से आशीर्वाद पाकर जैसल अपने गांव की ओर रवाना हुआ। थोड़ी दूर जाकर वह अचानक घोड़े से गिर पड़ा और अचेत हो गया। होश आने पर उसने एक पनिहारिन से पानी मांगा और प्यास बुझाकर एक कुम्हार के घर गया। वहां उसने चरखा कातती हुई एक बुढ़िया से कहा कि मैं तुम्हारे घर पर अतिथि रूप में तोलांदे को लेने आया हूं। बुढ़िया ने उसे गधवाल (गधों के बांधने का स्थान) की ओर देखने का संकेत किया। ज्योंही जैसल ने उधर देखा त्योंही तोलांदे को देखकर वह अचेत हो गया और चारपाई पर गिर पड़ा।

(५) *तोलांदे को लेकर जैसल का घर की ओर जाना :*

जैसल के होश में आने पर तोलांदे ने कहा कि—मैं तुम्हारा मर्म समझ गई हूं। कुम्हार ने भी कहा कि-'हे तोलांदे तू जैसल के साथ चली जा। मैं तुम्हें रोकड़ रुपये और जीजाजी (जैसल) को पंचरंग मोलिया (साफा) देता हूं।' इस पर तोलांदे ने कहा कि-'हम दोनों की क्या जोड़ी? तुम्हारे जीजा काग से भी काले हैं और मैं बाग की सुन्दर कोयल हूं, वे सो मन लोहे तुल्य हैं और मैं कस्तूरी-तुल्य[२]।' अन्त में जैसल तोलांदे को अपनी घोड़ी पर बिठलाकर वहां से चल पड़ा।

१—काव्य में यह अंश गद्य में दिया है।

२—ओ कागों रो काग बाप जी, ओ कागों रो काग।
 मैं बागों री कोयली मत मेलो (रे) जी ॥ १६ ॥

(६) *जैसल का तोलांदे की परीक्षा लेना :*

मार्ग मे चलते चलते तोलांदे जैसल से अपने गुणों की एवं ईश्वर की अलौकिकता की चर्चा करने लगी। इस पर जैसल ने तोलांदे से पूछा कि 'तेरा ईश्वर कहाँ है ?' तोलांदे ने उसे साधु बनने की तथा आत्म-कल्याण करने की बात कही जिसे सुनकर जैसल आग बबूला हो गया और याचना करने पर भी तोलांदे को कांचली का कपड़ा तक नही दिया। घर पहुँच कर जैसल ने भोजाइयों से कहा कि–'तोलांदे तुम सब से रूप में श्रेष्ठ है।' इस पर भोजाइयों ने फटकारा कि–'तुम दुनियाँ को मुँह दिखाने योग्य नही हो, तुमने दिये हुए दान को वापिस लेने के बराबर पाप किया है।' इन बातों को सुन कर तोलांदे की आँखे सजल हो गई। जैसल ने इसका कारण पूछा तो तोलांदे ने कहा कि–'चार साधु आये हैं और उन्होंने भोजनोपरांत मुँह धोकर कुरले किये हैं।' जैसल ने फिर ईश्वर के बारे मे पूछा और न बताने पर तोलांदे को मार डालने की धमकी दी। इतने मे समुद्र उफन पड़ा और उसके दो भाग होकर बीच मे मार्ग बन गया। जैसल ने इस दृश्य को देख कर ईश्वर की शक्ति स्वीकार की और तोलांदे से निवेदन किया कि–'मुझे इस भवसागर से बचा।' तोलांदे ने अपना वस्त्र फैला दिया जिसे पकड़ कर वह उसके पीछे-पीछे चला। उसके मुँह तक जल चढ़ आया फिर भी वह नही डूबा यहाँ तक कि उसकी जूतियाँ तक न भीगी।

(७) *जैसल का प्रायश्चित करना :*

तोलांदे ने इस अवसर पर जैसल से प्रायश्चित करने की विनती की। इस पर जैसल ने प्रायश्चित करते हुए कहा-मैने कंवारी बराते लूटी, मुकलावे (गौने) लूटे, बाग मे बोलते कई मोरों का निरपराध वध किया, मीठे स्वरों में कूकती कई कोयलों को मारा, जल से परिपूर्ण सरोवरों की पालें फोड़ी और बेमतलब पीपल के वृक्ष काटे। हे तोलांदे रानी! मेरे सिर पर जितने बाल है उतने कुकर्म मैने किये हैं'।

मो है सो मण लोह बाप जी, मो है सो मण लाह।
मैं किस्तूरी मे तोल काटा मे (रे) जी ॥ १७ ॥

१—तोलांदे राणी! लूटी म्हूं कंवारी जांन, माणक मुकलावा
केई लूटिया (रे) तोलांदे राणी ॥३७॥
तोलांदे राणी! बन मे तो म्हू मारिया मोर,
बागो री मारी (रे) मैं तो कोयली तोलांदे (रे) जी ॥३८॥
तोलांदे रानी! म्हूं फोड़ी सरवरिया वाली पाल
केई तोड़ी (रे) पारस पीपली तोलांदे रानी ॥३९॥

(८) *तोलांदे-जैसल दोनों का भगवान से मिलना :*

जैसल के इतना कहते ही तोलांदे को लेने के लिए भगवान की पालकी उतर पड़ी जिसे देखकर जैसल भी साथ चलने के लिए इच्छुक हो उठा और कहने लगा–'मुझे भी भगवान के वहां साधुजनों के चरणों में सेवा करने के लिए नौकर के रूप में ले चलो'।

तोलांदे की कथा राजस्थान और गुजरात में अत्यन्त लोकप्रिय है। लोक-जीवन में यह चरित्र (तोलांदे) इतना घुलमिल गया है कि इसके सम्बन्ध में कई किंवदन्तियाँ प्रचलित हैं। गुजरात[1] और राजस्थान[2] में प्रचलित तोलांदे सम्बन्धी कथानक के साथ प्रस्तुत वेलि में वर्णित कथा को रख कर देखने में निम्नलिखित ज्ञातव्य प्राप्त होता है—

(१) तोलांदे के जन्म-प्रसंग के सम्बन्ध में गुजराती कथानक में कोई संकेत नहीं है उसमें तो केवल इतना ही पता चलता है कि वह काठियावाड़ के काठी-राजा की रानी थी। राजस्थान में प्रचलित जनकाव्य के अनुसार सुवारथ नामक खाती ने एक दिन सन्तानाभाव से पीड़ित होकर लकड़ी की दो घोड़ियाँ और एक लड़की बना कर मनोविनोद के लिए अपनी पत्नी को दी। संयोगवश एक दिन एक साधु उनके घर भिक्षा के लिए आया और ज्योंही सुवारथ की स्त्री भोजन लाने के लिए रसोई घर में गई कि साधु दोनों घोड़ियों तथा लड़की को सप्राण कर अन्तर्धान हो गया और एक पत्र लिख गया कि एक निश्चित समय पर इन तीनों को गुरु की भेंट चढ़ा देना। वह लड़की ही तोलांदे थी। वेलि के अनुसार तोलांदे कुम्हार के घर जन्मी थी।

(२) तोलांदे और जैसल के पारस्परिक सम्बन्ध सूत्र को जोड़ने के बारे में भी तीनों कथानकों में विभिन्नता है। गुजराती कथानक में जैसल तोरी नाम की घोड़ी के लिए डाका डालता है पर बदले में मिलती है उसे काठीराजा की रानी तोरल देवी। जनकाव्य में जैसल भावज के ताने से *आहत होकर* तोलांदे की तलाश में निकल पड़ता है तो वेलि में स्वयं रामदेवजी प्रगट होकर उसे तोलांदे की प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं और वह आज्ञा शिरोधार्य कर घर की ओर चल पड़ता है।

तोलांदे रानी, जितरा है माथा में म्हारे केस,
इतरा अकरम रानी म्हूं करिया तोलांदे राणी ॥४०॥

१—कच्छ कलाधार (द्वितीय खण्ड)

२—राजस्थानी जनकाव्य तोलांदे : मनोहर शर्मा : वरदा : वर्ष २ अंक १, पृष्ठ ७२–८५।

(३) गुजराती कथानक मे तोलादे और सधीर नामक व्यापारी की प्रासंगिक कथा द्वारा तोलांदे के चरित्र का उद्घाटन किया गया है तो वेलि में जैसल और व्यापारी सेठ की कथा द्वारा जैसल की चारित्रिक परिवर्तनशीलता का परिचय दिया गया है। गुजराती कथानक मे काठीराजा मासतिया ही वह काम सम्पन्न कर लेता है जो काम जनकाव्य मे गुरूजी और वेलि मे रामदेवजी करते है।

(४) तीनों ही कथानकों मे समुद्र के उफनने और शान्त होने का सम्बन्ध किसी न किसी रूप मे तोलादे की लोकोत्तरता और जैसल की मानवीयता मे जोड़ा गया है।

तोलांदे और जैसल ऐतिहासिक पात्र है पर वेलि मे उनका व्यक्तित्व लोकोत्तर हो उठा है। इस लोकोतर रूप मे सम्बन्ध रखने वाले तीन स्थल हैं। प्रथम स्थल वह है जहाँ रामदेवजो यकायक चौपड खेलना बन्द कर जैसल डाकू से सेठ जी की रक्षा करने के लिए प्रगट होते है और क्रोधित होकर जैसल को अन्धा बना देते हैं लेकिन शीघ्र ही जैसल के क्षमा मागने पर उसे सूझता कर तोलादे की प्राप्ति का वरदान देकर अन्तर्धान हो जाते हैं। दूसरा स्थल वहां है जहाँ जैसल तोलादे से वार बार ईश्वर के लिए पूछता है और अचानक समुद्र उफन पड़ता है, जैसल के मुँह तक पानी चढ़ जाता है और तोलादे उसे मृत्यु मुख से बचाती है[1]। तीसरा स्थल वह है जहाँ उनको लेने के लिये भगवान की पालकी

१—थारा स्याम बताय तोलादे, थारा स्याम बताय।
नही तो मारू जान सू तोलादे (रे) जी ॥ ३१ ॥
समन्द दीधी छोल जाडेचा राव, समन्द दीधी छोल।
अधबिच म्हारो स्याम निरखनो (रे) जी ॥ ३२ ॥
भवसागर मे चाल तोलादे, भव सागर मे चाल।
पण पाणी सू डरपू घणो तोलादे (रे) जी ॥ ३३
म्हारा जैसल राजा, चीर पकड चालियो आव।
नही रे भीजण दू पगरी मोजरी जाड़ेचा (रे) जी ॥ ३४ ॥
तोलादे राणी गिरिया पर चढ गयो (रे) नीर।
डूबण सू डरपू घणो तोलादे रानी (रे) जी ॥३५॥
आपरो धोतियो जाड़ेचा राजा तोळादे कमर पर
राळ जैसल राजा (रे) जी।
थारो कुरतो जाड़ेचा तोलादे रे खवा पर राळ
म्हारा जैसल राजा चीर पकड़िरो चालियो आवजे
सिर रा मोलिया जाडेचा (रे) जी।
तोलादे राणी मुखडे बड गयो भारती (रे)
मरणे सू वाकी तोलादे (रे) जी ॥३६॥

आती है और दोनों चले जाते हैं[1]।

काव्य निर्णय को भी काव्य में निभाया गया है। डाकू जैसल को-जो निरपराधियों को दण्ड देता है, जीविका-निर्वाह के लिये घरबार छोड़कर जाने वाले व्यापारियों को लूटता है-ठीक समय पर प्रगट होकर रामदेव जी दण्ड (अंधा करना) देते हैं पर ज्यों ही वह अपने अपराध को स्वीकार कर लेता है त्यों ही उसे सूझता कर तोलांदे की प्राप्ति का आशीर्वाद देते हैं। और तोलांदे उसे अपने साथ पालकी में बिठलाकर भगवान के दर्शनार्थ ले जाती है।

कथा-संयोजन में निम्नलिखित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है—

(१) नायक का डाकू होना।
(२) डाका डालने के लिये जाते समय स्त्री का उसे रोकना।
(३) डाकू को प्रस्थान करते समय उल्टे घड़े का मिलना तथा बांई ओर कोचरी (पक्षी विशेष) का बोलना।
(४) थोड़ी दूरी पर भूरी सांडनी पर सेठ महाजन का मिलना।
(५) सेठ को मार डालने की धमकी देकर धन माल लूटना।
(६) सेठ का यह कहना कि मेरी स्त्री घर बैठे कौवे उड़ा रही है अतः मुझे मत मार।
(७) किसी सिद्ध पुरुष का आकर सेठ की रक्षा करना।
(८) डाकू के हठ करने पर सिद्ध पुरुष द्वारा उसे अन्धा बनाना।
(९) क्षमा मांगने पर फिर उसे सूझता कर देना और कन्या प्राप्ति का आशीर्वाद देना।
(१०) घोड़े पर बैठकर जाना और रास्ते में बेहोश होकर गिर पड़ना।
(११) किसी पनिहारिन से पानी मांगकर पीना।
(१२) पानी पीकर विश्राम के लिये किसी के घर जाना।
(१३) घर में किसी बुढ़िया का चरखा कातते हुए मिलना।
(१४) वहां कन्या की याचना करना और उसे देखकर अचेत होना।
(१५) कन्या को घोड़े पर बिठलाकर घर की ओर भागना।
(१६) घर जाने पर भौजाइयों का ताना मारना।
(१७) कन्या का सामान्य स्त्री न होकर दैविक गुणों से सम्पन्न होना।
(१८) नायक का नायिका से चमत्कार बतलाने को कहना।

१—म्हारा जैसल राजा ! हरि रा आया (रे) विवाण,
तोलांदे बांई राजा पालकी जाड़ेचा (रे) जी ॥४०॥
म्हारा तोलांदे राणी ! चालों वैकूंट वाली धाम,
मंतो रे चरणों में मने राखजो तोलांदे राणी (रे) जी ॥

(१९) अचानक समुद्र का उफनना ।
(२०) नायक के मुँह तक पानी आना और नायिका का उसे बचाना ।
(२१) सहसा समुद्र का शांत होना ।
(२२) नायक का प्रायश्चित करना ।
(२३) भगवान की पालकी का आना और उसमें बैठकर नायक-नायिका दोनों का अन्तर्धान हो जाना ।

चरित्र-चित्रण :

प्रमुख पात्रों मे नायक जैसल और नायिका तोलांदे है। गौण पात्रों में व्यापारी सेठ, रामदेव जो तंवर, कुम्हार, कुम्हारिन, भोजाइयाँ, साधु आदि आते है। पात्रों की तीनों कोटियाँ हैं। सुर पात्रों में तोलादे, रामदेव जी और चार साधुओं का समावेश किया जा सकता है। मानव पात्रों में व्यापारी सेठ, भोजाइयाँ, कुम्हार, कुम्हारिन आदि आते हैं। असुर पात्रों मे जैसल—जो बाद मे जाकर मानवीय भावनाओं को विकसित करता हुआ देवत्व तक उठ जाता है। तोलांदे, रामदेव जो सेठजी, साधु आदि अविकसित चरित्र है।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है। अलंकरण की ओर कवि का ध्यान नहीं रहा है फिर भी यत्रतत्र अलंकार आये हैं—

अनुप्रास :

(१) कीधोड़ा पाप परा प्रकाश
(२) काग उड़ावे कामणी
(३) कातण री कतवारण

अर्थालङ्कार :

(१) ओ कागों रो काग बापजी, ओ कागों रो काग
मैं बागों री कोयली मत मेलो (रे) जी ॥१६॥
ओ है सौ मण लोह बापजी, ओ है सो मण लोह
मैं किस्तूरी रो तोल कांटा में (रे) जी ॥१७॥
(२) तोलांदे रानी ! जितरा है माथा मे म्हारे केस
इतरा अकरम रानी म्हूं करिया तोलांदे राणी ॥४०॥
(३) नहो बादल नहीं बीज तोलांदे, नहीं बादल (ने) बीज ।
आंगण कीचड़ क्यूं होवे तोलादे (रे) जी ॥२६॥

एकाध जगह मुहावरों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है-

(१) घड़ी पलक रो पांवणो मर जासूं (रे) जी ॥६॥
(२) उठी वदन में झाल तोलांदे ॥२५॥

देशाटन का इन्हें बड़ा शौक था। ये अविवाहित थे। अन्तिम दिनों में सन्यास धारण कर लिया था। बाबा गुमानभारती के समाधि-स्थल गडा में ये खूब रहे थे। इनके लिखे हुए हरिजस मोक्षारथो, मोड़ायण, जमदग्न पिंगल, भाखा प्रस्तार, लिछमण विलास, प्रागराव रूपक, समारा भूखण, रामदेव चरित, मनोसर जो रा छन्द, जमियलशाह पीर रा छन्द, बाबा गुमानभारती री वेल आदि ग्रन्थ, शक्तिदान कविया के पास सुरक्षित है। इनमे सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ योग वेदात से सम्बन्ध रखने वाला २४ खण्डों में विभाजित 'हरिजस मोक्षारथो' है। 'मोड़ायण' नामक अन्य ग्रन्थ का सम्पादन शक्तिदान कविया स्वयं कर रहे है।

रचना-काल :

वेलि मे रचना-तिथि का कही भी उल्लेख नही है। अनुमान है उन्नीसवी सदी के उत्तरार्द्ध मे इसकी रचना हुई हो।

रचना-विषय :

४४ छन्दों की इस रचना मे बाबा गुमानभारती का जन्म से लेकर समाधिस्थ होने तक का जीवन-वृत्त वर्णित है। कथा-सार का वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षको मे किया जा सकता है–

(१) *मंगलाचरण :*

काव्य के प्रारम्भ मे सरस्वती, गणेश और गुरु की वदना करते हुए वस्तु का निर्देश किया गया है[१]।

(२) *ठाकुर के भाई का वृद्ध ब्राह्मण साधु से मजाक करना :*

जयपुर क्षेत्र के लोहगढ नामक ग्राम के आसपास रहने वाला एक वृद्ध ब्राह्मण साधु धू-धू नामक गाव मे आकर तपस्या करने लगा[२]। शिकार खेलने के लिए जाते हुए वहाँ के ठाकुर के भाई ने उसे देखकर मजाक मे कहा कि–'इसे औंधे मुँह (उल्टा) किसने लटका दिया है[३]?' यह सुनकर उस साधु ने कहा–'तुम्हारे नवमे मास पुत्र हो तो मुझे साधु समझना अन्यथा नही।' ठाकुर के भाई को इस बात पर विश्वास नही हुआ। उसके सदेह करने पर साधु ने प्रतिज्ञा की कि वह स्वयं उसके घर पुत्र रूप मे उत्पन्न होगा पर

१—सारद माय करू' शनमाना, गणपत देव मनाऊँ।
देव गुरूजी आज्ञा दीनी, गुमान परचा गाऊ।

२—एक विरामण वृद्ध अवस्था, जोग लियो मन भायो।
लोहगढ मे तपस्या कीनी, जद घट उजवालो पायो॥

३—ठाकर तणो पाटवी भाई, चढे सिकारा आया।
बोधी बात मसखरी कीनी, ऊंधा किण लटकाया॥

बारह वर्ष का होने पर फिर साधु बन जायगा[1]। ठाकुर इस बात को स्वीकार कर घर चला गया।

(३) *साधु का ठाकुर के भाई के यहाँ पुत्र रूप में जन्म लेना :*

यथा समय उस साधु ने धूंधू ग्राम के ठाकुर के भाई की भार्या हरिकंवरी राणावत की कुक्षि से जन्म लिया[2]। अत्यन्त उत्साह के साथ जन्मोत्सव मनाया गया। जैत नामक ब्राह्मण ज्योतिषी ने बच्चे को 'बाबी के पावे' जन्मा जानकर उसका नाम गुमान रखा[3]।

(४) *बारह वर्ष की अवस्था होने पर बालक का सन्यासी बनना :*

बारह वर्ष की अवस्था में बालक गुमान ने (अपनी पूर्व प्रतिज्ञा के अनुसार) सन्यास धारण कर लिया। सन्यासी बनकर दो माह तक गुमानभारती (दीक्षित नाम) जयपुर में अपने गुरु के पास रामद्वारे में रहे[4]। तत्पश्चात् गिरनार पर्वत की ओर चले गये जहाँ तीन वर्ष तक भगवद्-भजन किया। यहाँ पर गोरखनाथ जी की धूनी के निकट दत्तात्रय गुरु ने इनको दर्शन दिये[5]। गिरनार पर्वत से ये आबू पर्वत पर आये। यहाँ ११ वर्ष तक तपस्या की। इनके गुरु गुलाबभारती ने इनकी कठोर परीक्षा ली जिसमें ये सफल हुए। इन्होंने कई चमत्कार दिखाकर अपने गुरु को प्रसन्न किया[6]।

१—बाबा देऊं हम यो वाचा, परमधाम रहे वाचा।
बारै बरस माणगो लेला, पीछे जोग कमाशा ॥८॥

२—ग्राम धू धू ने भाग्य कहावा, ज्यों रे बालक आया।
हरिकंवर राणावत माता, उदर जका रे आया ॥१०॥

३—पाट कंवर करै रे पाय, पाछे नमता आया।
जैत विप्र जोतिष जोयो, नाम गुमान दिराया ॥१२॥

४—बारह बरस सूं जैपुर आया, मत गुरु मन भाया।
दस परकम्मा वायं आया, ज्ञान घणा करवाया ॥१६॥
दोय मास रैया गुरुद्वार, सिख सिख पूछी वाता।
देव परकम्मा वायें लागत, तन पूछी गुमताता ॥१७॥

५—तीन बरस गिरनार ठहरिया, भजन नाम रे भावे।
दत्तात्रेय गुरु दरसण दीना, गोरख धूणी रे पामे ॥१८॥

६—आबू ऊपर बरस इग्यारै, तप समाधि रविया।
गढ नाव रे रहा वावरे, कर अपना करिया ॥१९॥
बाब मकरी देवलो वणयो, भेख बहुत बडाई।
गुलाब गुरु की दया किया, पूरी करामात पाई ॥२०॥

(५) *गुमानभारती का जनता को चमत्कृत करना :*

आबू पर्वत से ये धू-धू ग्राम होते हुए गड़ा आये। यहाँ मण्डी (साधु लोगों के भजन करने व रहने का घर) बना कर रहने लगे। एक बार अस्सी साधुओं की जमात (टोली) इनके दर्शनार्थ आई। उसे सिंह का रूप बनाकर इन्होंने रात मे दर्शन दिये[1]। गडा गाँव का जल खारा था उसे अपने चमत्कार मे मीठा बनाकर इन्होने जनता का दुख दूर किया[2]।

(६) *गुमानभारती का समाधिस्थ होना :*

गड़ा मे ये ३५ साधुओं के साथ तीर्थाटन के लिए हिंगलाजमाई की ओर चले गये[3]। वहाँ मे वापिस लौटकर छठ बुधवार को सोनमण्डी नामक स्थान पर समाधिस्थ हो गये। इनके भक्तों मे खेमनाथ, अगवा, अजबपुरी, लाला, जसराज, जोवराज आदि प्रमुख है।

बाबा गुमानभारती ऐतिहासिक पात्र है पर काव्य मे चित्रित उसका व्यक्तित्व लोकोत्तर है। इस लोकोत्तर रूप से सम्बन्ध रखने वाले तीन स्थल है। पहला स्थल वह है जहाँ वह प्रतिज्ञाबद्ध होकर एक वृद्ध ब्राह्मण साधु से ठाकुर के घर पुत्र-रूप मे जन्म लेता है। दूसरा स्थल सन्यासी होने के बाद गड़ा गाँव के खारे जल को मीठा कर देने का है और तीसरा स्थल साधुओ की जमात को सिंह के रूप में दर्शन देने का है। कथा-संयोजन मे निम्नलिखित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है—

(१) वृद्ध ब्राह्मण साधु का तपस्या करना।
(२) किसी ठाकुर आदि का उसकी मजाक करना।
(३) साधु का पुत्र रूप मे ठाकुर आदि के घर जन्म लेना।
(४) बाल्यावस्था के बाद घर छोड़कर सन्यासी बनना।
(५) साधु का अपने चमत्कार से खारे जल को मीठा करना।
(६) सिंह का रूप बनाकर भक्तों को दर्शन देना।
(७) बीज शनिवार को रात्रि जागरण करना।
(८) छठ बुधवार को समाधि लेना।

१—एक जमात मूरतां अस्सी, आतस करने आई।
वाने बाबे परचो दीनो, सिंघ रूप दरसाई ॥२५॥

२—परज भली पण कड़वो पाणी, आय दया उपजाई।
कूप तणा जल मीठा कीया, देव कला दरसाई ॥२४॥

३—हिंगलाज सूं हियो हुलसियो, बस रै मारग वूवा।
महा पुरस पैंतीस मूरता, उवा रै साथे हुवा ॥२७॥

चरित्र-चित्रण :

बाबा गुमानभारती प्रमुख पात्र है। उसके चरित्र के दो रूप हैं। पूर्व रूप में वह एक वृद्ध ब्राह्मण साधु है पर रूप में बालक गुमान के रूप में जन्म लेकर वह अपने अलौकिक व्यक्तित्व की छाप छोड़कर सिद्ध महात्मा के रूप में अमर हो जाता है। अन्य पात्रों में ठाकुर का भाई, जैन नामक ज्योतिषी तथा अन्य साधु आदि आते हैं। ये गुमान के चरित्र से चमत्कृत और प्रभावित हैं।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है। अलंकरण की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है फिर भी वयण सगाई शब्दालंकार का यत्र तत्र प्रयोग किया गया है। यथा—

(१) *किया धरम अनोखा कीया, नीर गंग नख लाया।*
　　मस्त फकीरी त्यागी माया, घू घू थांनक आया।।३।।

(२) *कोम अठ री पैड़ी करने, उतारिये रिज आया।।३४।।*

छन्द :

काव्य में सार छंद का प्रयोग हुआ है। लोक काव्य होने के कारण मात्राएँ घटती-बढ़ती रही है। इसे ग्रामीण लोग वानी की राग में गाते हैं। टेर के रूप में निम्नलिखित पंक्तियां व्यवहृत हुई हैं—

भेख रा भांण गुमानभारती, दरसण मनमुख दीजे।
　　　　　　　　　जोगीसर दया करीजे।।

(५) आईमाता री वेल[1]

प्रस्तुत वेल आईमाता से सम्बन्ध रखती है। आईमाता की राष्ट्रीयता निश्चित करना कठिन है। धार्मिक विश्वास के अनुसार इसका उद्भव विदेशी (मुसलमानी) है[2]। कहा जाता है कि आईजी स्त्री के रूप में पैदा नहीं हुई थी वह

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम आया है— 'महदेव छांण करने, वेल माताजी री गाई'
(ख) प्रति-परिचयः— यह हस्तलिखित प्रति के रूप में नहीं मिलती है। भक्तों द्वारा जम्मे समय में गाई जाती रही है। भावी निवासी श्री शिवसिंह चोयल ने अपने पिता मल्लाराम चोयल की स्मृति के आधार पर इसे लिपिबद्ध कर मरुभारती : वर्ष ३, अंक १, पृ० ६८-७० में प्रकाशित कराया है।

२—प्रीलिमिनरी रिपोर्ट ऑन द ऑपरेशन इन सर्च ऑफ मेन्युस्क्रिप्ट्स ऑफ बार्डिक क्रोनिकल्स : महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री।

स्वयं नव दुर्गा थी जो कि मुल्तान के आस पास स्वर्ग से अवतरित होकर सिंध में घूमती रही[1]। लेकिन यकायक वि० सं० १४७२ के आस पास छोटी बालिका (जीजीबाई-बचपन का नाम) का रूप धारण कर उसने दाता राज्य के अम्बापुर नगर में सिसोदिया शाखा के एक डाबी राजपूत भीखा के घर जन्म लिया। उसके अप्रतिम सौन्दर्य पर मुग्ध होकर माडू के सुल्तान ने (जिसे वेलि में गोरी बादशाह कहा है) उनके साथ विवाह करना चाहा पर आईजी ने चंवरी में सिंहिनी का रूप दिखा कर सुल्तान को चमत्कृत कर दिया। अम्बापुर से आईजी अपने पिता भीखा डाबी के साथ नाडलाई (जिसे कुछ लोग जेकल जी भी कहते है) आई। यहाँ एक पहाड़ में अपनी ज्योति पधरा कर चमत्कार दिखाया। नाडलाई से वह डायलाणा नामक गाँव में भाई और हलों का बदला बनाकर अपने नाम में प्रसिद्ध किया। डायलाणा से वह बिलाड़ा आई। यहाँ आकर उसने हावड कुल के सीरवी परिवार की पोल में कुछ दिन रहने का विचार किया किन्तु इस परिवार ने धन के मद में आकर आईजी का तिरस्कार किया। इससे क्रोधित होकर आईजी ने हावडों को अभिशाप दिया कि तुम्हारी गायें चोर ले जायेंगे और भैंसियाँ पत्थर हो जावेगी। अन्त में आईजी ने राठौड़ गोत्र के सीरवी परिवार की पोल में झोंपड़ी बना कर रहना शुरु किया। वि० सं० १५६१ में इनकी मृत्यु हुई।

कवि परिचय :

इसके रचयिता संत सहदेव[2] १६वीं शती के उत्तरार्द्ध के कवियों में से थे। ये जाति के ब्राह्मण कहे जाते हैं। आई पंथी साधुओं में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

रचना-काल :

वेलि में रचना-तिथि का उल्लेख हुआ है[3] उसके अनुसार सवत् १५७६ में भाद्रपद शुक्ला द्वितीया को आईजी के मन्दिर में बैठकर कवि ने इसकी रचना की।

रचना-विषय :

३ पदों में गुंफित इस छोटी सी रचना में आईमाता की गुणगाथा गाई गई है। कथा-सार का विश्लेषण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) *आईमाता की सर्व व्यापकता* :

आईमाता जल, थल, पर्वत, घाटी आदि सभी स्थानों में विराजमान है।

१—जती भगा बाबाजी पंवारः शिवसिंह चोयल, परिशिष्ट : पृ० २६-२७

२—सहदेव कहे गुणो (रे) बाडेरूओ भाई।

३—संवत १५७६ मास हो भादरवो बीज आई चंदरावली।
जरणो तो जुगत कर बैठो कोई मत जाण जो अंबली।
श्री आईजी री वेल संपूर्ण सही।

ओंकार शब्द में उसी का निवास है। वह शिव-पार्वती रूप है। उसमें तेंतीस करोड़ देवी-देवताओं के गुण एकत्रित होकर शक्ति का कार्य कर रहे हैं। उसकी महिमा अनन्त अपार है[१]।

(२) *आईमाता का चमत्कारपूर्ण व्यक्तित्व :*

वह घड़ी-घड़ी में अनेक रूप बदला करती है। कभी अबोध बालिका है तो कभी पूर्ण यौवना। गोरी बादशाह[२] ने विशाल बरात सजाकर—जिसमें ढाई लाख कसाई, चार लाख सिसोदिया राजपूत, पांच लाख तुरक और ६ लाख राठौड़ थे—उससे विवाह करना चाहा पर देवी (आईमाता) ने विवाह के समय चंवरी में सिंहिनी बनकर ऐसा चमत्कार दिखाया कि वह (गोरी बादशाह) ससैन्य डरकर भाग गया[३]। अपने पिता महाराणा कुंभा द्वारा रायमल निर्वासित कर दिया गया। वह आपदग्रस्त हो देवी के पास आकर राज्य-प्राप्ति की याचना करने लगा। देवी ने उसे वरदान दिया कि वह कुछ दिनों धैर्य धारण करने के बाद मेवाड़ का अधिकारी होगा। देवी की बात सही निकली। कुछ दिनों बाद रायमल मेवाड़ का अधिपति बन गया। इस चमत्कार से प्रसन्न होकर उसने गोड़वाड़ प्रान्त में आईजी को बेरे और खेत

१—जल थल में आ महमाई, परदेसां म आ महमाई।
घाटे वाटे आ महमाई, ओ ऊंकार मे आ महमाई॥
जहा देखूं तहां आ महमाई, सिव-सगती रा करो विचारा।
गुण तैतीसारा सब भला, सगत स्वरूपी काम करती॥

२—आईजी के जीवन-काल में गुजरात मे तीन शासक—महमदशाह, मुहम्मदशाह और कुतुबद्दीन—हुए। मांडू का सुल्तान मुहम्मदशाह (सं० १४६६-१५०७) हो सकता है। ग्रामीणों द्वारा गाई जाने के कारण वेल में मुहम्मदशाह के स्थान पर गोरी बादशाह जोड़ दिया गया है।

३—यवन जात परणीजण आवे, साथ मे उणरे जानिया आवे॥
अढाई लाख कसाई, चार लाख सिसोद।
पाच लाख तुरक छै, छैः लाख राठौड़॥
दल वणियो गोरी बादशाह रो, परणीजण आवे बीका डाबी रे द्वार
सहदे कहे सुणो (रे) बांडेल्यों भाई, देखो बीका रिष रे घर हुं ने आई
जद आईजी परगटिया, (वो) राठौड़ो ने बोलखिया।
पग कीधा पाताल, सीह कीधो आकास।
(देखी तो) पातसाह नहीं कीधी जीवण री आस॥
कीधी जद आईजी ललकार, दल भागियो गोरी पातशाह रो।
परीजण आवे बिका डाबी रे द्वार।
सहदेव कहे सुणो (रे) बाडेल्यों भाई।

भेंट स्वरूप चढ़ाये। जाणाजी राठौड़ (बिलाड़ा दीवानों के पूर्वज) का पुत्र माधोदास कई दिनों से गुम हो गया था। माता-पिता बहुत चिंतित थे। देवी ने उसे (ग्यारह दिन के भीतर) वापिस बुलाकर माता-पिता का दुख दूर किया।

(२) *आईमाता द्वारा आई पंथ की स्थापना :*

आईमाता ने गोयन्ददास[1] को मंत्रादि दे अपनी गद्दी का अधिकारी बनाकर दीवान-परम्परा का श्रीगणेश किया और बाबा लोगो (आई पंथी साधु) को पंथ की मान-मर्यादा मे परिचय कराया[2]।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा ग्रामीण राजस्थानी है। अलङ्करण की ओर कवि का ध्यान नही रहा है। एकाध जगह लोकोक्ति का प्रयोग हुआ है। यथा—

पाच पच्चीसां हुई यह बात। छानी नही रहे लुगाई री जात॥

छन्द :

यह वेल ग्रामीण जनता द्वारा बीज शनिवार को गाई जाती है[3]। इसमे टेर के रूप में निम्नलिखित पंक्तियां व्यवहृत हुई है—

सहदेव कहे सुणो रे बांडेरुआं भाई।
देवी विका रिख रे घर ह्वै ने आई॥

१—गोयन्ददास जाणाजी के पौत्र और माधोदास के पुत्र थे।

२—बाबा ने श्री माताजो बुलाया।
वेल बैठाय परतिग्या बाबा नें 'गत' री।
भोलाई मुरजाद राखो सीरकियो सब री॥
विश्वास हालो डोरा रे, कहु दीवी महमाई।
दूण हाण मत करजो सुणो बाडेरुओं भाई॥
सादी हाडी क्यूं बरतावो। पहलो देव दवार चढ़ावो॥
जिण पर राजी रहे ईश्वर सदाई। कमी नही रहे घर मे काई॥
दहो मथियों धीरत उतरे। पुन, करिया (देह रो) भार उतरे॥
लूखो भोजन जीमे नहि कोय। उण रे घाटो कदेई नही होय॥
प्रेम भाव सूं थे भगवती राखो। दिल मे बहुत थे दया राखो॥

३—बीज थावर ने वेल सुणाओ। आईजी रा गुण थें गाओ॥

ओंकार शब्द में उसी का निवास है। वह शिव-पार्वती रूप है। ता
करोड़ देवी-देवताओं के गुण एकत्रित होकर शक्ति का कार्य कर
उसकी महिमा अनन्त अपार है[1]।

(२) *आईमाता का चमत्कारपूर्ण व्यक्तित्व :*

वह घड़ी-घड़ी में अनेक रूप बदला करती है। कभी अबोध बा
कभी पूर्ण यौवना। गोरी बादशाह[2] ने विशाल बरात सजाकर–
लाख कसाई, चार लाख सिसोदिया राजपूत, पांच लाख तुरक
राठौड़ थे—उसमे विवाह करना चाहा पर देवी (आईमाता
समय चंवरी में सिंहिनी बनकर ऐसा चमत्कार दिखाया कि व
शाह) ससैन्य डरकर भाग गया[3]। अपने पिता महारा
रायमल निर्वासित कर दिया गया। वह आपदग्रस्त हो देवी
राज्य-प्राप्ति की याचना करने लगा। देवी ने उसे वरदान ि
दिनों धैर्य धारण करने के बाद मेवाड़ का अधिकारी होगा
सही निकली। कुछ दिनों बाद रायमल मेवाड़ का अधिपा
चमत्कार से प्रसन्न होकर उसने गौड़वाड़ प्रान्त में आईजी

१—जल थल मे आ महमाई, परदेशां म आ महमाई।
वाटे वाटे आ महमाई, ओ ऊंकार में आ महमाई॥
जहा देखू तहां आ महमाई, सिव-सगती रा करो विचारा।
गुण तेतीसांरा सब भला, सगत स्वरूपी काम करतो॥

२—आईजी के जीवन-काल मे गुजरात मे तीन शासक–महम
कुतुबद्दीन–हुए। मांडू का सुल्तान मुहम्मदशाह (सं० १४
ग्रामीणों द्वारा गाई जाने के कारण वेल में मुहम्मदशाह
जोड़ दिया गया है।

३—यवन जात परणीजण आवे, साथ मे जणरे जानिया आवे
अढाई लाख कसाई, चार लाख सिसोद।
पाच लाख तुरक छै, छैः लाख राठौड़॥
दल बणियो गोरी बादशाह रो, परणीजण आवे बीक
सहदे कहे सुणो (रे) बाडेरूमां भाई, देवी बीका रि
जद आईजी परगटिया, (तो) राठौड़ो ने ग्रोलखिया
पग कीधा पाताल, सीह कीधो आकास।
(देखो तो) पातसाह नहीं कीधो जीवण री आस
कीधी जद आईजी ललकार, दल भागियो गोरी
परीजण आवे बिका डाबी रे द्वार।
सहदेव कहे सुणो (रे) बाडेरूमों

(२) *राजगद्दी का प्रलोभन :*

बिलाड़ा में राज्य करने वाले दोनों भाई-दौलतसिंह और मूलसिंह-एक दिन भ्रमण के लिए जङ्गल में गये। वहां मूलसिंह के हृदय में बिलाड़ा की राजगद्दी के लोभ से खाडा (छोटी तलवार) पकड़ कर दौलतसिंह को मार डालने की प्रबल भावना जागृत हुई और उसने अपने सगे भाई को मार कर गोत्र हत्या का महान कलङ्क अपने सिर पर लिया।

(३) *गवरादे का पीहर जाना और मंदिर बनवाना :*

दौलतसिंह की गर्भवती रानी गवरादे को जब इस कुकृत्य का पता चला तो वह अपने देवर से यह कहकर-हे दुष्ट! तेरा मुंह कौन देखे-अपने पीहर नाडोल चली गई। उसने अपने भाइयों से कहा कि तुम कभी बिलाड़ा मत जाना क्योंकि मूलसिंह ने तुम्हारे बहनोई को धोखे से मार डाला है। बिलाड़ा वैरियों का वास है। नाडोल जाने के पश्चात् गवरादे ने दस दिन में श्री आईमाता का मन्दिर बनवाकर सुदि बीज को उस पर स्वर्णकलश चढ़वाया और जागरण किया।

(४) *पीर गुमानसिंह का जन्म और नाम-संस्कार :*

कुछ दिनों के पश्चात् गवरादे के गर्भ से पुत्र के रूप में पीर (सिद्ध पुरुष) प्रगट हुए। सोने की छुरी से नाला काटा गया और बड़े जोर से नगाड़े ढोल आदि बजाये गये। गवरादे ने दासी को ज्योतिषी से पुत्र-जन्म का समय, पल, नक्षत्र आदि पूछकर आने की आज्ञा दी। सोलह सिणगार कर मोतियों से थाल भर आधी रात को नगर की गली-गली में विरुदावली गाती हुई दासी ज्योतिषी के घर पहुँची। ज्योतिषी ने रावले में आकर बताया कि शुभ घड़ी और शुभ नक्षत्र में (शनिवार सुदि बीज) इसका जन्म शुभ लक्षण घोषित करता है। कंवर बड़ा प्रतापशाली, वीर सिद्ध पुरुष (पीर) होगा तथा बिलाड़ा का राज्य करेगा। यही नहीं, यह तीन दिन का होते ही बोलने लगेगा। बालक का नाम गुमानसिंह रखा गया।

(५) *पीर गुमानसिंह द्वारा मूलसिंह की रक्षा करना :*

कुछ वर्षों बाद गुमानसिंह ने अपनी माता से पूछ कर यह जाना कि उसके पिता को बिलाड़ा के मूलसिंह ने मारा है। इधर स्वयं मूलसिंह—जो अब आईमाता के मन्दिर का अधिष्ठाता व दीवान बन गया था-रथ जोत कर बिलाड़ा से नाडोल आया। काका-भतीजे प्रेम पूर्वक मिले। एक दिन रहने

कलस बाबो आई नाथ रो, सुल सुल लागूं पाय।
खमा घणी आईदे, आई नाथ पधारिये ॥

(६) पीर गुमानसिंघ री वेल[1]

प्रस्तुत वेल पीर गुमानसिंह से सम्बन्ध रखती है। पीर गुमानसिंह बिलाड़ा (जोधपुर) के आईमाता के दीवान कल्याणदास जी के पुत्र दौलतसिंह के पुत्र थे। दौलतसिंह को उनके छोटे भाई मूलसिंह ने भ्रमण के बहाने जंगल में ले जाकर राज-गद्दी के प्रलोभन में मार दिया। उनकी मृत्यु के बाद रानी गवरादे से गुमानसिंह का जन्म हुआ।

कवि-परिचय :

वेलि के रचयिता का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। हस्तलिखित प्रति के रूप में काव्य सुरक्षित न होने के कारण रचयिता अज्ञात है।

रचना-काल :

वेलि में कहीं भी रचना-तिथि का उल्लेख नहीं है। रचनाकार भी अज्ञात है। ऐसी स्थिति में वर्ण्य-विषय को ही आधार बनाकर रचना-काल का अनुमान किया जा सकता है। इस वेलि का सम्बन्ध दीवान कल्याणदास के पौत्र गुमानसिंह से है। कल्याणदास का जन्म सं० १७३४ में हुआ था और मृत्यु सं० १७९२ में[2]। बहुत सम्भव है सं० १७९२ के बाद इसकी रचना की गई हो[3]।

रचना-विषय :

१०२ छन्दों की इस रचना में पीर गुमानसिंह का जीवन-वृत्त वर्णित है। कथा-सार का वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) *मङ्गलाचरण :*

प्रारम्भ में सरस्वती और गणेश की वन्दना करते हुए आईमाता से सहायता की प्रार्थना की गई है[4]।

१—(क) मूल पाठ में वेलि— नाम नहीं आया है।

(ख) यह हस्तलिखित प्रति के रूप में नहीं मिलती है। मौखिक रूप से ही संतजनों द्वारा गाई जाती रही है। भावी (मारवाड़) के श्री शिवसिंह चोयल ने इसे लिपिबद्ध कर वरदा: वर्ष २, अंक १, पृ० १३-२१ में प्रकाशित कराया है।

(ग) वर्तमान लेखक ने इसकी आलोचना प्रस्तुत की है। शोध-पत्रिका : वर्ष ११, अंक ३-४ (मार्च-जून, १९६०) पृ० ५६-७१

२—शिवसिंह चोयल का पत्र लेखक के नाम: दि० ६-८-१९६० ।

३—शिवसिंह चोयल के अनुसार लगभग २०० वर्षों से यह वेल संत जनों द्वारा गाई जाती रही है। लेखक के नाम पत्र : दि० २९-७-६० ।

४—सिवरू देवी सारदा, गणपत लागूं पाय ।
धूप ने धावन री सेवा करूं, सिर माथे आईजी रा हाथ ॥

(२) *राजगद्दी का प्रलोभन :*

बिलाड़ा में राज्य करने वाले दोनों भाई–दौलतसिंह और मूलसिंह–एक दिन भ्रमण के लिए जङ्गल में गये। वहाँ मूलसिंह के हृदय में बिलाड़ा की राजगद्दी के लोभ से खांडा (छोटी तलवार) पकड़ कर दौलतसिंह को मार डालने की प्रबल भावना जागृत हुई और उसने अपने सगे भाई को मार कर गोत्र हत्या का महान कलङ्क अपने सिर पर लिया।

(३) *गवरादे का पीहर जाना और मंदिर बनवाना :*

दौलतसिंह की गर्भवती रानी गवरादे को जब इस कुकृत्य का पता चला तो वह अपने देवर से यह कहकर–हे दुष्ट ! तेरा मुँह कौन देखे–अपने पीहर नाडोल चली गई। उसने अपने भाइयों से कहा कि तुम कभी बिलाड़ा मत जाना क्योंकि मूलसिंह ने तुम्हारे बहनोई को धोखे से मार डाला है। बिलाड़ा वैरियों का वास है। नाडोल जाने के पश्चात् गवरादे ने दस दिन में श्री आईमाता का मन्दिर बनवाकर सुदि बीज को उस पर स्वर्णकलश चढ़वाया और जागरण किया।

(४) *पीर गुमानसिंह का जन्म और नाम-संस्कार :*

कुछ दिनों के पश्चात् गवरादे के गर्भ से पुत्र के रूप में पीर (सिद्ध पुरुष) प्रगट हुए। सोने की छुरी से नाला काटा गया और बड़े जोर से नगाड़े ढोल आदि बजाये गये। गवरादे ने दासी को ज्योतिषी से पुत्र-जन्म का समय, पल, नक्षत्र आदि पूछकर आने की आज्ञा दी। सोलह सिणगार कर मोतियों से थाल भर आधी रात को नगर की गली-गली में विरदावली गाती हुई दासी ज्योतिषी के घर पहुँची। ज्योतिषी ने रावले में आकर बताया कि शुभ घड़ी और शुभ नक्षत्र में (शनिवार सुदि बीज) इसका जन्म शुभ लक्षण घोषित करता है। कंवर बड़ा प्रतापशाली, वीर सिद्ध पुरुष (पीर) होगा तथा बिलाड़ा का राज्य करेगा। यही नहीं, यह तीन दिन का होते ही बोलने लगेगा। बालक का नाम गुमानसिंह रखा गया।

(५) *पीर गुमानसिंह द्वारा मूलसिंह की रक्षा करना :*

कुछ वर्षों बाद गुमानसिंह ने अपनी माता से पूछ कर यह जाना कि उसके पिता को बिलाड़ा के मूलसिंह ने मारा है। इधर स्वयं मूलसिंह—जो अब आईमाता के मन्दिर का अधिष्ठाता व दीवान बन गया था–रथ जोत कर बिलाड़ा से नाडोल आया। काका-भतीजे प्रेम पूर्वक मिले। एक दिन रहने

क्नन थावो धाई नाथ रो, तुन तुन लागूं पाव।
थना धणी धारांदे, धाई नाथ पधारिये॥

के बाद मूलसिंह वापिस बिलाड़ा की ओर रवाना हुआ। रास्ते में वह मोडकी मगरो पर ठहरा। अफीम पीकर मदमस्त हो गया तब वहाँ के मीणों ने अपने बाणों से उसे मार दिया। मरते समय मूलसिंह ने अपने भतीजे पीर गुमानसिंह को सम्बोधित कर कहा—'अगर तू वीर है तो वहाँ बैठे-बैठे अपने चाचा की सहायता कर'। अपने योग-बल से चाचा की हत्या की जानकारी प्राप्त कर गुमानसिंह घोड़ा लेकर सहायतार्थ दौड़ा और मृतक मूलसिंह को जीवित कर दिया।

(६) *पीर गुमानसिंह का बिलाड़ा जाना और बीच में लांछा संडाली का मिलना :*

मूलसिंह ने गुमानसिंह को आधा राज देने का प्रलोभन देकर बिलाड़ा बुलाया। गवरादे तथा उसकी मामियों ने गुमानसिंह को बहुत रोका पर वह अपने दादा के देश को देखने की धुन में घोड़े पर चढ़ कर चल पड़ा। रास्ते में उसे जीवाणा गांव की खंडाला गोत्र की एक सीरवी कन्या अकेली बछड़े चराती हुई मिली। दोनों का एक दूसरे से परिचय हुआ तो लांछा ने अपने विवाह का प्रस्ताव रखा। गुमानसिंह ६ माह बाद विधिवत् विवाह करने का वचन देकर बिलाड़ा की ओर चल पड़ा। रावले में जाने पर काकी ने कपट से समस्त द्वार बन्द कर अपने पति मूलसिंह को गुमानसिंह को मार डालने के लिए बाध्य किया पर आईमाता की आराधना करने से समस्त द्वार खुल गये। दूसरे दिन स्नान के बहाने मूलसिंह ने गुमानसिंह को बाणगंगा नदी को घोड़े सहित पार करने की बात कही। भतीजा तो देवी के प्रताप से सकुशल पार हो गया पर काका डूबने लगा तब गुमानसिंह ने उसकी रक्षा की और मूलसिंह ने आधा राज देने की फिर प्रतिज्ञा की। रावले में आने पर मूलसिंह ने फिर धमकी दी कि तुम कुछ चमत्कार दिखाओ अन्यथा तलवार के घाट उतार दिये जाओगे। पर किसी तरह गुमानसिंह बच कर नाडोल आ गया और इधर मूलसिंह अन्धा हो गया तथा उसके कुटुम्बी जनों के पेट में पीड़ा उत्पन्न हो गई।

(७) *गुमानसिंह को मरवाने के लिए बीड़ा फेरना :*

जब गुमानसिंह किसी भी उपाय से नहीं मरा तो मूलसिंह ने ६ मास में ही उसे मार कर उसका सिर काट लाने का बीड़ा फेरा। लखजी (लखसिंह) नामक भोमिया और मेहरामा ढोली ने इस कुकृत्य को करने का बीड़ा उठाया। लखजी ने गुमानसिंह को आईजी के मन्दिर में दर्शनार्थ ले जाकर धोखे से मारने के प्रयत्न में दस बार तलवार का वार किया पर उसका एक बाल भी बांका नहीं हुआ। अन्त में मेहरामा ढोली ने तलवार से गुमानसिंह का सर धड़ से अलग कर उस पर गुली (रंग विशेष) के छींटे डाल दिए। सर बिलाड़ा ले जाया गया। गरावदे विलाप करने लगी।

(८) *लांछा खरड़ाली को सत आना :*

इधर लांछा को सत आगया और वह चरते हुए बछड़ों को छोड़कर नाडोल चली आई। अपनी सास (गवरादे) के पैरो में पड़ कर उसने गुमानसिंह के साथ सती होने की आज्ञा मांगी। आज्ञा मिलने पर उसने आईमाता की आराधना कर प्रार्थना की कि अगर मेरे पति गुमानसिंह जी पीर है तो परचा (चमत्कार) दिखावें और चिता में हमारा हथलेवा जुड़ जावे।

(९) *शंकर-पार्वती का आकर गुमान-लांछा को जीवित करना :*

शंकत और पार्वती ने आकर श्मशान में ही धूणी पानी का आसन जमाया। पार्वती बिलाड़ा जाकर गुमानसिंह का सर लेकर आई और शंकर ने उसे जोड़कर अमृत के छींटे देकर लांछा सहित जीवित कर दिया। फिर सभी गवरादे के पास गये जहाँ सबको मोतियों से थाल भर कर बधाया गया। शंकर-पार्वती गुमानसिंह को सपत्नीक अनेक वर्षों तक बिलाड़ा का राज्य देकर कैलास की ओर चले गये।

(१०) *लांछा का दुष्टों को अभिशाप देना :*

अन्त में लांछा मूलसिंह को अन्धा होने, उसकी पत्नी को पेट दुखने, लखजी भोमिया और मेहरामा ढोली को सर्व प्रकार से अनिष्ट होने का अभिशाप देती हुई अपनी इष्टदेवी भगवती आईमाता से करबद्ध प्रार्थना करती है कि 'हे जगदम्बा! मेरी लज्जा रखना आपके हाथ है'।

कथानक में अलौकिक तत्वों का पूरा पूरा सन्निवेश किया गया है। ऐसे स्थल पाँच जगह आते हैं। प्रथम तो वहाँ जहाँ ज्योतिषी माता गवरादे से कहता है कि यह बच्चा तीन दिन का होने पर मुख से बोलने लगेगा[1]। दूसरा स्थल वह है जब कि मोड़की मगरी में मीणों द्वारा आहत मूलसिंह अपने प्राणों की रक्षा के लिए गुमानसिंह को पुकारता है और गुमानसिंह नाडोल में बैठा उसकी पुकार सुनकर सशस्त्र आ पहुँचता है[2]। तीसरा स्थल वह है जब कि काको द्वारा सातों दरवाजो के बन्द होने पर भी देवी आकर भक्त गुमानसिंह की रक्षा करती है और सातों दरवाजे टूट जाते हैं[3]। चौथा स्थल वह है जबकि लखजी भोमिया के द्वारा दस बार गुमानसिंह के सर पर तलवारों के वार करने पर भी उसका बाल तक बांका नहीं होता[4]। पाँचवां स्थल वह है जब कि शिव-पार्वती मृत्युलोक में आकर

१—तीन दिनां रा मुखड़े बोलिया, मुख माजी मारी बात।

२—पीर व्हे तो परचो देवजे, मरते काका ने उबार।

३—बिलाड़े मायने सेवग सारियो, सातांई खुल गया किंवाड़।

४—दस वैला माथो झाड़ियो, सनमुख देवी ऊबी आय।

गुमानसिंह के सिर को जोड़कर उसे तथा साथ में जल कर भस्म होने वाली लांछा सण्डाली को जीवित कर देते हैं[1]।

काव्य-निर्णय का निर्वाह भी कवि ने पूर्ण रूप से किया है। मूलसिंह प्रतिनायक है जिसे उसकी दुष्टता का फल अन्त में मिल जाता है। उसकी रानियों के पेट दुखने लगते हैं। मेहरामा ढोली का खोज चला जाता है और लखजी भोमिया भी सब प्रकार से दुखी हो जाता है[2]। सती नारी लांछा संडाली का सौभाग्य-सूर्य चमक उठता है।

कथा-संयोजन में निम्नलिखित कथानक रूढ़ियों का प्रयोग किया गया है–

(१) दोनों भाइयों (दौलतसिंह-मूलसिंह) का जंगल में भ्रमण के लिये जाना और राज्य-लोभ में पड़कर छोटे भाई द्वारा बड़े भाई का वध करना।

(२) दस दिन में मन्दिर बनवाकर सोने का कलश चढ़ाना।

(३) बीज, शनिवार को जागरण करना।

(४) पूर्व दिशा की ओर ज्योतिषी का द्वार होना, द्वार पर केले का वृक्ष तथा नेव मे चमेली का पेड़ होना।

(५) बीज और शनिवार को बालक का जन्म होना।

(६) पत्र द्वारा सन्देश भेजना।

(७) नायक को जङ्गल मे बछड़े चराती हुई अकेली कन्या का मिलना और कन्या के विवाह का प्रस्ताव रखने पर नायक का आते समय ६ मास में शादी करने की प्रतिज्ञा करना।

(८) आधा राज्य का प्रलोभन देकर किसी को मरवाना या मारना।

(९) किसी को मरवाने के लिए बीड़ा फेरना और ६ मास की अवधि देना।

(१०) देवी के मन्दिर में जाकर मारने के लिए तलवार का वार करना।

(११) शिव-पार्वती का आकर मृतक को जिलाना।

(१२) किसी को अंधा होने, पेट दुखने का अभिशाप देना।

चरित्र-चित्रण :

प्रमुख पात्रों में गुमानसिंह, मूलसिंह, गवराद और खंडाली लांछा का समावेश किया जा सकता है। गौण पात्रों में दासी, पार्वती, शंकर, देवी आईमाता, ज्योतिषी, शङ्कर, लखजी, मेहरामा आदि हैं। पात्रों की तीनों कोटियां हैं। सुर पात्रों में देवी आईमाता, शिव, पार्वती, लांछा तथा गुमानसिंह रखे जा सकते हैं।

१—अमृत री कूपी शंकर नाकियो, सन्मुख ऊभा माय।
नर-नारी री जोड़ी हद बणियो, शंकर कीनी वैदास॥

२—काको मूलसिंह व्हेंजो आंधलो, राणियां दूखजो पेट।
मेहरामा ढोली रे जाजो खोजड़ो, लखजी रो व्हैजो खराब॥

मानव पात्रों में गवरादे, दासी, ज्योतिषी आदि आते हैं और असुर पात्रों मे मूलसिंह, उसकी पत्नी, लखजो भोमिया तथा मेहरामा ढोली का समावेश किया जा सकता है। सभी पात्र स्थितिशील हैं। उनके चरित्र में विकास नहीं है। जो पात्र प्रारम्भ मे जैसा है अन्त तक वैसा ही दिखाई देता है। लाछा खंडाली का चरित्र अवश्य विकसित हुआ है। वह मानवी मे अन्त में देवी बन जाती है।

काव्य में जगह-जगह अलौकिक घटनाओं को झांकी दिखाकर अद्‌भुत रस की तथा पीर गुमानसिंह के ओजस्वी व्यक्तित्व का उद्‌घाटन कर वीर रस की सृष्टि की गई है। रौद्र एवं शृङ्गार भी कहीं कहीं उभर आये हैं। वैसे काव्य का वातावरण भक्तिरस मे सिक्त है।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा सरल राजस्थानी है। उसमें प्रवाह और माधुर्य है। यथा-
'पीरां रे घरे पीर जनमिया, वाजियो सोवनिया गज थाल।
सोना री मुरियां सूं नाला मोरिया, धुरिया अनहद निसाण'॥

यत्र-तत्र अलङ्कार भी आये हैं—

अनुप्रास :

(१) लुलु लुलु लागूं पायं
(२) दरगो दीसे देवी रो दीपतो
(३) बिलाड़ो बैरियों रो वास

अर्थालंकार :

(१) मोती विखरंता माणक चौक में, लालों रा बैंड़ा हवाल।
(२) एक सावण दूजो भादवो, नैणां नहीं ठंबे नीर।
(३) हिवड़ो भरीजे समंदर उलटै।

छंद :

काव्य मे दोहे की आत्मा को लोक धुन के शरीर मे बांधा गया है। टेक के रूप मे निम्नलिखित पंक्तियों की बार बार आवृत्ति हुई है—

(१) पीर व्हे तो परचो देवजे।
(२) कंवर चढ़िया पगदे पागड़े, चढ़िया बिलाड़ा ने जाय।
(३) माता बलूं थी पगड़े, पागड़े, सामियां भेजे बाग।
मत जाओ जाया बिलाड़े एकला, बिलाड़ो बैरियां रो वास॥

(७) रानी रत्नादे री वेल[1]

प्रस्तुत वेल रानी रत्नादे से संबंध रखती है। जनश्रुति के आधार पर रत्नादे राजा कुलचंद की रानी थी। उसके आम्बू-जाम्बू नामक दो पुत्र थे। साधुओं के प्रति उसकी अनन्य भक्ति थी। आई पंथी लोगों में इस वेल का बड़ा प्रचार है।

कवि-परिचय :

इसका रचयिता तेजो[2] नामक कोई कवि है। अनुमान है वह आईजी का समकालीन रहा हो।

रचना-काल :

वेलि में रचना-तिथि का उल्लेख नहीं किया गया है। काव्य में जो पात्र आये हैं वे सब जन साहित्य के अंग हैं। ऐतिहासिक संदर्भ के अभाव में उनका काल-निर्धारण करना कठिन है। इस काव्य का संबंध आई-पंथ से रहा है। इससे अनुमान है १५ वीं शती के अन्त में यह वेल रची गई हो।

रचना-विषय :

१५ पदों की इस रचना में रानी रत्नादे की साधुओं के प्रति भक्ति-भावना का वर्णन किया गया है। कथा-सार का वर्गीकरण निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है—

(१) *सात सहेलियों के साथ रत्नादे का तालाब पर जाना :*

हृदय में कंठी और केसरिया तिलक वाले साधु महात्माओं के दर्शनों की तीव्र उत्कंठा लिये सिर पर रजत-कलश और सोने की इडाणी रख सात सहेलियों के साथ रत्नादे ने जल लाने के लिए तालाब की ओर प्रस्थान किया[3]।

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है।

(ख) प्रति-परिचय:—यह हस्तलिखित प्रति के रूप में नहीं मिलती है। भक्त-जनों द्वारा कई वर्षों से गाई जाती रही है। भावी-निवासी श्री शिवसिंह चोयल ने सोजत तहसील के घटवड़ा गांव के निवासी प्रसिद्ध भजनीक गोस्वामी बस्तीपुरी से सुनकर इसे लिपिबद्ध किया है।

२—तेजो (तो) गावे बाई थारो सोलमो
अमर हुई जग मांय राणी ए रतनादे (१५)

३—सात में सहेलियां रो साथ, रांणी पांणी दरियावां ने साचरी।
रूपा रो बेहड़ीयो, सोनो री ईडाणी पांणी मांचरी॥

(२) *तालाब पर साधु महात्माओं का मिलना :*

तालाब की पाल पर जंगल की ओर से कुछ साधु महात्मा आते हुए दिखाई दिये। रत्नादे ने साष्टांग प्रणाम कर आग्रह पूर्वक उन्हें घर आने का निमंत्रण दिया।

(३) *साधु महात्माओं का रत्नादे के घर आना :*

निमंत्रण पाकर साधु-महात्मा रत्नादे के घर आये। रत्नादे ने उष्ण-जल से उनका पद-प्रक्षालन कर वीणा और मृदंग के संगीतात्मक वातावरण में व्यंजन डुलाते हुए बत्तीस प्रकार का भोजन कराया।

(४) *पड़ोसिन का आग मांगने आना और क्रोधित होना :*

इसी अवसर पर एक पड़ोसिन ने आकर अंगारा (आग) मांगा। रत्नादे ने सत्संग में बैठे रहने के कारण आग देने से मना कर दिया। इससे पड़ोसिन नागिन की तरह फुफ्कार कर कहने लगी-'मैं तेरी सासू से शिकायत करूंगी कि तू पूरी पूरी रात अपरिचित साधुओं के साथ व्यतीत करती है'। रत्नादे ने सोलह सिरपाव देकर उसके क्रोध को शांत करना चाहा पर वह और अधिक धमकी देने लगी-'मैं तेरे पति कुलचंद से भी सब कुछ कह दूंगी'। रत्नादे ने उसे अपने गले का नवसर हार और हीरे की गठरी बंधाने का प्रलोभन दिया पर वह दुष्टा नहीं मानी। तब क्रोध में आकर रत्नादे ने अपनी दासियों को उसे (पड़ोसिन को) मारकर कुए में डाल आने की आज्ञा दी पर थोड़ी देर बाद दयार्द्र होकर उसे छोड़ दिया[१]।

(५) *रत्नादे को पुत्रों सहित वनवास मिलना :*

पड़ोसिन के हृदय मे बात नही टिकी और उसने राजा कुलचंद को ननिहाल से लौटने पर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने क्रोधित हो अपनी माता से मिलकर रत्नादे और उसके दोनों पुत्रों आम्बू-जाम्बू को सूर्योदय से पूर्व ही काले बैल से युक्त रथ में बिठलाकर सुनसान जंगल में छुड़वा दिया[२]।

१—सुणले मनडारे वाली बात, राणी थे रतनादे। थारी सासू नै म्हूं केवसूं ॥
ले ले सोलह ही सिरपाव पाड़ोसण म्हारी थे, म्हारी सासू नै मती केवजे।
नही लेऊं सोलहई सिरपाव, राणी थे रतनादे, राजा कुलचंद नै म्हू केवसूं।
ले ले गला रो नवसर हार, पाड़ोसण म्हारी थे, म्हारा पति नै मती केवजे।
नहीं लेऊं नवसर हार राणी थे रतनादे। म्हारी लाडली लाडावसूं ॥
हाथोनी ओरिया रै मांहि, पाड़ोसण म्हारी थे। थनै बंधाऊं हीरो री गाठडी ॥

२—काला बैलियां मत जावो सागड़ी, आम्बू-जाम्बू नै साथै मेल, कुलचंद बेटा रे।

(६) *भगवद्भक्ति से भगवान का प्रसन्न होकर वरदान देना :*

अपने कर्मों का फल समझकर रत्नादे अपने पुत्रों सहित भगवद्भक्ति में दिन काटने लगी। एक दिन राजकुमारों को बड़ी प्यास लगी तो प्रार्थना करने पर भगवान ने जल बरसाया[1], भूख लगी तो विविध प्रकार के पकवान भेजे,[2] गर्मी की धूप सताने लगी तो भांति-भांति के छायादार वृक्ष पैदा किये[3] और एकाकीपन असह्य हो उठा तो राजा कुनचंद को समस्त परिवार और नगर के साथ ला उपस्थित किया[4]।

(७) *रत्नादे का दुष्टों को अभिशाप देना :*

सबको उपस्थित देखकर रानी के सुषुप्त ज्वलित भाव जाग पड़े और वह क्रोधित हो उठी। इसी क्रोधावेश में उसने पड़ोसिन को वन में रहने वाली रोझड़ी (नील गाय) होने का, सास को बड़ले (वटवृक्ष) पर रहने वाली बाकली (पक्षी विशेष) होने का और अपने पति राजा कुलचंद को कोढ़ी होने का अभिशाप दिया[5]।

(८) *जागरण कलश की स्थापना करना :*

इसके बाद शुभ दिन जानकर शनिवार द्वितीया (बीज) को रत्नादे ने कलश

१—तिरसा मरता रो जावे जीवड़ो। बेटा करो भगवत ने यारोद धार घणी पाणी मेलसी।
कठे करो माधव ने यारोद-बांबू-जाबू रे, पुरबऊं दिसा में उमड़ी बादली,
वृक्ष वृक्ष इन्दरकारा नाथ, ईसवर म्हारो रे, नाला भरिया रे गहरा माखड़ा।
२—भगवत ने यारोद, बांबू-जांबू रे, इन्द्रासण सूं थाली उतरे।
माता माता पाच ए पकवान, साम्बू-जाबू रे, लाडू माता मोतीचूर रे।
मादलड़ा में घणो रे उम्मेद भगवत दाता रो।
३—चंदो लगायो करो केवड़ो, लाला नारेला रा बख माम्बू-बाम्बू रे।
चनण लगावो माधव बावना, कोने कोने दादर ने मोर मांम्बू-माम्बू रे।
म्हारी कोने रे बन में कोयली।
४—थावो रेहवा मना रा मरदार, मना बिना नहीं भावड़े।
जाबा करा ईसवर ने यारोद, माम्बू-जाम्बू रे, मात घणी मना मे जमी।
हाथी-थाली नौकर साथ (ई) चाकिसा, मावा मना रा सिरदार, म.म्बू. जाम्बू रे।
५—नावे नावे नडिया री आग पालंमन म्हारी रे।
रन री हूँ था (रे) थूं तो रोझड़ी, नावे नावे नडिया री भाग बाबू म्हारी बोर।
बड़ला री हूँ रे थूं तो बाकली, थूं है बाजरे ने थूं है चढूंअर॥
मारच म्हारा को कोढ़िला करको के तो दूं जा-म्हारी बोलची रे
बार्द्द मारब म्हारा को।
कोढ़ी री थारा देख रेहवरो मारब म्हारा को।

की स्थापना करने के लिए अपने पुत्रों को आज्ञा दी। राजकुमारों ने माता की आज्ञानुसार कलश की स्थापना कर जागरण में सम्मिलित होने के लिए भगवान श्री कृष्ण, कमला, शिव, पार्वती, गणेश, सूर्य, चन्द्र, तारे, बावन भैरू, चौसठ योगिनियों और तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं को निमन्त्रित किया।

(९) *भगवान का रत्नादे को आशीर्वाद देना :*

निमन्त्रण पाकर निश्चित समय पर सभी एकत्रित हुए और जागरण प्रारम्भ हुआ। भगवान ने प्रगट होकर रत्नादे को आशीर्वाद देते हुए कहा-'तू बड़ी सत्यवती, पतिव्रता एवं भक्तिनिष्ठ देवी है। मृत्यु-लोक में तेरा सर्वोपरि स्थान है। मैं तेरी भक्ति से प्रसन्न हूँ। तू अपने पतिदेव को कोढ़ के अभिशाप से मुक्त कर दे। निश्चय ही तेरा वैकुण्ठ में निवास होगा'[1]।

काव्य में अलौकिक तत्वों का समावेश किया गया है। जङ्गल में राजकुमारों के कण्ठ सूखने पर आकाश बदलियों से घिर जाता है, भूख लगने पर पकवानों के थाल उतर पड़ते हैं, ग्रीष्म ऋतु में छाया करने के लिए चम्पा, केले, नारियल, चंदन आदि के वृक्ष उग आते हैं और एकान्त अनुभव होने पर राजा कुलचंद अपने समस्त परिवार और नगर के साथ आ उपस्थित होता है।

काव्य-निर्णय का निर्वाह भी किया गया है। दुष्ट (भक्ति में बाधक) पात्रों को समुचित दण्ड (पड़ोसिन को रोभड़ी होने का, सास को बाकली होने का तथा पति को कोढ़ी होने का) दिया जाता है। रत्नादे भक्ति के प्रभाव से जङ्गल में भी मङ्गल मनाती है।

काव्य की कथा के ऐतिहासिक आधार का पता नहीं चला है। जो घटनाएँ आई हैं वे परम्परागत रूप से लोक-जीवन में प्रचलित मिलती हैं और जो पात्र हैं वे भी जनश्रुति सम्मत हैं। कथानक रूढ़ियों के बल पर कवि ने इस वेल को विस्तार दिया है। प्रयुक्त रूढ़ियाँ निम्नलिखित हैं—

(१) सात सहेलियों के साथ रानी रत्नादे का जल लाने के लिए तालाब की ओर प्रस्थान करना।
(२) सिर पर चाँदी का कलश और सोने की इंडाणी का होना।
(३) इंडाणी को चंपा के वृक्ष की डाल पर टांक कर जल भरने जाना।
(४) तालाब की पाल पर जङ्गल के मार्ग से साधु-महात्माओं का आना।
(५) साधुओं का गले में कण्ठी पहनना और मस्तक पर केसरिया तिलक लगाना।

१—राजा कुलचंद रा कोढ भाड़, थारा हेला वैकूंठा में वास, राणी ए रतनादे।
मिरतलोक में ऊपर राख हूं, थूं है सतवन्ती नार, राणी ए रतनादे॥

(६) साधुओं को साष्टांग प्रणाम कर उनकी परिक्रमा देना।
(७) साधुओं का ठहरने के स्थान विशेष के बारे में भक्तों से पुछताछ करना।
(८) भक्त का पूर्व-दिशा में बड़ी पोल बतलाना जिसके बाहर केले के वृक्षों का होना।
(९) मकान में माणक चौक का होना जिसमें घोड़ों और हाथियों का बंधा रहना।
(१०) साधुओं द्वारा यह कहकर मना करना कि हमारे ठहरने से तुझे झूठा कलंक लगेगा।
(११) रानी का यह कहकर ठहराना कि मेरी सास अपने पीहर गई है और पति ननिहाल गया है।
(१२) रानी का परिक्रमा देकर गरम जल से साधुओं के पैर धोना।
(१३) ३२ प्रकार का भोजन और ३३ प्रकार की तरकारियाँ बनाकर साधुओं को जिमाना।
(१४) भोजन जिमाते समय व्यंजन डुलाना।
(१५) वीणा और मजीरा बजाना।
(१६) पड़ोसिन का ऐसे अवसर पर आकर आग मांगना और रानी का सत्संग में बैठे रहने के कारण आग देने से मना करना।
(१७) आग न मिलने पर पड़ोसिन द्वारा सास को शिकायत करने की धमकी देना।
(१८) पड़ोसिन का किसी दूसरी स्त्री से बात कहना।
(१९) शिकायत को रोकने के लिये रानी का (पड़ोसिन को) सोलह सिरपाव, गले का नवसर हार तथा हीरे की गठरी बंधवाने का प्रलोभन देना।
(२०) नहीं मानने पर मारकर अन्ध कूप में डलवाने की आज्ञा देना और दयार्द्र होकर आज्ञा को वापिस लेना।
(२१) राजा के ननिहाल से लौटने पर रानी को पुत्रों सहित काले बैल से युक्त रथ में बिठलाकर सूर्योदय से पूर्व ही सुनसान जङ्गल में छुड़वाने की आज्ञा देना।
(२२) पीहर में रानी के मां-बाप तथा सगे भाई का जीवित न होना।
(२३) जङ्गल में राजकुमारों को प्यास लगना, भूख सताना तथा एकान्त भाव का अनुभव होना।
(२४) भगवद्भक्ति के प्रताप से पानी बरसना, विविध प्रकार के फल-फूलों का प्रगट होना तथा राजा का समस्त परिवार और नगर के साथ उपस्थित होना।
(२५) रानी का दुष्टों को श्राप देना-पड़ोसिन को कोढ़ी होने का, सास को बावली होने का और पति को कोढ़ी होने का।
(२६) बीज-शनिवार को जागरण कलश की स्थापना करना।
(२७) विष्णु, लक्ष्मी, शिव-पार्वती, गणेश, सूर्य, चन्द्र, तारे, बावन भैरू, चौसठ जोगिनियाँ तथा तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं का जागरण में सम्मिलित होना।

(२८) भगवान का रानी की भक्ति-भावना से प्रसन्न होकर आशीर्वाद देना।
(२९) रानी का सबको शाप से मुक्त करना।

चरित्र-चित्रण :

प्राकृत-अप्राकृत घटनाओं द्वारा रत्नादे के शील एवं भक्ति निरूपण की व्यंजना करना ही कवि का लक्ष्य रहा है। रत्नादे ही काव्य की नायिका है। अन्य चरित्रों में राजा कुलचंद, पड़ोसिन, राजा कुलचंद की मां, दोनों राजकुमार आम्बू-जाम्बू, साधु-महात्मा, दासी, सात सहेलियां और विभिन्न प्रकार के देवी-देवता हैं।

कला-पक्ष :

काव्य की भाषा बोलचाल की सरल (ग्रामीण) राजस्थानी है। अलंकरण की ओर कवि का ध्यान नहीं गया है। यत्र-तत्र अनुप्रास का प्रयोग हुआ है।

(१) सात थ्रे सहेलियां रो साथ।
(२) रन री ह्वे जा (रे) यूं तो रोभड़ी।
(३) बड़ला री ह्वे जे यूं तो बाकली।
(४) केल भबूके बांरे बारणे।

छन्द :

जागरण के अवसर पर यह वेल भक्तजनों द्वारा समवेत स्वर में गाई जाती है। टेर के रूप में निम्नलिखित पंक्तियां व्यवहृत हुई हैं—

मायलडा मे धणी (रे) उम्मेद भगवावाला री,
दिलड़ा में धणी रे उम्मेद कंठीवाला री,
केसरिया तिलकां रा आयजो हरिजन पांवणा।

(८) अकल वेल[1]

प्रस्तुत वेलि में जीवनोपयोगी सामान्य नीति की बातें कही गई हैं

१—(क) मूल पाठ में वेलि नाम नहीं आया है। प्रति के प्रारम्भ में लिखा है 'अथ अकल वेल लिख्यते'।

(ख) प्रति-परिचय :—इसकी हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के ग्रंथांक २८२९ मे सुरक्षित है। गुटके का आकार ६"×६½" है। प्रत्येक पृष्ठ में १६ पंक्तियां और प्रत्येक पंक्ति में १५—१६ अक्षर हैं। लिपि-काल १९ वीं शताब्दी है।

कृति-परिचय :

वेलि में कहीं भी रचयिता का नाम नहीं आया है। जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है उसका नाम राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के सूची-पत्र में 'कृष्ण स्मरण तथा अकल वेल' दिया है और कर्ता अर्जुनसी लिखा है। प्रति को देखने से पता चलता है कि ये दोनों अलग अलग कृतियाँ हैं। पहली कृति की पुष्पिका में लिखा है 'इति श्री कृष्ण प्रागुत्थान स्मरणं संपूर्न'। इसके कर्ता अर्जुनसी हैं[1]। दूसरी कृति 'अकल वेल' है। इसके प्रारंभ में ही लिख दिया है 'अथ अकल वेल लिख्यते।' इसमें कहीं भी रचयिता का उल्लेख नहीं है। अतः इसे भी अर्जुनसी की रचना मानना नाधार नहीं है। यह प्रति अपूर्ण है अन्त में पुष्पिका नहीं दी गई है। ऐसी स्थिति में इसके रचयिता के बारे में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

रचना-काल :

वेलि में कहीं भी रचना-काल का संकेत नहीं दिया गया है। न रचनाकार का ही पता चलता है। लिपि १९ वीं शताब्दी की है। अतः इतना तो निश्चित है कि यह १९ वीं शती के बाद की कृति नहीं है।

रचना-विषय :

प्रस्तुत वेलि ३१ पंक्तियों की छोटी सी रचना है। प्रारंभ में चार चार पंक्तियों के तीन छंद हैं। बाद में एक-एक पंक्ति के १९ छंद। इसमें कवि ने प्रारंभ के छंद में ईश्वर को अगम, अज्ञेय और अनन्त गति[2] की चर्चा करते हुए उसकी अलौकिक निर्माण शक्ति की प्रशंसा की है[3]। उसकी धारणा है कि दुनियांदारी पाखण्डपूर्ण एवं प्रवंचनायुक्त है। साहब (ईश्वर) का घर ही मोटा और उदार है[4]। कवि का संसार के प्राणियों के नाम संदेश है कि राज्य के बिना कभी जीता नहीं जाता[5]। अमृत को छोड़कर विष नहीं खाना चाहिये[6]। कभी किसी का बुरा नहीं करना चाहिये[7]। नदी-नालों को तैरकर पार नहीं करना चाहिये[8]। तुच्छ बातों के

१—ग्रंथ के अन्त में लिखा है—कर्ता अर्जुनसी अभिध्यानो (३७)।

२—कीरता की गत अगम है, अवनत पारू अपार।
कवीजन मे साखां कही, निरधा ने तंतसार ॥१॥

३—एतो अलख की माया है, जणी जीव जंत उपाया है।
सामलीयो कुंज विहारी है, श्री बाबा की गत न्यारी है ॥२॥

४—अे बाने मंड पाही है, दुनियां धुंध मचाई है।
दुनिया का पंड छोटा है, पण साहेब का घर मोटा है ॥३॥

५—राज बिना एक जीतिये नहीं ॥१॥

६—अमृत तज विस खाजे नहीं ॥२॥

७—बुरो परायो कीजे नहीं ॥३॥

८—नदी नाला तिरज्ये नहीं ॥४॥

लिये मरना नहीं चाहिये[1]। कुओं में कभी कूदना नहीं चाहिये[2]। कभी नशा नहीं करना चाहिये[3] और न वचनों का उल्लंघन करना चाहिये[4]। कभी कुबुद्धि के वशीभूत होकर कुमार्ग पर नहीं जाना चाहिये[5] न देवी-देवताओं को दोष देना चाहिये[6]। बुरी संगति में न कभी फँसना चाहिये[7] न भांग आदि का सेवन करना चाहिये[8]। उठते ही न तो गप्पें लड़ाना चाहिये[9] न नग्न बदन बाहर निकलना चाहिये[10]। किसी प्रकार का कलंक लगे ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये[11] न कभी मतिभ्रष्ट होना चाहिये[12]।

कला-पक्ष :

लौकिक शैली में लिखी गई इस वेलि की भाषा बोलचाल की सरल राजस्थानी है।

१—बोदी बाता मरज्ये नहीं ॥५॥
२—कूद कुवा में पड़ज्ये नहीं ॥६॥
३—मद मतवाला होज्ये नहीं ॥७॥
४—बचना बेहल्या होज्ये नहीं ॥८॥
५—कुबुध कुमारग जाज्ये नहीं ॥९॥
६—दोष देव न दीज्ये नहीं ॥१०॥
७—कुसंगी के संग जाजे नहीं ॥११॥
८—भाग भंगु को खाज्ये नहीं ॥१२॥
९—उठी गपां उड़ाजे नहीं ॥१३॥
१०—उठ ऊवड जाजे नहीं ॥१४॥
११—काया न कलंक लगाजे नहीं ॥१५॥
१२—बुध भ्रष्ट हो जाजे नहीं ॥१६॥

सहायक ग्रन्थों की सूची

(अप्रकाशित हस्तलिखित वेलि ग्रन्थो का विवरण यथा स्थान पाद-टिप्पणियों मे दे दिया गया है अतः इस सूची मे उनका निर्देश नही किया गया है)

(क) भाषा और साहित्य सम्बन्धी ग्रन्थ :

(१) अकबरी दरबार के हिन्दी कवि : डा० सरयूप्रसाद अग्रवाल
(२) अपभ्रंश साहित्य: डा० हरिवंश कोछड़
(३) अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय : डा० दीनदयालु गुप्त
(४) आई आणद विलासः सं० शिवसिंह चोयल
(५) ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह: सं० अगरचन्द भंवरलाल नाहटा
(६) कबीर ग्रंथावली : सं० श्यामसुन्दरदास
(७) काव्य के रूप : गुलाबराय
(८) कीर्तिलता : सं० बाबूराम सक्सेना
(९) कुमारसंभव : कालिदास
(१०) क्रिसन रुक्मणी री वेलि: सं० टैसीटोरी
(११) किसन रुक्मणी री वेलि : सं० ठाकुर रामसिंह और सूर्यकरण पारीक
(१२) क्रिसन रुक्मणी री वेलि : सं० नरोत्तमदास स्वामी
(१३) क्रिसन रुक्मणी री वेलि : सं० डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित
(१४) क्रिसन रुक्मणी री वेलि : सं० श्री कृष्णशंकर शुक्ल
(१५) क्रिसन रुक्मणी री वेलि : सं० नटवरलाल इच्छाराम देसाई (गुजराती)
(१६) गुजराती साहित्य नो स्वरूपो (पद्य-विभाग) : डा० मंजुलाल मजमुदार
(१७) गुर्जर साहित्य संग्रह: श्रीमद्‌यशोविजय
(१८) घन आनन्द और आनन्दघनः सं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र
(१९) चारणी अने चारणी साहित्य : जवेरचंद मेघाणी
(२०) छन्द प्रभाकरः जगन्नाथप्रसाद 'भानु'
(२१) जती भगा बाबाजी पंवार : सं० शिवसिंह चोयल
(२२) जायसी ग्रंथावली : सं० रामचन्द्र शुक्ल
(२३) जैन गुर्जर कवियो भाग १,२,३ : मोहनलाल दलीचन्द देसाई
(२४) जैन साहित्य और इतिहासः पं० नाथूराम 'प्रेमी'
(२५) जैन साहित्य नो संक्षिप्त इतिहास : मोहनलाल दलीचन्द देसाई
(२६) डिंगल के गीतकार (अप्रकाशित) : सीताराम लालस

(२७) डिंगल के गीत और उनका पिंगल : नरोत्तमदास स्वामी
(२८) डिंगल में वीर रस : सं० डा० मोतीलाल मेनारिया
(२९) डिंगल साहित्य : डा० जगदीशप्रसाद
(३०) दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता
(३१) नागर समुच्चय : सं० पं० श्रीधर शिवलाल
(३२) पुरानी राजस्थानी : डा० टैसीटोरी, हिन्दी अनुवाद : नामवरसिंह
(३३) पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियाँ : डॉ० व्रजविलास श्रीवास्तव
(३३) प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : रिचर्ड पिशल, हिंदी अनुवाद : हेमचंद्र जोशी
(३५) प्राचीन काव्य विनोद, भाग १ : सं० छगनलाल विद्याराम रावल
(३६) ब्रजनिधि ग्रंथावली : सं० पु० हरिनारायण
(३७) भक्तमाल : नाभादास
(३८) भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक रेखाएँ : परशुराम चतुर्वेदी
(३९) भारतीय लोक साहित्य : डा० श्याम परमार
(४०) मध्यकालीन धर्म-साधना : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(४१) मध्यकालीन प्रेम-साधना : परशुराम चतुर्वेदी
(४२) मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियाँ : डा० सावित्री सिन्हा
(४३) मान पद्य संग्रह : रामगोपाल मोहता, बीकानेर
(४४) मिश्रबन्धु विनोद : मिश्रबन्धु
(४५) युगप्रधान श्री जिनचंद्र सूरि : अगरचन्द भंवरलाल नाहटा
(४६) रघुनाथ रूपक गीतांरो : कवि मंछ
(४७) रघुनाथ जसप्रकास : सं० सीताराम लालस
(४८) राजस्थान का पिंगल साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया
(४९) राजस्थानी भाषा : डा० सुनीतिकुमार चटर्जी
(५०) राजस्थानी भाषा और साहित्य : डा० मोतीलाल मेनारिया
(५१) राजस्थानी भाषा और साहित्य : नरोत्तमदास स्वामी
(५२) राजस्थानी भाषा और साहित्य (वि० सं० १५००-१६५०) : डा० हीरालाल माहेश्वरी
(५३) राजस्थानी साहित्य एक परिचय : नरोत्तमदास स्वामी
(५४) राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा : डा० मोतीलाल मेनारिया
(५५) राधावल्लभ सम्प्रदाय : सिद्धान्त और साहित्य : डा० विजयेन्द्र स्नातक
(५६) रामचन्द्रिका : केशवदास
(५७) रामचरित मानस : तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर
(५८) वीरसतसई : सूर्यमल्ल मिश्रण
(५९) शुभ वेलि : प्र० वीरविजय उपाश्रय, अहमदाबाद
(६०) श्री माईजन भजनावली : मुम्बा बाबाजी, बिलाड़ा
(६१) संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला

(६२) समयसुन्दर कृति कुसुमांजलि : अगरचन्द भंवरलाल नाहटा
(६३) साहित्यालोचन : डा० श्यामसुन्दरदास
(६४) साहित्य दर्पण : विश्वनाथ
(६५) सुकाव्य संजीवनी प्रथम भाग : श्री शङ्करदान जेठीभाई देथा
(६६) सुजस वेलि : सं० मोहनलाल दलीचंद देसाई
(६७) सूरीश्वर अने सम्राट : विद्याविजयजी
(६८) स्थूलिभद्रनी शीयल वेल : प्र० शा मणिलाल गोकलदास, अहमदाबाद
(६९) हाला झाला रा कुण्डलिया : सं० मोतीलाल मेनारिया
(७०) हिन्दी के विकास मे अपभ्रंश का योग : नामवरसिंह
(७१) हिन्दी साहित्य : डा० श्यामसुन्दरदास
(७२) हिन्दी साहित्य : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(७३) हिन्दी साहित्य का आदिकाल : डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
(७४) हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा० रामकुमार वर्मा
(७५) हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल

(ख) इतिहास-ग्रंथ :

(१) एपिग्राफिया इंडिका
(२) उदयपुर राज्य का इतिहास, खण्ड १, २ : डा० गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा
(३) ऐतिहासिक नोंध : वाडीलाल मोतीलाल शाह
(४) कोटा राज्य का इतिहास : डा० मथुरालाल शर्मा
(५) खरतरगच्छ पट्टावली संग्रह : मुनि जिनविजय
(६) जयमलवंश प्रकाश : ठाकुर गोपालसिंह राठौड़ मेड़तिया
(७) जोधपुर राज्य का इतिहास : खण्ड १, २ : डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा
(८) डूंगरपुर राज्य का इतिहास : डा० गौरीशंकर हीराचंद ओझा
(९) तपागच्छ पट्टावली : मुनि कल्याणविजय
(१०) तवारीख राजश्री बीकानेर : मुन्शी सोहनलाल
(११) दयालदास री ख्यात
(१२) दि एनल्स एण्ड ऐन्टिक्विटीज ओफ राजस्थान : कर्नल टाड
(१३) पूर्व आधुनिक राजस्थान : डा० रघुवीरसिंह
(१४) प्राचीन जैन इतिहास, प्रथम भाग : बाबू सूरजमल जैन
(१५) प्रीलिमीनरी रिपोर्ट ओन द ओपरेशन इन सर्च ओफ मैन्युस्क्रिप्ट ओफ बारडिक क्रोनिकल्स : महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री
(१६) बांसवाड़ा राज्य का इतिहास : डा० गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा
(१७) बीकानेर राज्य का इतिहास, खण्ड १, २ : गौरीशङ्कर हीराचन्द ओझा
(१८) मारवाड़ का इतिहास, प्रथम भाग : पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ
(१९) मारवाड़ का मूल इतिहास : पं० रामकर्ण आसोपा

(घ) कोष-ग्रंथ :

(१) अभिधान राजेन्द्र कोष : विजय राजेन्द्र सूरीश्वर
(२) अमर कोष : अमरसिंह
(३) डिंगल कोष : सं० नारायणसिंह भाटी
(४) नालन्दा विशाल शब्द सागर : सं० नवलजी
(५) वृहत् हिन्दी कोष : ज्ञानमण्डल लिमिटेड बनारस
(६) संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर : रामचन्द्र वर्मा
(७) हिन्दी साहित्य कोश : ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस

(ङ) सूचीपत्र एवं ग्रंथ-विवरण :

(१) अगरचंद नाहटा लेख सूची : सं० नरोत्तमदास स्वामी
(२) अनूप संस्कृत लायब्रेरी, बीकानेर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूची-पत्र
(३) अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र (अप्रकाशित)
(४) ए डिस्क्रिप्टिव केटलाग ओफ बार्डिक एण्ड हिस्टोरिकल मेन्युस्क्रिप्ट भाग १,२ : टैसीटोरी
(५) ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट बड़ौदा के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र
(६) गवर्नमेन्ट ओरियन्टल मेन्यूस्क्रिप्ट लायब्रेरी मद्रास के संस्कृत हस्तलिखित ग्रंथों की सूची :
(७) नरोत्तमदास स्वामी लेख सूची : सं० अक्षयचंद्र शर्मा
(८) प्रशस्ति संग्रह : सं० कस्तूरचंद कासलीवाल
(९) फेरिस्त कुतब महाराजा पब्लिक लाइब्रेरी, जयपुर : जिल्द २
(१०) बड़ा उपासरा बीकानेर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र (अप्रकाशित)
(११) भट्टारक भंडार, अजमेर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र (अप्रकाशित)
(१२) भारतीय संस्कृति विद्या मंदिर, अहमदाबाद के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र (अप्रकाशित)
(१३) मोतीचंद खजांची, बीकानेर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र (अप्रकाशित)
(१४) राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ-सूची, भाग २: सं० कस्तूरचंद कासलीवाल
(१५) राजस्थान के जैन शास्त्र भंडारों की ग्रंथ-सूची, भाग ३: सं० कस्तूरचंद कासलीवाल
(१६) राजस्थान के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज : मुनि कांतिसागर (अप्रकाशित)
(१७) राजस्थान के हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग १: सं० मोतीलाल मेनारिया
(१८) राजस्थान के हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, भाग ३: सं० उदयसिंह भटनागर

(१९) राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र
(२०) राजस्थानी शोध संस्थान चौपासनी के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र (अप्रकाशित)
(२१) विश्वेश्वरानंद वैदिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट होशियारपुर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र
(२२) संस्कृत ग्रन्थों का परिचय: चौखम्बा संस्कृत सीरिज, बनारस
(२३) सरस्वती भवन, उदयपुर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र
(२४) साहित्य संस्थान, उदयपुर के हस्तलिखित ग्रंथों का सूचीपत्र (अप्रकाशित)
(२५) सेठ सूरजमल जालान पुस्तकालय, कलकत्ता के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची (अप्रकाशित)

(च) पत्र-पत्रिकाएँ :

(१) आजकल (दिल्ली)
(२) कल्पना (दक्षिण हैदराबाद)
(३) जिनवाणी (जयपुर)
(४) जैन धर्म प्रकाश (भावनगर) गुजराती
(५) जैन युग (बम्बई) गुजराती
(६) जैन सत्यप्रकाश (अहमदाबाद) गुजराती
(७) नागरी प्रचारिणी पत्रिका (काशी)
(८) परम्परा (जोधपुर)
(९) भारतीय विद्या (बम्बई) अंग्रेजी
(१०) भारतीय साहित्य (आगरा)
(११) मधुमती (उदयपुर)
(१२) मरु भारती (पिलानी)
(१३) मरु वाणी (जयपुर) राजस्थानी
(१४) राजस्थान भारती (बीकानेर)
(१५) राजस्थानी (कलकत्ता)
(१६) वरदा (बिसाऊ)
(१७) विक्रम (उज्जैन)
(१८) शोध पत्रिका (उदयपुर)
(१९) साहित्य (पटना)
(२०) साहित्य-सन्देश (आगरा)
(२१) सेनानी (बीकानेर)
(२२) हिन्दी अनुशीलन (इलाहाबाद)

नामानुक्रमणिका

ओ

औ

क

ख

ग

छ

ज

ध

ब

ब

भ

म

श

स

ग्रंथानुक्रमणिका

ग्रंथानुक्रमणिका

आ

ख

ग

च

ख

ग

च

श

स्थानानुक्रमणिका